विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

प्रथम खण्ड

(इस खण्ड में "अ" और "आ" दो अक्षरों से प्रारम्भ होनेवाले विश्व-इतिहास के ५५० नामों का विवेचन संकलित है)

लेखक व सम्पादक

श्री चन्द्रराज भण्डारी "विशारद"

प्रकाशक

ज्ञान-मन्दिर, भानपुरा (मध्य-प्रदेश)

प्रथम संस्करण
अगस्त १९६२

मूल्य—बारह रुपये पचास नये पैसे

प्रकाशक—
श्री चन्द्रराज भण्डारी
ज्ञान-मन्दिर, भानपुरा (मध्य-प्रदेश)

लेखक की अन्य पुस्तकें

(१) भगवान महावीर—ऐतिहासिक जीवनी, पृष्ठ संख्या ५०० प्रकाशन सन् १९२५।

(२) भारत के हिन्दू सम्राट्—ऐतिहासिक ग्रन्थ पृष्ठ संख्या ३००, भूमिका लेखक रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द "ओझा" प्रकाशन सन् १९२५

(३) समाज-विज्ञान—समाज शास्त्र का मौलिक ग्रन्थ, कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत, पृष्ठ संख्या ६०० प्रकाशन सन् १९२७।

(४) अग्रवाल जाति का इतिहास—पृष्ठ संख्या १००० प्रकाशन सन् १९३६।

(५) नैतिक-जीवन—पृष्ठ संख्या २०० प्रकाशन सन् १९२५।

(६) सिद्धार्थ कुमार (बुद्धदेव सम्बन्धी नाटक) प्रकाशन सन् १९२३।

(७) सम्राट् अशोक (नाटक) प्रकाशन सन् १९२४।

(८) वनौषधि-चन्द्रोदय (वानस्पतिक विश्व-कोष) १० भाग २२०० पृष्ठ, प्रकाशन सन् १९३८ से १९४४ तक।

(९) सम्पादक—जीवन-विज्ञान (मासिक-पत्र) प्रकाशन सन् १९४६ से १९४८ तक।

(१०) भारत का औद्योगिक विकास—पृष्ठ संख्या ७०० प्रकाशन सन् १९६०।

बुक-बाइण्डर
दफ्तरी एण्ड को०
बुलानाला,
वाराणसी।

मुद्रक—
मगन सिंह
प्रकाश प्रेस,
मध्यमेश्वर, वाराणसी

भूमिका

सबसे पहले सम्यक् ज्ञान की अधिष्ठात्री, आद्यशक्ति, भगवती सरस्वती के चरणों में हम अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं, जिसके द्वारा प्रकट होनेवाली अखण्ड ज्योति से संसार के ज्ञान का क्षेत्र हमेशा जगमगाता रहता है। जो मनुष्य की ज्ञान साधना का एकमात्र अवलम्ब है। जिससे महान् प्रेरणा पाकर मनुष्य की संकल्प शक्ति बड़े बड़े कार्यों को पूरा कर डालती है। जिसकी शान्त ज्योति संसार के विद्वानों और साहित्यकारों के मार्ग को अपने निर्मल प्रकाश से हमेशा प्रकाशित करती रहती है और जो मनुष्य को कठिनाइयों और बाधाओं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होती है।

इसके पश्चात् हम संसार के उन महान् साहित्यकारों, तत्वचिन्तकों, विचारकों और समालोचकों को अपनी अत्यन्त नम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं जिनके महान् साहित्य के अध्ययन ने हमें विश्व-इतिहास पर एक विस्तृत कोष लिखने की प्रेरणा दी, जिनकी रचनाओं ने पग पग पर हमारे मार्ग को प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में जो भी अच्छी चीज है वह सब उन मनीषियों की है तथा जो गलतियाँ और बुराइयाँ हैं वे सब हमारी अपनी हैं। उनके आशीर्वाद का स्रोत निरन्तर हमारे विवेक पर बहता रहे यही प्रभु से प्रार्थना है।

काम काफी बड़ा है, मगर यदि भगवती सरस्वती और संसार के विद्वत् समाज का आशीर्वाद साथ हो तो मनुष्य की संकल्प शक्ति बड़े से बड़े काम को भी आसानी से पूरा कर सकती है।

मानवीय ज्ञान में भूल का होना कोई नवीन चीज नहीं है। बड़े बड़े विद्वानों, साहित्यकारों, महात्माओं और राजनीतिज्ञों से भी भूलें होती रहती हैं। मगर यदि किसी भी वस्तु से प्राप्त होनेवाले गुण के मुकाबिले में उस भूल से होनेवाला अनिष्ट अधिक प्रबल न हो, उस भूल से होनेवाली हानि से उस वस्तु से मिलनेवाला लाभ अधिक उपयोगी हो तो सभ्य समाज ऐसी भूलों के लिए क्षमा कर के, नीर क्षीर विवेक से उसमें रहे हुए गुणों को ग्रहण करता है।

विश्व-इतिहास-कोष का प्रथम भाग पाठकों के हाथ में है। इसे उपयोगी बनाने में हमने अपनी शक्ति भर कोई कसर नहीं रक्खी है। फिर भी यह अच्छा है या बुरा इसका निर्णय करना पाठकों के हाथ में है। हाँ, यदि सहानुभूति पूर्ण सत्य को रखकर पाठक इसका निर्णय करेंगे, साथ ही हमारी अज्ञता से रहनेवाली भूलों और कमियों के सम्बन्ध में यदि हमें सूचित करने की कृपा करेंगे तो हम उनके कृतज्ञ होंगे।

इस भाग में विश्व-इतिहास, विश्व साहित्य, विश्व धर्म संस्था, विश्व क्रान्तियाँ इत्यादि विश्व इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले सभी नामों को अकारादि क्रम से छाँट कर उनका विवरण दिया गया है।

विवरण देते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि कोई महत्व की बात छूटने न पावे और अनावश्यक विस्तार न हो। संक्षिप्त और सारगत विवेचन ही हमने अपना लक्ष्य रक्खा है। हर स्थान पर इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला विवेचन ही विशेष रूप से किया गया है जहाँ बहुत आवश्यकता समझी वहाँ कुछ तात्विक विवेचन भी कर दिया गया है।

इस प्रकार "अ" और "आ" इन दो अक्षरों के नाम से आनेवाले ५५० नामों का विवेचन इस भाग में आया है जिनमें १३० नाम राजा, सम्राट और शासकों के, ११८ नाम साहित्य और साहित्यकारों के, ५० नाम धर्म और धर्माचार्यों के, २६ नाम महान् क्रान्तियों और क्रान्तिकारियों के तथा १५ नाम वैज्ञानिकों के हैं शेष अन्य ऐतिहासिक नामों का विवेचन है।

इस ग्रन्थ की भाषा के सम्बन्ध में भी थोड़ा-सा संकेत दे देना ठीक होगा। विश्व-कोषों में अक्सर शास्त्रीय और कठिन भाषा का प्रयोग किया जाता है जो अधिकतर विद्वान लोगों के ही काम में आ सकती है, साधारण विद्यार्थियों को उसके समझने में कठिनाई होती है। इस कोष में हमने इस नियम का पालन न कर सरल, बोधगम्य और प्रवाही भाषा का ही उपयोग किया है। भाषा के सम्बन्ध में हम अंग्रेज कवि पोप की इस उक्ति के अनुयायी हैं—

It is not enough no harshness gives offence
The sound must seem on echo to the sence

अर्थात् केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि शब्दों में कर्णकटुता न रहे बल्कि यह भी आवश्यक है कि शब्द ऐसे हों जिन के उच्चारण मात्र से उनका अर्थ ध्वनित हो जाय।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने इस बात की चेष्टा की है कि इस कोष की भाषा इतनी सरल हो कि एक अपर प्रायमरी का विद्यार्थी भी उसे आसानी से समझ सके।

सन् १६३८ से १६४४ तक इसी प्रेरणा और आशीर्वाद के साथ हमने "वानस्पतिक विश्व कोष" (वनौषधि चन्द्रोदय) का काम प्रारम्भ कर १० भागों और २२०० पृष्ठों में समाप्त किया था। प्रभु की अनुकम्पा से इस विश्व-कोष ने भारतवर्ष के सभी प्रगतिशील पुस्तकालयों में, लब्ध प्रतिष्ठित चिकित्सा-शास्त्रियों में, सरकारी वन विभाग और चिकित्सा विभाग में तथा इस विषय की शौकीन जनता में अपना स्थान ग्रहण कर लिया है। इसके कई संस्करण निकल चुके हैं, और आज भी अपने विषय की प्रामाणिक पुस्तकों में माना जाता है।

इसके बाद ही सन् १६४५ से हम इस "विश्व इतिहास कोष" का ताना बाना बुनते रहे। प्रारम्भ से ही इतिहास के विद्यार्थी रहने के कारण इस विषय में अधिक दिलचस्पी होना स्वाभाविक थी। इसी के परिणाम का पहला रूप इस भाग में पाठक देख सकेंगे। यदि सम्माननीय विद्वानों और कदरदान जनता ने इसकी निरापद भूलों पर ध्यान न देकर हमें उत्साहित किया तो बहुत शीघ्र इस ग्रन्थ के सोलह भाग उनकी सेवा में इस विश्वास के साथ अर्पित होंगे कि पिछले भाग से आगेवाला भाग हमेशा सुन्दर रहेगा और भूलों का परिमार्जन भी यथाशक्ति होता रहेगा।

बहुत प्रयत्न करने पर भी इस भाग में प्रूफ सम्बन्धी कुछ भूलें और एक दो स्थानों पर नामों के सम्बन्ध में भी कुछ भूलें हो गई हैं जिन के लिए हम नम्रतापूर्वक क्षमा चाहते हैं और विश्वास दिलाते हैं कि आगे के भागों में पूरी सावधानी के साथ ऐसी भूलों से बचने का प्रयत्न किया जायेगा।

—लेखक

विषय-सूची नं० १

(अकारादि क्रम से)

अ

नाम	पृष्ठ संख्या
अकबर महान (भारतीय सम्राट्)	१९
अकबर इलाहाबादी (भारतीय कवि)	२६
अकबर (मुगल शाहजादा)	२६
अक्टूबर-क्रान्ति (रूसी क्रान्ति)	२७
अक्रा-सम्मेलन (अफ्रीका)	३१
अखा (मेवाड़)	३१
अकमल खां (अफरीदी नेता)	३१
अकलंक (जैनाचार्य)	३२
अखता खां (खिलजी)	३२
अखनज़र (उजबेक सरदार)	३२
अखबारी-साहित्य	३२
अकाली	२१६
अखामनी साम्राज्य (ईरान)	३३
अखनातून (मिस्र)	३४
अखा (गुजरात)	३४
अंगुलिमाल (डाकू)	३५
अगुई नाल्डो (फिलिपाइन)	३५
अग्रवाल (भारत)	३५
अगरोहा (भारत)	३६
अग्रमन (भारत)	३६
अगस्टाइन (रोमन चर्च)	३६
अकिल टाम्स रुबिन (अमेरिका)	३७
अंग (भारत)	३८
अंगोलेपियन (भारत)	३८
अग्निमित्र (शुंग वंश)	३८
अंद्रे मरी एम्पीयर (फ्रांस)	३८
अंगुत्तर-निकाय (बौद्ध आगम)	३९
अंगद गुरु (सिक्ख गुरु)	३९
अंगकोर (इंडोचायना)	३९
अंगोरा (टर्की)	४०
अंग्रेजी भाषा और साहित्य	४०
अगस्ट विल्हेम स्लेगल (जर्मन)	४७
अगथोक्लिया	४७
अजंता गुफाएं (भारत)	४७
अजटेक साम्राज्य (मेक्सिको)	४७
अजमेर (भारत)	४८
अजय वर्मा (मालवा)	४९
अजयदेव (भारत)	४९
अजयपाल (गुजरात)	५०
अजब सिंह (बल्लभगढ़)	५०
अजमल खां (भारतीय हकीम)	५०
अजातशत्रु (भारतीय सम्राट)	५०
अजित सिंह (जोधपुर)	५१
अजित केश कम्बली (भारत)	५१
अजीमुल्ला खां (भारत)	५२
अंजो राजवंश (इंग्लैंड)	५२
अजार्स	५४
अंजेलो (इटली)	५५
अंजुमने तरक्किए-उर्दू	२३६
अटाला मस्जिद (भारत)	५५
अटालस (एशिया माइनर)	५५
अठारह सौ सत्तावन (विद्रोह)	२३१
अड्रियानोपुल का घेरा	५५
अटलांटिक घोषणापत्र	५५

नाम	पृष्ठ संख्या
अंटोनियस (रोम)	५६
अंटोनचेखोव (रूसी लेखक)	५७
अंटोनियो पूसी (इटली)	५७
अढ़ाई दिन का झोपड़ा	५७
अतसिक (मध्य एशिया)	५७
अणहिल (भारत)	५८
अता मल्लिक (फारसी लेखक)	५८
अथानीसियस (योरोप)	५८
अथर्ववेद	५८
अदली शाह (भारत)	५९
अदहम खान (भारत)	५९
अद्वैतवाद	६०
अन्द्रेगीद (फ्रेंच साहित्य)	६१
अनवरी (फारसी साहित्य)	६१
अनका माहम (भारत)	६१
अनंगपाल तोमर (भारत)	६१
अनन्तदेव शिलाहार (भारत)	६२
अनन्तराज (कश्मीर)	६२
अनाम	६२
अनावृत	६३
अन्द्रेदा (पोर्तगीज)	६४
अनकू क्रब (चीन)	६४
अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार	६४
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन	६५
,, ,, द्वितीय	६६
,, ,, तृतीय	६६
अन्तर्राष्ट्रीय वित्तनिगम	६६
अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष	६६
अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति-अभिकरण	६७
अन्तर्राष्ट्रीय बाल-सकट-कोष	६७
अनेकान्तवाद (जैनसिद्धान्त)	६७
अन्नपूर्णा बाई (नागपुर)	६८
अनन्त वर्म्मन (भारत)	६८
अर्नाहिलवाड़	२३६
अंटोनी माल्येवस्की (पोलैंड)	६९

नाम	पृष्ठ संख्या
अदी-इब्न-जैद (अरबी कवि)	६९
अनसन (इंगलैंड)	६९
अनागाता (जापान)	६९
अनन्त कीर्ति (जैनाचार्य)	६९
अनुराधापुर (सीलोन)	२३६
अंती ओकस द्वितीय (ग्रीक शास्त्री)	६९
अतिमा लोगो (विश्व-कोश)	७०
अनवर पाशा (टर्की)	७०
अनानबेन-डेविड (यहूदी)	७०
अनातोल फ्रांस (फ्रेंच लेखक)	७०
अना केरेनिना (रूसी उपन्यास)	७१
अन्नाकस-लूकानस (रोमन कवि)	७१
अन्नाकस मेनेका (लेटिन कवि)	७१
अनसारी मुख्तार अहमद (भारत)	७१
अनुशीलन-समिति (ढाका)	७२
अपभ्रंश-साहित्य	७२
अप्पा साहब (सतारा)	७३
अप्पाराव (तेलगू कवि)	७३
अपरादित्य प्रथम (भारत)	७३
,, द्वितीय ,,	७४
अपोलोनियस (ग्रीक कवि)	७४
अफलातून (ग्रीक तत्व वेत्ता)	७४
अफनासी (रूसी यात्री)	८१
अफीम का युद्ध (चीन)	८२
अफजल खा	८३
अफ्रीकी-एशिया-एकय-सम्मेलन	८४
अफ्रीकी-एशिया-आर्थिक सम्मेलन	८४
अफ्रीकी-जन-सम्मेलन	८४
अफ्रीका महाद्वीप	८५
अफगानिस्तान	८६
अब्दुर्रहीम खान खाना (हिन्दी कवि)	९०
अब्राहम लिंकन (अमेरिका)	९२
अब्बास शाह (ईरान)	९२
अब्दुल्ला ताहीरी (बगदाद)	९३
अब्बासी खलीफा (अरब)	९३

नाम	पृष्ठ संख्या
अब्बास तैयबजी (भारत)	९४
अबामीनियां	९४
अबुल फजल (भारत)	९५
अबुल कलाम आजाद („)	९६
अब्दुल्ला-बिन-ममान	९८
अब्दुल्ला बुखारी (ईरान)	९८
अबुल हसन रूद (फारसी कवि)	९९
अब्दुल मलिक सामानी (ईरान)	९९
अब्दुल मजीद अफरीदी (तुर्की)	९९
अबू मुस्लिम (ईरान)	९९
अबुल खैर (मध्य एशिया)	९९
अब्दुल्ला खेबानी द्वितीय	१००
अब्दुल गनी	१००
अबुल मआली	१०१
अब्दुल्ला खां (मालवा)	१०२
अब्दुल्ला सैय्यद	१०२
अब्दुर्रहमान (अफगानिस्तान)	१०२
अब्दुल नबी (मथुरा)	१०२
अबू तालिब-अल-मक्की (अरब)	१०२
अबू-मा-शर (अरब)	१०२
अबू-यूसुफ (अरब)	१०२
अब्दुल गफ्फार खां (भारत)	१०३
अब्दुल्ला सुल्तान पुरी ([illegible])	१०३
अबुल फजल अहमद	१०४
अबू सैद-इब्न-अबुलखैर (फारसी कवि)	१०४
अबू-अब्दुल्ला जाफर "रूदकी"	१०४
अबू-नुवास (अरबी कवि)	१०५
अबू-अल-अताहिया („)	१०५
अबू-दुल्ला-याह	१०५
अबू-बकर (अरब)	१०५
अबू-हनीफाह	१०५
अब्दुल मलिक	१०५
अब्दुर रज्जाक (मुसलिम यात्री)	१०६
अब्दुल रज्जाक जामी (फारसी कवि)	१०६
अब्राहम-इब्न-एजरा (यहूदी)	१०६
अब्दुल्ला कुतुबशाह (गोलकुण्डा)	१०६
अब्दुल हसन कुतुबशाह	१०७
अब्दुल फतह (मुलतान)	१०७
अबे-प्रेवोस्ट (फ्रेंच लेखक)	१०७
अब्दुल्ला (अरब सेनापति)	१०७
अब्दुर्रजाक समरकंदी	१०७
अबू सईद	१०८
अभय सिंह (जोधपुर)	१०८
अभयदेव सूरि (जैनाचार्य)	१०८
अभ्रक (खनिज द्रव्य)	१०९
अभिधम्म पिटक (बौद्ध आगम)	११०
अभिनव भारत सोसायटी	१११
अभिनव गुप्त	२३६
अभिधर्म कोष (बौद्ध ग्रन्थ)	१११
अभिलषितार्थ-चिन्तामणि	१११
अभिज्ञान शाकुन्तल	१११
अमर सिंह राठौर	११४
अमर सिंह थापा (नेपाल)	११४
अमर सिंह (बिहार)	११५
अमर सिंह महाराणा (मेवाड़)	११५
अमर सिंह महाराणा द्वितीय	११६
अम्बर मलिक (अहमद नगर)	११६
अम्बा प्रसाद (मेवाड़)	११७
अमरू (कश्मीरी कवि)	११७
अमरू सफ्फारी (ईरानी शासक)	११७
अमर-कोश	११७
अमर चन्द सूरि (जैनाचार्य)	११८
अमृतचन्द्र (जैनाचार्य)	११८
अमित गति सूरि (जैनाचार्य)	११८
अम्बर का युद्ध	११८
अम्ब्रोस (ईसाई सन्त)	११८
अमृत बाजार पत्रिका	११९
अम्बेडकर (हरिजन नेता)	११९
अम्बोएना का हत्याकांड	१२०

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
अमर दास गुरू (सिक्ख गुरु)	१२०	अरब लीग (मिस्र)	१५८
अमानत (उर्दू कवि)	१२०	अरब सुरक्षा-सन्धि	१५६
अमाडियस हाफ-मैन (जर्मन कवि)	१२१	अर्जेंटिना	१५६
अमानुल्ला अमीर (अफगानिस्तान)	१२१	अर्काट का घेरा	१५६
अमीर मीनाई (उर्दू कवि)	१२१	अर्शक प्रथम (ईरान)	१६०
अमृतसर	१२२	अर्देशिर	१६०
अमीना बेगम	१२२	अर्नोबियस (ईसाई कवि)	१६०
अमेरिका (महाद्वीप)	१२२	अर्नोहोल्फ (जर्मन कवि)	१६०
अम्ब पालिका	१३४	अर्थर शिन्भलर (आस्ट्रिया)	१६१
अयूब खाँ (पाक-राष्ट्रपति)	१३५	अराई हाकू-सेकी (जापान)	१६१
अयोध्या सिंह उपाध्याय	१३६	अर्थर वान शेंडेल (डच लेखक)	१६१
अयोध्या	१३७	अड्रियान-वान-डेरविन (डच लेखक)	१६१
अरब	१३७	अरमांड (आयर लैंड)	१६१
अराकान (बर्मा)	१४५	अर्जभस (रूस)	१६१
अराकी (जापान)	१४५	अर्नगार वर्ग (नार्वे)	१६२
अरीता (जापान)	१४६	अर्नुल्फ ओवर लैंड	१६२
अरेक्सेयेफ (रूस)	१४६	अर्थर रैंबो (फ्रेंच कवि)	१६२
अरबन द्वितीय (रोमनचर्च)	१४६	अर्बून राजवंश (सिन्ध)	१६२
अरबन पञ्चम	१४७	अर्ल हेग (इंगलैंड)	१६२
अर्जुन देव गुरू (सिक्ख गुरु)	१४७	अर्ल आफ एसेक्स (इंग्लैंड)	१६२
अर्जुन (कन्नौज)	१४७	अर्ल ग्रे (इंग्लैण्ड)	१६३
अर्विद जर्नेफिल्ट (फिनलैंड)	१४७	अल-अहराम (मिस्र के पिरामिड)	१६३
अर्की लोकस (ग्रीक कवि)	१४७	अल-अहराम (मिस्र का दैनिक पत्र)	१६३
अरिस्टो फेनीज (ग्रीस)	१४८	अल-अख्तल (अरबी कवि)	१६३
अर्णोराज (अजमेर)	१४८	अल-उतबी (इतिहासकार)	१६४
अरविन्द घोष	१४८	अल-काली (अरबी लेखक)	१६४
अरविन (वाइसराय)	१४६	अल-खूरो (अरबी कवि)	१६५
अर्थशास्त्र	१४६	अल-गजाली (ईरानी)	१६५
अरस्तू (ग्रीक तत्ववेत्ता)	१५०	अल-बूसीरी (अरबी कवि)	१६५
अर्जुन लाल सेठी	१५४	अल डुस हक्सले (इंगलैड)	१६५
अर्जुन वर्मा (मालवा)	१५५	अल-जरकाली	१६५
अरूणा आसफ अली	१५५	अल-जहाबी (ईराक)	१६५
अराजकवाद	१५५	अल्कउस (ग्रीस)	१६५
अर्नेस्ट डाउसन (अंग्रेज कवि)	१५७	अल्क-मन	१६६
अरबी पाशा (मिस्र)	१५८	अल्कू-इन	१६६

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
अल्जीरिया (देश)	१६६	अल-रूसाफी (अरबी कवि)	१७८
अल्जेर्नन स्विनबर्न (अंग्रेज कवि)	१६७	अल-शहरस्तानी ,,	१७९
अल्तमश (दिल्ली का सुल्तान)	१६७	अल-समव-अल इब्न आदिया	१७९
अल्ताई (रूस)	१६८	अल-सिन्द-हिन्द (ज्योतिष ग्रन्थ)	१७९
अल्ताफ हुसेन हाली (उर्दू कवि)	१६९	अलस्टर (आयर लैंड)	१७९
अल्तूनियाँ (भारत)	१७०	असोशियेटेड प्रेस	१७९
अल-नाबिगा (अरबी कवि)	१७०	अल-हिलाल (साप्ताहिक)	१८०
अलप्तगीन (गजनी)	१७०	अलाउद्दीन खिलजी	१८०
अल्प अरसलान (तुर्क सम्राट)	१७१	अलाउद्दीन गोरी	१८१
अल्फ्रेड महान (इंगलैंड)	१७१	अलाउद्दीन हुसेनशाह	१८१
अल्फ्रेड इप्सन (डेनमार्क)	१७२	अलाइड कौंसिल आफ जापान	१८२
अल्फ्रेड-डी-मिसे (फ्रेंच कवि)	१७२	अलाई मीनार	१८२
अल्फ्रेड-डी-विने ,,	१७२	अल्लाफ अबुल हुजेल	१८२
अल्फोंज दोदे (फ्रेंच लेखक)	१७२	अल्लाई (इस्लामी धर्माचार्य)	१८३
अल्फ्रेड टेनिसन (अंग्रेज कवि)	१७२	अलास्का	१८४
अल्फ्रेड हासमैन ,,	१७२	अलिफ लैला	१८४
अल्फ्रेडो ओरियानी (इटली)	१७३	अली (इस्लामी खलीफा)	१८५
अल्फिक (ईसाई सन्त)	१७३	अल-सफदी (अरबी लेखक)	१८५
अल-फाराबी (बगदाद)	१७३	अल-हसन अलबसरी (अरबी लेखक)	१८५
अलबानियाँ (देश)	१७४	अली ईमाम	१८५
अल्बर्ट ग्राईस्टोन	१७५	अलीशेर नवाई (तुर्की कवि)	१८६
अल्बर्ट अब्राहम माइकल्सन	१७५	अलीशकर बेग	१८७
अल्फोंजो मार्सिनेज तोलेदो (स्पेन)	१७५	अली कुली खाँ (जौनपुर)	१८७
अल-बलाधुरी (ईरान)	१७५	अली हजी (फ़ारसी कवि)	१८७
अल-बदी (अरबी ग्रन्थ)	१७५	अली मोहम्मद मिर्जा (ईरान)	१८७
अल्बर्ट	१७५	अली मावर्दी	१८७
अल्म क्विस्त (स्वीडेन)	१७६	अलीवर्दी खाँ (बंगाल)	१८७
अल्बी (फ्रांस)	१७६	अलीपुर षड्यंत्र	१८८
अल्बर्ट मेगनस	१७६	अलीनगर की सन्धि	१८८
अल-बुस्तानी (अरबी लेखक)	१७६	अल-आजार (मिस्र)	१८८
अल-मिडा (पुर्तगाल)	१७६	अली सेंड्रो वोल्टा (इटली)	१९३
अल-बुकर्क ,,	१७६	अलेक्सएण्डरो जार प्रथम (रूस)	१९४
अल-मुहासिबी (अरब)	१७३	,, ,, द्वितीय ,,	१९५
अल-बेरूनी (अरबी यात्री)	१७७	,, ,, तृतीय ,,	१९६
अलवा का ड्यूक	१७८	अलेक्जेंडर पोप तृतीय (रोमन चर्च)	१९७
अल्लसानी-पद्देन (तेलगू कवि)	१७८		

नाम	पृष्ठ संख्या
अलेक्जेंडर हेमिल्टन (अमेरिका)	१९७
अलेक्सेएण्ड्रो हर्जेन (रूस)	१९८
अलेक्सेएण्ड्रो ओस्ट्रोवस्की (रूस)	१९८
अलेक्जेंडर सर्जिविच पुश्किन	१९९
अलेक्सेएण्ड्रो पाप	१९९
अलेक्सी जार (रूस)	१९९
अलेक्सी टाल्स राय (रूसी कवि)	२०१
अलैन (फ्रांस)	२०१
अलोम्प्रा (बर्मा)	२०१
अलेक्सिस कीवी (फिनलैंड)	२०२
अलेक्से बारान्निको (रूस)	२०२
अलेक जान्द्रिनो (फिलिपाइन)	२०२
अलोइस जिरासेक	२०२
अवध	२०२
अवध पञ्च	२०५
अवन्ती पुरी	२०६
अवदान (बौद्ध ग्रन्थ)	२०६
अवन्ति वर्म्मन (कश्मीर)	२०६
अवार-साम्राज्य (मध्य एशिया)	२०६
अवारी (नागपुर)	२०७
अवनीन्द्र नाथ टैगोर (बंगाल)	२०७
अविलार्ड (फ्रांस)	२०७
अविग्नान ,,	२०७
अवेस्तां धर्मग्रन्थ (पारसी)	२०८
अविचेन्ना (ईरान)	२०८
अवेल्लो देवी (भारत)	२०८
अशूर साम्राज्य	२०९
असुर-बनिपाल	२०९
अश्वघोष (बौद्ध लेखक)	२०९
अश्वकर्ण	२०९
असाई शीम्बून (जापानी पत्र)	२१०
अशीदा हितोशी (जापान)	२१०
अशेनानिशी (तुर्कवंश)	२१०
अंशुवर्मन (नेपाल)	२११
अशोक महान	२११
अशोक के धर्म लेख	२१४
अशफाउल्ला (काकोरी)	२२१
अशोक मेहता	२२१
अश्राखानी राजवंश (मध्य एशिया)	२२१
असुर संस्कृति	२२२
अश्क (हिन्दी लेखक)	२२४
असंगाचार्य (बौद्ध)	२२४
अर्ल ऑफ मार (स्कॉटलैंड)	२२४
अशंक (ईरान)	२२५
अस्किलस (ग्रीस)	२२५
असहयोग क्रान्ति (भारत)	२२५
अहमद मिधात (तुर्की कवि)	२२९
अहमदशाह बहमनी	२२९
अहमदशाह मौलवी	२२९
अहमदाबाद	२३०
अहमदाबाद कांग्रेस	२३१
अहमद सामानी प्रथम	२३१
अहमद सामानी द्वितीय	२३२
अहमद शाह दुर्रानी	२३२
अहमदशाह (गुजरात)	२३२
अहमद नगर	२३२
अबुल-फिदा (इतिहासकार)	२३७
अर्द्धमागधी	२३७
अलवर	२३८
अलीगढ़	२३८
अवधी भाषा और साहित्य	२३८
अष्टाध्यायी	२३८
अमुर नजीरपाल	२३८
अनवर (उर्दू कवि)	२३९
अनीस ,,	२३९
अप ओकी	२३९
अमीना-बेगम	२४०
अम्बिका चक्रवर्ती	२४०
अपोलोनियस	२४०
अर्जुन	२४०

नाम	पृष्ठ संख्या

अल-हम्ब्रा २४१
अघोर पंथ २४१
अम्बिका प्रसाद वाजपेयी २४२
अन्सार २४२
अमीरखुसरो २४२
अमीर अली २४२
अमोघ वर्ष प्रथम २४२
अब्दुल्ला शेख २४३
अशीकागा शोगनशाही २४३
अहमद शौकी २४४
अहिल्याबाई होलकर २४४
अक्षय कुमार दत्त २४५
अज्ञेय २४५
अज्ञेयवाद २४५
अलेरिक २४६
अलफ्रेडथियेट्रिकल कम्पनी २४६
अरोडा २४६
अर्ल २४७
अगामी २४७
अलंकारशास्त्र २४७

आ

आइजनहोवर (अमेरिका) २४९
आइजक न्यूटन (वैज्ञानिक) २५०
आइखमेन (जर्मनी) २५१
आइवन महान (रूस) २५१
आइसलैण्ड २५१
आर्कराइट २५२
आदरिन २५२
आउटरम २५२
ऑक्टर लोनी २५२
ऑक्स (इंगलैण्ड) २५२
ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी २५३
ऑकलैण्ड (गवर्नर जनरल) २५३
आक्सफोर्ड २५४
ऑगस्टस सीजर (रोम-सम्राट्) २५४
अमारकर २५६
आगस्ट कैण्ट २५६
आगम-साहित्य २५७
आग्रि पिना (रोम) २५८
आंग्ल जापानी संधि २५८
आरज वर्ग संघ २५८
आगाखाँ २५९
आतुर्गी २५९
आचारांग सूत्र २५९
आज (समाचार पत्र) २६०
आजम हुमायूं २६०
आजीविक सम्प्रदाय २६१
आजाद हिन्द फौज २६१
आटोव्हान गेयरिक (जर्मनी) २६४
आटीला (हूण सरदार) २६४
आदर्शवाद (राजनीति सिद्धांत) २६५
आदित्य प्रथम २६६
आदिल खाँ फारुकी २६६
आदम मिकीवक्स (पौलेण्ड) २६६
आन्ध्र-सातवाहन २६६
आनन्द-मन्दिर २६७
आनन्द-मठ २६७
आनन्द-भवन २६७
आनन्द-घन २६७
आनन्द-वर्द्धन २६७
आनन्द प्रकाश जैन २६७
आनन्दपाल २६८
आनन्दीबाई २६८
आबू-पर्वत २६९
आमूर की घाटी २६९
आयर (अंग्रेज सेनापति) २६९
आयरकूट (,,) २७०
आयुर्वेद २७०
आर्क-बिशप २७२

नाम	पृष्ठ संख्या
आर्य्य-संस्कृति	२७३
आर्य्य-समाज	२७६
आर्गेनन (होमियोपैथिक ग्रन्थ)	२८३
आयशा (अरब)	२८३
आयलैंड	२८३
आयस प्रथम (शक राजा)	२८५
आर्थरग्रिफिथ (आयरलैण्ड)	२८६
आल्हा चारण (राजस्थान)	२८६
आल्हा खण्ड	२८६
आरीओस्टो (इटाली)	२८६
आलमखान (बुखारा)	२८६
आलम खाँ (मालवा)	२८७
आर्क ड्यूक फ्रांसीस फर्डीनण्ड	२८७
आर्थरग्लुण्ड क्रिस्त (स्वीडन)	२८७
आर्किमिडेस (यूनान)	२८७
आर्डियन	२८८
आरामन तीर्थ (जैन)	२८८
आरेञ्ज राजवंश (इंगलैण्ड)	२८९
आर्डिनेन्स	२८९
आरनाल्ड (इटली)	२८९
आर्मेडा (स्पेन का जहाजी बेड़ा)	२८९
आर्डर इन कौंसिल (इङ्गलैण्ड)	२९०
आर्थर वेलेज्ली (इङ्गलैण्ड)	२९७
औलिवर ट्विस्ट	२९०
औलिवर क्रामवेल (इंग्लैण्ड)	२९१
आबरू (उर्दू कवि)	२९२
आश्वलायन सूत्र (बौद्ध ग्रन्थ)	२९२
आस्टरलिज का युद्ध	२९२
आशाधर (जैन लेखक)	२९२
आसफजाह (हैदराबाद)	२९३
आजुर्दा (उर्दू कवि)	२९३
आसबर्ग (इटली)	२९३
आग्जबर्ग की लड़ाई	२९४
आस्ट्रेलिया	२९४
आरजू (उर्दू कवि)	२९६
आस्क्विथ (इङ्गलैण्ड)	२९६
आईन-ए-अकबरी	२९७
आसफ खाँ	२९७
आसाम	२९७
आहवमल सोमेश्वर	२९९
आगरा	२९९
आतिश (उर्दू कवि)	३००
आसफुद्दौला "आसफ"	३०१
आसियम क्लाडियम	३०१
आंकस मार्शियस (रोम का राजा)	३०२
आॅप्टिमिंट	३०२
आम्युलियस	३०२
आरिटओकस	३०२
आस्ट्रिया	३०३
आसनसोल	३०६
आल्फान्सो (स्पेन का राजा)	३०६
आर्लिंगटन	३०६
आर्य्य-भट्ट	३०७
आर्य्य-भट्ट द्वितीय	३०७
आर्थर-चेस्टरलेन (अमेरिका)	३०७
आर्कलायूस	३०७
आदिपुराण	३०८
आरा	३०८
आना (रूस सम्राज्ञी)	३०८
आनाक्सागोरस	३०८

भूल-सुधार

पृष्ठ २९७ पर "आईन ए-अकबरी" के स्थान पर "आयना ए-अकबरी", पृष्ठ १९४ पर अलेक्सेण्ड्रो जार की जगह अलेक्झेण्डर जार और पृष्ठ ७१ पर "अन्सारी मुख्तार अहमद" की जगह "अन्सारी-शौकत उल्ला" गलती से छप गया है पाठक इन स्थानों पर भूलों को ठीक कर लेने की कृपा करें।

विषय-सूची २

(विषयानुक्रम से)

अ

नाम	पृष्ठ संख्या
महाद्वीप, देश, प्रान्त और नगर—३६	
अगरोहा (नगर)	३६
अङ्ग (प्रान्त)	३८
अङ्ग कौर (नगर)	३६
अंगोरा ,,	४०
अजमेर ,,	४८
अनाम (प्रान्त)	६२
अफ्रिका (महाद्वीप)	८५
अफगानिस्तान (देश)	८६
अबीसीनिया ,,	६४
अमृतसर (नगर)	१२२
अमेरिका (महाद्वीप)	१२२
अयोध्या (नगर)	१३१
अरब (देश)	१३८
अराकान (प्रान्त)	१४५
अर्जेमस	१६१
अलजीरिया (देश)	१६६
अल्ताई (प्रान्त)	१६७
अलवर (नगर)	२४६
अलिब ,,	१७६
अलीगढ़ ,,	२४६
अलस्टर ,,	१७१
अवध (प्रान्त)	२०२
अनुराधापुर (नगर)	२४५
अवन्तीपुरी ,,	२०६
अनहिलवाड़ ,,	२४५
अहमदाबाद ,,	२३०
अहमदनगर ,,	२३२

नाम	पृष्ठ संख्या
आइसलैण्ड (देश)	२५१
आबू पर्वत	२६६
आयर्लैण्ड (देश)	२८३
आसाम (प्रान्त)	२८७
आस्ट्रेलिया (महाद्वीप)	२६४
आगरा (नगर)	२६६
आस्ट्रिया (देश)	३०३
आसनसोल (नगर)	३०६
आरा ,,	३०८
सम्राट, राजा, राजवंश और शासक १३०	
अकबर महान् (मुगल-सम्राट्)	१६
अकमल खाँ	३१
अकनजर	३२
अखामनी साम्राज्य (ईरान)	३३
अखनातून (मिश्र)	३४
अग्रसेन (भारत)	३६
अग्निमित्र (शुंगवंश)	३८
अजटेक साम्राज्य (मैक्सिको)	४७
अजयवर्मा	४६
अजयदेव	४६
अजयपाल	५०
अजब सिंह	५०
अजातशत्रु	५०
अजित सिंह	५१
अंजो राजवंश (इङ्गलैण्ड)	५२
(हेनरी द्वितीय, रिचर्ड प्रथम, जॉन प्रथम, हेनरी तृतीय एडवर्ड प्रथम, एडवर्ड द्वितीय, एडवर्ड तृतीय, रिचर्ड द्वितीय	

नाम	पृष्ठ संख्या
अएटोनियस (रोम)	५६
अटालस (एशिया माइनर)	५५
अतसिक (ख्वारेजम)	५७
अदलीशाह	५६
अनंगपाल तोमर	६१
अनन्तदेव शिलाहार	६२
अनन्त राज (काश्मीर)	६२
अनावृत (बरमा)	६३
अन्नपूर्णा बाई (भोंसले)	६८
अनन्त वर्मन	६८
अन्तीओकस द्वितीय (ग्रीक)	६६
अप्पा साहब (सतारा)	७३
अपरादित्य प्रथम	७३
अपरादित्य द्वितीय	७४
अब्राहम लिंकन (अमेरिका)	६२
अब्बास शाह (ईरान)	६२
अब्दुल्ला ताहिरी (बगदाद)	६३
अब्बासी खलीफा (अरब)	६३
अब्दुल मलिक सामानी (ईरान)	६६
अब्दुल खैर	६६
अब्दुल्ला शैबानी द्वितीय	१००
अब्दुल्ला खां (मालवा)	१०२
अब्दुल्ला सैय्यद	१०२
अब्दुर्रहमान (अफगानिस्तान)	१०२
अबू-बकर (खलीफा)	१०५
अब्दुल मलिक (खलीफा)	१०५
अब्दुल्ला कुतुब शाह	१०६
अबुल हसन कुतुब शाह	१०७
अब्दुलफतह (मुलतान)	१०७
अबुल्ला (खुरासान)	१०७
अबू-सईद (उजबिकेस्तान)	१०८
अभय सिंह (जोधपुर)	१०८
अमरसिंह राठौर	११४
अमरसिंह महाराणा (मेवाड़)	११५
अमर सिंह द्वितीय	११६
अमरू सफ्फारी	११७
अमानुल्ला (अफगानिस्तान)	१२१
अयूब खां (पाकिस्तान)	१३५
अर्णोराज (अजमेर)	१४८
अरविन (वाइसराय)	१४६
अर्जुन वर्मा (मालवा)	१५५
अरशक प्रथम (ईरान)	१६०
अर्देशिर (ईरान)	१६०
अरबून राजवंश (सिंध)	१६४
अल्तमश	१६७
अलतूनिया	१७०
अलपतगीन (गजनी)	१७०
अल-प्रस्लन (तुर्की)	१७१
अलफ्रेड महान (इङ्गलैण्ड)	१७१
अलमिडा (पुर्तगाल)	१७६
अलबुकर्क (,,)	१७६
अलवा का ड्यूक (स्पेन)	१७७
अलाउद्दीन खिलजी	१८०
अलाउद्दीन गौरी	१८१
अलाउद्दीन हुसैन शाह	१८१
अली (खलीफा)	१८५
अलवर्दी खां (बङ्गाल)	१८७
अलेकसेन्द्रो जार प्रथम (रूस)	१६४
अलेकसेन्द्रो जार द्वितीय (रूस)	१६५
अलेकसेन्द्रो जार तृतीय (रूस)	१६६
अलेक्सी जार (रूस)	१६६
अलोम्प्रा (बरमा)	२०१
अवध के नवाब	२०२
अवन्ति वर्मन (काश्मीर)	२०६
अवार-साम्राज्य (मध्य एशिया)	२०६
अशुर साम्राज्य	२०६
अशुर बनिपाल	२०६
अशेमा निशि	२१०
अंशु-वर्मन (नेपाल)	२१०
अशोक महान	२१०

नाम	पृष्ठ संख्या
अश्राखानी राजवंश (मध्य-एशिया)	२२१
अहमदशाह बहमनी	२२५
अहमद सामानी प्रथम (ईरान)	२३१
अहमद सामानी द्वितीय (ईरान)	२३२
अहमद शाह दुर्रानी	२३२
अहमद शाह (गुजरात)	२३२
अमूर नजीर पाल	२४६
अप ओकी	२४७
अमोघ वर्ष प्रथम	२४८
अशीकागा शोगनशाही	२४८
अहिल्या बाई होलकर	२४८
अलेरिक	२४८
आइजन होवर (अमेरिका)	२४६
आइवन महान (रूस)	२४१
आकलैण्ड (गवर्नर जनरल)	२५३
आगस्टस सीजर (रोम)	२५४
आचुगी शिंदे	२५६
आदित्य प्रथम	२६६
आदिलखां फारुकी	२६६
आन्ध्र-सात वाहन	२६६
आनन्द पाल	२६८
आयन प्रथम (शक राजा)	२८५
आलम खान (बुखारा)	२८६
आर्क ड्यूक फ्रान्सिस फर्डिनण्ड	२८८
ऑरेंज राज वंश (इंगलैण्ड)	२८६
ऑलिवर क्रामवेल (इंगलैण्ड)	२६१
आसफजाह (हैदराबाद)	२६३
आस्क्विथ (इंगलैण्ड)	२६६
आकस मार्शियस (रोम)	३०२
आरिस्टबोकस (एशिया माइनर)	३०२
आम्पूलियस (आलबालोंगा)	३०२
आल्फोन्सो (स्पेन)	३०६
आर्थर वेस्टरलेन (अमेरिका)	३०७
आर्केलाधुस	३०७
आन्ना (रूस सम्राज्ञी)	३०८

साहित्य और साहित्यकार

नाम	पृष्ठ संख्या
अकबर इलाहाबादी	२६
अंकिल टाम्स केबिन (उपन्यास)	२७
अक्कादी साहित्य	३२
अंग्रेजी भाषा और साहित्य	४०
अगस्ट विलहेम-श्लेगल (जर्मन)	४७
अंजुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू	२४३
अण्टोन चेखोव (रूस)	५७
अण्टोनिओ पुसी (इटली)	५७
अतामलिक (फारसी लेखक)	५८
अन्द्रेजीद (फ्रेन्च लेखक)	६१
अनवरी (फारसी साहित्यकार)	६१
अण्टोनी माल्येवस्की (पौलेण्ड)	६६
अदी-इब्न-जैद	६६
अनाटोल-फ्रान्स	७०
अनवर (उर्दू कवि)	२४७
अनीस (,,)	२४७
अना केरेनिना (रूसी उपन्यास)	७१
अन्नाकस लुकानस (लैटिन कवि)	७१
अन्नाकस सेनेका (,, ,,)	७१
अपभ्रंश साहित्य	७२
अप्पा राव (तैलगू कवि)	७३
अपोलोनियस (ग्रीक कवि)	७४
अब्दुर्रहीम खानखाना (रहीम)	४०
अबुल फजल	६५
अबुल हसन "रूद" (फारसी कवि)	६६
अबु-तालिब-अलमकी (अरब)	१०३
अबु-मा-शार (अरब ज्योतिषी)	१०३
अबुल-फजल-अहमद (अरब)	१०४
अबु-सैद-इब्न-अबुलखैर	१०४
अबु-अब्दुल्ला जाफ़र "रूदागी"	१०४
अबु-नुवास (ईरानी कवि)	१०५
अबु-अल-अताइया (अरब)	१०५
अबु-बुला याह	१०५

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
अब्दुल रजाक जामी (फारसी कवि)	१०६	अलिफक (इंगलैण्ड)	१७३
अब्राहम-इब्न-एजरा (यहूदी)	१०७	अल-फराबी	१७३
अभिनव-गुप्ता (भारत)	२४४	अल्फोंजो मसीनेजो तोले दी (स्पेन)	१७५
अबे-प्रेवोस्ट (फ्रेञ्च साहित्यकार)	१०७	अल-बलाथुरी	१७५
अभिलषितार्थ चिन्तामणी	१११	अल-बदी (अरबी अलङ्कार ग्रन्थ)	१७५
अभिज्ञान शाकुन्तल	१११	अल्म-किस्त (स्वीडन)	१७६
अमरू (कश्मीरी कवि)	११७	अल्बर्ट्स मेगेनस	१७६
अमरकोश	११७	अल-बुस्तानी (अरब)	१७६
अमीर खुसरो (फ़ारसी कवि)	२४८	अल-मुहागिबी (अरब)	१७६
अमानत (उर्दू कवि)	१२०	अल्लसानी पद्दन (तैलगू कवि)	१७८
अमाडियस हाफमेन (जर्मन साहित्यकार)	१२१	अल-रूसाफी (अरब)	१७८
अमीर मीनाई (उर्दू कवि)	१२१	अल-शहरस्तानी (अरब)	१७९
अयोध्या सिंह उपाध्याय	१३६	अल-समव अल-इब्नआदिया	१७९
अरिस्टो फेनीज (ग्रीक साहित्य)	१४८	अल-सिन्द-हिन्द (गणित)	१७९
अर्नेस्ट डाउसन (अंग्रेज कवि)	१५७	अलिफ-लैला	१८४
अर्नोवियस (रोम)	१६०	अल-सफदी (अरबी लेखक)	१८५
अर्नो-होल्फ़ (जर्मन)	१६०	अल-हसन अल-बसरी	१८५
आर्थर शिफ्लर (आस्ट्रिया)	१६१	अली-शेर-नवाई (तुर्की कवि)	१८६
अराई हाकू सेकी (जापान)	१६१	अली-हजी (फारसी कवि)	१८७
अर्थरवान शेण्डेल (डच लेखक)	१६१	अलेक सेन्ड्रो हर्जेन (रूसी लेखक)	१९८
आड्रियान-वान डरेवीम (डच)	१६१	अलेक सेन्ड्रो ओस्ट्रोव्हस्की	१९८
अल-काली	१६४	अलेक सेन्ड्रो सर्जोविच पुश्किन	१९९
अल्डुस-हक्सले (अंग्रेजी साहित्य)	१६५	अलेकभेण्डर पोप (अंग्रेजी साहित्य)	१९९
अल-खुरी	१६५	अर्द्ध-मागधी भाषा	२४५
अल-बुसीरी	१६५	अवधी भाषा और साहित्य	२४६
अल-जहरवी	१६५	अल-जरकाली	१६५
अलताफ हुसैन हाली (उर्दू कवि)	१६६	अलंकार शास्त्र	२४८
अल-नाबिगा (अरबी कवि)	१७०	अष्टाध्यायी	२४६
अल्फ्रेड इप्सन (डेन मार्क)	१७२	अज्ञेय	२४८
अल्फेड-डी-मिसे (फ्रेञ्च कवि)	१७२	अलेक्सी टालस्टाय (रूस)	२०१
अल्फ्रेड डी-विनी (,,)	१७२	अलेक्सिस कीवी (फ़िनलैण्ड)	२०२
अल्फोऊजे दोदे (फ्रेंच कहानी लेखक)	१७२	अलोक्से बाराभ्रिको (रूस)	२०२
अल्फ्रेड टेनिसन (अंग्रेज कवि)	१७२	अलोइस जिरासेक (जेकोस्लाविया)	२०२
अल्फ्रेड हासमेन (,,)	१७२	अश्वघोष (बौद्ध विद्वान)	२०९
अल्फ्रेडो ओरियानो (इटली)	१७३	अमर सिंह	२०९

नाम	पृष्ठ संख्या
अश्क उपेन्द्रनाथ	२२४
अस्किलस (ग्रीक)	२२५
अहमद मिधात	२२६
आगस्ट कैएट	२५६
आनन्द मठ	२६७
आनन्द-धन	२६७
आनन्द-वर्द्धन	२६७
आनन्दप्रकाश जैन	२६७
आइन-ए-अकबरी	२६७
आतिश (उर्दू कवि)	३००
आसफुद्दौला	३०१
आल्हा खण्ड	२८६
आल्हा चारण	२८६
आलिवर ट्विस्ट (उपन्यास)	२६०
आरजू (उर्दू कवि)	२६६

धर्म सिद्धान्त और धर्माचार्य

नाम	पृष्ठ संख्या
अकलंक (जैनाचार्य)	३२
अगस्टाइन (ईसाई सन्त)	३६
अंगुत्तर निकाय (बौद्ध आगम)	३६
अङ्गद गुरु (सिक्ख)	३६
अजित केश कम्बली	५१
अथर्ववेद	५८
अथानीसियस (ईसाई विद्वान)	५८
अद्वैतवाद	५८
अनेकान्तवाद	६७
अनन्तकीर्त्ति (जैनाचार्य)	६६
अनान बेन डेविड (यहूदी)	७०
अब्दुल्ला बखारी	६८
अब्दुला बिन मैमान (करामाती पन्थ)	६८
अब्दुल-नबी (मौलवी)	१००
अब्दुल्ला मुलतानपुरी (मौलवी)	१०३
अभयदेव सूरि (जैनाचार्य)	१०८
अभिधम्मपिटक (बौद्ध आगम)	११०
अभिधर्म कोष (बौद्धग्रन्थ)	१११
अमृतचन्द्र (जैनाचार्य)	११८
अमरचन्द्र सूरि (जैनाचार्य)	११८
अमितगति सूरि (जैनाचार्य)	११८
अम्ब्रोस (ईसाई सन्त)	११८
अमरदास गुरु (सिक्ख गुरु)	१२०
अब्बासी खलीफा	१४१
अबू-बकर खलीफा	१३६
अर्बन द्वितीय (रोमनचर्च)	१४६
अर्बन पंचम (रोमन चर्च)	१४६
अल्लाई शेख	१८१
अली (खलीफा)	१८५
अल-हसन अल-बसरी	१८५
अलेक्जेण्डर पोप तृतीय	१६७
अवदान (बौद्ध ग्रन्थ)	२०६
अवेस्तां (पारसी धर्मग्रन्थ)	२०८
अशोक के धर्मलेख	२१४
असंगाचार्य (बौद्ध आचार्य)	२२४
अज्ञेयवाद	२४८
आगम-साहित्य	२५७
आचारांग सूत्र (जैन)	२५६
आजीवक सम्प्रदाय	२६१
आर्य-संस्कृति	२७२
आर्य-समाज	२७६
आश्वलायन सूत्र (बौद्ध)	२६२
आशाधर	२६२

महान्-क्रान्तियाँ और क्रान्तिकारी

नाम	पृष्ठ संख्या
अक्टूबर क्रान्ति (रूस)	२७
अगुइनाल्दो (फिलिपाइन)	३४
अन्सारी मुख्तार अहमद	७१
अनुशीलन समिति ढाका	७२
अबुलकलामआजाद	६६
अब्दुलगफ्फार खाँ	१०३
अभिनव भारत सोसायटी	१११
अठारह सौ सत्तावन	२३१
अरविन्द घोष	१४८
अर्माएड (आयरलैएड)	१६१

नाम	पृष्ठ संख्या
अलीपुर-षड्यन्त्र	१८८
अलेकजान्द्रिनो (फिलीपाइन)	२०२
अशफाउल्ला (काकोरी षड्यंत्र)	२२१
असहयोग क्रान्ति	२२५
आजाद हिन्द फौज	२६१
आर्थरग्रिफिथ (आयरलैण्ड)	२८१
अम्बिका चक्रवर्ती	२४८
अन्फू-क्लब (चीन)	६४

राजनीति और राजनीतिज्ञ

नाम	पृष्ठ संख्या
अगस्टाइन	३६
अफलातून (ग्रीस)	७४
अरस्तू (ग्रीस)	१५०
अराकी (जापानी)	१४५
अरीता (जापानी)	१४६
अराजकवाद	१५५
अल्बर्टस मेगनस	१७६
आदर्शवाद	२२५
आस्किथ (इङ्गलैण्ड)	२६६
अपोलोनियस (,,)	२४८
अक्षयकुमार दत्त (,,)	२४८

वैज्ञानिक

नाम	पृष्ठ संख्या
अण्ड्रेमेरी एम्पियर (फ्रेञ्च)	३८
अलबर्ट आइन्स्टीन	१७४
अगासी रोडेल्फ	२४८
अलबर्ट अब्राहम माइकलसन	१७५
अलेक्जेण्डर ग्राहम बेल	१६३
अलीसेण्ड्रो व्होल्टा	१६३
अविचेन्ना (चिकित्सा शास्त्री)	२०८
आइजक न्यूटन	२५०
आर्क राइट	२५२
आटो व्हान गैयरिक	२६४
आयुर्वेद	२७०
आर्गेनन	२८३
आर्यभट्ट (ज्योतिष)	३०७
आर्यभट्ट द्वितीय	३०७
आर्कलायूस	३०७

कलाकार और कलाकृतियाँ

नाम	पृष्ठ संख्या
अंजेला माइकेल (चित्रकार)	५५
अजण्टा गुफाएँ	४७
अवनीन्द्रनाथ ठाकुर	२०७
अढ़ाई दिन का झोपड़ा	५७
आबू-पर्वत (जैनतीर्थ)	२६६
आरासन तीर्थ (जैनतीर्थ)	२८८
आपेलीज (चित्रकार)	२०६
अल-हम्ब्रा (स्पेन)	२४८

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन

नाम	पृष्ठ संख्या
अंकारा सम्मेलन	३६
अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार	६४
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन	६५
,, ,, द्वितीय	६६
,, ,, तृतीय	६६
अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम	६६
अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष	६६
अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति अभिकरण	६७
अन्तर्राष्ट्रीय बालसंकट कोष	६७
अफ्रीकी-एशिया ऐक्य सम्मेलन	८४
अफ्रीकी एशिया आर्थिक सम्मेलन	८४
अफ्रीकी वन-सम्मेलन	८४

समाचार पत्र और पत्रकार

नाम	पृष्ठ संख्या
अमृत बाजार पत्रिका	११६
अल-अहराम (मिस्र)	१६३
असोसिएटेड प्रेस (समाचार एजन्सी)	१७६
अवध-पंच	२०५
असाई शिम्बुन (जापान)	२१०
अर्जुन	२४८
आज	२६०
अल-हिलाल	१८०

सहायक ग्रन्थों की सूची

इस कोष के निर्माण में जिन महान् ग्रन्थकारों की ग्रन्थों से हमें प्रकाश प्राप्त हुआ है उनकी संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। पूरी सूची अन्तिम भाग में दी जावेगी।

पं० जवाहरलाल नेहरू	विश्व इतिहास की झलक, हिन्दुस्तान की कहानी
डॉ० भगवत शरण उपाध्याय	विश्व साहित्य की रूपरेखा, प्राचीन भारत का इतिहास
महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन	मध्यएशिया का इतिहास २ भाग, अकबर
गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा	राजपूताने का इतिहास ८ भाग
डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार	एशिया का आधुनिक इतिहास, यूरोप का आधुनिक इतिहास
बर्वे और चतुर्वेदी	इंग्लैण्ड का इतिहास
श्री सुख सम्पत्ति राय भण्डारी	भारत के स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास
श्री ज्योति प्रसाद सूद	राजनैतिक विचारों का इतिहास भाग १–२–३
आचार्य नरेन्द्र देव	बौद्ध दर्शन
श्री सुरेन्द्रनाथ बिसारिया	आधुनिक राजनैतिक विचार धाराएँ
विनायक गणेश सावरकर	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम
डॉ० पट्टाभि सीतारमैया	कांग्रेस का इतिहास १–२–३ भाग
अमेरिकन प्रकाशन	अमेरिकन इतिहास की रूप रेखा
श्री परशुराम चतुर्वेदी	संत काव्य
डॉ० प्रभात कुमार भट्टाचार्य	प्रतिनिधि राजनैतिक विचारक
जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	भारतीय शब्द कोश
श्री देवी प्रसाद मुन्सिफ	मारवाड़ राज्य का इतिहास
श्री छबिनाथ पाण्डेय	पश्चिमी यूरोप
चिन्तामणि विनायक वैद्य	हिन्दू भारत का अन्त
श्री नाथूराम प्रेमी	जैन साहित्य और इतिहास
श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	विश्व साहित्य
पं० रामनरेश त्रिपाठी	कविता कौमुदी ५ भाग
श्री विश्वेश्वरनाथ झा	भारत के प्राचीन राजवंश १–२ भाग
श्री गुलाब राय एम० ए०	विज्ञान विनोद
श्री गुरुनाथ शर्मा	मिश्र की राष्ट्रीय प्रगति
परशुराम चतुर्वेदी	उत्तर भारत की संत परम्परा

श्री रामदास गौड	हिन्दुत्व
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	आर्य्य समाज का इतिहास
श्री ब्रजरत्न दास	उर्दू साहित्य का इतिहास
श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी	समाचार पत्रों का इतिहास
श्री शंकर राव जोशी	रोम साम्राज्य
प्लूटार्क (अनु०—मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव)	ग्रीस और रोम के महापुरुष
डॉ० प्राणनाथ विद्यालंकार	इंग्लैण्ड का इतिहास
एल—मुकुर्जी	योरोप का इतिहास
विष्णु अनुग्रह नारायण सिंह	इंग्लैण्ड का आर्थिक इतिहास
प्यारे लाल शर्मा	विश्व-इतिहास की रूप रेखा
सुरेन्द्रनाथ सेन	अठारह सौ सत्तावन

साप्ताहिक हिन्दुस्तान और धर्म युग के फाइल—

गुजराती

नवीन जापानी उत्क्रान्ति	चम्पक लाल लाल भाई मेहता
जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास	मोहनलाल दुलि चन्द देसाई

English

H. G. Wells	Out line of History
K. M. Pannikar	A survey of Indian History
Moreland	India from Akabar to Aurangzeb
Homes	History of Indian Mutiny
K. M. Pannikar	The future of South East Asia
Roy-Chaudhari	Political history of Ancient India
Bhandarkar	Early History of Daccan Asoka
E. G. Browne	Literary History of Persia
H. H. Howarth	History of Mangol
L. A. Mills	The New World of South East Asia
Chaldea	The Story of the Nations
John Macy	The Story of the World's Literature
Nawrice W. Ph-d.	A Story of Indian Literature
Hays C. J. H.	A History of Modern Europe
A. Bersidale Keith	A History of Sanskrit Literature
Sarkar & Srivastava	The World Year-Book

विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

ज्ञान-मन्दिर—प्रकाशन

पूर्व परिचय

विश्व-इतिहास कोष का प्रारम्भ अकारादिक्रम से किया किया जा रहा है। अभी तक की योजना के अनुसार यह कोष चार चार सौ पेज के करीब बारह खण्डों में पूर्ण होगा। खण्डों की यह संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ भी सकती है।

विश्व इतिहास-कोष में निम्नलिखित विषयों का समावेश रहेगा—

विश्व-इतिहास, (२) विश्व साहित्य, (३) विश्व-धर्म संस्था, (४) राजनीति शास्त्र, (५) विज्ञान और अनुसन्धान तथा (६) औद्योगिक विकास।

हरएक शब्द का विवेचन संक्षेप में मगर साङ्गोपांग किये जाने की योजना है जैसा कि इस भाग में देखने को मिलेगा।

विश्व इतिहास कोष के सब भाग प्रकाशित हो जाने पर इसी सिलसिले में दो भाग पौराणिक विश्वकोष और एक भाग, वानस्पतिक विश्व-कोष प्रकाशित करने करने की भी योजना है।

अभी तक के अनुमान के अनुसार तीन वर्ष में "विश्व-इतिहास-कोष के सब भाग प्रकाशित कर दिये जावेंगे परिस्थिति के अनुसार यह समय बढ़ भी सकता है।

विश्व कोष का क्षेत्र बहुत विशाल है और मनुष्य की बुद्धि बहुत सीमित है। कई प्रकार की भूलें और अपूर्णताएँ रहना सम्भव है। ये भूले और अपूर्णताएँ विद्वानों और जानकारों के सहयोग से ही दूर हो सकती है। पठित समाज से विनम्र प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में हर प्रकार की सूचना, सजेशन और छूटे हुए शब्दों की जानकारी भेजने की कृपा करें। उनकी सूचनाओं का धन्यवाद पूर्वक उपयोग किया जावेगा।

—लेखक

विश्व-इतिहास-कोष

प्रथम खण्ड

(अकारादि क्रम से)

[अ]

अकबर महान्
(Akbar the Great)

अकबर महान, मुगल साम्राज्य का इतिहास प्रसिद्ध बादशाह हुमायूँ का पुत्र, बादशाह बाबर का पौत्र, जन्म सन् १५४२, राज्यारोहण सन् १५५६, मृत्यु सन १६०५।

भारतवर्ष के महान इतिहास में राजकीय क्षेत्र के अन्तर्गत जितने महान व्यक्तित्व अपने प्रखर तेज से चमकते हुए नजर आते हैं उनमें मुगल सम्राट अकबर भी अपना एक प्रमुख स्थान रखते हैं। पं० जवाहर लाल नेहरू अपने 'विश्व इतिहास की झलक' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखते हैं :—

"यह एक अजीब बात है कि ईसा के ३०० वर्ष पहले का एक बौद्ध सम्राट् और ईसा के बाद सोलहवीं सदी का एक मुसलमान सम्राट् दोनों एक ही ढंग से और करीब-करीब एक ही आवाज में बोल रहे हैं ताज्जुब नहीं कि यह खुद भारत की ही आवाज हो जो उसके दो महान पुत्रों के जरिये बोल रही हो।'

अकबर का जन्म २८ दिसम्बर १५४२ को आधुनिक, पश्चिमी पाकिस्तान के अमरकोट नामक स्थान में हुआ था। २७ जनवरी सन् १५५६ के दिन देहली के पुराने किले में सम्राट् हुमायूँ का देहान्त हुआ। उस समय अकबर पंजाब में था। हुमायूँ की मृत्यु की खबर पहुँचने पर १४ फरवरी १५५६ को गुरुदास पुर जिले के कलानौर नामक स्थान में अकबर को गद्दीनशीन कर दिया गया।

जिस समय अकबर की गद्दी नशीनी हुई उस समय उसकी उम्र केवल चौदह वर्ष की थी। इसलिये बैरम खाँ नामक सरदार को उसका संरक्षक बनाया गया।

हुमायूँ के जीवन की अव्यवस्था के कारण अकबर की शिक्षा दीक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं हो सका। उसका समय अधिकतर खेल-तमाशों में ही निकलता रहा मगर अक्षर ज्ञान न होने पर भी अकबर को ज्ञान प्राप्त करने की बेहद जिज्ञासा रही। उसकी स्मरणशक्ति बहुत तेज थी, जो भी बात वह सुनता याद हो जाती थी। उस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थों में शायद ही कोई ग्रन्थ ऐसा होगा जिसे उसने नहीं सुना हो। फारसी भाषा की पुस्तकें समझने में उसे कुछ तकलीफ नहीं होती थी। अरबी और संस्कृत के ग्रन्थों का जैसे शाहनामा, महाभारत, रामायण इत्यादि का उसने स्वयं अपने लिये फारसी भाषा में अनुवाद करवाया था।

साम्राज्य विस्तार

जिस समय अकबर राजगद्दी पर बैठा उस समय मुगल साम्राज्य की सल्तनत सिर्फ आगरा से पंजाब तक ही सीमित थी। बंगाल में पठानों का बोलबाला था। राजस्थान में राजपूत रजवाड़े स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे थे, मध्य-प्रदेश में रानी दुर्गावती का प्रताप उरूज पर था, मालवा में माण्डू का सुल्तान शासन कर रहा था और शेरशाह के उत्तराधिकारी का प्रतिनिधि हेमू अकबर के मुकाबले में पूरी तैय्यारी के साथ खड़ा हुआ था। हेमू बड़ा बहादुर और साहसी था। उसने बाईस लड़ाइयों में विजय पायी थी।

कलानौर में अकबर की गद्दीनशीनी के बाद उसने तर्दी-बेग नामक सरदार को पंच हजारी मनसब देकर दिल्ली का गवर्नर नियुक्त किया। मगर हेमू ने आगरा और दिल्ली पर

आक्रमण करके तर्दीवेग को वहाँ से भगा दिया और दोनों राजधानियाँ अपने कब्जे में कर लीं। तर्दीवेग भाग कर अकबर के पास सरहिन्द पहुँचा जहाँ पर बैरम खाँ ने उस पर विश्वासघात का दोष लगाकर कत्ल करवा दिया।

इधर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर जब हेमू ने देखा कि शेरशाह के वंश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो सल्तनत का भार सम्हाल सके तब वह स्वयं विक्रमादित्य के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठ गया।

तब अकबर और बैरम खाँ अपनी सेना लेकर पानीपत के मैदान में पहुँचे। हेमू की सेना संख्या और शक्ति दोनों में बढ़-चढ़ कर थी। उसके पास पोर्तुगीजों से मिली हुई तोपें भी थीं। पहले ही हमले में हेमू ने मुगल सेना में भगदड़ मचा दी। मगर दुर्भाग्यवश उसी समय उसकी आँख में एक तीर लग जाने से वह हाथी पर से गिर पड़ा और भारतवर्ष की कमजोर युद्धनीति के अनुसार अपने नेता के गिरते ही हेमू की विशाल सेना भाग खड़ी हुई। हेमू गिरफ्तार कर लिया गया और बैरम खाँ ने अकबर को कहा कि वह अपने हाथ से हेमू का सिर काट कर गाजी की पदवी ग्रहण करे मगर अकबर ने हेमू का सिर काटने से इनकार कर दिया। तब बैरम खाँ ने खुद अपने हाथ से उसका सिर काटा।

इसके बाद अकबर मानकोट के पहाड़ी किले में शेरशाह के वंशज सिकन्दर सूरि पर विजय प्राप्त कर सन् १५५८ में सदल बल आगरा पहुँचा। उसके बाद उसके साम्राज्य की सीमा का विस्तार होने लगा। सन् १५५६ में ग्वालियर का सुदृढ़ दुर्ग अकबर के हाथ में आ गया और इसी वर्ष जौनपुर पर भी उसने विजय प्राप्त कर ली। इस समय तक अकबर की आयु अठारह वर्ष की हो चुकी थी और वह अब बैरम खाँ के अनियन्त्रित संरक्षण में नहीं रहना चाहता था। इसलिये बैरम खाँ को उसने हज करने के लिए मक्का शरीफ भेज देना चाहा। मगर रास्ते में ही गुजरात के अन्दर मुबारक खाँ लोहानी नामक उसके एक दुश्मन ने उसको मार डाला। जब अकबर को यह घटना मालूम हुई तो उसे बड़ा दुःख हुआ और उसने बैरम खाँ के पुत्र और भावी हिन्दी के महान् कवि अब्दुर्रहीम को, जो उस समय चार साल का बच्चा था, बुला कर अपने पास रखा।

इसके पश्चात् अकबर ने गुजरात को विजय करने की तरफ ध्यान दिया। गुजरात विजय में अकबर को विशेष कठिनाई नहीं हुई। नवम्बर १५७२ में जब अकबर की फौजें अहमदाबाद के पास पहुँची तब वहाँ का सुल्तान मुजफ्फर शाह तृतीय एक खेत में छिपा हुआ पकड़ा गया। उसे एक छोटी-सी जागीर देकर गुजरात को सम्राट ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसी समय अकबर को पता लगा कि सूरत का मिर्जा इब्राहीम हुसैन अकबर के अधिकारी रुस्तम खाँ को मार कर आगे बढ़ना चाहता है। उसको रोकने के लिये बड़ौदा से एक छोटी सी सेना लेकर अकबर आगे बढ़ा। मिर्जा इब्राहीम उस समय एक बड़ी सेना के साथ माही नदी के उस पार सरनाल के कस्बे में पड़ा हुआ था। अकबर ने केवल दो सौ सैनिकों के साथ उस पर रात में एकाएक हमला कर दिया। अचानक हमला होने से इब्राहीम की सेना भाग खड़ी हुई। उसके बाद जनवरी १५७३ में अकबर ने सूरत पर घेरा डाल दिया। डेढ़ महीने के घेरे के बाद सूरत भी विजय हो गया।

बंगाल और बिहार विजय

गुजरात विजय के बाद सम्राट् का ध्यान बंगाल और बिहार की तरफ गया। इन प्रान्तों पर विजय प्राप्त करने में अकबर को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कुछ समय पूर्व ये प्रान्त शेरशाह सूरी के मजबूत गढ़ रह चुके थे मगर अब ये सूरी पठानों के हाथ से निकल कर कर्रानी पठानों के हाथ में चले गये थे। उन दिनों सुलेमान खाँ कर्रानी यहाँ का शासक था जिसका शासन बनारस से आसाम तक और उड़ीसा में फैला हुआ था। उसको जीतने के लिये सम्राट् ने खानजामा के अधीन सेना भेजी। सुलेमान खाँ ने बादशाह से लड़ने के बजाय उसकी अधीनता स्वीकार करके संधि कर ली। सुलेमान खाँ के बाद उसका छोटा लड़का दाऊद खाँ गद्दी पर बैठा। इसने फिर बादशाह के साथ विद्रोह कर दिया। दाऊद खाँ के पास चालीस हजार पैदल सेना, बीस हजार बन्दूकें, तीन हजार छः सौ हाथी और कई सौ लड़ाकू जहाज थे।

दाऊद खाँ को दबाने के लिये अकबर ने अपने सर्वश्रेष्ठ सेनापति. टोडरमल को बिहार की सेना का सेनानायक बना कर भेजा। उसके बाद सन् १५७६ के जून मास में स्वयं सम्राट् भी अपनी सेना के साथ जलमार्ग से पटना पहुँचा। दाऊद खाँ के पास काफी बड़ी फौज होने पर भी वह पटना से भाग निकला। फिर कई छोटी बड़ी लड़ाइयों के बाद दाऊद खाँ १२ जुलाई १५७६ को परास्त कर दिया गया।

रानी दुर्गावती से युद्ध (सन् १५६४)

रानी दुर्गावती गढ़ कटंगा के राजा की पत्नी और महोबा के चन्देल राजा की लड़की थी। उसके राज्य में आधुनिक मध्यप्रदेश का प्रायः सारा उत्तरी भाग था। रानी के पति का जवानी ही में देहान्त हो गया था। इसलिये रानी दुर्गावती अपने पुत्र वीरनारायण की अभिभाविका होकर पिछले पन्द्रह सालों से शासन-भार सम्भाले हुए थी। उसकी सेना में बीस हजार अच्छे सवार और एक हजार हाथी रहते थे। बाण और बन्दूक चलाने में वह बड़ी सिद्धहस्त थी। मालवा के सुल्तान बाज बहादुर और मियानो को उसने पराजित किया था।

रानी दुर्गावती ने सुन रखा था कि अकबर की सेना अजेय होती है। उसके आक्रमण की खबर सुन कर उसके बहुत से साथी उसका साथ छोड़कर भाग गये फिर भी रानी दुर्गावती ने हिम्मत नहीं हारी। उसने अपनी अन्तिम लड़ाई गढ़ा और मण्डला के बीच में लड़ी। स्वयं एक बड़े हाथी पर चढ़कर वह अकबरी सेना का मुकाबला कर रही थी। जब दो तीर उसके शरीर में लग गये और उसने अपने आपको बेकाबू पाया तब उसने अपने हाथ से छाती में कटार भोंक कर प्राणान्त कर लिया। उसका पुत्र राजा वीरनारायण भी माँ की तरह बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया। रानी दुर्गावती का राज्य अकबर के साम्राज्य में मिला लिया गया। इसी प्रकार अकबर ने कांगड़ा विजय, कश्मीर विजय, सिन्ध विजय और बिलूचिस्तान पर विजय प्राप्त करके अपने साम्राज्य को बहुत अधिक विस्तृत कर लिया।

राणा प्रताप से संघर्ष

संघर्ष और लड़ाइयाँ तो अकबर ने अपने जीवन में बहुत लड़ीं और हर जगह भाग्य ने उसको विजयी बनाया। मगर जैसे लोहे के चने उसे मेवाड़ में चबाने पड़े वह उसके जीवन की एक अभूतपूर्व घटना और इतिहास की एक अमर चीज है।

राणा उदयसिंह का पुत्र राणाप्रताप सिंह सन् १५७२ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। उस समय तक मुसलमानों के साथ संघर्ष करते-करते मेवाड़ क्षीण हो चुका था, चित्तौड़ उसके हाथ से निकल चुका था। राणाप्रताप का राज्य उस समय नई राजधानी उदयपुर के पश्चिम में कुम्भलनेर से ऋषभनाथ तक सिर्फ अस्सी मील लम्बा और उतना ही चौड़ा था। राणाप्रताप के साथी और रिश्तेदार जयपुर, जोधपुर, अजमेर, जैसलमेर इत्यादि सभी राजपूत राजा किसी न किसी रूप में सम्राट् के साथ अपमानजनक संधियां कर चुके थे और अपनी लड़कियां दे चुके थे। मगर राणाप्रताप का शरीर और मन किसी दूसरी धातु का बना हुआ था। उसके सामने सीसौदियों का गौरवपूर्ण इतिहास था जिन्होंने मारे इतिहास में फौलाद की तरह टूटना पसंद किया मगर झुकना पसन्द नहीं किया। अपनी आजादी के लिये हंसते-हंसते अपना बलिदान कर देने के सैंकडों उदाहरणों से उनका इतिहास भरा पड़ा था।

राणाप्रताप और अकबर के संघर्ष का महत्व इस लिये और भी बढ़ जाता है कि एक ओर जहां सारे साम्राज्य की शक्ति और उस शक्ति के साथ अपने नाते रिश्तेदारों का सहयोग सम्मिलित था वहां दूसरी ओर बिना साथियों के एक छोटे से मेवाड़ी टुकड़े का अधिपति राणा प्रताप था। यह लडाई एक हाथी और चींटी की लड़ाई की तरह थी।

मगर राणा प्रताप के साथ एक अद्भुत् व्यक्तित्व, एक दुर्दमनीय साहस और कभी समाप्त न होने वाला एक प्रकाशमान आत्म-तेज था। उसका स्वाभिमान अलौकिक था, उसकी आजादी की तमन्ना अजेय थी और उसी अजेय तमन्ना का चिराग अपने दिल में जलाये हुए इस वीर ने अन्त तक इस विशाल साम्राज्य से लोहा लिया। वह जंगल-जंगल में घूमा; अपनी महारानी और बच्चों को घास की बनी हुई रोटी पर गुजारा करते हुए देखा मगर उस

आँधी और तूफान के बीच में भी उसने उस अमरदीप की ज्योति को नहीं बुझने दिया।

यही कारण है कि भारतीय वीरता के इतिहास में अपनी स्वाधीनता के लिये अलख जगाने वाले राजपुरुषों के इतिहास में और अपने धर्म तथा स्वाभिमान की वेदी पर सर्वस्व अर्पण कर देने वाले व्यक्तियों के इतिहास में राणाप्रताप का नाम अपना जोड़ नहीं रखता।

ठीक है, अकबर एक महान सम्राट् था, उसने भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर हिन्दू और मुसलमानों के दिलों को धार्मिक मतभेदों से ऊपर उठाकर राष्ट्रीयता की भावनाओं से भरा। उसकी यह धार्मिक उदारता प्रशंसनीय थी मगर यह इतिहास का सिर्फ एक पहलू है। उसका दूसरा पहलू राणा प्रताप है। इन दोनों पहलुओं का इतिहास में अलग-अलग स्थान है। इन दोनों पहलुओं में कौन बड़ा है और कौन छोटा है इसका निर्णय करने वाले इतिहासकार गलती में पड़ सकते हैं। ये दोनों पहलू उच्च मानवता के दो ऐसे गुम्बज हैं जिनकी महत्ता एक समान है। मानवता को अपनी रक्षा के लिये अकबर के समान उदारचेता व्यक्ति की जितनी आवश्यकता है प्रताप के समान उत्कट देशभक्त, साहसी, वीर और महान स्वाभिमानी व्यक्तित्व की आवश्यकता भी उससे कम नहीं है।

प्रायः एक चौथाई शताब्दी अर्थात् सन् १५७२ से १५६७ तक राणाप्रताप ने अकबर की जबर्दस्त शक्ति का मुकाबला किया। लड़ाइयाँ तो कई हुईं मगर उनमें हल्दीघाटी की लड़ाई सबसे मशहूर है जिसने भारतवर्ष के इतिहास में हल्दीघाटी को ग्रीस के मशहूर रणक्षेत्र "थर्मापोली" से भी अधिक महत्व प्रदान कर दिया।

सन् १५७६ में राजा मानसिंह मेवाड़ में प्रतापसिंह के द्वारा अपमानित होकर मेवाड़ विजय का संकल्प लेकर गया और एक विशाल सेना को लेकर माण्डलगढ़ में पहुँचा। उसका लक्ष्य गोगुण्डा का पहाड़ी दुर्ग हस्तगत करना था। गोगुण्डा पहुँचने के लिये रास्ते में तेरह-चौदह मील हल्दीघाटी नामक पहाड़ी दर्रे को पार करना था। राणा प्रताप ने तीन हजार सवारों के साथ इसी स्थान पर शाही सेना से मुकाबला करने का निश्चय किया। इस युद्ध में राणा प्रताप ने अपने चेतक घोड़े पर सवार होकर अपना भाला लिये हुए दुश्मनों को चीरते हुए राजा मानसिंह के हाथी पर आक्रमण किया। उसका घोड़ा चेतक हाथी की सूंड पर पांव रख कर खड़ा हो गया और वहीं से राणा प्रताप ने मानसिंह को लक्ष्य कर भाले का जो हाथ मारा तो मानसिंह का मुकुट नीचे गिर गया मगर उसका सिर किसी तरह बच गया। तत्काल शाही सेना ने राणा प्रताप को घेर लिया और वह समय नजदीक था कि उसका जीवनदीप बुझ जाता मगर उसी समय झालाराणा मानसिंह ने बिजली की तेजी से वहाँ पहुँच कर राणा प्रताप का मुकुट अपने सिर पर रख लिया। मुकुट उसके सिर पर देखते ही शाही सेना उसी को प्रताप समझ कर उसके पीछे दौड़ पड़ी। झाला राणा ने शहीद होकर राणा प्रताप को निकल जाने का अवसर दिया। राणा का स्वामिभक्त घोड़ा अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर भी राणा को लेकर भागा और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर उसने उसी समय दम तोड़ दिया।

इतिहास के पृष्ठ बदलते गये। अकबर का बनाया हुआ विशाल साम्राज्य भी तहस-नहस हो गया मगर जिन पृष्ठों में राणा प्रताप, हल्दीघाटी और चेतक का नाम है, वे अमर हो गये।

राणा प्रताप ने अपने जीवन में ही चित्तौड़, अजमेर, और माण्डलगढ़ को छोड़ कर सारे मेवाड़ पर फिर से अधिकार कर लिया और स्वाधीनता की उसी जगती हुई ज्योति के साथ सन् १५६७ में अपना शरीर छोड़ा।

उपरोक्त लड़ाइयों के सिवाय अकबर को पश्चिमोत्तर प्रान्त में अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इन लड़ाइयों के द्वारा उसने कांगड़ा विजय (१५७२-७३), काबुल विजय (१५८१), कश्मीर विजय (१५८६) और सिन्ध तथा बलूचिस्तान की विजय (सन् १५६१) में सम्पन्न की।

इस प्रकार काबुल, पंजाब कश्मीर, सिन्ध, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, गुजरात और राजस्थान का सारा विस्तृत देश उसके विशाल साम्राज्य का अंग हो गया। केवल दक्षिणी भारत का एक बड़ा भाग उसके साम्राज्य से बाहर रहा।

अकबर की राजनैतिक विचारधारा

अनियंत्रित राजतंत्र पद्धति का अनुयायी होने पर भी राजनैतिक क्षेत्र में सम्राट् अकबर का दृष्टिकोण उदारतावादी था। जिस समय उसने राज्य की बागडोर अपने हाथ में सम्हाली उस समय भारत की राजनैतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। पठान साम्राज्य का सूर्य्य अस्त हो रहा था, शेरशाह के वंशज हतप्रभ हो चुके थे। जगह-जगह छोटे-छोटे राजा स्वतंत्रतापूर्वक अपनी मनमानी कर रहे थे।

हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में विजित और विजेता की भावनाएं बद्धमूल हो जाने से दोनों के हृदयों में पारस्परिक घृणा के भावों का प्राबल्य हो चुका था। मुसलमान आक्रमणकारियों ने प्रारम्भ में यह समझा था कि तलवार की ताकत पर हम हिन्दू संस्कृति को जड़ मूल से नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इस सभ्यता को नष्ट करने के लिए उन्होंने लगातार तीन सौ बरस तक इस पर भयंकर प्रहार भी किये। मगर जिस मजबूत बुनियाद पर इस सभ्यता की भव्य इमारत खड़ी थी, उस बुनियाद ने उनकी तलवार की चुनौती को स्वीकार कर लिया। ऊपर से वह इमारत चाहे खण्ड-खण्ड हो गई, लाखों हिन्दू मुसलमान हो गये, हजारों मन्दिर मसजिदों में बदल दिये गये। हिन्दू लोगों पर बड़े बड़े कर भी लगाये गये, एक वस्तु को नष्ट करने के लिए जितना भी प्रयत्न हो सकता था, सब कुछ किया गया मगर आर्य्य-सभ्यता का जो अमरदीप कई सहस्राब्दियों से इस महान् देश में जल रहा था, वह इन बड़े बड़े तूफानों की चुनौती को स्वीकार करता हुआ उसी शान के साथ जलता रहा।

दिल्ली के तख्त पर गोरी आये, गुलाम आये, खिलजी आये, तुगलक आये, सबने आर्य्य संस्कृति को इसलाम-संस्कृति में पचा लेने का प्रयत्न किया मगर जिस मजबूत धरातल पर वह संस्कृति जमी हुई थी उसे वे एक इंच भी न हिला सके।

मुसलमानों के अन्तर्गत सम्राट् अकबर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस सूक्ष्म मगर महान सत्य को समझ कर उसके अनुसार अपने साम्राज्य के राजनैतिक ढांचे का निर्माण किया। वैसे उनसे कुछ समय पूर्व ही इस देश में हिन्दू और मुसलमानों के बीच में यह आम धारणा बन गई थी कि भारतवर्ष में अब दोनों धर्म और सभ्यताओं के साथ रहने में ही कल्याण है। इसी भावना को धर्म गुरुओं में सबसे पहले नानक और कबीर ने और राजकीय क्षेत्र में शेरशाह और अकबर ने व्यक्त किया।

सम्राट् अकबर ने पहले पहल इस देश में धार्मिक भावनाओं के ऊपर राष्ट्रीयता की भावनाओं को स्थान दिया। भारतीय राष्ट्रीयता में उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों की समान स्थिति को मंजूर कर उसको अमली रूप देने का प्रयत्न किया। ऐसे समय में जब कि देश में राष्ट्रीयता के कोई निशान नहीं थे अकबर ने भारतीय-समाज में इन भावनाओं को जागृत करने का प्रयत्न किया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि अकबर को अपने प्रयत्न में पूरी सफलता मिली। मगर एक व्यक्ति अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने प्रयत्न को जितना आगे बढ़ा सकता है उसमें अकबर ने कोई कसर नहीं रक्खी। मुल्ला और मौलवियों तथा कट्टर मुसलमानों के घोर विरोध के बावजूद उसने उस मार्ग को नहीं छोड़ा जिसे वह सच्चा और भारत के लिए कल्याणकर समझता था। यही कारण है कि इतिहास आज उसे "महान्" के भावनापूर्ण शब्द से सम्बोधित करता है।

सम्राट् अकबर की सामाजिक विचारधारा

राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमानों का कंधे से कंधा मिलाकर सामाजिक क्षेत्र में भी अकबर ने इन दोनों मजहब वालों को मिला देने का प्रयत्न किया। उसने हिन्दू और मुसलमानों को परस्पर विवाह सम्बन्ध में जोड़कर, मजहबी विभिन्नता की मूल जड़पर ही कुठाराघात करने का प्रयत्न किया। इस कार्य्य में यदि उसे सफलता मिल जाती तो आज हिन्दुस्तान का इतिहास ही दूसरी तरह का होता। जिस प्रकार शक, कुशान, हूण इत्यादि जातियाँ भारत में आकर भारतीयता में समा गई उसी प्रकार हिन्दू और मुसलमान भी महान् भारतीयता में समाकर एकाकार हो जाते और साम्प्रदायिकता का प्रश्न ही शेष न रहता। मगर अकबर को इसमें बिलकुल सफलता नहीं

मिली। यह प्रयोग उसने अपने राजघराने से ही प्रारम्भ किया। कुछ राजपूत राजाओं की लड़कियों से उसने स्वयं विवाह किया। इसी प्रकार उसने चाहा कि कुछ हिन्दू भी मुसलिम लड़कियों से विवाह करें। मगर उसका यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। तहेदिल से न इसको हिन्दुओं ने स्वीकार किया और न मुसलमानों ने। राजकीय प्रभाव से प्रभावित होकर कुछ मुट्ठी भर लोगों में ऐसे विवाह हुए मगर उनका व्यापक प्रभाव कुछ भी नहीं हुआ।

सम्राट् अकबर की धार्मिक विचार धारा

धार्मिक मामलों में सम्राट् अकबर के विचार बहुत उदार थे। उसमें इसलामी कट्टरता का नाम भी नहीं था। उसका विश्वास था कि संसार के हर एक धर्म में सच्चाई का अंश रहता है और उसकी खोज में वह निरन्तर लगा रहता था। मुल्ला लोगों की कट्टरता से उसे नफरत थी। इससे नाराज होकर एक बार जौनपुरी मुल्ला अहमद यज्दी मुअजिज मुल्क आदि ने बादशाह के खिलाफ कुफ्र का फतवा दे दिया था और उसे राज्य से अलग करने का प्रयत्न किया था इससे रुष्ट होकर बादशाह ने हुक्म देकर उन्हें एक टूटी नाव पर बिठाकर बीच गंगा में डुबो दिया था। मुसलमानों के लिए अनिवार्य्य दाढ़ी रखने की प्रथा को उसने तोड़ दिया था। उसने और उसके पुत्र जहाँगीर ने जीवन भर दाढ़ी नहीं रक्खी।

बादशाह के खास दरबारियों में टोडरमल और बीरबल भी थे इनके संसर्ग से बादशाह पर हिन्दू धर्म का प्रभाव भी पड़ा। उसने महाभारत और रामायण का फारसी अनुवाद करवा कर उसका श्रवण किया। सिंहासन बत्तीसी का अनुवाद करने वाले पुरुषोत्तम पण्डित और महाभारत का फारसी अनुवाद करने वाले देवी ब्राह्मण से बादशाह हिन्दू धर्म का अध्ययन करता था।

अकबर ने अपने साम्राज्य में गौ हत्या बिलकुल बन्द करवा दी थी। गौ हत्या का अपराध करने वाले के लिए कानून में मौत की सजा रक्खी गई थी। इसी प्रकार उसने हिन्दुओं की भी कई बुरी प्रथाओं को मिटाने का प्रयत्न किया था। उसने पति के साथ पत्नी को जबर्दस्ती जला देने की प्रथा को बन्द करने के भी आदेश दिये थे।

जैन धर्म के सिद्धान्तों की भी बादशाह बहुत इज्जत करता था। जैन मुनि हीरविजय सूरि, विजय सेन सूरि और भानुचन्द उपाध्याय अकबर के दरबार में पहुँचे थे। हीर विजय सूरि का बादशाह पर बड़ा प्रभाव था। अकबर ने इन्हें जगद्गुरु की उपाधि प्रदान की और इनके उपदेश से पर्यूषण पर्व के दिनों में प्राणिवध को बिलकुल बन्द कर दिया और इस आदेश का उल्लंघन करनेवाले के लिए मौत का दण्ड रक्खा।

हिन्दू धर्म ही की तरह ईसाई धर्म को सीखने के लिए अकबर ने गोवा से पोर्तुगीज जेस्विन पंथी पादरी रिदालफो अकनिवा की अधीनता में तीन पादरियों का एक दल बुलाया था। इस दल का उसने अपने यहाँ भारी सत्कार किया और कई दिनों तक इस दल को वहाँ रखकर उसने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों को सुना, मगर इन पादरियों ने उसके सामने खुले शब्दों में इस्लाम की निन्दा की और पैगम्बर के लिए हलके शब्दों का प्रयोग किया जिससे अकबर का दिल उनसे विरक्त हो गया।

दीनेइलाही

अन्त में सभी धर्मों का सार ग्रहण करके उसने "दीने इलाही" नामक एक स्वतंत्र धर्म की स्थापना की और खुद उसका खलीफा बना।

दीने इलाही के अनुयायियों के लिए दाढ़ी मुंडवाना जरूरी था। उनके लिए गौ मांस ही नहीं लहसुन, प्याज खाना भी वर्जित था। दरसनियों के लिए रमजान का रोजा और हज को भी मना कर दिया था। प्रातः, सायं, मध्याह्न और मध्यरात्रि में चार बार पूर्व की ओर मुँह करके प्रार्थना की जाती थी। स्त्री के बांझ होने की अवस्था को छोड़कर कोई भी दूसरा विवाह नहीं कर सकता था, सती प्रथा की भी मनाई थी।*

---

*दीनेइलाही का पूरा वर्णन इसी शब्द की विवेचना में अगले भागों में देखें।

अकबर के जीवन में इस धर्म के लाखों अनुयायी हो गये थे। मगर उसकी मृत्यु के पश्चात् तुरन्त ही यह छिन्न-भिन्न हो गया।

शासन-व्यवस्था

प्रशासनिक दृष्टि से अकबर का सारा साम्राज्य बारह और बाद में पन्द्रह कमिश्नरियों में बँटा हुआ था। (१) आगरा, (२) दिल्ली, (३) अजमेर, (४) अहमदाबाद, (५) लाहौर, (६) काबुल, (७) मुल्तान, (८) मालवा, (९) अवध, (१०) इलाहाबाद, (११) बिहार, (१२) बंगाल, (१३) बरार, (१४) खानदेश, (१५) अहमदनगर। एक-एक कमिश्नरी में कई जिले होते थे जिन्हें "सरकारें कहा जाता था और एक सरकार में कई तहसीलें होती थीं। जिस कमिश्नरी या जिले की आमदनी एक करोड़ दाम (ढाई लाख रुपये) से अधिक होती थी उसे करोड़ी महल कहते थे। हरएक कमिश्नरी के शासक को सिपहसालार और हरएक जिले के अधिकारी को फौजदार कहते थे। पोलिस के अधिकारियों को कोतवाल कहते थे। प्रधान मंत्री को वकील कुल, वित्तमंत्री को वजीर और सैनिक वित्तमंत्री को बख्शी कहते थे।

सेनाध्यक्षों को मन्सबदार कहते थे और इनके एक हजारी, दो हजारी, पांच हजारी, दस हजारी ऐसे कई दर्जे होते थे। हरएक मन्सबदार को निश्चित संख्या में घोड़, हाथी और पैदल सिपाही दिये जाते थे।

अकबर के जमाने में तांबे, चांदी और सोने के तीन प्रकार के सिक्के, चलते थे। चांदी के रुपये में १७२'५ ग्रेन चांदी रहती थी और नौ रुपयों में एक मुहर मिलती थी जिसमें १०॥ माशे सोना रहता था।

साहित्य और कला का विकास

अकबर को हर प्रकार की कला और साहित्य से बड़ा प्रेम था। कलाकारों की वह बड़ी इज्जत करता था।

स्थापत्य कला के नमूने अकबर की बनाई हुई नवीन राजधानी फतेपुर सीकरी में देखने को मिलते थे। सीकरी की मसजिद का "बुलन्द दरवाजा" अकबरी इमारतों का एक सुन्दर नमूना है। यहाँ के दीवान खास, बीरबल का महल और जोधाबाई का महल भी बहुत दर्शनीय है। दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा, अकबरी स्थापत्य कला का एक सुन्दर नमूना है।

चित्रकला का भी अकबर को बेहद शौक था। अब्दुस्समद, दसवन्त और फर्रुख बेग उसके दरबार के मुख्य चित्रकार थे।

संगीत कला का भी अकबर को बड़ा शौक था। महान् संगीतकार तानसेन की कीर्ति को सुनकर सम्राट् ने बघेला राजा रामचन्द्र के दरबार से बुलाकर उसे अपने दरबार में रक्खा था। इसके अतिरिक्त संभू कौवाल भी उसकी सभा का कव्वाली का प्रसिद्ध गायक था।

कविता का भी सम्राट् बड़ा प्रेमी था। यद्यपि तुलसीदास और सूरदास भी उसीके जमाने में हुए थे मगर उनका अकबरी दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। अकबरी दरबार के प्रधान कवि खानखाना रहीम थे जो सारे हिन्दी साहित्य में आज भी चमक रहे हैं।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के कई महान् ग्रन्थों का अकबर ने फारसी में अनुवाद कराया था। जिनमें हितोपदेश, पंचतंत्र, तारीख कश्मीर, महाभारत, रामायण, लीलावती इत्यादि ग्रन्थ प्रधान हैं।

अकबर के दरबार के नवरत्नों में अबुलफजल, बीरबल, तानसेन, फैजी, बदायूँनी, टोडरमल, शेख मुबारक, खानखाना रहीम और मानसिंह प्रमुख हैं। अपने-अपने क्षेत्र में सब लोग अत्यन्त ऊँचे दर्जे के व्यक्ति थे।

विवाह और पुत्र

अकबर ने वैध और अवैध रीति से कई विवाह किये मगर उसकी मुसलमान पत्नियों में उसकी फूफी की लड़की सलीमा सुलतान प्रधान थी और हिन्दू पत्नियों में जयपुर के कछुवाह वंश की जोधा बाई थी जो युवराज सलीम की माता थी। अकबर के तीन पुत्र थे जिनके नाम सलीम, मुराद और दानीयाल थे।

अकबर इलाहाबादी

उर्दू के प्रसिद्ध कवि अकबर इलाहाबादी, सैय्यद तफज्जुल हुसैन के पुत्र बारा, जिला इलाहाबाद के निवासी समय वि० संवत् (१६०३-१६७८)

उर्दू के मशहूर कवि अकबर का जन्म वि० संवत् १६०३ में इलाहाबाद जिले के बारा नामक कस्बे में हुआ था। संवत् १९२४ में इन्होंने अंग्रेजी का प्राइवेट रूप में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर वकालत की परीक्षा प्राप्त की और संवत् १६२९ से १९३७ तक वकालत की। संवत् १६३७ में ये मुन्सिफ के पद पर आये और संवत् १६५१ में स्माल कॉज कोर्ट के प्रथम श्रेणी के जज नियुक्त हुए। संवत् १६५५ में इन्हें गवर्नमेण्ट से खाँ बहादुर की उपाधि मिली। ये प्रयाग विश्वविद्यालय के फेलो भी थे और प्रयाग में अपनी इशरत मंजिल नामक कोठी में रहते थे।

कविता करने का महाकवि अकबर को बचपन से ही शौक था इस क्षेत्र में ये मुंशी गुलामहुसैन वहीद के शागिर्द थे और पुराने ढंग की गजलें लिखते थे। मगर जब लखनऊ से संवत् १६३६ में "अवध-पंच" नामक अखबार निकलने लगा तब ये व्यंग और हास्यरस की कविताएँ लिखने लगे. उर्दू कविता क्षेत्र मे इन्होंने एक नवीन शैली का निर्माण किया। यद्यपि उर्दू में एक से एक बढ़ कर कवि हो गये हैं पर अकबर अपने ढंग के एक ही कवि थे। इन्होंने उर्दू को गुलो बुलबुल की महफिल से निकाल कर एक ऐसे मैदान में लाकर खड़ा कर दिया जहाँ से संसार के प्रत्येक हिस्से का रूप रंग दिखाई पड़ता है। अकबर व्यंग और विनोद के आलिम थे। प्रेम, विरह, राजनीति, समाज सुधार आदि सभी विषयों पर इन्होंने ऐसे विनोद पूर्ण ढंग से कविताएँ लिखी हैं कि पढ़ने पर हँसी आये बिना नहीं रहती। उनकी कविताओं के कुछ नमूने—

"उन्हीं के मतलब की कह रहा हूँ, जबान मेरी है बात उनकी,
उन्हीं की महफिल सँवारता हूँ, चिराग मेरा है रात उनकी,
फ़कत मेरा हाथ चल रहा है, उन्हीं का मतलब निकल रहा है
उन्हीं का मजमूँ, उन्हीं का कागज, कलम उन्हीं की दावात उन्हीं की

× × ×

बेपरदा नजर आई जो कल चन्द बीबियाँ,
अकबर जमीं में गैरते कौमी से गड़ गया
पूछा जब उनसे आपका परदा कहाँ गया,
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदों की पड़ गया।

× × ×

ऐसा शौक ना करना अकबर, गोरे को न बनाना साला
भाई रंग यही है अच्छा, हम भी काले यार भी काला

अकबर

औरंगजेब का भतीजा मुगल शाहजादा अकबर

मेवाड़ विजय के उपरान्त चित्तौड़ को शाहजादा अकबर के अधिकार में सौंप कर बादशाह औरंगजेब अजमेर लौट गया लेकिन चित्तौड़ में राजपूतों के विरुद्ध अकबर को कुछ भी सफलता नहीं मिली तब उसने अकबर को वहाँ से हटा कर मारवाड़ भेज दिया। मारवाड़ में आकर अकबर ने राजपूतों के सहयोग से एक षड्यन्त्र करके औरंगजेब को राज्य से अलग करने और स्वयं गद्दी पर बैठने के अपने निश्चय का ऐलान कर दिया। मारवाड़ ही में अकबर सिंहासन पर बैठा और बहादुर खाँ को उसने अपना प्रधान मन्त्री बनाया। राजपूतों ने उसे और अधिक उत्साहित किया मगर अकबर को आरामतलबी और विलासप्रियता से उसकी बुद्धि और शक्ति कुण्ठित हो गई थी। इतने में औरंगजेब ने अजमेर की रक्षा की पूरी तैयारी कर ली और अपनी कूटनीतिक बुद्धि से उसने अकबर के नाम एक पत्र लिखा जिसमें लिखा कि बादशाह की आज्ञा के अनुसार अकबर ने राजपूतों को बेवकूफ बनाने में जो सफलता प्राप्त की है उसके लिये बादशाह उससे बहुत खुश हैं और आगे लिखा कि राजपूती फौज को अकबर ऐसी स्थिति में लेकर आवे जहाँ से वह शाहजादा और बादशाह दोनों की सेनाओं के बीच फँस जाय। औरंगजेब ने पत्रवाहक हलकारे को चतुराई से यह समझा दिया कि यह पत्र शाहजादा अकबर को न देकर राजपूत सरदार दुर्गादास या किसी दूसरे सरदार के हाथ में दे दे। जब बादशाह का यह पत्र राजपूत सरदारों के हाथ में पहुँचा तो राजपूत धोखे में

आ गये और उन्होंने अकबर का साथ छोड़ दिया। अकबर की सेना तितर-बितर हो गई और वह स्वयं लड़ाई के मैदान से भाग गया। वह दक्षिण होता हुआ ईरान चला गया जहाँ सन् १७०४ में उसकी मृत्यु हो गई।

अक्टूबर क्रान्ति

रूस की महान बोलशेविक जनक्रान्ति जो २५ अक्तूबर सन् १९१७ को हुई और जिसने रोमानोफ घराने की सुप्रसिद्ध जारशाही को, जो कि तीन सौ वर्षों से रूस में अनियन्त्रित स्वेच्छाचारी शासन कर रही थी, का तख्ता उलट दिया।

संसार के इतिहास में अनियन्त्रित राज्यशक्ति के खिलाफ जनता द्वारा प्रेरित जितनी भी क्रान्तियां हुई हैं रूस की राज्य क्रान्ति उन सब में महान और बेजोड़ है। यद्यपि यह अपने ढंग की पहली क्रान्ति थी मगर अन्य देशों के लिये यह एक चुनौती और संसार भर के क्रान्तिकारियों के लिये एक उदाहरण बन गई।

क्रान्ति की पृष्ठभूमि

करीब तीन सौ वर्षों से रूस के ऊपर निरंकुश जार शाही का स्वेच्छाचारी शासन चल रहा था। मध्य वर्गीय और निम्न वर्गीय जनता, किसान और मजदूर इस शासन में अत्याचार की चक्की में पीसे जा रहे थे। यद्यपि जार-शाही के शासन में पीटर दि ग्रेट के समान अच्छे और राष्ट्र का निर्माण करने वाले उदारनेता जार भी हुए पर ऐसे लोग केवल अपवाद स्वरूप ही थे। अधिकतर जार बड़े अत्याचारी, विलासी और जनता का शोषण करने वाले होते थे। इन जारों के शासन में रूस की जनता अत्यन्त दरिद्र, अत्याचार पीड़ित और गुलाम मनोवृत्ति की हो गई।

जनता की इस दुरावस्था से जारशाही रूस सारे यूरोप में सबसे पिछड़ा हुआ और प्रतिगामी देश हो गया। इस दुरावस्था के खिलाफ जिसने भी सिर उठाया वह तुरन्त कुचल दिया गया।

इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १८७० के आस-पास यूरोप में साम्यवाद के प्रसिद्ध नेता कार्ल मार्क्स का उदय हुआ। उसकी क्रान्तिकारी विचार धाराएँ सारे यूरोप के शोषित और पताड़ित समाज में, मजदूर और किसान वर्ग में मंत्र-शक्ति की तरह तेजी के साथ फैलती जा रही थीं। रूस की भूमि चूंकि ऐसे प्रताड़ित और शोषित जन-समुदाय से भरी पूरी थी इसलिये मार्क्स की विचारधारा को पनपने के लिये सबसे योग्य भूमि रूस में ही प्राप्त हुई।

सन् १८७० में रूस के अन्दर लेनिन नामक उस महापुरुष का जन्म हुआ जिसने आगे जाकर कार्ल मार्क्स की विचार धाराओं को आत्मसात करके एक नवीन इतिहास को जन्म दिया।

सन् १८८७ में जब कि लेनिन की उम्र केवल सत्रह वर्ष की थी उसके बड़े भाई अलेक्जेण्डर को आतंकवादी तरीके से जार की हत्या की कोशिश में भाग लेने के कारण फाँसी पर लटका दिया गया। इस घटना का लेनिन के दिल को बहुत भारी सदमा लगा क्योंकि वह अपने भाई से बहुत अधिक प्रेम करता था।

लेनिन ने सन् १९०३ से रूस में बोलशेविक दल का संगठन करना शुरू किया मगर उसी समय जैसा कि प्रायः हर एक राजनैतिक क्रान्ति में हुआ करता है और गरम तथा नरम दो दल पैदा हो जाते हैं उसी प्रकार रूस में भी समाजवादी लोकतान्त्रिक दल आपसी मतभेद के कारण दो टुकड़ों में विभक्त हो गया। गरम दल बोलशेविक के नाम से और नरम दल मेन्शेविक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बोलशेविक दल का नेता लेनिन था और मेन्शेविक दल का नेतृत्व ट्रॉटस्की के हाथ में था।

सन् १९०५ की क्रान्ति

सन् १९०५ में रूस और जापान के प्रसिद्ध युद्ध में रूस की जगत प्रसिद्ध हार हुई। इसका रूस के जन मानस पर बड़ा विपरीत प्रभाव पड़ा। इसके पहले सन् १९०३ से ही रूस में क्रान्ति की आग सुलगना प्रारम्भ हो गई थी जिसके फलस्वरूप स्थान-स्थान पर मजदूरों की हड़तालें होना प्रारम्भ हो गई थीं।

खूनी रविवार

सन् १९०५ की २२ जनवरी को रविवार के दिन रूस के किसान और मजदूर प्रदर्शनकारी एक पादरी के नेतृत्व में अपने छोटे पिता जार के पास रोटी की माँग करने गये थे। इस शान्त प्रदर्शन पर जार की सेना ने गोलियां बरसाईं, जिससे बहुत से मजदूर मारे गये और रूस के इतिहास में यह रविवार खूनी रविवार के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इस हत्याकाण्ड से सारे रूस में जारशाही शासन के खिलाफ एक तीव्र घृणा की लहर व्याप्त हो गई और बड़ी-बड़ी राजनैतिक हड़तालें होना प्रारम्भ हुईं। इन्हीं दिनों रूस के बड़े-बड़े शहरों और केन्द्रों में "सोविएट" नामक संगठनों की स्थापना की गई। पीटसबर्ग की "सोविएट" का नेता ट्रॉटस्की बना।

दूमा की स्थापना

जारशाही सरकार ने ऐसे समय में गरम और नरम दल के बीच में फूट डालने के लिये "दूमा" नामक एक संवैधानिक सभा की स्थापना कर नरम दलीय लोगों को शान्त कर दिया। जमींदार लोग क्रान्ति से डर कर थोड़े से सुधारों को लेने पर राजी हो गये। इन सुधारों से खुशहाल किसानों को फायदा पहुँचा। इस प्रकार जारशाही ने किसानों को राजनैतिक दलों के विरुद्ध उभाड़ दिया। जातीय भावनाओं को पैदा कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप रूसियों ने यहूदियों की हत्या की और तातारियों ने आर्मेनियन लोगों का कत्ले-आम किया। इसके बाद सरकार ने क्रान्ति के दो मुख्य केन्द्र सेण्टपीटर्स बर्ग और मास्को पर हमला कर वहां की सोविएटों को बुरी तरह कुचल दिया। कहा जाता है कि इस आन्दोलन के सिलसिले में मास्को में एक हजार आदमियों को बिना मुकदमा चलाये फांसी पर लटका दिया गया। सत्तर हजार को जेल भेज दिया गया और भिन्न-भिन्न विद्रोहों में करीब चौदह हजार आदमी मारे गये।

इस प्रकार सन् १९०५ की क्रान्ति बुरी तरह से कुचल दी गई। मगर इसमें से जो चिनगारियाँ निकलीं उन्होंने सन् १९१७ की महान क्रान्ति को जन्म दिया जिसने जारशाही के तख्त को समूचा उलट कर रूस में समाजवादी शासन के नव प्रभात का अभिनन्दन किया।

फरवरी क्रान्ति

सन् १९१७ के अन्तर्गत रूस में हुई क्रान्ति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है जिसमें पहली को फरवरी क्रान्ति और दूसरी को अक्टूबर क्रान्ति कहते हैं।

सन् १९१४ में प्रथम यूरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध से रूस की जनता की हालत और भी शोचनीय हो गई क्योंकि चार करोड़ रूबल प्रतिदिन खर्च होने वाला युद्ध का भयंकर बोझ भी उसके कमजोर कंधों पर आ पड़ा था। इस कारण युद्ध की भावनाओं के खिलाफ रूस का शहरी मजदूर वर्ग जाग्रत होने लगा। लेनिन और उसके अनुयायियों ने प्रारम्भ से ही युद्ध का विरोध किया और इस युद्ध को पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों का युद्ध बतलाया।

उस समय का तत्कालीन जार निकोलस अत्यन्त अस्थिर बुद्धि का व्यक्ति था जो सम्पूर्ण रूप से अपनी स्त्री जारीना के प्रभाव में था। जारीना ने अपने व्यक्तिगत स्टाफ में "ग्रिगोरी रासपुटिन" नामक एक अत्यन्त दुश्चरित्र और भ्रष्टाचारी व्यक्ति को स्थान दिया और उसे पूर्ण शक्ति सम्पन्न बना दिया। कुछ ही समय में उसने जार और जारीना को अपने प्रभाव में करके रूसी प्रजा पर बड़े-बड़े अत्याचार करना शुरू किये।

इससे सबके दिलों में जार के प्रति अत्यन्त नफरत की भावनाएँ पैदा हो गईं जिसके परिणामस्वरूप सन् १९१६ में जार के एक कुटुम्बी ने ही रासपुटिन की हत्या कर डाली।

इसी बीच रूस में अन्न का भी भारी अकाल पड़ गया जिसने क्रान्ति की चिनगारियों को हवा देकर ज्वालाओं के रूप में परिणित कर दिया। इस सारे विक्षुब्ध वातावरण को देखकर रूस के जार ने अपने आप को अपनी सारी सेनाओं का प्रधान सेनापति घोषित कर दिया।

८ मार्च १९१७ को अन्न के अभाव से दुखित भूखे और क्रान्तिकारी मजदूर अपने कारखानों को छोड़कर अन्न

की माँग करते हुए बाहर निकल आये। इस प्रदर्शन का नेतृत्व महिलायें कर रही थीं। चारों तरफ हजारों नर-नारी रोटी की पुकार कर रहे थे। इस विशाल प्रदर्शन को कुचलने के लिये सरकार ने कज्जाक सेना को भेजा। मगर भूखे नर-नारियों की त्राहिमाम् और रोटी के लिये उनकी दीन पुकार को सुनकर कज्जाक सेना का हृदय पसीज गया और उसने प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। तब सरकार ने जनता पर गोलियाँ चलाने के लिये पोलिस के सिपाहियों को भेजा मगर विद्रोही कज्जाक सैनिकों ने अपनी संगीनें दिखा कर पोलिस वालों को भी वहाँ से भगा दिया।

११ और १२ मार्च को रूस की सारी सेना में विद्रोह की आग फैल गई। विद्रोही सैनिक अपनी रायफलें और मशीन गनें लेकर बाहर निकल आये और राज्य के बहुत से मंत्रियों, पुलिस वालों और खुफिया अधिकारियों को गिरफ्तार करके जेल में पड़े हुए क्रान्तिकारियों को छोड़ दिया। उस समय जार और जारीना राजधानी से बाहर थे।

इस प्रकार फरवरी की क्रान्ति यद्यपि सफल हो गई मगर उस समय लेनिन, ट्रॉटस्की इत्यादि नेताओं के वहाँ उपस्थित न होने के कारण क्रान्तिकारियों को यह नहीं सूझा कि वे शासन की बागडोर किसके हाथ में देवें। उस समय समाजवादी क्रान्तिकारियों में मेनशेविक दल की प्रधानता थी। १६ मार्च को मेनशेविक लोगों ने बोलशेविकों से बिना पूछे दूमा के प्रतिगामी सदस्यों के साथ समझौता करके राजुललुआफ नामक एक राजवंशी के नेतृत्व में अस्थायी सरकार की स्थापना कर दी। इस सरकार के सभी सदस्य पुरानी व्यवस्था के समर्थक थे। लुआफ बहुत बड़ा जमींदार था। विदेश मंत्री मिल्युकोफ को बनाया गया, युद्ध मंत्री गुचकोफ को बनाया गया जो बड़ा मिल मालिक और बैंकर था। ग्यारह मंत्रियों में केवल एक सदस्य केरेन्स्की था जो जन समाजवादी दल का था।

इस मन्त्रिमण्डल के बारे में लेनिन ने अपने एक पत्र में लिखा था कि यह सरकार पूँजीपति जमींदार और पूँजीवादी वर्ग की प्रतिनिधि है जो कि लम्बे अर्से से हमारे देश का आर्थिक शोषण कर रहे हैं।

अस्थायी सरकार का पहला प्रयत्न यह हुआ कि रूस के राज-मुकुट की रक्षा कैसे की जाय? अस्थायी सरकार के मंत्री गुचकोफ और शुल्गिन ने पसकोफ नामक स्थान पर जार के पास जाकर उसे समझाया कि वह अपने पुत्र अलेक्सी के पक्ष में सिंहासन छोड़ दे लेकिन जार ने अपने भाई मिखाइल के पक्ष में सिंहासन छोड़ना स्वीकार कर लिया। पेट्रोग्राड लौटकर गुचकोफ ने जार निकोलाई की जगह जार मिखाइल की गद्दी नशीनी की घोषणा की। इस पर मजदूरों ने तुरन्त गुचकोफ को गिरफ्तार करने की माँग पेश की। जनमत की इस जागृत अवस्था को देख कर अस्थायी सरकार ने समझ लिया कि अब राजवंश की रक्षा नहीं की जा सकती तब जार मिखाइल से भी इस्तीफा लेकर अस्थायी सरकार ने सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिये।

इस प्रकार यद्यपि फरवरी क्रान्ति सफल हो गई मगर उसका मकसद पूरा नहीं हुआ और रूस की शासन सत्ता एक कुँए से निकल कर दूसरी खाई में गिर गई। इस अस्थायी सरकार ने विश्व व्यापी युद्ध में रूस का पार्ट पहले से और भी तेजी से अदा करने के लिये जर्मन मोर्चे पर भारी सेनाएँ भेज दीं जिससे रूस का युद्ध खर्च पहले भी अधिक बढ़ गया।

लेनिन को जैसे ही फरवरी क्रान्ति की खबर मिली उस समय वह स्विट्जरलैण्ड में था। उसे वहाँ से आने की मनाही थी। किसी तरह जर्मनी को रूस के द्वारा युद्ध बन्द करने का आश्वासन देकर वह एक बन्द गाड़ी में जर्मन सीमा को पार कर १७ अप्रैल १६१७ को रूस पहुँच गया। उस समय बोलशेविक पार्टी का केन्द्र क्शेन्स्की भवन में था इस भवन के सामने की सड़क पर लेनिन रोज भाषण करता था। धीरे-धीरे उसने लोकमत पर विजय पाई, जिसके परिणामस्वरूप २० और २१ अप्रैल को रूस की अस्थायी सरकार की साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ पेट्रोग्राड के एक लाख आदमियों ने प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन के विरुद्ध सैनिक अफसरों ने विद्यार्थियों और

दुकानदारों के सहयोग से एक जुलूस निकाला जिसका उद्देश्य अस्थायी सरकार में विश्वास प्रकट करना था। पेट्रोग्राड के कमाण्डर-इन-चीफ कोर्निलाफ ने लेनिनवादी मजदूरों के प्रदर्शन पर सेना को गोली चलाने का आदेश दिया मगर सेना ने गोली चलाने से साफ इन्कार कर दिया।

२ मई को समझौता पसन्द लोगों के प्रयत्न से अस्थायी सरकार में परिवर्तन करके न्याय मन्त्री केरेन्स्की को युद्ध-मंत्री बना दिया गया। केरेन्स्की एक सर्वदलीय सरकार बनाने में सफल हुआ।

मगर इससे भी रोग का इलाज नहीं हुआ। प्रतिदिन सरकार के प्रति असन्तोष बढ़ता जा रहा था और "सोवि-एट" के प्रभाव का विस्तार हो रहा था।

इसी समय १७ मई को निर्वासित ट्रोटस्की भी न्यूयार्क से रूस में आ गया।

अप्रैल सन् १९१७ में अमेरिका भी महायुद्ध में सम्मिलित हो गया। मगर इंग्लैण्ड और अमेरिका की हालत इस समय बहुत खराब हो रही थी इसलिये उन्होंने केरेन्स्की की सरकार पर पूर्वी मोर्चे पर शक्ति बढ़ाने के लिये जोर दिया। जुलाई १९१७ में केरेन्स्की रूस की अस्थायी सरकार का प्रधान मंत्री बन गया और उसने मन्त्रि-मण्डल पर जोर देकर युद्ध के मोर्चे पर एक भारी आक्रमण कर-वाया। लेकिन रूसी सेना को तारनोपोल्न मोर्चे पर भारी हार खाना पड़ी और इस लड़ाई में उसके साठ हजार से अधिक आदमी हताहत हुए।

इसी समय अस्थायी सरकार के प्रधान मंत्री केरेन्स्की और प्रधान सेनापति कोर्निलोफ के बीच में झगड़ा हो गया और सितम्बर के प्रारम्भ में कोर्निलोफ अपने कई सेनापतियों के साथ पेट्रोग्राड पर हमला करने के लिये आया मगर राजधानी के नजदीक पहुँचते ही बोलशेविक सेना को सामने देख कर उसकी सेना बदल गई और क्रान्तिकारियों में जा मिली। केरेन्स्की ने फिर अपने नये मन्त्रिमण्डल का गठन किया जिसमें जनरल वेरकोस्की और एडमिरल वेरदेस्की को भी शामिल किया। इन लोगों ने युद्ध के मोर्चे से रूसी सेना को हटा देने की राय दी मगर केरेन्स्की ने उसको नहीं माना।

युद्ध का भारी खर्च सिर पर होने से रूस को उसकी पूर्ति के लिये करोड़ों रूबल के नोट छापना पड़े जिससे वहाँ मुद्रा स्फीति बहुत बढ़ गई। रूबल का मूल्य एकदम गिर गया और जरूरी चीजों के भाव आसमान को छूने लगे। कारखानों के लिये कच्चा माल और ईंधन और मजदूरों के लिये रोटी मिलना मुश्किल हो गया। मई महीने में एक सौ आठ कारखाने बन्द हुए, जून में एक सौ पच्चीस कारखानों के ताले लगे जिनसे ३८४५५ आदमी बेकार हुए और जुलाई में ४७७५४ मजदूर बेकार हो गये इस बेकारी और भुखमरी के विरुद्ध जुलाई की ५ तारीख को ५ लाख मजदूरों ने एक विराट् प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन पर दो दिन तक सरकारी सैनिकों ने गोलियां चलाई। बोलेशैविक पत्रिका "प्रवदा" के आफिस पर हमला कर उसे तोड़-फोड़ दिया तथा लेनिन पर देश द्रोह का आरोप लगा कर उसके खिलाफ यह प्रचार किया गया कि वह जर्मनी का एजेण्ट है जो रूस को मुसीबत में फँसाने के लिये भेजा गया है। इस अपराध के लिये उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला गया मगर लेनिन के साथियों ने उसे एक जंगल में ले जाकर छिपा दिया।

२४ अक्टूबर को एक खुली मोटर लारी पर सरकार पक्षीय सेना की एक टुकड़ी "प्रवदा" पत्रिका (जो उस समय रबोचीपुत के नाम से निकल रही थी) की नई कापी को जब्त करने के लिये उसके आफिस में पहुँची। खबर लगते ही क्रान्तिकारी सैनिकों की भी एक सशस्त्र कार वहाँ पहुँची और उसने सरकारी सैनिकों को भगा दिया।

इसी दिन लेनिन भी एक मजदूर के वेश में चेहरे को ढके हुए पेट्रोग्राड के समीपवर्त्ती स्मोलनी नामक स्थान पर पहुँच गया। यही स्थान उस समय बोलशेविक पार्टी का प्रधान केन्द्र था।

अक्टूबर क्रान्ति

२५ अक्टूबर का दिन आया और उसी दिन पिछली रात को सोविएट सिपाहियों ने जाकर रेलवे, स्टेशन, तार-घर, टेलिफोन आफिस, बैंक तथा दूसरी सरकारी इमारतों पर कब्जा कर लिया। सरकारी सेनाओं ने कहीं पर कोई प्रतिरोध नहीं किया। क्रान्तिकारी सैनिक समिति ने आज्ञा

दी कि सैनिक क्रूजर आरोरा नेवा नदी में ऊपर की ओर बढ़ कर जार के हेमन्त प्रासाद के पास जाकर उस पर कब्जा करे। अरोरा के कमाण्डर ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि नेवा नदी में पानी बहुत कम है उस समय अस्थायी सरकार का अन्तिम शरण-स्थान हेमन्त प्रासाद था। आरोरा के कमाण्डर ने हुक्म मानने से इन्कार किया तो उसे तुरन्त गिरफ्तार किया गया और क्रान्तिकारी सैनिकों ने उस क्रूजर को हेमन्त प्रासाद के पास ले जाकर उसकी तोपों का मुँह महल की ओर कर दिया। इसीदिन सबेरे नौ बजे हेमन्त की ओर जाने वाले सभी रास्तों पर क्रान्तिकारियों ने अधिकार कर लिया। अस्थायी सरकार का मन्त्रिमण्डल उस समय हेमन्त प्रासाद में अपनी अन्तिम बैठक कर रहा था। उसके प्रधान मंत्री केरेन्स्की ने जब यह हालत देखी तो वह रेड क्रास की एक नर्स के कपड़े पहन कर वहाँ से चुपचाप निकल गया और उसी दिन संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के झण्डे वाली एक मोटर पर बैठ कर राजधानी से भाग गया।

२५ अक्टूबर को सबेरे दस बजे क्रान्तिकारी सैनिक समिति ने अस्थायी सरकार को उलट देने की घोषणा की और २६ अक्टूबर को सबेरे पांच बजे सोविएट कांग्रेस ने घोषणा की कि अब सारी शक्ति सोविएट के हाथ में आ गई है। नई सोविएट सरकार का अध्यक्ष लेनिन को और विदेश मंत्री ट्रोटस्की को बनाया गया।

यूरोपीय रूस के साथ ही मध्यएशिया के रूसी साम्राज्य में भी क्रान्ति की लहर पहुँची और उजबिकेस्तान कजाकिस्तान, किर्गिजस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमानिस्तान इत्यादि सभी प्रान्तों में जारशाही के खिलाफ बगावत हुई और अन्त में ये सब प्रदेश बोलशेविक सरकार के अन्तर्गत गण राज्य घोषित कर दिये गये।

अंकारा सम्मेलन

घाना की राजधानी अंकारा में हुआ अफ्रीका के स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्रों का एक सम्मेलन जो १९५८ के अप्रैल में घाना के राष्ट्रपति नक्रूमा के निमंत्रण पर बुलाया गया था।

इस सम्मेलन में संयुक्त अरबगणतंत्र, ट्यूनीशिया, घाना, सूडान, लीबिया, लाइबेरिया, मोरक्को और इथोपिया के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। सम्मेलन का उद्घाटन घाना के प्रधान मन्त्री नक्रूमा ने किया था। इस सम्मेलन में अफ्रीकी राष्ट्रों की स्वतंत्रता की रक्षा करना, उन्हें सुदृढ बनाना, औपनिवेशिक शासन के अधीन पड़े हुए राष्ट्रों को सहायता पहुँचाना और महान् राष्ट्रों से निशस्त्रीकरण के लिए अपील करना इत्यादि विषयों से सम्बन्धित कई प्रस्ताव पास हुए। अफ्रीकी राष्ट्रों के बीच राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग स्थापित करने तथा हर १५ अप्रैल को अफ्रीकी स्वतंत्रता दिवस मनाने का निश्चय किया गया।

अक्का

मेवाड़ के महीपाल पंवार का पुत्र अक्का जिसने मारवाड़ के राव रणमल को चित्तौड़ गढ़ में पलंग से बाँध कर सन् १४३८ में मार दिया।

अकमल खाँ

भारत के उत्तर पश्चिमी सीमान्त में अफ्रीदियों का नेता जिसने सन् १६७१ में मुगल सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया और राजा की पदवी ग्रहण कर ली।

उस समय उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के गवर्नर जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह थे और शाही सेना का सेनापति अमीन खाँ था। जब अकमल खाँ ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया तो जसवन्त सिंह ने अमीनखाँ को कुछ ठहर कर विद्रोहियों की गतिविधि जानने की सलाह दी। मगर अमीन खाँ ने जसवन्त सिंह की सलाह की उपेक्षा करके अकमल खाँ पर हमला कर दिया। इस लड़ाई में अकमल खाँ ने मुगल सेना को भारी शिकस्त दी। मुगलों के दस हजार सिपाहियों को कैद करके उसने मध्यएशिया की गुलाम मण्डी में बेचने के लिये भेज दिया। अमीन खाँ ने बड़ी कठिनता से पेशावर भाग कर अपनी जान बचाई। उसका कुटुम्ब पकड़ा गया। कुटुम्बियों को छुड़ाने के लिये अमीन

खाँ को बहुत धन देना पड़ा। इस विजय से अकमल खाँ की बहादुरी की ख्याति चारों ओर फैल गई।

अकलंक

एक सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य्य जो श्रुत केवली थे। जैन परम्परा के अनुसार इन्होंने शास्त्रार्थ में बौद्ध आचार्य्यों को बहुत करारी हार दी।

इनका समय सन् ६२२ ई० है। जैन परम्परा के अनुसार अकलंक और निकलंक दो भाई थे। इनमें विशेष गुण यह था कि अकलंक जो भी शब्द, श्लोक या शास्त्र वचन एकबार सुन लेते थे वह इन्हें कण्ठाग्र हो जाता था और निकलंक को दो बार सुनने पर कण्ठाग्र होता था।

बौद्ध साधुओं का रहस्य जानने के लिए ये दोनों भाई एक बार बौद्ध साधुओं का वेष बनाकर उनके संघ में चले गये। मगर किसी प्रकार पहचान लिये गये। निकलंक तो वहीं मार डाले गये मगर अकलंक किसी प्रकार वहाँ से निकल भागे।

उसके पश्चात् अकलंक ने शास्त्रार्थ में कई बौद्ध आचार्य्यों को परास्त किया। इन्होंने "राजवार्तिक" नामक तत्वार्थ-सूत्र की एक बहुत ही विवेचनपूर्ण टीका की रचना की।

अकत खाँ

अलाउद्दीन खिलजी का भतीजा जिसने दिल्ली की सल्तनत के लोभ में अपने चाचा अलाउद्दीन खिलजी पर जब कि वह रणथम्भौर पर आक्रमण करने के लिये जा रहा था। आक्रमण कर दिया परन्तु उसका आक्रमण असफल हुआ और अलाउद्दीन ने उसे मौत के घाट उतार दिया।

अकनजर

मध्यएशिया के उजबेक कजाखों के सफेद कबीले का खान जिसका समय सन् १५८० है।

अकनजर उजबेक कजाखों के प्रसिद्ध खान कासिम का लड़का था। अपनी बार-बार की विजयों के कारण इसका शासन आसपास सब दूर फैल गया था। कजाख और किरगिज उसे अपना खान मानने में गौरव समझते थे। मुगौलिस्तान के शासक अब्दुर्रशीद खान के पुत्र अब्दुललतीफ सुल्तान को इसने लड़ाई में मारा था। ताशकन्द के शासक बाबा सुल्तान और शैबानी वंश के खान अब्दुल्ला के साथ इसकी गहरी प्रतिद्वन्द्विता थी। सन् १५८० के अन्त में किसी लड़ाई में अकनजर मारा गया।

अकादी साहित्य

सुमेरियन, असीरियन और बैबिलोनियन संस्कृति का मिला-जुला प्राचीन साहित्य अकादी साहित्य कहा जाता है। जितनी पुरानी सुमेरियन और बैबिलोनियन सभ्यताएँ हैं, यह साहित्य भी उतना ही पुराना है। ईसा से करीब ३००० वर्ष पूर्व से लेकर ६०० वर्ष पूर्व तक।

यह साहित्य गीली ईंटों पर कीलनुमा अक्षरों में लिखा गया है। इसमें लिखी हुई लिपि 'क्यूनी फार्म' कहलाती है। इस प्रकार का ईंटों पर लिखा हुआ बहुत-सा साहित्य समय के प्रहारों से तथा आक्रामक लोगों के आक्रमण से नष्ट हो गया। फिर भी असीरियन सम्राट् बनिपाल ने अपने संग्रहालय में ऐसी हजारों ईंटे और पत्थर एकत्रित कर लिये थे। जिससे उस समय की साहित्य-परम्परा का कुछ ज्ञान सम्भव होता है।

अकादी साहित्य के महाकाव्य की खुदी हुई बारह ईंटें इस संग्रहालय में प्राप्त हुई हैं। इन ईंटों पर जो महाकाव्य खुदा हुआ है उसका नाम "गिल्गमेश" है। इस काव्य में भी सृष्टि प्रलय की कहानी उसी प्रकार वर्णित की गई है जैसी हिन्दू पुराणों में और बाइबिल में वर्णित है, जिस तरह बाइबिल में उस जल प्रलय से सृष्टि की रक्षा "नूह" करता है उसी प्रकार इस महाकाव्य में उस प्रलय से सृष्टि की रक्षा "गिल्गमेष" करता है। गिल्गमेष का पूरा वर्णन आगे के भागों में इस नाम की विवेचना में देखें।

अखामनी साम्राज्य

प्राचीन ईरान का संसार में सर्वप्रथम स्थापित विशाल साम्राज्य जो ई० सन् पूर्व ५५० से ३२६ तक अर्थात् २२५ वर्ष तक पूर्ण उरूज पर रहा और ईरान, इराक, मिस्र, बेबिलोनिया, यूनान तथा भारत की सीमा पर सिंधु नदी के तट तक यह फैला हुआ था।

अखामनी साम्राज्य के पहले ईरान के आस पास तथा काकेशस पहाड़ की पर्वत श्रेणियों में मद्रजाति के कबीलों का शासन था। ये लोग "मिदिया" कहलाते थे। सन् ७८८ ई० पू० इस मद्रजाति ने संगठित होकर बवेरू (बेबिलोनिया) की राजधानी "निनवे" को पराजित कर मद्र-राज्य की स्थापना की। इस राज्य में देवक (देहश्रोक) प्रसिद्ध राजा हुआ, जिसने सब ईरानी कबीलों को मिलाकर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इसने अपनी राजधानी "अखवतन" (वर्तमान हमदान) को बड़े-बड़े महलों और मजबूत किले से सुदृढ़ कर दिया। यह राज्य ई० पू० ५५० तक कायम रहा।

इन्हीं दिनों दक्षिणी ईरान के एक बड़े कबीले का सरदार "अखामन" नामक व्यक्ति था। इसी अखामन के वंश का नाम अखामनी वंश कहलाया।

आगे चलकर इसी वंश में कुरुष नामक एक बहादुर और महत्वाकांक्षी व्यक्ति पैदा हुआ। इसने ई० पू० ५५० में मद्रराज्य के अन्तिम राजा को हराकर अपने को सारे मद्र राज्य का शासक घोषित किया और अखवतन को ही अपनी राजधानी बनाया। इसके पश्चात् ई० पू० ५४६ में इसने लिदिया या क्षुद्र एशिया को जीत कर अपनी सीमा पूर्वीय भूमध्य सागर तक पहुँचा दी। इस विजय से अपने को मजबूत बना कर सात वर्ष बाद ई० पू० ५३८ में इसने बवेरू पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। इसके बाद उसने मिस्र पर आक्रमण करके उसे अपने राज्य में मिला लिया और पूरब में अपनी सीमा को सिंधु तट तक पहुँचा दिया। अन्त में शक जाति के राजा अमोंग के साथ युद्ध करते हुए पहले उसको मार कर फिर उसकी रानी तोमुरी के द्वारा यह महान् वीर मारा गया।

सम्राट् दारा (दारयबाहू)

कुरुष के बाद इस वंश में दारय बाहू जिसे दारा भी कहते हैं महान् प्रतापी सम्राट् हुआ। इसने ई० स० पूर्व ५२१ से ४८५ तक राज्य किया। इसने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। ई० पू० ५१२ में इसके साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में कालासागर, काकेशस, कास्पियन् और चीन की सीमा तक फैला हुआ शक जाति का प्रदेश, पूर्व में सप्त सिंधु, पश्चिम में भूमध्य सागर और मिस्र की पश्चिमी सीमा तक तथा दक्षिण में अरब तथा अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान तक थीं।

एशिया और अफ्रीका में अपने साम्राज्य का विस्तार कर इसने यूरोप में यूनान पर आक्रमण किया। ई० पू० ४६४ में उसने लेद के सामुद्रिक युद्ध में यूनानी सेना को हरा दिया। ई० स० से ४८५ पूर्व ३६ वर्ष का सुदृढ़ शासन कर एक विशाल साम्राज्य अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ यह स्वर्गवासी हुआ।

सम्राट् दारा विश्व का पहला शासक था जिसने राजा की मूर्ति के साथ अपने सिक्के चलाये। उसके बाद ग्रीक राजाओं तथा भारतीय नरेशों ने भी इसी प्रकार के सिक्के चलाये। इस सम्राट की शासन-व्यवस्था इतनी उत्कृष्ट थी कि उसकी बहुत-सी बातों को सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों ने अपनाया। सम्राट दारा के बनाये हुए राजपथ (सड़कें) उसकी राजधानी पर्सेपोलि से मकदूनिया, मिस्र, भारत और मध्यएशिया तक फैले हुए थे। जिन पर डाक ले जाने वाले और लाने वाले घोड़े बराबर तैनात रहते थे। सड़कों पर हर पन्द्रह मील पर धर्मशालाएँ बनी हुई थीं जहाँ मुसाफिरों के ठहरने की व्यवथा थी।

सम्राट् दारा का राज्य एक धर्म निरपेक्ष राज्य था वैसे ईरान के शाह और वहाँ की अधिकांश जनता भगवान् "अहुरमज्द" को माननेवाली थी। अहुरमज्द के पैगम्बर के रूप में ईसा पूर्व करीब ६०० सन में महान् धर्म नेता जरथोस्ट का आविर्भाव हुआ जो करीब-करीब भगवान् बुद्ध के समकालीन थे।

सम्राट् क्षयार्श

सम्राट् दारा की मृत्यु के बाद अखामनी वंश में सम्राट् "क्षयार्श" हुआ। इसने ई० पू० ४८५ से ई० पू० ४६६ तक १९ वर्ष राज्य किया। ई० पू० ४८१ में उसने यूनान पर आक्रमण किया इस आक्रमण में उसके साथ १२००

जंगी जहाज और २३,१०००० सैनिक थे। उस समय तक संसार में इतनी बड़ी सेना किसी भी युद्ध में शामिल नहीं हुई थी। मगर स्वाधीनता के प्रेमी ग्रीक योद्धाओं ने इस लड़ाई में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। थर्मापोली की शानदार लड़ाई जिसने ग्रीक लोगों को इतिहास में अमर कर दिया इसी युद्ध में लड़ी गई थी। फलस्वरूप ग्रीक वीरता से तङ्ग आकर ईरानी इस पहाड़ी क्षेत्र को पार नहीं कर सके तब वे अपना रास्ता बदल कर दूसरे रास्ते से आगे बढ़ गये अन्त में ईरान की जबर्दस्त सेना ने यूनानियों को परास्त कर एथेन्स पर अधिकार कर लिया। मगर आगे जाकर सलीमा द्वीप में अन्तिम निर्णायक जल-युद्ध हुआ जिसमें यूनानी जहाजों ने एक दिन में ईरान के २०० जंगी जहाज डुबो दिये। इससे निराश होकर ईरानी सेना वापस लौट गई। ई० पू० ४६६ में सम्राट् क्षयार्श अपने एक शरीर रक्षक के द्वारा मारा गया।

क्षयार्श के पश्चात् अखामनी वंश में आठ बादशाह और हुए। जिनके नाम अर्तक्षत्र प्रथम (ई० पू० ४६६-४२५) क्षयार्श द्वितीय (ई० पू० ४२५-४२४) दारा द्वितीय (ई० पू० ४२४-४०५) अर्तक्षत्र द्वितीय (ई० पू० ४०५-३५६) अर्तक्षत्र तृतीय (ई० पू० ३५६-३३३) दारा तृतीय (ई० पू० ३३३-३३०)

अन्तिम सम्राट् दारा तृतीय पर यूनान के महान् सिकन्दर का प्रबल आक्रमण हुआ जिसने अखामनी साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर नष्ट कर दिया।

अखनातून

प्राचीन मिस्र का फेरोवंशीय नरेश जो ईस्वी सन् से पूर्व १३७५ में हुआ। जिसने मिस्र के अन्दर बहुदेववाद को समाप्त कर एकेश्वरवाद की सर्वप्रथम स्थापना की। इस उपास्य एकेश्वर का नाम "अत्तम" रक्खा गया जो सूर्य देवता का पर्यायवाची शब्द है। अखनातून स्वयं एक कवि और लिरिककार भी था। अत्तन देवता की स्तुति में उसने कुछ लिरिकों की रचना की थी।

अखा

गुजरात के भक्तिरस का एक कवि और भक्त

भक्त अखा का जन्म सन् १५९२ के करीब गुजरात के जेतलसर नामक ग्राम में हुआ था मगर बाद में यह अहमदाबाद में आकर रहने लगा था।

भक्त अखा ने दूसरे संत कवियों की तरह गुजराती साहित्य को अपने भजन और कविताओं की देन देकर भक्ति-धारा का रस प्रवाहित किया।

अंगुलिमाल

भगवान बुद्ध के समय का एक प्रसिद्ध और दुर्दमनीय डाकू। अंगुलिमाल की भयङ्कर डाकेजनी और नर-हत्याओं से प्रजा बहुत तङ्ग आ गई थी। राजा प्रसेनजित और उसकी राज्य-शक्ति उसे दबाने में बिलकुल असमर्थ हो गई थी।

एक बार भगवान् बुद्ध स्वयं उस क्षेत्र से निकले जहाँ पर अंगुलिमाल रहता था। शुरू-शुरू में अंगुलिमाल ने उन्हें कई दुर्वचन कहे मगर अन्त में बुद्ध की महान् क्षमाशीलता को देखकर तथा उनके उपदेश को सुनकर उसने डकैती छोड़ दी और बुद्ध का अनुयायी बन गया।

अगुइनाल्दो

फिलीपाइन द्वीप के स्वतंत्रता आन्दोलन का नेता सन् १८९६ से १९०१ तक।

जिस समय फिलिपाइन द्वीप समूह स्पेन के अधिकार में था उसी समय से अर्थात् सन् १८६० के आस पास से वहां स्वाधीनता आन्दोलन का पारम्भ हो चुका था। वहां के स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं में जोसेरिजाल मर्कादो का नाम विशेष प्रसिद्ध है जिसे सन् १८९६ में स्पेनी सरकार ने प्राणदण्ड दिया।

मर्कादो के पश्चात् वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन की कमान अगुइनाल्दो ने सम्हाली। अगुइनाल्दो ने फिलिपाइन लोगों के सहयोग से अपने आन्दोलन को बराबर चालू रक्खा, जिस समय स्पेन और अमेरिका की लड़ाई चालू थी उस समय अगुइनाल्दो ने फिलिपाइन की स्वतंत्रता की घोषणा करदी और उसी के नेतृत्व में फिलिपाइन रिपब्लिकन सरकार का संगठन किया गया।

अमेरिका ने स्पेन वालों को युद्ध में परास्त कर दिया और उसके बाद वे वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में जुट गये। कुछ समय तक फिलिपाइन वालों ने उनका सामना किया मगर उस महाशक्ति के सामने वे टिक नहीं सके। सन् १९०१ में अगुइनाल्डो गिरफ्तार कर लिया गया और १९०२ में अमेरिका ने वहाँ अपना शासन दृढ़तापूर्वक जमा लिया।

अग्रवाल

भारतवर्ष की वैश्य जाति की एक शाखा का नाम, इस जाति के लोग इस समय सारे भारतवर्ष में व्यवसाय और उद्योग धन्धों के निमित्त फैले हुए हैं। देश के बड़े-बड़े निजी उद्योग अधिकतर इसी जाति के हाथ में है।

अगवाल जाति की उत्पत्ति कैसे हुई, इसके सम्बन्ध में सुदृढ़ ऐतिहासिक प्रमाण करीब-करीब नहीं मिलते, कुछ पौराणिक आधार और कुछ किम्बदन्तियों के आधार पर ही इस जाति के उद्‌भव के सम्बन्ध में कुछ बातें जानी जा सकती हैं जो संक्षिप्त में इस प्रकार है—

(१) इस जाति के नामकरण के सम्बन्ध में एक मत यह प्रचलित है कि इस जाति के पूर्वज प्राचीन काल में "अगर" नामक सुगन्धित लकडी का बड़े पैमाने पर व्यापार करते थे। इसी से ये लोग "अगरवाल" नाम से प्रसिद्ध हुए। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह तो साफ पता लग जाता है कि उस युग में भारतवर्ष में "अगर" का व्यापार बहुत जोरों पर था और यह लकड़ी वणिक जाति के द्वारा बहुत बड़े परिमाण में देश में तथा विदेश में जाती थी। वैश्य जाति के हजारों परिवार "अगर" के व्यापार से जीविका निर्वाह करते थे। इस लकड़ी को खरीदने के लिए उन्हें पूर्व भारत में जाना पड़ता था और बेचने के लिए भी देश विदेश का भ्रमण करना पड़ता था। वैश्य-जाति के जिस वर्ग का 'अगर" के व्यापार से अधिक सम्बन्ध था वे आगे जाकर अग्रवाल कहलाए।

(२) इस जाति के नामकरण के सम्बन्ध में एक और मत यह है कि "अग्रसेन" नामक राजा किसी समय में इस देश में बड़ा प्रसिद्ध हुआ जिसकी राजधानी उसी के नाम पर बसाये हुए "अगरोहा" नामक स्थान में थी। इसी अग्रसेन ने अपने नाम पर 'अग्रवाल" जाति की स्थापना की। मगर यह अग्रसेन इतिहास के कौन से युग में हुआ, उसने क्या-क्या काम किये, किस घटना के वश होकर उसने अग्रवाल जाति की स्थापना की आदि प्रश्न-वाचक चिन्हों का कोई प्रामाणिक उत्तर इतिहास नहीं देता। वैसे पौराणिक आख्यायिकाएं और किम्बदन्तियाँ बहुत हैं जिनके आधार पर तो अग्रसेन का वंशवृक्ष ठेठ ब्रह्मा से मिला दिया जाता है।

खैर, किसी भी तरह हो मगर आगे जाकर इस जाति के कई प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने इतिहास में कई महत्व-पूर्ण कार्य किये। शाहबुद्दीन गोरी के द्वारा अगरोहे का ध्वंस किये जाने के पश्चात् वहाँ से इस जाति के लोग निकल कर भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जाकर बस गये।

जो परिवार राज स्थान में जाकर बस गये वे मारवाड़ी अग्रवाल कहलाये उन्होंने वहाँ जाकर अपने को शुद्ध व्यापारिक जीवन में ढाल लिया। जो लोग पंजाब और यू० पी० में जाकर बसे उनका मुगल बादशाहों के जमाने में फिर राजकीय क्षेत्र में प्रवेश हुआ। जिन में राय रामप्रताप, राय इन्द्रमन, राजा पटनीमल, लाला अमीचन्द इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान के अग्रवाल व्यवसायी अपने व्यवसाय के प्रचार के लिए, ऐसे काल में जब कि रेल, तार, मोटर इत्यादि आवा गमन के साधन न थे, ठग, पिण्डारी और डाकुओं का आतंक चारों ओर छाया हुआ था—आसाम के समान दूरवर्ती देशों में जहाँ चारों ओर बेंत के घने जंगल छाये हुए थे, जहाँ के लोग इनकी भाषा और इनके रहन-सहन से परिचित नहीं थे वहाँ पैदल चलते हुए पहुंचे, बेंत के जंगलों को साफ कर अपनी बस्तियां बसाईं और अपने व्यवसाय को कायम किया इससे उनकी जोखिम उठाने की शक्ति, व्यापारिक महत्वाकांक्षा और कठोर अध्यवसाय का पता चलता है। आज उन्हीं व्यवसायियों के वंशज आसाम, बंगाल और बम्बई के प्रमुख निजी औद्योगिक क्षेत्रों के संचालक हैं और व्यापार के क्षेत्र में अपनी सानी नहीं रखते।

अगरोहा

हिसार जिले का एक कस्बा जो किसी समय में एक बड़ा शहर था और अग्रवाल जाति की उत्पत्ति का मुख्य केन्द्र माना जाता था।

अगरोहा का वर्णन करते हुए पंजाब प्रान्त के गजेटियर में लिखा है कि—

"अगरोहा एक बहुत प्राचीन नगर है। यह नगर अग्रवालों का उत्पत्ति केन्द्र माना जाता है जो आज से दो हजार वर्ष पहले बहुत शक्तिशाली थे। यह नगर इतिहास के किसी काल में अत्यन्त वैभवपूर्ण था। वर्तमान अगरोहा गाँव से आधे मील के फासले पर एक प्राचीन नगर और दुर्ग के खण्डहर पाये जाते हैं। इन खण्डहरों को देखने से पता चलता है कि अवश्य किसी समय यह नगर बड़ा वैभवपूर्ण रहा होगा। अनुमान यह है कि जिस समय घाघरा नदी बारहों मास बहती थी उस समय अगरोहा उन धनाढ्य और भाग्यशाली वणिकों की बस्ती थी जो पूर्वी राजपूताना से यहां आकर बसे थे, सन् १८८६ में जब इन खण्डहरों की खुदाई की गई तो भीतर से बड़ी-बड़ी खोलियों की दीवारें ज्यों की त्यों निकलीं और कई पत्थर की मूर्त्तियाँ, सिक्के और बड़ी-बड़ी ईंटें निकलीं। अग्रसेन का बनाया हुआ किला जो ईस्वी सन् के आरम्भ से पहले का बना है आज भी देखने में नया मालूम होता है। सन् ११६४-६५ में शाहबुद्दीन गोरी ने इस नगर पर कब्जा कर लिया, तब यहां के अग्रवाल परिवार यहां से निकल कर सारे भारत में फैल गये। सन् १७७४ में जब सिक्खों का भाग्य उदय हुआ तब पटियाला नरेश राजा अमरसिंह ने अगरोहा के खण्डहरों पर एक किले का निर्माण करवाया।

अग्रसेन

अग्रवाल जाति के संस्थापक राजा अग्रसेन। जिनके सम्बन्ध में अनेकानेक किम्वदन्तियाँ अग्रवाल जाति में प्रचलित हैं। अग्रवाल समाज प्रति वर्ष आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को अग्रसेन जयंती भी मनाता है। फिर भी इनके सम्बन्ध में कोई मजबूत ऐतिहासिक जानकारी न होने से अधिक नहीं लिखा जा सकता।

अगस्टाइन

संत अगस्टाइन ईसाई धर्म के एक महान् विचारक, विद्वान, सन्त, रोमन चर्च के फादर, समय सन् ३५४ से ४३० ईस्वी तक।

सन्त अगस्टाइन का जन्म उत्तरी अफरीका में रोम साम्राज्य के एक प्रान्त नूमीडिया में सन् ३५४ में हुआ। उसका परिवार एक मूर्त्तिपूजक परिवार था। युवावस्था में ईसाई धर्म के सुप्रसिद्ध सन्त अम्ब्रोज ने उसे ईसाई धर्म की दीक्षा दी और अपनी विशेष प्रतिभा के कारण ९६ हिप्पो (Hippo) का विशप बना दिया गया।

जिस समय सन्त अगस्टाइन कार्य्य-क्षेत्र में आया उस समय रोम साम्राज्य एक भयङ्कर संक्रमण काल में से गुजर रहा था। इतिहास के अन्दर प्रसिद्ध महान् रोमन साम्राज्य जो गत आठ शताब्दियों से संसार का सबसे गौरवशाली साम्राज्य बना हुआ था अब हूणों के पाशविक और बर्बर हमले का केन्द्र हो रहा था। महान् बर्बर हूण आक्रमणकारी डैन्यूब और राइन नदियों को पार करके फ्रान्स की भूमि को रौंदते हुए रोम की तरफ बढ़ रहे थे। सन् ३७६ में रोम की सेनाओं को तहस-नहस करके सर्विया और बल्गेरिया की भूमि में बस गये और सन् ४१० में अपने राजा अलारिक के नेतृत्व में उन्होंने रोम में खुली लूट की।

रोम में उस समय ईसाई धर्म का प्रवेश हुए बहुत अधिक समय नहीं बीता था। वहाँ के पुरातन मूर्त्ति पूजक धर्मावलम्बी रोम के इस महान् विनाश को देखकर इस की सारी जिम्मेदारी ईसाई धर्म पर थोपने लगे। उनके मत से पुरानी धर्म परम्परा को छोड़ कर इस नवीन धर्म को अपनाने के कारण ही ईश्वर ने रोम को इस सर्वनाश की भट्टी में झोंक दिया। इस ईश्वरीय विपत्ति के कारण ईसाई धर्म के बारे में जन समाज के अन्तर्गत एक विद्रोह की भावना बलवती हो रही थी।

ऐसे ही समय में सन्त अगस्टाइन का प्रादुर्भाव हुआ। संत अगस्टाइन के लिए हूणों के द्वारा रोम पर किया हुआ बाहरी आक्रमण ही चिंता का विषय नहीं था उस समय ईसाई चर्च की आंतरिक स्थिति भी पारस्परिक फूट के कारण अत्यन्त चिंतनीय हो रही थी। आलरियस (Alrius) और अथानासियस (Athanasius) के पारस्परिक गम्भीर

मतभेदों ने आन्तरिक रूप से ईसाई चर्च की स्थिति को कमजोर बना रखा था।

ऐसी परिस्थितियों पर नियंत्रण करने के लिए सन्त अगस्टाइन ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपने आपको पेश किया। उसने अपनी समस्त शक्तियों के साथ रोम की जनता के इस विश्वास का खण्डन करना प्रारम्भ किया कि किसी भी साम्राज्य के उत्थान और पतन में देवताओं की प्रसन्नता या प्रकोप कारणी भूत होते हैं। उसने बतलाया कि मानव-इतिहास का प्रवाह निरन्तर एक संघर्ष के रूप में--पाप और पुण्य की प्रतिद्वन्दिता के रूप में चलता रहता है। जब पाप का पलड़ा भारी हो जाता है तब प्रभु उसका विनाश करके धर्म राज्य की स्थापना करने का प्रयास करता है। रोम का पतन एक दैविक उद्देश्य की सिद्धि के लिए हो रहा है। रोमवासियों के हृदय को मूर्ति पूजक धर्म के दोष से हटाकर उन्हें प्रभु की दया के लिए तैय्यार करना ही इसका उद्देश्य है।

संत अगस्टाइन ने अपने इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए सिटी ऑफ गॉड (The City of God) नामक महान् ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का उस समय रोम में बहुत प्रचार हुआ और इसके अध्ययन ने पुरातन विश्वासों की दीवारों को ढहा दिया। उसने इतिहास-दर्शन (Philosophy of History) पर एक नवीन विचार पद्धति से विचार किया। उसने सिद्ध किया कि मानव इतिहास का प्रवाह, पहाड़ी झरने की तरह निरन्तर संघर्ष के बीच चलता रहता है। यह संघर्ष मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति (Civitas Terrana) और दैवी प्रवृत्तियों (Civitas Dei) के बीच चलता रहता है। मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक राज्य अस्थायी और नाशवान है एक न एक दिन वह अवश्य नष्ट होगा जबकि ईश्वरीय राज्य स्थायी है और वह सदा कायम रहेगा।

अगस्टाइन का ईश्वरीय राज्य एक विश्व व्यापी राज्य है। जिसके अन्दर जाति, वर्ग, रंग तथा राज्य के भेद की चिंता किये बिना प्रत्येक मानव केवल मानव होने के नाते प्रवेश कर सकता है। जब मनुष्य के ऊपर प्रभु की कृपा बरसती है तभी उसे इस महान् राज्य का सदस्य बनने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

राज्य व्यवस्था, सम्पत्ति और दास प्रथा के सम्बन्ध में भी अगस्टाइन ने अपने विचार प्रकट किये हैं। सम्पत्ति के सम्बन्ध में उसके विचार अरस्तू से मिलते-जुलते हैं। अर्थात् अगस्टाइन भी समाज में निजी सम्पत्ति का समर्थक है और वह यह भी मानता है कि सम्पत्ति का अभाव और उसका अत्यधिक प्रभाव, और सम्पत्ति की संग्रह प्रवृति मानवीय समाज के लिए खतरनाक है। दास प्रथा का वह एक रूप में समर्थक था। दासों की गणना भी पशुओं की तरह वह सम्पत्ति में ही करता था। उसका विश्वास था कि मनुष्य की पाप प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही संसार में दास प्रथा का अस्तित्व है।

कहना न होगा कि सन्त अगस्टाइन की विचारधारा का तत्कालीन यूरोपीय समाज पर और आगे आनेवाले विचारकों पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा और उसके दृढ़-व्यक्तित्व और कुशल मस्तिष्क ने ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूत करने में और उसकी व्यापकता बढ़ाने में बहुमूल्य सहयोग दिया।

अंकिल टाम्स केबिन्
(Uncle toms cabin)

अमेरिका की सुप्रसिद्ध लेखिका हैरियट बीचर स्टो द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध उपन्यास, जिसने समस्त अमेरिका में गुलामी प्रथा के विरुद्ध अत्यन्त प्रबल आन्दोलन को जन्म दिया। हिन्दी भाषा में भी इस उपन्यास का अनुवाद "टाम काका की कुटिया" के नाम से हो चुका है।

सन् १८५२ में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ, कई दृष्टियों से इस पुस्तक ने गुलामी प्रथा के खिलाफ अमेरिकन लोकमत पर जादू का असर कर दिया। वैसे लॉवेल, एमर्सन, ब्राइण्ट, लांगफेलो इत्यादि लेखकों और कवियों ने दास प्रथा के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा था। मगर लोकमत को जाग्रत करने में इस उपन्यास ने जो काम किया, वह इसके पहले कोई भी नहीं कर सका था। इस पुस्तक का इतिहास अमेरिकन साहित्य के इतिहास की अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना है। यह सन् १८५२ में प्रकाशित हुई और वर्ष की समाप्ति के पूर्व ही इसकी तीन लाख प्रतियां

बिक गई और पॉवर से चलने वाले आठ प्रेसों को इसकी मांग पूरी करने के लिए दिन रात काम करना पड़ा।

इस उपन्यास में मिसेज स्टो ने दिखलाया कि किस प्रकार निर्दयता को दासता से अलग नहीं किया जा सकता और किस प्रकार स्वतंत्र और दास समाजों में मूलतः समझौता नहीं हो सकता। उत्तर अमेरिका के वोटरों की नई पीढ़ी को इस उपन्यास ने हिला दिया। केवल अमेरिका में ही नहीं इस पुस्तक ने ब्रिटेन, फ्रान्स और अन्य देशों में भी अपने उद्देश्य को पूरा कर दिया। संसार की आधे से अधिक प्रधान भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया। दास प्रथा के विरोध में सर्वत्र इसने एक नवीन उत्साह जाग्रत कर दिया।

अङ्ग

अङ्ग बिहार प्रान्त में स्थित आधुनिक भागलपुर और मुंगेर जिलों के क्षेत्र का प्राचीन नाम है। इसकी राजधानी चम्पापुरी थी जहाँ पर जैनियों की परम्परा के अनुसार उनके बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य का निर्वाण हुआ था। यहां के ब्रह्मदत्त नामक एक राजा ने मगध के शक्तिशाली राज्य पर विजय पाई थी। मगर उसके बाद मगध के शक्तिशाली राज्य ने इसे पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया।

अगेलेसियन
(Agalassians)

सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय झेलम और चिनाव नदी के सङ्गम पर बसनेवाली एक जाति जिसे कुछ इतिहासकारों ने "अग्रश्रेणी" के नाम से भी लिखा है।

जिस समय सिकन्दर महान् विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ रहा था और उसकी सेना झेलम और चिनाव नदी के सङ्गम पर आबाद शिवि जनपद में पहुँची उस समय शिवि जनपद के ४०००० सैनिक उसकी सेनाओं का मार्ग रोक कर खड़े थे इन्हीं सैनिकों की मदद पर अगेलेसियन जाति का सरदार भी ४०००० पैदल और ३००० घुड़सवारों को साथ लेकर इनसे आ मिला। मगर इन दोनों जनपदों के सैनिकों के पास लाठियों के सिवाय दूसरे कोई हथियार नहीं थे। नवीनतम युद्धसाज-सज्जा से युक्त यूनानी सेनाओं के सामने वे कहाँ तक ठहर सकते थे। फिर भी अगेलेसियनस लोगों ने बड़ी बहादुरी से सिकन्दर का मुकाबिला किया। मगर जब वे विजय की आशा छोड़ चुके तो अपने ही हाथों से अपने घरों में आग लगा कर वे उसमें जल कर स्वाहा हो गये पराधीन जीवन की अपेक्षा उन्होंने आग में जलना ज्यादा पसन्द किया।

अग्निमित्र

शुङ्गवंश के प्रसिद्ध सम्राट् पुष्यमित्र का पुत्र और उत्तराधिकारी। कालिदास के मालवाकाग्निमित्र नाटक का पुरुषनायक। समय ईस्वी सन् से पूर्व १४८ से १४० तक।

अग्निमित्र इतिहास प्रसिद्ध शुङ्गवंश के सम्राट् पुष्यमित्र का पुत्र था। पिता के शासन काल मे यह विदिशा (भेलसा) का शासक था। उस समय विदर्भ (बरार) का राजा यज्ञसेन था। यज्ञसेन का चचेरा भाई माधवसेन था। माधवसेन की बहिन मालविका से अग्निमित्र का प्रेम हो गया था। माधवसेन अपनी बहन का विवाह अग्निमित्र से करने के लिए उसे विदिशा ले जा रहा था तब मार्ग में यज्ञसेन ने उसे गिरफ्तार कर लिया, इस पर अग्निमित्र ने विदर्भ पर चढाई करके यज्ञसेन पर विजय प्राप्त की और विदर्भ का राज्य यज्ञसेन और माधवसेन में बांट दिया और मालविका से विवाह कर लिया।

अण्ड्रे मेरी एम्पियर
(Andre Marie Ampere)

फ्रान्स के एक सुप्रसिद्ध विद्युत् शक्ति के वैज्ञानिक जिनका जन्म सन् १७७५ में और मृत्यु सन् १८३६ में हुई।

मेरी एम्पियर का जन्म फ्रान्स के ल्योन्स नगर में हुआ था। गतिमान विद्युत् विज्ञान (Electrodynamics) और धारावाही विद्युत् तथा चुम्बक शक्ति की समानता के सम्बन्ध में इनके आविष्कार का संसार ऋणी है। यद्यपि गैलवानी और होल्टा ने विद्युत् धाराओं की उत्पत्ति का रास्ता खोल दिया था और आयर्स्टेड ने गतिमान विद्युत् के चुम्बकीय प्रभाव का प्रयोग बतलाया परन्तु जिस चीज को आजकल विद्युत् धारा कहा जाता है उसकी प्रकृति का निरूपण पहले पहल मेरी एम्पीयर ने किया।

एम्पियर धारा तराजू (Ampere Current Balance) नामक विद्युत् धारा को नापने का यंत्र इन्हीं के नाम पर बनाया गया है। इन्होंने विद्युत् की स्थायी सुइयों (Astatic) का भी अनुसन्धान किया।

इनके सम्मान में विद्युत् धारा की व्यवहारिक ईकाई का नाम एम्पियर पड़ा।

अंगुत्तर निकाय

बौद्ध धर्म के सुत्तपिटक नामक आगम का चौथा निकाय।

सुत्त पिटक में भगवान बुद्ध के लोकोपकारी उपदेश और संवादों का संग्रह किया गया है। इस पिटक में (१) दीघ निकाय (२) मज्झिम निकाय (३) संयुक्त निकाय (४) अंगुत्तर निकाय और (५) खुद्दक निकाय—इन पाँच निकायों का समावेश है।

अंगुत्तर निकाय में दो हजार तीन सौ आठ सूत्र हैं और उनमें एक वस्तु से लेकर ग्यारह वस्तुओं का समावेश क्रमशः किया गया है। प्रथम निपात में एक क्या-क्या है वह सब गिनाया गया है और इसी प्रकार ग्यारहवें निपात में ग्यारह-ग्यारह वस्तुओं का संग्रह किया गया है।

अङ्गद गुरु

सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु नानक के शिष्य जिनका जन्म सन् १५०४ में पंजाब के एक खत्री परिवार में हुआ।

गुरु अंगद का गृहस्थाश्रम का नाम "लहिना" था। यह पहले शक्ति का उपासक था। एक बार किसी फकीर के मुंह से उसने गुरु नानक की बनाई "आसादी-वार" की कुछ सुन्दर पंक्तियाँ सुनी। जो उसके दिल पर असर कर गई और गाने वाले से उसके रचयिता गुरु नानक का पता लगाकर वह करतारपुर में आकर उनकी शरण में पहुँचा और उनका शिष्य हो गया। गुरु नानक का उस पर इतना स्नेह हो गया कि उन्होंने अपने दो पुत्रों को छोड़ कर अंगद को अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाया।

गुरु अंगद ने गुरु नानक की रचनाओं को एकत्र करवा कर उन्हें लिपिबद्ध करवाने के लिए गुरुमुखी अक्षरों का आविष्कार किया। लंगर खोलकर आये हुए भक्तों का अतिथि सत्कार करने की प्रथा भी इसीने चलाई। गुरु अंगद का देहान्त सन् १५५२ में हुआ।

अङ्गकौर

हिन्दचीन (इण्डोचाइना) के एक हिन्दू राज्य की इतिहास प्रसिद्ध राजधानी जिसे बौद्ध राजा 'जय वर्मन' ने नौवीं सदी में बनाना प्रारम्भ किया और जिसे उसके पुत्र यशोवर्मन ने बनाकर पूरा किया।

ईसा की तीसरी सदी से लेकर आठवीं सदी तक दक्षिण भारत के राजाओं ने मलेशिया और हिन्द चीन में अपने अनेक उपनिवेश स्थापित किये थे। कई स्थानों पर एक साथ योजनापूर्वक इस प्रकार उपनिवेशों के स्थापित करना यह जाहिर करता है कि उन दिनों समुद्र यात्राएं खूब होती होंगी। ये सब उपनिवेश हिन्दू बस्तियों के रूप में थे और इनके नाम दक्षिण भारतीय ढंग के थे।

इनमें सब से पुराने उपनिवेश का नाम "चम्पा" था। और यह "अनाम" प्रदेश में था। इसी प्रकार ईसा की तीसरी सदी में अनाम में पाण्डुरंग और काम्बोज नामक बड़े-बड़े शहर भी बन चुके थे। जिनमें स्थापत्य कला के बड़े सुन्दर नमूने बने हुए थे।

आठवीं सदी में हिन्दचीन में तीन बड़े-बड़े हिन्दू राज्य थे। नवीं सदी में एक बहुत बड़ा राजा हुआ जिसका नाम जयवर्मन था, इसने इन तीनों राज्यों को मिलाकर एक कर दिया और एक बड़ा साम्राज्य कायम किया। इसी ने अपनी राजधानी बनाने के लिए अंगकौर शहर की नींव डाली और उसके बाद उसके पुत्र यशोवर्मन ने उसे पूरा किया। यह काम्बोजी साम्राज्य लगभग चारसौ बरसों तक कायम रहा।

"अंगकौर थाम" का राजनगर सारे पूर्व में शानदार अंगकौर के नाम से प्रसिद्ध था इसकी आबादी दस लाख से ऊपर थी जो कि उस जमाने के हिसाब से अधिकतम थी। इस शहर के पास ही अंगकौर-वट का अद्भुत मन्दिर था जिसकी स्थापत्य कला बड़ी सुन्दर थी।

तेरहवीं सदी में काम्बोज साम्राज्य पर पूर्व की ओर से अनाम ने, उत्तर से मंगोलों ने और पश्चिम से वहां के निवासियों ने एक साथ हमला किया इन आततायियों से लड़ते-लड़ते यह राज्य बहुत बरबाद हो गया फिर भी अंगकौर पूर्व का सब से शानदार नगर बन रहा। सन् १२६७ में एक चीनी पर्यटक ने अंगकौर के वैभव की बहुत प्रशंसा की है।

मगर सन् १३०० में मीकांग नदी का मुहाना कीचड़ से बन्द हो जाने के कारण अंगकौर नगर पर बहुत विपत्ति आई। पानी को बहने का रास्ता न मिलने से वह इस नगर में घुस गया। जिससे शहर चारों ओर पानी से घिर गया। वहाँ की जनता भूख से व्याकुल हो शहर छोड़कर भाग गई और यह सुन्दर शहर उजाड़ जंगल के रूप में परिणित हो गया।

अंगोरा

तुर्की का बड़ा और प्रसिद्ध शहर और सन् १६२३ में मुस्तफा कमालपाशा द्वारा तुर्की गणराज्य की घोषणा के बाद बनाई हुई तुर्की की राजधानी। इसके पहले तुर्की की राजधानी कान्स्टेटिनोपल या इस्तम्बूल में थी।

अंगोरा टर्की का एक सुप्रसिद्ध नगर है। सन् १४०२ में तैमूर लंग का यहाँ पर उस्मानी तुर्कों की एक बड़ी फौज से युद्ध हुआ। जिसमें तैमूर ने उस्मानी तुर्कों को हरा दिया। लेकिन समुद्र में उसका जोर नहीं चला और वह बासफोरस को पार न कर सका इसलिए योरप उसकी ज्वालाओं से बच गया।

सन् १६२० में यूनानियों और टर्की का युद्ध बड़े पैमाने पर छिड़ गया और यूनानियों ने १६२१ की गर्मियों में अंगोरा पर कब्जा करने का भारी प्रयास किया। वे एक नगर से दूसरे नगर को जीतते हुए अंगोरा के पास आ पहुँचे पर अन्त में सकरिया नदी पर टर्की फौजों ने उन्हें रोक दिया। तीन हफ्ते तक इस नदी के पास दोनों फौजें भयंकर रूप से लड़ती रहीं। अन्त में यूनानियों के पैर उखड़ गये और वे वापस लौटते हुए रास्ते की सब चीजों को जलाते और नष्ट करते गये। दो सौ मील के उपजाऊ प्रदेश को उन्होंने वीरान बना दिया।

दोनों तरफ की सेनाएँ बुरी तरह से थक गई थीं। वे दुबारा संगठित होने का प्रयत्न कर रही थीं इतने ही में फ्रांस ने अंगोरा से संधि कर ली जिससे कमालपाशा की नैतिक स्थिति कुछ दृढ़ हो गई। इंगलैंड की सरकार अभी तक टर्की के कठपुतली सुलतान को तथा इस्तम्बूल की सरकार को सहारा दे रही थी उसे भी इस सन्धि से धक्का पहुँचा। अगस्त १६२२ में तुर्क सेना ने अपना पूरा संगठन कर यूनानियों पर हमला बोल दिया और उन्हें आसानी से समुद्र पार धकेल दिया। आठ दिनों में यूनानी लोग १६० मील पीछे खदेड़ दिये गये।

अंग्रेजी भाषा और साहित्य

यूरोप में बोली जानेवाली आधुनिक भाषाओं के मूल स्रोत की खोज करने पर हमें पता चलता है कि यूरोप में बोली जानेवाली समस्त भाषाएँ दो विभागों में विभाजित हैं। (१) जर्मनी वर्ग (जर्मनिक) और रोमन वर्ग (रोमन्स)।

आधुनिक जर्मन, अंग्रेजी, डच, स्वीडिश, नार्वेजियन, डेनिश तथा आइसलेंडड की भाषाओं की उत्पत्ति प्राचीन गाथ जाति में बोली जानेवाली जर्मन भाषाओं से हुई है तथा आधुनिक फ्रांस, इटली, स्पेन और पुर्तगाल की भाषाओं की उत्पत्ति रोमन वर्ग की लैटिन भाषा से हुई है। लैटिन भाषा उस समय की शास्त्रीय भाषा थी और इसका उपयोग उस समय के लेखक, धर्माचार्य्य, सैनिक, व्यापारी तथा साधारण जनता भी करती थी।

कहना न होगा कि गाथ जाति की प्राचीन जर्मन भाषाओं से ही अंग्रेजी भाषा के प्राचीन रूप "एंग्लो सैक्सन" भाषा की उत्पत्ति हुई। मगर इस एंग्लो सैक्सन भाषा और आधुनिक अंग्रेजी भाषा में इतना अधिक अन्तर है कि आज कल के अंग्रेजों को भी यह भाषा एक विदेशी भाषा की तरह जान पड़ती है और इस प्राचीन भाषा में लिखे हुए ग्रन्थों को समझने के लिए उनका उसी प्रकार अंग्रेजी में अनुवाद करना पड़ता है जिस प्रकार अन्य विदेशी भाषाओं का किया जाता है।

एंग्लो सैक्सन भाषा के उस समय के काव्यों में "बेवुल्फ" नामक काव्य पाया जाता है जिसकी रचना ई० सन् ७०० के आस-पास किसी समय हुई थी। इसी प्रकार

"सेण्ट जुलियाना" तथा "ड्रीम ऑफ दी रूड" भी इसी प्राचीन अंग्रेजी भाषा में लिखे हुए काव्य हैं।

एंग्लो सेक्सन राजा अल्फ्रेड का नाम अंग्रेजी भाषा के विकास में बड़े आदर के साथ लिया जाता है उसने लैटिन भाषा के तत्कालीन विद्वान बीड़के "एक्लेजियास्टिकल हिस्ट्री ऑफ दि एंग्ल्ज"का अँग्रेजी अनुवाद तैय्यार करवाया तथा उसी ने "दी क्रानिकल ऑफ विन्चेस्टर" नामक एक राष्ट्रीय इतिहास भी उस समय की एंग्लोसैक्सन भाषा मे तैयार करवाया। इसी प्रकार "इल्फिक" नामक एक ईसाई धर्म गुरु ने सबसे पहला "लैटिन इंग्लिश शब्द कोष" तैयार किया। इसी धर्मगुरु ने सुमधुर अंग्रेजी गद्य में अपने प्रवचन भी दिये और श्रोताओं को इसी भाषा में बाईबिल का सन्देश भी सुनाया। इस प्रकार धीरे-धीरे ८वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक अंग्रेजी भाषा का क्रम विकास होता रहा।

अंग्रेजी-साहित्य

वैसे अंग्रेजी भाषा के क्रम विकास के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य का भी क्रमागत निर्माण होता रहा किन्तु इस साहित्य की अविरल धारा का प्रवाह महाकवि, राजनीतिज्ञ और विद्वान जाफरे चासर से प्रारम्भ होता है जो १४ वीं शताब्दी के मध्य काल में हुआ। इस महान लेखक की विद्वत्ता और उसका ज्ञान साधारण जनता और राजदरबार दोनों के सम्बन्ध में असाधारण था। अंग्रेजी भाषा में उसकी अनेक रचनाएँ पाई जाती हैं पर उनमें "ट्रायल्स एण्ड क्रिसीडी" "दि लीजेण्ड ऑफ गुड वीमेन" और "केन्टरबरी टेस" बहुत प्रसिद्ध है। इसके पश्चात् सोलहवीं शताब्दी में एलिजाबेथ युग से अंग्रेजी साहित्य की उल्लेखनीय प्रगति हुई।

एलिजाबेथ युग—सोलहवीं शताब्दी

१६ वीं सदी का युग अंग्रेजी साहित्य में एलिजाबेथ युग कहलाता है। यह युग अंग्रेजी साहित्य में बड़े गौरव का युग है। विश्व का महाकवि और नाटककार शेक्सपियर इसी युग की उपज है।

इस युग में अंग्रेजी साहित्य के ऊपर इटालियन साहित्य का काफी प्रभाव पड़ा। वियाट और सरे नामक दो अंग्रेज कवियों ने इटालियन महाकवि पेट्रार्क के अनुकरण पर अपनी काव्य रचनाएँ कीं। जिस मुक्त छन्द का सबसे पहले सरे ने प्रयोग किया उसका आगे जाकर अंग्रेजी छन्द परम्परा में बड़ा महत्व सिद्ध हुआ। मुक्त छन्द की इस परम्परा का उपयोग जगत विख्यात कवि मार्लो और शेक्सपियर दोनों ने किया।

कविता-जगत का महान विद्वान एडमण्ड स्पेन्सर भी इंग्लैण्ड को इसी युग की देन है। स्पेन्सर अंग्रेजी भाषा का संस्कार करने वाला माना जाता है। अंग्रेजी में वह होमर और वर्जिल की ऐसी वीर काव्य-परम्परा स्थापित करना चाहता था जिसमें शब्द-गांभीर्य और काव्य शालीनता नये रूप में अभिव्यक्त हों। उसकी अनेक कृतियों में से "दि शेपर्ड्स केलेण्डर" "दि फेयरी क्वीन" बहुत मशहूर हैं जिनकी शब्द रचना का माधुर्य अमिट है।

जान डॉन नामक क्रान्तिकारी कवि भी अंग्रेजी साहित्य को एलिजाबेथ युग की ही देन है। जान डॉन कविता की पारम्परिक परम्परा को महत्व नहीं देता न पुरानी उपमाओं को ही स्वीकार करता है। पेट्रार्क के अनुयायी सॉनेट लिखने वालों की उपमाओं को वह ग्रहण नहीं करता। उसकी स्वयं की उपमाएँ एकदम नवीन और अनोखी होती थीं।

नाटक साहित्य

नाट्य-साहित्य के अन्तर्गत मार्लो और शेक्सपियर एलिजाबेथ युग में ही अंग्रेजी साहित्य को प्राप्त हुए थे। इन्हीं दिनों में टॉमस कीड ने पहली बार अंग्रेजी जनता के लिये उचित नाटक और रंग मंच की रचना की। उसकी "स्पेनिश ट्रेजेडी" में सेनेका की पृष्ठभूमि किसी न किसी रूप में विद्यमान थी परन्तु फिर भी उसने उसे ऐसी ट्रेजेडी का रूप दिया जो जनता की समझ से दूर न थी। इंग्लैण्ड की जनता का कीड के इस नाटक ने काफी मनोरंजन किया।

इस युग का दूसरा प्रसिद्ध नाटककार क्रिस्टोफर मार्लो केम्ब्रिज का रहने वाला एक तरुण नाटककार था। ३० वर्ष की अल्पायु में ही उसका देहान्त हो गया मगर इस

छोटी वय में ही उसकी कृतियों ने अंग्रेजी साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया। उसकी कृतियों के अन्तर्गत "टम्बर्लेन दि ग्रेट" "ट्रेजिकल हिस्ट्री ऑफ डाक्टर फास्टस" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

मगर अंग्रेजी नाट्य साहित्य का विजय डंका समग्र संसार के साहित्य में बजाने का श्रेय मानवीय प्रकृति के अनुपम स्रष्टा विलियम शेक्सपियर को है। शेक्सपियर स्ट्रेट फोर्ड ऑन एवॉन का रहने वाला था। १६ वीं शताब्दी के अन्त में इसका आविर्भाव हुआ। यह अभिनेता और नाटककार दोनों था। उसके पहले और पीछे भी इंग्लैण्ड में बहुत से नाटककार हुए मगर जो कीर्ति और यश न केवल इंग्लैण्ड की जनता ने बल्कि सारे संसार ने शेक्सपियर को दिया वह न उसके पूर्ववर्ती किसी लेखक को मिला न उसके पीछे के किसी लेखक को वह प्राप्त हुआ। संसार के नाट्य-साहित्य में उसकी कीर्ति और प्रभाव बे-जोड़ है।

शेक्सपियर ने अपनी कविताओं के अतिरिक्त करीब ३६ नाटकों की रचना की जिनमें कुछ ऐतिहासिक हैं और कुछ काल्पनिक, कुछ कॉमेडी (सुखान्त) हैं, कुछ ट्रेजेडी (दुखान्त), कुछ रोमान्टिक कॉमेडी हैं कुछ रोमान्टिक ट्रेजिडी।

शेक्सपियर की महान ट्रेजेडी रचनाओं में "हेमलेट" "मेकबेथ" "किंग लियर" "ओथेलो" इत्यादि अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इसकी रोमान्टिक ट्रेजेडियों में "रोमियो एण्ड जूलियट" तथा "जूलियस सीज़र" का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है।*

महाकवि शेक्सपियर नाटकीय संसार में अकेला है। क्या काव्य कुशलता में, क्या चरित्र-चित्रण में, क्या प्लॉट की रचना में, क्या कवित्व में, क्या भाषा और भाव में वह अपनी जोड़ नहीं रखता!

उपन्यास साहित्य

एलिजाबेथ युग में उपन्यास परम्परा के अन्दर अंग्रेजी साहित्य में कोई विशेष चमत्कार नहीं हुआ। इस युग में राबर्ट ग्रीन, टॉमस लॉच, टॉमस डिलोने इत्यादि उपन्यासकारों का नाम लिया जा सकता है। राबर्ट ग्रीन ने इसी युग में अपना "पेण्डोस्टो" लिखा जिसमें लन्दन के उपेक्षित संसार का चित्र अंकित हुआ। टामस लाच की कृति "रोजालाइण्ड" और टॉमस डिलोने की कृति "जेक ऑफ न्यू बरी" का नाम भी इसी युग में उपन्यासों के अन्दर लिया जा सकता है। मगर सही माने में इनको उपन्यास कहना शायद गलत होगा। अंग्रेजी साहित्य में उपन्यास युग का आरम्भ वास्तव में १८ वीं सदी से प्रारम्भ होता है।

गद्य-साहित्य

एलिजाबेथ युग में गद्य साहित्य का भी काफी विकास हुआ। इस युग का पहला महान गद्य लेखक फ्रॉंसिस बेकन था। बेकन की विचार धारा ने उस समय प्रचलित जनता की धार्मिक भावनाओं को अपनी वैज्ञानिक भावनाओं से चुनौती दी। बेकन की अधिकतर कृतियाँ लेटिन में हैं और यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं कि इंग्लैण्ड का यह महान गद्यकार अंग्रेजी से उदासीन रहा। सन् १५६७ में उसके निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हुआ। इन निबन्धों की शैली अत्यन्त कसी हुई सूत्रों की तरह है। थोड़े शब्दों में अधिक भाव प्रकट करना बेकन का विशेष गुण था। बेकन का समय सन् १५६१ से १६२६ तक है।

पुनर्जागरण युग और उसके पश्चात् सत्रहवीं सदी

इंग्लैण्ड के इतिहास में राजनैतिक और साहित्यिक दोनों ही दृष्टियों से १७ वीं शताब्दी का बहुत महत्व है। इसी सदी में इंग्लैण्ड के बादशाह चार्ल्स प्रथम का सिर पार्लियामेण्ट के आदेश से व्हाइट हाल में उड़ा दिया गया। इसी सदी में इंग्लैण्ड के उद्धारकर्त्ता क्रामवेल का आविर्भाव हुआ जिसने इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट की शक्ति को बहुत बढ़ावा दिया। इसी सदी में इंग्लैण्ड में इतिहास प्रसिद्ध गृह-युद्ध हुआ जिसने इस देश के इतिहास में एक नवीन परम्परा की स्थापना कर जनतन्त्रवाद का विकास किया। इसी सदी में विज्ञान और तर्कवाद नवीन शक्ति को प्राप्त कर रहे थे।

---

* शेक्सपियर का विशेष वर्णन इसी कोष के अगले भागों में 'शेक्सपियर' नाम के अन्तर्गत देखिये।

इसी सदी ने इंग्लैण्ड में जान मिल्टन के समान महा कवि को पैदा किया जिसकी शालीनता और कवित्व का प्रभाव इंग्लैण्ड के काव्य-जगत में अपनी सानी नहीं रखते। कहा जाता है कि महाकवि मिल्टन अन्धा था मगर फिर भी सूरदास की तरह उसकी लेखनी ने भी यूरोपीय साहित्य के इतिहास में अमर जीवन पाया है। उसके "पेरेडाइज लास्ट" और "पेरेडाइज रिगेण्ड" नामक महाकाव्य अंग्रेजी साहित्य में एक विभूतिमान नक्षत्र की तरह चमक रहे हैं। "पेरेडाइज लास्ट" में ईव और एडम का संघर्ष सब युगों के लिये एक महान कृति है। एडम और ईव संभव है हमारे आज के युग में महत्व न रखते हों मगर मिल्टन के शैतान का विद्रोह निश्चय ही एक जीवित परम्परा है जिसमें हम सदा साँस ले सकते हैं। मिल्टन न केवल प्यूरिटन सम्प्रदाय का वरन् समस्त विश्व का एक महान कलाकार था।

१७ वीं सदी में मिल्टन के अतिरिक्त सेमुअल बटलर, एडमण्ड वॉलेर, जॉन ड्राइडिल, इत्यादि कवि हुए। १७ वीं सदी के यथार्थवादी नाटककारों में जार्ज चेपमेन, बेकर, फ्लेचर इत्यादि नाटककार हुए जिन्होंने अंग्रेजी भाषा के नाट्य साहित्य को समृद्ध बनाया! इस सदी की नाटक परम्परा में कॉमेडी नाटकों का विशेष प्रभाव पड़ा! इथरेज, वाइकर्ले और कॉंग्रीन ने कॉमेडी नाटकों का अंग्रेजी में नए रूप से निर्माण किया। अंग्रेजी के गद्य साहित्य में १७ वीं सदी का पूर्वार्द्ध गंभीर गद्य के निर्माण का है जिसका प्रभाव आज के पाठकों पर भी गहरा पड़ता है। सर टॉमस ब्राउन, जेरमी टेलर और जान मिल्टन १७ वीं सदी में अंग्रेजी गद्य के शक्तिशाली लेखक थे टॉमस ब्राउन ने अपने "अर्न बरियल" और "रेलिजियो मेडीसी" में जिस गद्य शैली का प्रयोग किया वह आश्चर्यजनक है। इसी सदी में रचित आइजक वाल्टन का "कम्पलीट एन्गालर" आज भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता है!

इसी सदी का सबसे विख्यात गद्यकार सेम्युअल पेपिस था। यह लन्दन सोसाइटी का अध्यक्ष था। उसकी डायरी सादी और अद्भुत है जिसका जोड़ अंग्रेजी साहित्य में मुश्किल से मिलता है।

अठारहवीं सदी

अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में अठारहवीं सदी "क्लासिकल काव्यों" और विषादपूर्ण काव्यों की रचना शताब्दी है। इस शताब्दी में इंगलैण्ड में औद्योगिक युग का तेजी से विकास हो रहा था और वहाँ का समाज धीरे-धीरे धनी और गरीब के दो भागों में विभक्त होता जा रहा था। जिसका प्रभाव इस सदी की रचना पर पड़ना अवश्यम्भावी था।

इस युग के कवियों में "अलेक्ज़ेंडर पोप" का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है जिसकी प्रतिभा व्यंगात्मक काव्यों के लिखने में बेजोड़ थी। इसकी रचनाओं में "दी रेप ऑफ दी लॉक" "डान्सियाड" "दी एपीसटल टू डॉक्टर अर्बुथनाट" विशेष प्रसिद्ध हैं जिसमें मनुष्य की व्यंगमूलक प्रवृत्तियों का बड़े सुन्दर ढंग से विकास हुआ है। इस महाकवि ने अपनी रचनाओं से आगे होने वाले काव्य-जगत् पर भी काफी प्रभाव डाला।

इसी युग में प्राकृतिक सौन्दर्य्य का सजीव वर्णन करने वाले कवियों में "जेम्स टॉमसन" बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसकी "सिक्स सीजन्स" नामक कविताएँ अंग्रेजी साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुईं।

मशीन युग के कारण समाज में अमीरी और गरीबी की जो विषमता साकार होती जा रही थी उसके प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त करनेवाले कवियों में "विलियम काउपर" का नाम और विषाद तथा निराशापूर्ण काव्य रचना में "टॉमसग्रे" "विलियम कॉलिन्स" इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

अठारहवीं सदी के अन्त में अंग्रेजी साहित्य में "रोमाण्टिक काव्यों" का काफी प्रचार हुआ। इस क्षेत्र में "विलियम वर्ड्सवर्थ" का नाम अंग्रेजी साहित्य में अमर है। इस महान् कवि के ऊपर प्रसिद्ध दार्शनिक और राजनीतिज्ञ "रूसो" की विचारधारा का काफी प्रभाव पड़ा। वर्ड्सवर्थ की कृतियों में "लिरिकल बैलेड्स" "प्रिल्यूड" "कैरेक्टर ऑफ दी हैपीवारियर" "ओड टू ड्यूटी" इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य को समृद्ध बनाने में बहुत योग दिया।

इसी युग ने "सेम्यूएल टेलर कोलरिज" "सर वाल्टर स्कॉट" "लार्ड बायरन" इत्यादि महाकवि अंग्रेजी साहित्य में प्रसूत किये।

जॉन कीट और शैली भी अंग्रेजी साहित्य में इस शताब्दी के रोमाण्टिक काव्य परम्परा के महान् कवि हैं। शैली की रचनाओं में "क्वीनमेब" "रिवोल्ट ऑफ इस्लाम" "प्रोमेथियूस अनबाउण्ड" महान् रचनाएँ हैं और जॉन कीट्स की रचनाओं में "एण्डीमियन" "इजाबेल" और "ईव ऑफ सेण्ट अग्नीज" विशेष उल्लेखनीय हैं।

अठारहवीं सदी का नाटक साहित्य

अठारहवीं सदी के अंग्रेजी नाटक साहित्य में सबसे प्रसिद्ध नाम ऑलीवर गोल्डस्मिथ का आता है। गोल्डस्मिथ की कृतियों में पात्रों का चरित्र-चित्रण अद्भुत शक्ति के साथ चित्रित हुआ है। इन रचनाओं में अकृत्रिम मानवता की साकार झाँकी देखने को मिलती है। गोल्डस्मिथ अंग्रेजी साहित्य की सजीव प्रतिमा है। इसकी कृतियों में "दि गुड नेचर्ड मेन" और 'शी स्टूप्स टु कान्कर' विशेष प्रसिद्ध हैं।

गोल्डस्मिथ के अतिरिक्त इस सदी के नाटक साहित्य में रिचार्ड शेरिडन, सर जान वैन ब्रूम, रिचर्ड स्टील, जार्ज लिल्लो इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास साहित्य

अठारहवीं सदी अंग्रेजी उपन्यास का प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है। इस सदी में डेनियल डॉफो के लिखे हुए "राबिन्सन क्रूसो" नामक उपन्यास ने काफी ख्याति प्राप्त की और संसार की अनेक भाषाओं में इस उपन्यास के अनुवाद हुए। इसके बाद सेम्युअल रिचर्डसन, हेनरी फिल्डिङ, लारेन्स स्टर्न, विलियम बेकफोर्ड इत्यादि अनेक उपन्यासकार हुए। इस सदी के उपन्यासों में अधिकतर उपन्यास अपराध, पाप, भय, हत्या, प्रतिहिंसा, क्रूरता और कामुकता के चित्रणों से भरे हुए हैं।

कुछ उपन्यासकारों ने यथार्थवाद, हास्य, करुणा इत्यादि मनुष्य की उच्च भावनाओं का चित्रण भी अपने उपन्यासों में किया है जिनमें ऑलीवर गोल्डस्मिथ और फेनीबर्नी नामक महिला उपन्यासकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फेनीबर्नी के "इवेलिना" नामक उपन्यास ने लन्दन के पठित क्षेत्र में अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।

गद्य-साहित्य

इसी अठारहवीं सदी के अन्तर्गत अंग्रेजी के गद्य साहित्य ने भी अपना नामांकित और ऐतिहासिक विकास किया। राजनीति, धर्म, विज्ञान-सभी क्षेत्रों में ऊँचे स्तर के लोगों की कलम ने इस साहित्य को समृद्ध बनाया। इस क्षेत्र में जार्ज बर्कले का नाम अंग्रेजी साहित्य में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। जीवन के एक क्षेत्र में उसने दार्शनिक समस्याओं का प्रवेश किया।

डेविड ह्यूम का नाम भी अठारहवीं सदी के गद्य साहित्य में बहुत प्रभावशाली है। उसने इतिहास के चिन्तन पर अपनी समर्थ लेखनी का प्रयोग किया। मगर सबसे अधिक चमकता हुआ नाम इस सदी के गद्य लेखकों में "एडमण्ड बर्क" का आता है। बर्क एक धुरन्धर राजनीतिज्ञ और धारा प्रवाही भाषण कर्त्ता था! अपने समय का वह धुरन्धर वक्ता था! "इम्पीचमेण्ट ऑफ हेस्टिंग्ज" में उसने वारेन हेस्टिंग्ज के भारत में किये हुए अत्याचारों के खिलाफ जो जोशीले और हृदयग्राही भाषण दिये उनका संग्रह आज के युग में भी पाठक के हृदय में एक उथल-पुथल मचा देता है। बर्क की अधिकतर रचनायें व्याख्यानों के रूप में ही संग्रहीत हुई हैं पर भावों की उदारता और भाषा के प्रवाह में वे अद्वितीय हैं।

उन्नीसवीं सदी
(विक्टोरिया युग)

अंग्रेजी साहित्य में उन्नीसवीं सदी का काव्य साहित्य जिसका आरम्भ शैली, और कीट्स तथा अन्य रोमाण्टिक कवियों से हुआ, महान साम्राज्ञी विक्टोरिया की सदी थी।

विक्टोरिया युग का सबसे महान कवि टेनीसन माना जाता है। शब्दों की शालीनता और ध्वनि के उपयोग में तो वह अंग्रेजी साहित्य में बेजोड़ है। उसकी कृतियों में "दि पेलेस ऑफ आर्ट" "ईडिल्स ऑफ दि किंग" "ड्रीम ऑफ फेयर वुमन" और "इन मेमोरियम" विशेष प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी साहित्य में टेनीसन को लोगों ने काफी पढ़ा है, उसका अनुकरण भी काफी हुआ है।

इस सदी का दार्शनिक कवि राबर्ट ब्राउनिंग भी अंग्रेजी साहित्य में अपना विशेष स्थान सुरक्षित रखे हुए है ! साहस और शक्ति उसके शब्द-शब्द से टपकती है । उसकी निर्भीकता मृत्यु के भय को चुनौती देती है । उसकी काव्य-लहरी जीवन के प्रति अगाध विश्वास प्रकट करती है । ब्राउनिंग की रचनाओं में काव्य और नाटक दोनों सम्मिलित हैं । उसकी रचनाओं के संग्रह में "ड्रामेटिक लीरिक्स" "मेन एण्ड वीमेन" और "ड्रामेटिक परसोनी" विशेष उल्लेखनीय हैं ।

इसी सदी के उत्तरार्द्ध में एडवर्ड फिट्स जेरॉल्ड ने उमर खैय्याम की रुबाइयों का अंग्रेजी में प्रसिद्ध अनुवाद किया । कहा जाता है कि यह अनुवाद उमर खैय्याम की मूल कृति से भी अधिक सुन्दर बन गया था और इसी अनुवाद ने इस कवि को अंग्रेजी साहित्य में उसकी मूल कृतियों से भी अधिक प्रसिद्ध कर दिया है ।

इनके अतिरिक्त डी० जी० रोसेट्टी का नाम भी विक्टोरिया काल के साहित्यकारों में अग्रगण्य रूप से लिया जाता है । उसकी कृतियों में "दि हाउस ऑफ लाइफ" "पोयम्स" "बेलेड्स" इत्यादि उल्लेखनीय हैं ।

इस सदी के इतिहास में चार्ल्स स्विनबर्न के नाम का यदि उल्लेख नहीं किया जायगा तो सम्भव है वह अधूरा रह जाय । स्विन बर्न ने अपने कामुकता प्रधान प्रणय-बहुल नग्न चित्रणों से सारे अंग्रेजी काव्य क्षेत्र में वासना की एक उद्दाम लहर पैदा कर दी ! इसकी कृतियों में "इर्टोनल" "इरेक्थियस" "एटलाण्टाइन केरिडन" विशेष प्रसिद्ध हैं ।

नाटक साहित्य

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी नाटक साहित्य का विशेष विकास नहीं हुआ फिर भी उसके अन्तिम चरण में जार्ज बर्नार्ड शा ने अपनी अलौकिक नाट्य-कृतियों से अंग्रेजी साहित्य को आलोकित कर दिया । जार्ज बर्नार्ड शा का जन्म सन् १८५६ में हुआ था और देहान्त सन् १६५० में हुआ । अंग्रेजी नाटकों के इतिहास में बर्नार्ड शा का सृजन काल काफी लम्बा था । उनकी प्रतिभा अत्यन्त प्रखर और असामान्य थी । अंग्रेजी साहित्य के कुछ समालोचकों का विश्वास है कि बर्नार्ड शा अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपियर के बाद नाटक साहित्य के सबसे बड़े प्रतिनिधि हैं । इस महान् लेखक ने मानव जीवन से सम्बन्धित यौन, धर्म, आचार, राजनीति, समाज-व्यवस्था सभी विषयों पर लिखा है । राजनीति, समाज, अर्थ, दर्शन-सभी विषयों पर वह अपने तीखे व्यंगों से चुटीला प्रहार करता है। समस्या प्रधान होने पर भी उसके नाटक अभिनय के क्षेत्र में आज बेजोड़ हैं । उसके नाटकों की रंगमंचीय सफलता के कारण अपने जीवन काल में किसी भी दूसरे कलाकार ने इतना धन नहीं कमाया जितना बर्नार्ड शा ने कमाया ।

उपन्यास साहित्य

अंग्रेजी साहित्य में विक्टोरिया काल के अन्तर्गत उपन्यासों के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व उन्नति हुई । इस युग में कला के रूप में उपन्यासों का सृजन सर्वप्रथम आरम्भ हुआ । इस परम्परा का प्रारम्भ जेन आस्टिन नामक एक अंग्रेज महिला ने किया । उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में उसकी कल्पना एकदम मौलिक थी । उसकी कृतियों में "प्राइड एण्ड प्रेजुडीज" "सेन्स एण्ड सेन्सेबिलिटी" इत्यादि उपन्यास उल्लेखनीय हैं । इसी युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का आरम्भ सर वाल्टर स्कॉट ने किया । इसके उपन्यासों में "ओल्ड मॉर्टेलिटी" "गाइनेनरिंग" "दि एन्टीक्वेरी" "दि टेलिस्मान" इत्यादि उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए ।

चार्ल्स डीकेन्ज अंग्रेजी साहित्य में उन्नीसवीं सदी का सबसे चोटी का उपन्यासकार है । विनोदात्मक उपन्यास शैली में तो वह अंग्रेजी साहित्य में बेजोड़ है । इंग्लैण्ड के तत्कालीन वातावरण से वह बहुत क्षुब्ध है । उसके उपन्यासों में उसकी समाज विद्रोह की भावनाएँ ज्वलन्त रूप से प्रकाशमान हैं । उसके उपन्यासों में "ऑलीवर ट्विस्ट" 'निकोलस निकलबी" "ब्लीक हाउस" "हार्ड टाइम्ज" इत्यादि विशेष प्रसिद्ध हैं ।

इस युग के अन्य उपन्यासकारों में विलियम मेकपीस थेकरे, एडवर्ड लिटन, चार्ल्स किंसले, चार्ल्स रीड, एमिली ब्रोन्टे, एनिथोर्नी ट्रोलोप, टॉमस हार्डी, राबर्ट लुई स्टीवेन्सन इत्यादि उपन्यासकारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इस शताब्दी के अन्तर्गत अंग्रेजी के उपन्यास साहित्य में

मानों एक प्रकार की बाढ़-सी आ गई। सैकड़ों उपन्यासकारों ने हजारों उपन्यास लिख डाले।

मगर इस काल के अंग्रेजी उपन्यास साहित्य में एच-जी० वेल्स ने एक नये युग का प्रादुर्भाव किया। वैज्ञानिक आधार पर निर्मित उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उत्कृष्ट श्रेणी का वैज्ञानिक होने के साथ ही साथ वह चिन्तनशील इतिहासकार, विचारक और उपन्यासकार भी था। उसने अपने युग को अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से सर्वांगीण रूप में प्रभावित किया। उपन्यास, इतिहास और विचारो के क्षेत्र में उसकी पचीसों कृतियाँ आज भी अंग्रेजी साहित्य को प्रकाशमान कर रही हैं। वैज्ञानिक होने के कारण वह सारी मानव जाति को एक इकाई के रूप में देखता था उसके इन्हीं विचारों की झलक "दि वर्ल्ड ऑफ विलियम क्लीसोल्ड" "दि आउट लाइन ऑफ हिस्ट्री" और "जॉन एण्ड पोटर" नामक पुस्तकों में मिलती है।

गद्य-साहित्य

विक्टोरिया काल के गद्य साहित्य को कोलरिज नामक लेखक ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण से बड़ा प्रभावित किया। इसके "बायोग्रेफिया लिट्रेरिया" नामक ग्रन्थ ने अंग्रेजी गद्य-साहित्य में अच्छी कीर्ति प्राप्त की। इसी क्षेत्र में चार्ल्स लेम्ब और विलियम हेजिल्ट, टॉमस डी क्विन्सी, विलियम कॉबेट इत्यादि निबन्धकारो का नाम बहुत उल्लेखनीय है।

टॉमस बेबिंग्टन मैकाले भी इस युग में एक अत्यन्त प्रतिभाशाली गद्यकार हुआ। उसकी भाषा में गजब का प्रभाव था। संस्कृत साहित्य का उसका ज्ञान अत्यन्त उच्च-कोटि का था। भारत के वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में उसके अनुसन्धान बहुत महत्वपूर्ण थे। टामस कारलाइल भी अंग्रेजी गद्य साहित्य के इतिहास में अपना बहुत ऊँचा स्थान रखता है। उसकी रचनाओं में "सार्टर रिसार्ट्स" "आन हीरोज एण्ड हीरो वर्शिप" तथा "पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट" बहुत उल्लेखनीय है। उसकी भाषा का प्रवाह और शब्दों की परम्परा अटूट और अविच्छिन्न है।

जॉन रस्किन भी उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध गद्यकारों में से एक है। अपने "माडर्न पेन्टर्स" नामक ग्रन्थ में उसने सौन्दर्य के दर्शन को धर्म का स्थान दिया है। मगर उसकी सबसे अधिक ख्याति अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में किये हुए मौलिक अनुसन्धानों के कारण है। "अन्टू धिस लास्ट" नामक एक छोटी पुस्तक में उसने अपने अर्थशास्त्र सम्बन्धी विचारों को प्रकट किया। उसके ये निबन्ध कार्न हिल मेगजीन नामक एक सामयिक पत्र में प्रकाशित हुए। इस निबन्ध के दो अध्यायों के प्रकाशित होने न होते पत्र के पाठकों ने इतना हल्ला मचाया कि रस्किन को अपने लेख बन्द कर देने पड़े। उसके सम्पत्ति शास्त्र विषयक विचार अत्यन्त मौलिक थे। उसने अपने पूर्ववर्ती अर्थशास्त्र के नियमों का जो समाज में विषमता और पूँजीवाद को जन्म देते हैं, डट कर विरोध किया। कहना न होगा कि रस्किन के इन विचारों का आगे जाकर सम्पत्ति शास्त्र की पुरानी विवेचनाओं पर काफी असर पड़ा।

इसी काल के साहित्यकारों में आलोचना के क्षेत्र में मेथ्यु आर्नल्ड का स्थान बहुत ऊँचा है। अंग्रेजी के आलोचना साहित्य में इस विद्वान ने क्रान्ति उपस्थित कर दी!

बीसवीं सदी

बीसवीं सदी के विशिष्ट अंग्रेजी कवियों में अर्नेस्ट डाउसन, हॉसमेन, वाल्टर डी लामेर, एलियट ईट्स इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने अपनी पुरानी निष्ठा को किसी न किसी रूप में जीवित रखा परन्तु ऐसा मालूम होता है कि अब उनका युग समाप्त हो चुका था। इस युग में काव्य का स्थान अब उपन्यासों ने ले लिया था।

इस सदी के नाटककारो में ग्रेनविल बार्कर, जान गाल्र्ज वर्दी, सेण्ट जार्ज इरविन इत्यादि नाटककारों के नाम उल्लेखनीय है, मगर इनमें जार्ज बर्नार्ड शा की तुलना में कोई भी अपना विशेष अस्तित्व नहीं रखते। बर्नार्ड शा का विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

उपन्यासकारों में डी० एच० लॉरेन्स, आल्डुस हक्सले, का नाम विशेष उल्लेखनीय है। लारेन्स के "वीमेन इन लव" "दि रेनबो" तथा "आरेन्ज रोट" इत्यादि उपन्यासों में उसने जीवन की खुली व्याख्या की है। उसके "लेडी चेटर्लीज लवर" नामक उपन्यास में यौन

सम्बन्धी नग्नता का पूर्ण प्रदर्शन हुआ है। जीवन के इस नग्न दर्शन के कारण उसकी कुछ प्रतियाँ जब्त भी कर ली गई।

अल्डुस हक्सले का बौद्धिक स्तर इंग्लैण्ड के पिछले उपन्यासकारों से सर्वथा भिन्न है। मनुष्य को वह यौनिक स्तर पर नहीं बौद्धिक स्तर पर खोज कर देखता है। उसकी रचनाओं में "पाइण्ट काउण्टर पाइण्ट" "आइलेस इन गाजा" "एण्डस एण्ड मीन्स" इत्यादि रचनायें बहुत उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार सोलहवीं सदी से बीसवीं सदी तक अंग्रेजी साहित्य ने कविता, नाटक, उपन्यास, गद्य साहित्य, इतिहास, विज्ञान इत्यादि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो अभूतपूर्व प्रगति की है वह संसार के साहित्य में बे-जोड़ है !

अगस्ट विलहेमश्लेगल

अठारहवीं सदी के जर्मन रोमाण्टिक साहित्य का उपन्यासकार।

श्लेगल ने शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद भी किया। उसका उपन्यास "लुकिन्दे" प्रणय, कला तथा बौद्धिक निष्क्रियता से पूर्णकृति है। लेकिन उसमें उच्छृंखलता, उन्मुक्त स्वतंत्र प्रेम इत्यादि के जो गुण गाये गये हैं उससे उसकी उस समय के जर्मन साहित्य में कीर्ति हो गई।

अगथोक्लिया

ग्रीक बाल्त्री के सम्राट् दिमित्रिकी पुत्री और महान् ग्रीक सेनापति और विजेता मिनाण्डर की पत्नी। (ई० पू० १६६ से १४५ तक)।

अजण्टा गुफाएँ

मध्य रेलवे के स्टेशन जलगाँव से अड़तीस मील की दूरी पर स्थित अजण्टा गुफाएँ। जहाँ पर मनुष्य की कला ने पत्थर को वाणी प्रदान की है।

अजण्टा गुफाओं की कलाकृतियाँ मानवीय कला का अनुपम उदाहरण हैं। अजण्टा की गुफाएँ चारों ओर पहाड़ से घिरी हुई हैं। ये गुफाएँ लगभग छः सौ गज की दूरी में फैली हुई हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि ये गुफाएँ वर्षा काल में बौद्ध भिक्षुओं को आश्रय देने के लिये बनाई गई थीं।

इन गुफाओं की कुल संख्या उन्तीस है और ऐसा दिखलाई पड़ता है कि इनका भिन्न-भिन्न कालों में निर्माण हुआ है।

अजण्टा की गुफाओं में उन्नीस नम्बर की गुफा बौद्धों का सबसे बड़ा चैत्य है इसका द्वार बहुत ही सुन्दर है। इस गुफा की दीवारों पर नागराज का पूरा परिवार खुदा हुआ है।

सोलह-सत्रह नम्बर की गुफाओं की चित्रकला में छठीं शताब्दी की बौद्धशैली का आभास मिलता है। इन गुफाओं की शैली को लोगों ने कथात्मक शैली का नाम दिया है। इन चित्रों में भगवान बुद्ध का जीवन-चरित्र विविध दृश्यों में अंकित किया गया है!

पहली गुफा की समूची दीवार के भित्ति चित्रों में भगवान बुद्ध की तपस्या और कामदेव के आक्रमण का चित्रण किया गया है। कामदेव अपनी पूरी शक्ति और साधनों के साथ बुद्ध की तपस्या को भंग करने की चेष्टा कर रहा है। एक ओर भयंकर मुखाकृतियाँ हैं, दूसरी ओर सुन्दर और नवयुवती अप्सराएँ अपनी कुटिल भ्रू-भंगियों के द्वारा बुद्ध को आकर्षित करने का प्रयत्न कर रही हैं। दोनों के बीच में भगवान बुद्ध शान्त और वीत-राग रूप में समाधिस्थ होकर बैठे हुए हैं।

मण्डप की दीवार पर राजकुमार सिद्धार्थ के गृह-त्याग के समय का चित्र अंकित है। इन चित्रों में राजकुमार के मुख पर करुणा और गम्भीरता के भावों का जो दिग्दर्शन कराया गया है उसमें बहुत कम रेखाओं का प्रयोग किया गया है फिर भी इनमें जो शक्ति और सजीवता आ गई है वह किसी कला पारंगत आचार्य के हाथों ही से सम्भव हो सकती है।

मगर कला की सबसे उत्कृष्ट अभिव्यंजना सत्रह नम्बर की गुफा में दिखलाई देती है! इस गुफा को देख कर ऐसा भान होता है मानों कलाकारों ने अपना पूरा जीवन ही इस गुफा को सँवारने में लगा दिया हो। इस

गुफा के एक चित्र में भगवान बुद्ध भिक्षा-पात्र लिये हुए यशोधरा के द्वार पर खड़े हुए हैं। यशोधरा भिक्षा के रूप में अपने सर्वप्रिय पुत्र राहुल का दान कर रही है। यशोधरा के नेत्रों में श्रद्धा और आत्मत्याग का भाव तथा बुद्ध के नेत्रों में विश्व कल्याण की सात्विक भावनाओं का चित्रण करने में कलाकारों ने अपनी कलम को तोड़ दिया है।

इसी गुफा में महाहन्स जातक की कथा भी चित्रित की गई है जिसे चित्रकला के प्रसिद्ध कलाकार अजण्टा का एक प्रतिनिधि भित्ति-चित्र मानते हैं।

अजण्टा के कलाकारों ने कमल और हाथी को अपनी चित्रकारी में प्रधान स्थान दिया है। नारी-सौन्दर्य का भी अजण्टा की चित्रकारी में बड़ा सूक्ष्म और मनोहर चित्रण किया गया है। उनके अंग-प्रत्यंग, उनके केश कलाप, उनकी हस्त मुद्राओं का इतना सूक्ष्म और वैचित्र्यपूर्ण चित्रण कहीं दूसरे स्थानों पर नहीं पाया जाता। इन चित्रों में कला और कलाकारों की भावनाएँ मानों मुँह से बोल रही हैं।

वास्तव में अजण्टा की कलाकृतियाँ भारतीय कला रुचि का ऐसा जीवित उदाहरण हैं जिस पर कोई भी देश गर्व कर सकता है।

अजटेक-साम्राज्य

मैक्सिको में रहनेवाली एक सैनिक जाति जिसने चौदहवीं सदी के शुरू में मध्य अमरीका के मध्य देश को जीत कर सन् १३२५ के लगभग "टनो चुहिलन" नाम का शहर बसाया। बहुत शीघ्र यह शहर सारे मैक्सिको की राजधानी और अजटेक राज्य का केन्द्र बन गया। इस शहर की आबादी काफी बड़ी थी।

अजटेक लोग एक सैनिक जाति के थे। इन लोगों ने सैनिक बस्तियां बसाईं, छावनियों का निर्माण किया और चारों तरफ सड़कों का जाल बिछा दिया। दूसरी बातों में चतुर और बहादुर होते हुए भी अजटेक लोग धार्मिक मामलों में पुरोहितों की कठपुतली थे। इनके धर्म में नर-बलि की प्रथा बहुत अधिक थी। हर साल हजारों मनुष्य बड़ी बेरहमी से देवताओं पर बलि चढ़ा दिये जाते थे।

लगभग दो सौ वर्षों तक अजटेक लोगों ने शासन किया। साम्राज्य में प्रकट रूप में सुरक्षा और शान्ति थी लेकिन जनता का शोषण बेरहमी से होता था। जिससे साम्राज्य की जड़ें भीतर ही भीतर पोली हो रही थीं। युद्ध कला में भी ये लोग यूरोप से पिछड़ गये थे। इसलिए सन् १५१६ में जब कि अजटेक साम्राज्य पूर्ण उरूज पर था स्पेन का निवासी हर्नेन कोर्ट वहाँ जा पहुँचा और उसने अपने थोड़े से सैनिकों के साथ इस बड़े और संगठित राज्य पर आक्रमण कर उसे मिट्टी में मिला दिया। उसके पास घोड़े और बन्दूकें थीं। अजटेक वालों के पास ये दो चीजें न होने से वे संख्या में अधिक होने पर भी सामना नहीं कर सके। एक दफा तो कोर्ट को उन्होंने जरूर खदेड़ दिया मगर दूसरी बार उसने उधर ही के कुछ लोगों की सहायता से आक्रमण कर अजटेक शासन का अन्त कर दिया। और शान के साथ बनाई हुई उनकी राजधानी "टेनो चुहिलन" का निशान भी बाकी नहीं रहा।

अजमेर

राजस्थान के मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित, देहली अहमदाबाद रेलवे लाइन पर बसा हुआ एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर।

अजमेर के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालते हुए "पृथ्वीराज विजय" महाकाव्य में लिखा है कि चौहान वंशीय प्रथम पृथ्वीराज के पुत्र अजय देव ने "अजय मेरू" नगर बसाया, इसी को वर्तमान में अजमेर कहते हैं।

कई इतिहासकार इस नगर को महाभारत के पहले का बसा हुआ मानते हैं मगर इस सम्बन्ध में कोई मजबूत आधार नहीं है।

अंग्रेज इतिहासकार कनिंगहम के अनुमान से यह नगर मानिक राय के पूर्वज अजय राज का बसाया हुआ है उसके मतानुसार मानिक राय का समय सन् ८१६ से ८२५ के बीच है।

प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टॉड के मत से अजमेर

नगर अजय पाल ने बसाया था यह अजय पाल चौहान राजा बीसल देव के लड़के पुष्कर की बकरियाँ चराया करता था। बीसल देव का समय सन् १०२१ से १०८५ तक माना जाता है।

राजपूताना गजेटियर के मतानुसार अजमेर नगर ईसवी सन् १४५ में सबसे पहले चौहान राजा अनहल के पुत्र "अज" ने बसाया था।

जर्मन इतिहासकार लासन के मतानुसार अजमेर का असली नाम अजामीढ़ होना चाहिए। ईस्वी सन् १५० के लगभग "टालोमी" नामक लेखक ने अपनी पुस्तक में "गगास्मिर" नाम लिखा है वह सम्भवतः अजमेर का ही बोधक होगा।

चौहान लोगों के कुछ भाटों के अनुसार अजमेर का किला और आना सागर तलाब दोनों ही बीसल देव के पुत्र आनाजी ने बनवाये थे।

प्रबन्ध कोष के अन्त की वंशावली में भी अजमेर नगर का निर्माता अजय पाल को बतलाया गया है।

उपरोक्त सारी दलीलों को देखने के बाद यही बात ज्यादा युक्तियुक्त मालूम होती है कि चौहान वंशीय बीसल देव के पुत्र अजय देव ने ही अजमेर नगर बसाया था। क्योंकि इसके पहले चौहानों की राजधानी सांभर में थी और अजमेर नगर के बस जाने पर वह वहां से उठकर अजमेर में आ गई।

चौहान वंश के प्रसिद्ध सम्राट् पृथ्वीराज तृतीय को जब शहाबुद्दीन गोरी ने हरा दिया तो उसके बाद उसने पृथ्वी राज की मुख्य राजधानी अजमेर पर भी एकदम हमला कर दिया। यहाँ पर उसका जरा भी विरोध नहीं हुआ। उसने अजमेर पर तुरन्त अधिकार कर लिया और उसे खूब लूटा।

मुसलमान इतिहासकार "ताज" लिखता है कि— "अजमेर की लूट में इतनी सम्पत्ति मिली मानों समुद्र और पहाड़ों ने अपनी सारी सम्पत्ति यहाँ पर एकत्र कर दी हो जब तक सुलतान अजमेर में रहा उसने तमाम मूर्तियों और मन्दिरों को तुड़वा डाला और उनके स्थान पर मसजिदें बनवा दी।" तीसरे विग्रह राज की बनाई हुई संस्कृत पाठशाला को तोड़कर उसके स्थान पर "अढ़ाई दिन का झोंपड़ा" नामक मसजिद बनवा दी।

इसके बाद पृथ्वीराज तृतीय के पुत्र रेनसी को अजमेर का राज्य देकर शाहबुद्दीन गोरी वहाँ से वापस लौट गया।

इसके बाद अजमेर पठान साम्राज्य का तथा उसके बाद मुगल साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग रहा। मुसलमानों के आकर्षण का केन्द्र बनने का एक मुख्य कारण यह भी था कि यहाँ पर ख्वाजा मुहीउद्दीन चिश्ती की मशहूर दरगाह होने से यह मुसलमानों का एक बड़ा तीर्थ बन गया था और यहां प्रतिवर्ष एक विशाल मेला लगने लगा और देश तथा विदेश से लाखों मुसलमान जियारत के लिए प्रतिवर्ष यहाँ आने लगे।

ख्वाजा मुहीउद्दीन चिश्ती एक अत्यन्त पहुंचे हुए मुसलमान फकीर थे। कहा जाता है कि उन्हें कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं और बहुत से मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि भारत वर्ष में इस्लाम की इतनी बड़ी सफलता का श्रेय इसी महान् फकीर तपस्या और उसकी दी हुई दुआ को है। इस महान् फकीर की यादगार में अजमेर में एक विशाल दरगाह बनी हुई है जो सारे संसार के मुसलमानों का एक महान् आकर्षण केन्द्र है।

अंग्रेजी सल्तनत का आरम्भ होने पर अंग्रेजी राज्य ने सारे राजपूताने की रियासतों पर दृष्टि रखने के लिए अजमेर को अपना केन्द्र स्थान बना रक्खा था। स्वाधीनता के पश्चात् अब यह नगर राजस्थान में मिला लिया गया है।

अजय वर्मा

धार के परमार राजा यशोवर्मा का पुत्र समय सन् ११४४ से ११६० तक।

धार के परमार राजा यशोवर्मा की मृत्यु के पश्चात् अजय वर्मा मालवा के सिंहासन पर बैठा।

अजय देव

साम्भर के चौहान राजा पृथ्वीराज प्रथम के पुत्र विग्रह राज (बीसलदेव तृतीय) का पुत्र, सन् १०९३।

अजयदेव साम्भर के प्रसिद्ध चौहान वंश का राजा था। इसकी पत्नी का नाम सोमला देवी था। उसके तथा सोमला देवी के नाम की ढली हुई मुद्राएं उपलब्ध हैं।

अजयदेव के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काम अजमेर नगर को बसाना है। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इसने अपने ही नाम से इस अजय मेरु नगर की स्थापना की जो बाद में अजमेर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अजमेर के पहले चौहानों की राजधानी साम्भर में थी।

अजयपाल

सोलंकी वंश का गुजरात का राजा जो सन् ११७० के आसपास गुजरात के सिंहासन पर था।

गुजरात के सुप्रसिद्ध जैन राजा कुमारपाल के पश्चात् उसका भतीजा अजयपाल सोलंकी गुजरात की गद्दी पर बैठा। राजा कुमारपाल जैन मतावलम्बी थे और उनके शासन काल में जैन साहित्य और जैन धर्म का बहुत विकास हुआ। मगर अजयपाल जैन धर्म का कट्टर विरोधी था। राजा कुमारपाल ने जिन जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया था अजयपाल ने उन्हें नष्ट करने का क्रम जारी रक्खा। ऐसा भी कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध जैनाचार्य्य हेमचन्द्र सूरि के शिष्य महाकवि रामचन्द्र सूरि को गर्म किये हुए ताम्बे के पाट पर बिठा कर उसने मरवा डाला।

अजयपाल के समय में सोलंकी राज्य की अवनति का प्रारम्भ हुआ। सिद्धराज जयसिंह द्वारा जीता हुआ मालवे का राज्य इसी के जमाने में सोलंकी राज्य के अधिकार से निकाल कर स्वतंत्र हो गया। सन् ११७६ में अजयपाल की हत्या उसी के एक द्वारपाल ने कर दी।

अजब सिंह

राजस्थान के बाँसवाड़ा राज्य का महारावल अजब सिंह। जिसका समय सन् १६८७ से प्रारम्भ होता है महारावल अजब सिंह की बादशाह औरङ्गजेब की सेना से सन् १६६४ में लड़ाई हुई। जिसमें शाही सेना की हार हुई और नवाब करणबाज खाँ मारा गया।

अजमल खाँ

देहली का यूनानी चिकित्सा का मशहूर हकीम सुप्रसिद्ध दवाखाना हिन्दुस्तानी का संस्थापक।

हकीम अजमल खाँ अपने समय का सुप्रसिद्ध चिकित्सक होने के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं से भी सम्पन्न था। महात्मा गान्धी के द्वारा सञ्चालित आन्दोलन में इसने बड़ी दिलचस्पी से भाग लिया था।

सन् १६२१ में अहमदाबाद कांग्रेस के मनोनीत सभापति सी० आर० दास जब गिरफ्तार कर लिये गये तब अध्यक्ष के आसन पर इसी हकीम अजमल खाँ को बिठाया गया।

अजात शत्रु

मगध के शिशुनाग वंशीय राजा बिम्बसार या श्रेणिक का पुत्र अजात शत्रु या कोणिक। समय ईस्वी सन् से पूर्व लगभग ४६१ वर्ष।

अजातशत्रु राजा बिम्बसार का पुत्र था। जैन ग्रन्थों में इसी बिम्बसार का नाम श्रेणिक लिखा गया है। अजातशत्रु को भी जैन ग्रन्थों में "कोणिक" के नाम से लिखा गया है। जैन ग्रन्थों के अनुसार कोणिक, राजा श्रेणिक की चेलना नामक पत्नी के गर्भ से पैदा हुआ था।

राजा बिम्बसार के शासन काल में इसको अङ्ग देश का शासक बनाकर भेजा गया था। मगर बिम्बसार के वृद्ध हो जाने पर अजातशत्रु ने उसको कारागार में डाल दिया और अनेक यंत्रणाएं देकर मार डाला और स्वयं मगध के सिंहासन पर बैठा।

सिंहासन पर बैठने के पश्चात् इसने अपने राज्य का विस्तार करना प्रारंभ किया। सबसे प्रथम उसने अपने मंत्री सुनीध और वससकार की मंत्रणा से अपनी सेना को अस्त्र-शस्त्र और सैनिक शक्ति से दृढ़ कर उस समय के सबसे बड़े गणतंत्र राज्य वैशाली पर आक्रमण कर, वहां के लिच्छवि राजवंश को पराजित किया और वैशाली राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसके पश्चात् उसने उत्तर की ओर हिमालय पर्वत तक अपने राज्य का विस्तार किया तथा अंग, काशी, वैशाली इत्यादि सभी राज्यों पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया।

ऐतिहासिक युग में इस प्रकार हम अजातशत्रु के द्वारा भारतवर्ष में सर्वप्रथम एक साम्राज्य की स्थापना होती हुई देखते हैं।

अजित सिंह

जोधपुर के राठौर वंशी राजा जसवन्त सिंह के उत्तराधिकारी।

जिस समय राजा अजित सिंह माता के गर्भ में थे उस समय राजा जसवन्त सिंह को औरंगजेब ने काबुल का शासक बनाकर काबुल भेज दिया था। औरंगजेब मन ही मन इनसे बहुत चौकन्ना रहा करता था। जब महाराजा जसवन्त सिंह का जमरूद थाने पर स्वर्गवास होने का समाचार औरंगजेब को पहुँचा तो औरंगजेब ने तुरन्त अपने अधिकारी को जोधपुर भेज कर मारवाड़ राज्य को साम्राज्य में मिला लेने का आदेश भेज दिया।

जब यह समाचार जमरूद में राठौर सरदारों को मिला तो वे बिना बादशाह की आज्ञा लिये जसवन्त सिंह की दोनों रानियों को लेकर चल पड़े।

लाहौर में जसवन्त सिंह की मृत्यु के तीन मास पश्चात् एक रानी से अजित सिंह पैदा हुआ। वहाँ से रानियों और अजित सिंह को लेकर ये राठौर सरदार देहली आये। जब औरंगजेब को यह बात मालूम पड़ी तो उसने तुरन्त रानियों और बच्चे को महल में लाने का आदेश दिया। मगर सुप्रसिद्ध वीर दुर्गादास राठोर ने सारी स्थिति को समझ कर एक दिन पहले ही मुकुन्ददास खीची को सँपेरे का भेष देकर बालक अजित सिंह को उसकी पिटारी में रख कर वहाँ से निकाल दिया। मुकुन्ददास मारवाड़ में कहीं पर भी नहीं ठहर सका क्योंकि सब दूर बादशाह के आदेश पहुँच चुके थे। तब वह सीधा सिरोही के कालिन्द्री गाँव में पहुँचा और वहाँ जग्गू नामक एक पुष्करणा ब्राह्मण के घर पर अजित सिंह को रख दिया।

बारह बरस तक अजित सिंह का लालन-पालन वहीं हुआ और उसके बाद वह अपने सरदारों के साथ इधर-उधर लूट मार करते रहे।

सन् १७०७ में जब औरंगजेब की मृत्यु हो गई तब अजित सिंह ने जोधपुर पर चढ़ाई करके शाही अधिकारियों को मार भगाया और फिर बीस बरस तक जोधपुर की राजगद्दी पर शासन करते रहे और देहली के तख्त पर भी अपना पूरा-पूरा प्रभाव कायम रखते रहे।

राजा अजित सिंह ने इतिहास प्रसिद्ध सैयद बन्धुओं के साथ मिलकर बादशाह फर्रुखसियर को दिल्ली के तख्त से हटा कर सन् १७१६ में फाँसी दे दी और उसके बाद एक के बाद दूसरा इस प्रकार तीन बादशाह दिल्ली के तख्त पर बिठा दिये।

अन्त में इनके पुत्र अभय सिंह ने अपने छोटे भाई बख्त सिंह के द्वारा ३ जुलाई १७२४ को उन्हें निद्रावस्थित हालत में मरवा डाला। इस हत्या के सदमे से दुःखी होकर एक चारण ने यह दोहा कहा है—

"बख्ता बखत बायरो क्यूँ मारियो अजमाल
हिन्दुआणीरो सेवरो तुरकाणीरो साल"

अर्थात् हे भले और बुरे का विचार न करने वाले बख्त सिंह! तूने अजितसिंह को क्यों मारा। वह तो हिन्दुओं का सिरमौर और मुसलमानों का कट्टर शत्रु था।

अजीतकेश कम्बली

भगवान बुद्ध के समय में संशयवाद और नास्तिक मत का प्रवर्त्तक। इसके भी उस समय बहुत से अनुयायी थे।

अजीतकेशकम्बली भगवान बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। इनके मत से के पाप, पुण्य, लोक, परलोक इत्यादि का कोई अस्तित्व नहीं है। न कोई मुक्त आत्मा है जिसने इह लोक और परलोक का साक्षात्कार किया है। मनुष्य शरीर चार महाभूतों का बना हुआ है। जब वह मरता है तब उसका पार्थिव तत्व पृथ्वी में मिल जाता है। जल तत्व जल में चला जाता है, अग्नि तत्व में मिल जाता है और शेष कुछ नहीं रहता। न उसके पूर्व जन्म का कोई इतिहास है और न आगे की कोई हस्ती है।

अजीमुल्ला खाँ

सन् १८५७ की भारत की महान सैनिक क्रान्ति का ओजपूर्ण मस्तिष्क अजीमुल्ला खाँ। जो क्रान्ति के महान नेता नाना साहब का दाहिना हाथ था।

सन् १८५७ के क्रान्ति युद्ध में प्रधान पार्ट अदा करने वाले महान व्यक्तियों में अजीमुल्ला खाँ का नाम बहुत ऊँचा है। स्वातन्त्र्य संग्राम की सूझ जिन असाधारण बुद्धिशाली व्यक्तियों के मन में सबसे पहले पैदा हुई उनमें अजीमुल्ला खाँ भी एक प्रधान व्यक्ति है।

अजीमुल्ला का जन्म एक गरीब मुसलमान परिवार में हुआ था। गरीबी के मारे उसने बचपन में एक अंग्रेज परिवार में नौकरी कर ली थी। इस परिवार में रह कर उसने कई विदेशी भाषाएँ सीख लीं और थोड़े ही समय में वह अंग्रेजी और फ्रेन्च भाषा धारा प्रवाही रूप से बोलने लगा। इन दो भाषाओं का अध्ययन पूरा कर लेने के बाद संयोग से उसकी विद्वत्ता की कीर्ति बिठूर के राजा नाना साहब तक पहुँच गई। अजीमुल्ला की बुद्धिमत्ता को देख कर नाना साहब बड़े प्रभावित हुए और सन् १८५४ में उन्होंने अपना दूत बना कर अजीमुल्ला को विलायत भेजा।

अजीमुल्ला एक खूबसूरत जवान था। अंग्रेजी रहन-सहन और एटीकेट का उसको पूरा ज्ञान था। इससे लन्दन के राजनैतिक क्षेत्र में वह बहुत जल्दी प्रिय हो गया। फिर भी बिठूर के राजघराने पर दत्तक पुत्र नाना साहब को वैध रूप से घोषित करवाने के जिस उद्देश्य को लेकर वह इंग्लैण्ड गया था वह पूरा न हो सका और वहाँ की सरकार ने गवर्नर जनरल के इस निर्णय को कि दत्तक पुत्र नाना साहब को पिता की पेन्शन पर किसी तरह का अधिकार नहीं है, बहाल रखा। इससे निराश होकर उसे वापस आना पड़ा मगर आने के पहले इसने लन्दन में भारतीय क्रांति के उत्थान की एक रूपरेखा बनाई थी। इसी उद्देश्य से उसने तुर्की और रूस की यात्रा भी की थी। जिस समय वह उधर पहुँचा था उस समय रूस और तुर्की का युद्ध चालू था। उसके बाद वह मिस्र गया और मिस्र के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की।

इसके बाद अजीमुल्ला यूरोप के दौरे से लौट कर वापस बिठूर आया। उस समय बिठूर के राजमहल में क्रांति दल के सारे प्रमुख नेताओं की सभा हो रही थी। इसी राजमहल में १८५७ की क्रान्ति का बीजारोपण हुआ था। १८५७ के अप्रैल मास के अन्त में नाना साहब तथा अजीमुल्ला ने क्रान्तिकारी गुप्त संस्थाओं के कार्य में एक-रूपता लाने के लिये उत्तर भारत के सारे प्रमुख नगरों की यात्रा की थी और क्रान्ति के लिये ३१ मई का दिन निश्चित किया था। मगर देवदुर्वियोग से और अनुशासन की कमी से सेना का यह विद्रोह निश्चित तिथि से पन्द्रह दिन पहले ही शुरू हो गया और जिस प्रकार अपरिपक्व गर्भ शिशु समय से पहले पैदा हो जाने पर जीवित नहीं रहता उसी प्रकार यह महान क्रान्ति भी अनुशासन की कमी से अत्यन्त करुणाजनक रूप में असफल हुई।

फिर भी इस क्रांति में जो महान मस्तिष्क, जो महान वीरत्व और जो महान बलिदान की भावनाएँ दृष्टिगोचर हुई वे इतिहास में अमर रहेंगी। क्रांति की महान् विभूतियों में महारानी लक्ष्मी बाई, नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ, तात्या टोपे, मौलवी अहमद शाह, सर्दार कुँवरसिंह इत्यादि के नाम किसी भी तरह से नहीं भुलाये जा सकते।

अंजो राजवंश

इंग्लैंड का एक प्रसिद्ध राजवंश जिसने सन् ११५४ से १३९९ तक इंग्लैण्ड पर शासन किया।

अंजो राजवंश के शासन के समय इंग्लैण्ड के आपसी झगड़े और विद्रोहों का अन्त होकर इंग्लैण्ड ने एक राष्ट्र का रूप धारण किया। इसी राजवंश के समय में वेल्स का प्रान्त भी इंग्लैण्ड के शासन के अन्तर्गत आ गया। आयरलैण्ड भी इसी राजवंश के समय में इंग्लैण्ड के अधिकार में आ गया और वहाँ पर इंग्लैण्ड के राजा का प्रतिनिधि लार्ड डिप्टी शासन करने लगा। स्कॉटलैण्ड के राजा भी समय पड़ने पर दबकर इंग्लैंड के अधीन हो जाते थे और उसके बाद फिर स्वतन्त्र हो जाते थे। इन्हीं दिनों इंग्लैण्ड के राजा के पास फ्रान्स की भी बहुत-सी जागीरें आ गई जिसकी वजह से फ्रान्स के राजा

को यह डर लगने लगा कि कहीं फ्रान्स के राज्य सिंहासन पर भी इंग्लैण्ड का राजा अपना हक न जमा ले। इस भय के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड और फ्रान्स के बीच एक लम्बी लड़ाई चली जो बीच-बीच में रुकती हुई करीब सौ वर्षों तक चलती रही। यह लड़ाई इतिहास में शतवर्षीय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस लड़ाई के परिणाम स्वरूप फ्रान्स के राजाओं ने केले प्रान्त को छोड़ कर बाकी का सारा अपना देश जीत लिया।

अंजो राजवंश के समय में राज्यकार्य में सलाह-मशविरा देने के लिये लार्ड सभा के साथ-साथ जनता के प्रतिनिधियों की भी एक सभा बुलाने का काम प्रारम्भ हुआ। आगे जाकर इसी सभा ने पार्लमेण्ट में हाऊस ऑफ कामन्स का रूप धारण कर लिया। रोमन चर्च का पोप इंग्लैण्ड की धर्म व्यवस्था अथवा धर्माधिकारियों में कोई हेर-फेर न कर सकें इस आशय का कानून भी पार्लमेण्ट ने इसी राज्यवंश के काल में बनाया। इस राजवंश के अन्तर्गत् जिन राजाओं ने इंग्लैण्ड पर शासन किया उनके नाम इस प्रकार हैं--

(१) हेनरी द्वितीय--स्टीफेन के बाद इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर हेनरी प्रथम का नाती हेनरी द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसने फ्रान्स के एक सरदार की लड़की एलिनॉर से विवाह किया। इसे अपने नाना के द्वारा इंग्लैण्ड का राज्य और फ्रान्स में नार्मण्डी की जागीर तथा पिता और ससुर के पास से फ्रान्स के अन्जो, मेन, टूरेन, आक्विटेन और पायटू नामक प्रदेश जागीरों के रूप में मिले। इसका समय सन् ११५४ से ११८६ तक था। इसी के शासन काल में सन् ११७२ में आयरलैण्ड इंग्लैण्ड के कब्जे में आ गया और उस समय कितने ही अंग्रेज जागीरदार आयरलैण्ड में जाकर बस गये।

(२) रिचर्ड प्रथम—हेनरी के बाद अंजोवंश का दूसरा राजा रिचर्ड प्रथम गद्दी पर बैठा। जिस समय यह गद्दी पर बैठा उस समय फिलिस्तीन में मुसलमानों और ईसाइयों के बीच में क्रूसेड (Crusade) की इतिहास प्रसिद्ध लड़ाइयाँ चल रही थीं। रिचर्ड प्रथम भी इन धर्म युद्धों में सम्मिलित हुआ था और कई वर्षों तक इंग्लैण्ड से बाहर फिलिस्तीन में रहा था। इस युद्ध के लिये उसने अपनी सारी निजी जमीन जायदाद बेच डाली थी और इंग्लैण्ड की जनता पर एक भारी टैक्स भी लगाया था।

यूनियन जेक

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध राष्ट्रध्वज यूनियन जेक का निर्माण भी रिचर्ड ने ही करवाया था। क्रूसेड के धर्म युद्ध में उसने चौथी शताब्दी के एक साधू सेण्ट जार्ज की कीर्ति सुनी थी। इस सेण्ट जार्ज की कीर्ति को अमर बनाने के लिये रिचर्ड प्रथम ने एक सफेद झण्डे पर लाल रंग का क्रॉस बना कर अपना झण्डा बनाया था। इसी झण्डे में आगे चलकर स्कॉटलैण्ड और आयरलैण्ड के राष्ट्रीय चिन्ह भी मिला दिये गये और उसके बाद यही झण्डा ब्रिटिश साम्राज्य के यूनियन जेक के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

(३) जॉन प्रथम—रिचर्ड प्रथम के बाद उसके छोटे भाई जॉन ने कुछ जागीरदारों की सहायता से अपने भतीजे आर्थर को मार कर इंग्लैण्ड का राज्य प्राप्त कर लिया। इसका शासन सन् ११६६ से १२१५ तक चला। इंग्लैण्ड के इतिहास में जॉन का नाम एक अत्याचारी शासक के रूप में लिया जाता है। थोड़ा सा सन्देह होने पर ही यह लोगों को जेल में भेज दिया करता था। रोमन चर्च के तत्कालीन पोप इन्नोसेण्ट तृतीय के साथ इसका बड़ा झगड़ा हो गया था। पोप इन्नोसेण्ट ने इस राजा को धर्मच्युत् और राजच्युत् कर दिया। तब इस राजा ने सन् १२०६ में पोप से सार्वजनिक रूप से क्षमा याचना की।

जॉन के अत्याचारों से तंग आकर इंग्लैण्ड के जागीरदार, धर्माधिकारी और साधारण जनता सब संगठित हो गये और उन्होंने सन् १२१५ में मेग्नाकार्टा (Magna-Carta) नामक अधिकारपत्र तैय्यार करके उस पर जॉन को हस्ताक्षर करने के लिये मजबूर किया। इस अधिकार पत्र में इंग्लैण्ड के इतिहास में पहली बार जनता के हक सार्वजनिक रूप से स्वीकार किये गये और राजा को कई प्रकार के बन्धनों में बाँधा गया। इसलिये इंग्लैण्ड के इतिहास में मेग्नाकार्टा की रचना एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है।

(४) हेनरी तृतीय—जॉन के बाद उसका बड़ा लड़का हेनरी तृतीय इंगलैण्ड की गद्दी पर बैठा। इसका

समय सन् १२१६ से १२७२ तक है। हेनरी तृतीय के समय में इंग्लैण्ड का राज्य बहुत कर्जदार हो गया था। उस समय साइमन-डी माण्डफोर्ट नामक जागीरदार ने हेनरी को हरा कर उसे तथा उसके पुत्र एडवर्ड को गिरफ्तार कर लिया और राज्य का ऋण चुकाने तथा राजकार्य चलाने के लिए इंगलैण्ड की ग्रेट कौन्सिल की बैठक बुलाई और उसके साथ प्रत्येक जिले और प्रत्येक नगर से जनता का एक-एक प्रतिनिधि भी बुलाकर सम्मिलित किया गया। पार्लमेंट इसी दिन से इस ग्रेट कौंसिल का नाम पार्लमेण्ट रखा गया जिसने आगे जाकर सारे इंग्लैण्ड के इतिहास का निर्माण किया। साइमन-डी माण्डफोर्ट ने इस संस्था का आरम्भ किया था इसलिये इतिहास में उसे "फादर ऑफ पार्लमेण्ट" कहा जाता है।

इसके बाद हेनरी के पुत्र एडवर्ड ने जागीरदारों के एक दल को अपनी तरह मिलाकर अपने पिता के साथ जेल से छुटकारा पाया।

उसके बाद माण्डफोर्ट के पक्ष के जागीरदारों और एडवर्ड के बीच लड़ाई हुई जिसमें माण्डफोर्ट मारा गया।

(५) एडवर्ड प्रथम—हेनरी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र एडवर्ड प्रथम के नाम से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। इसने सन् १२७२ से १३०७ तक शासन किया।

एडवर्ड बड़ा पराक्रमी, वीर और महत्वाकांक्षी था उसने सबसे पहले वेल्स के प्रान्त पर विजय प्राप्त करके उसे अपने राज्य में मिला लिया। सन् १२८४ में वेल्स के एक किले में ही उसकी रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसलिये वह प्रिन्स ऑफ वेल्स कहलाया। तभी से इंग्लैण्ड के सबसे बड़े राजा के पुत्र को प्रिन्स ऑफ वेल्स कहा जाता है। उसके बाद एडवर्ड प्रथम ने स्कॉटलैण्ड को अपने राज्य में मिलाने के लिये सन् १३०७ में चढ़ाई की मगर रास्ते में ही एडवर्ड की मृत्यु हो गई और स्काटलैण्ड पर स्थायी विजय करने का स्वप्न अधूरा रह गया।

(६) एडवर्ड द्वितीय—एडवर्ड प्रथम के बाद उसका पुत्र एडवर्ड द्वितीय राजगद्दी पर बैठा जिसने १३०७ से १३२७ तक राज्य किया।

(७) एडवर्ड तृतीय—एडवर्ड द्वितीय के बाद सन् १३२७ में एडवर्ड तृतीय गद्दी पर बैठा। इसके राज्य काल में स्कॉटलैण्ड पर अपना अधिकार कायम करने का इंग्लैण्ड ने फिर से प्रयत्न किया। इसी के राज्य काल में फ्रान्स से शतवर्षीय युद्ध प्रारम्भ हुआ। इसी समय इंग्लैण्ड की धार्मिक व्यवस्था में पोप के द्वारा हेर-फेर करने का विरोध किया गया और इसी के राज्यकाल में पार्लमेण्ट ने राज्य के मन्त्रियों पर अपना दबाव डालने का प्रयत्न किया।

ब्लेक प्रिन्स—एडवर्ड तृतीय का बड़ा लड़का एडवर्ड बड़ा वीर और योद्धा था। वह काले रंग की कवच पहनता था। इसी से इतिहास में वह "ब्लेक प्रिन्स" के नाम से मशहूर है। शतवर्षीय युद्ध में इस ब्लेक प्रिन्स ने सन् १३४६ में क्रेसी के अन्दर, १३४७ में केले के अन्दर और १३५६ में पायटू की लड़ाई में फ्रान्स को भारी पराजय दी और उसके राजा जॉन को गिरफ्तार कर लिया।

एडवर्ड तृतीय के राज्यकाल में सन् १३४९ में इंग्लैण्ड के अन्दर प्लेग की भयंकर महामारी चली जिसमें इंग्लैण्ड की एक तिहाई जनता खतम हो गई और सारे देश में हाहाकार मच गया।

(८) अन्जो राजवंश का आठवाँ और अन्तिम राजा ब्लेक प्रिन्स का लड़का रिचर्ड द्वितीय हुआ। इसने सन् १३७७ से १३९९ तक शासन किया। इसके शासन काल में जॉन विक्लिफ नामक एक इतिहास प्रसिद्ध धर्म सुधारक हुआ। इसने धर्माधिकारियों के भ्रष्ट आचरण की बड़ी कड़ी आलोचना की। सन् १३८२ में उसने बाइबिल का अंग्रेजी में अनुवाद किया।

रिचर्ड द्वितीय का पार्लमेण्ट से मतभेद होने के कारण उसे गिरफ्तार कर कैद में डाल दिया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके साथ ही इंग्लैण्ड के राजा सिंहासन से अन्जो वंश का अन्त हो गया।

अजोर्स

पन्द्रहवीं शताब्दी में जब यूरोप के देश समुद्र पार के मसाले के देशों का पता लगाने के लिए समुद्री रास्तों की खोज कर रहे थे उस समय स्पेन और पुर्तगाल के बीच

खोज किये हुए नये देशों पर शासन स्थापित करने के लिए बड़ी प्रतिद्वन्द्वता चल रही थी।

अन्त में इस झगड़े को मिटाने के लिए पोप को बीच में पड़ना पड़ा। अन्त में सन् १४६३ में उसने एक बुल (फतवा) निकाला जिसके अनुसार अजोर्स के पश्चिम तीन सौ मील के फासले पर उत्तर से दक्षिण तक एक काल्पनिक रेखा खींच दी और इस रेखा के पूर्व में जितना गैर इसाई मुल्क मिले उसपर पुर्त्तगाल का और पश्चिम में मिले हुए मुल्क पर स्पेन का अधिकार घोषित कर दिया। इस घोषणा के अनुसार अमरीका महाद्वीप स्पेन के हिस्से में और भारत, चीन, जापान, अमरीका तथा दूसरे पूर्वी मुल्क पुर्त्तगाल के हिस्से में आये।

अंजेलो

इटली का मशहूर चित्रकार और शिल्पी

माइकेल अंजेलो जिसने इटाली की चित्रकला और शिल्पकला में युगान्तर ला दिया। इसका समय सन् १४७५ से १५५० के बीच में है।

इटली के शिल्पकारों और चित्रकारों में माइकेल अंजेलो का नाम बहुत प्रसिद्ध है। अंजेलो के बनाये हुए सुन्दर-सुन्दर भित्ती चित्र, दूसरे चित्र और उसकी सुन्दर मूर्तियाँ देखकर आज भी बड़ा आश्चर्य होता है। रोम में सेण्ट पीटर के सुप्रसिद्ध चर्च का गुम्बद माइकेल अंजेलो के ही निरीक्षण में बना था। इस गुम्बद का व्यास १३८ फुट था यह ईसाई धर्म के सब गिर्जों में सबसे विशाल था इस विशाल गिर्जे की कारीगरी को देखकर बड़ा विस्मय होता है। इस गिर्जे का नव-निर्माण महान कला प्रेमी पोप जूलियस द्वितीय के तत्वाधान में हुआ था।

अटाला मस्जिद

जौनपुर के सबसे प्रसिद्ध शासक इब्राहीम शर्की के द्वारा जौनपुर में बनाई हुई अटाला मस्जिद जो सन् १४०८ ई० में बनकर पूरी हुई। यह मस्जिद आज भी इब्राहीम शर्की की अमर कीर्ति की द्योतक है।

अटालस

एशिया माइनर के परगामस का राजा। जिसका समय ईसा के पूर्व दूसरी या तीसरी शताब्दी में है।

राजा अटालस बड़ा पठनशील और साहित्य प्रेमी था। इसके पुस्तकालय में दो लाख हस्तलिखित ग्रन्थ थे। इन ग्रन्थों का उसने बहुत परिश्रम और धन खर्च करके संग्रह किया था।

राजा अटालस रोम-राष्ट्र का बड़ा भक्त था। मृत्यु के समय उसने अपने मृत्यु-पत्र में अपना सारा धन और राज्य रोम के लोगों को दे दिया था।

उस समय रोम का सम्राट टायबेरियस था। राजा अटालस के धन को टायबेरियस ने सीनेट से बिना पूछे रोम की गरीब जनता में बाँट दिया था।

अड्रियानो पुल का घेरा

सन् १९१२ में तुर्की और इटाली की संधि के पश्चात् तुर्की पर यूनानी लोगों ने वोनीजिलोज के नेतृत्व में बल्गेरिया, सर्विया और माण्टीनिग्रो की सहायता से आक्रमण कर दिया।

बल्गेरिया और सर्विया की सेना ने अड्रियानो पुल पर घेरा डाल दिया। यह घेरा इतिहास में अड्रियानो पुल के घेरे के नाम से मशहूर है। इधर यूनानी लोग मकदूनिया और थ्रेस में घुस गये। इस सम्मिलित आक्रमण का मुकाबला तुर्की नहीं कर सका और उसे मकदूनिया, अलबानिया और क्रीट द्वीप दुश्मनों को देकर लन्दन में उनसे संधि करनी पड़ी।

अटलांटिक घोषणा पत्र

१९४१ के अगस्त मास में द्वितीय महायुद्ध के समय इंगलैंड के प्रधान मन्त्री विन्स्टनचर्चिल और अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट के द्वारा निकाला हुआ एक प्रसिद्ध घोषणा-पत्र जो अटलांटिक घोषणा पत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस घोषणा-पत्र में निम्नलिखित धाराओं का उल्लेख था।

(१) क्षेत्रीय या किसी अन्य प्रकार के प्रसार या विस्तार का अन्त किया जावे।

(२) किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित जनता की प्रकट इच्छा के बिना उस क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं किया जाय।

(३) सभी लोगों को अपनी इच्छानुसार अपनी सरकार स्थापित करने का अधिकार रहे।

(४) जिन राष्ट्रों को प्रभु सत्ता सम्बन्धी अधिकारों एवं स्वशासन से बलपूर्वक वंचित कर दिया गया है उन्हें वे अधिकार लौटा दिये जांय।

(५) संसार के व्यापार और कच्चे माल तक सभी राष्ट्रों की पहुँच समान रूप से हो।

(६) आर्थिक क्षेत्र में सभी राष्ट्रों के बीच पूर्ण सहयोग रहे।

(७) नाजी जुल्मों का अन्त कर निखिल विश्व में शान्ति की स्थापना की जाय।

(८) ऐसे आक्रामक राष्ट्रों का निशस्त्रीकरण हो जो सामान्य सुरक्षा एवं विस्तृत तथा स्थायी व्यवस्था में बाधक हों और ऐसे राष्ट्रों को प्रोत्साहन दिया जाय जो शस्त्रीकरण के बोझ को हलका करने के लिए व्यवहारिक कदम उठा चुके हों।

अन्टोनियस

रोम के इतिहास-प्रसिद्ध महान शासक जूलियस सीजर का एक मित्र, बाद में रोम साम्राज्य के एक भाग का शासक, मिस्र की सुन्दरी रानी क्लियोपेट्रा का जूलियस सीजर के पश्चात दूसरा प्रेमी।

जूलियस सीजर की हत्या के पश्चात उसके मृत्यु-पत्र के अनुसार रोम साम्राज्य का अधिकारी "आक्टेवियस" को होना था। मगर उस समय अन्टोनियस भी रोम का एक प्रमुख व्यक्ति बना हुआ था। वह राज्य का सारा सूत्र अपने हाथ में लेना चाहता था। इसलिये आक्टेवियस और अन्टोनियस के बीच में बड़ी प्रतिद्वन्दिता चल रही थी। आक्टेवियस को रोम के सुप्रसिद्ध वक्ता और विद्वान सिसरो की बड़ी मदद थी। अन्त में ई० सन् ७१ में आक्टेवियस, अन्टोनियस और रोम की सेना के तत्कालीन सेनापति लेपिडस—इन तीनों व्यक्तियों के बीच में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार लेपिडस को स्पेन का, आक्टेवियस को सिसली, सरडीनिया और अफ्रीका के प्रान्तों का और अन्टोनियस को गाल (आधुनिक फ्रांस) का राज्यसूत्र प्राप्त हुआ और इटली के राज्य-शासन में सबका समानाधिकार रखा गया। रोम के शासन में सीजर, पाम्पे और और क्रासस के त्रिगुट के पश्चात् लेपिडस, आक्टेवियस और अन्टोनियस का बना हुआ यह एक दूसरा त्रिगुट था।

राज्य-सूत्र हाथ में आने के बाद अन्टोनियस को पता लगा कि मिस्र की रानी क्लियोपेट्रा ने उसके शत्रु ब्रूटस और काशियस को मदद पहुँचाई थी। इस अपराध की कैफियत तलब करने के लिये अन्टोनियस ने क्लियोपेट्रा को अपने यहाँ बुलाया। यह वही परम सुंदरी क्लियोपेट्रा थी जिसने रोम के महान् शासक जूलियस सीजर को अपनी उँगलियों पर नचाया था।

जिस समय क्लियोपेट्रा को अन्टोनियस का आदेश मिला उस समय उसकी उम्र २८ साल की थी। वह अपने निज के जहाज में बैठ कर सिडनस नदी से आई थी। उसके जहाजों के डाँड़ सोने और चाँदी से मढ़े हुए थे। नाव खेने वाले ताल-स्वर के ऊपर अपने डाँड़ चला रहे थे। मल्लाह सुन्दर और मूल्यवान वस्त्रों से सुसज्जित थे। स्वयं क्लियोपेट्रा भी कुछ कम सुन्दर न थी। सुन्दरता में वह मेनका, रम्भा आदि अप्सराओं को भी मात कर देती थी। उसकी आँखो में ऐसी चितवन थी, जो बड़े-बड़े धनुर्धारियों को भी क्षण भर में उसके पैरों पर लोटा देती थी।

अन्टोनियस क्लियोपेट्रा को देखते ही अपनी सुध-बुध को भूल गया। वह राज-काज भी भूल गया और अपनी पत्नी फुलविया को भी भूल गया। अन्टोनियस क्लियोपेट्रा के साथ रंग रासों में ऐसा मशगूल हो गया कि राज्य में उसका प्रभाव दिन प्रति-दिन घटता गया। इस अवसर को देखकर उसके प्रतिद्वन्दी आक्टेवियस ने ई० सन् ८३ में अन्टोनियस पर समुद्री चढ़ाई कर दी। युद्ध में अन्टोनियस का जहाजी बेड़ा अपने शत्रु के जहाजी बेड़े से बहुत बड़ा था, परन्तु उसका निरीक्षण और व्यवस्था अच्छी न होने से उसको हार खानी पड़ी। अन्टोनियस और क्लियोपेट्रा वहाँ से भागे। क्लियोपेट्रा ने इस विपत्ति से बचने के लिये अन्टोनियस से बिना पूछे अपनी मृत्यु की झूठी खबर उड़ा दी।

अन्टोनियस को जब क्लियोपेट्रा के मरने की बात मालूम हुई तो उसने अपने हाथ से अपनी छाती में कटार भोंक कर आत्महत्या कर ली।

अण्टोन चेखोव

(Anton Parelovich chekhov)

बीसवीं सदी का सुप्रसिद्ध रूसी लेखक जिसने मध्यवर्ग और शिक्षित जनता का चित्रण अपने ग्रन्थों में कर रूसी साहित्य की परिधि को विस्तृत किया इसका समय सन् १८६० मे १६०४ तक है।

चेखोव अपनी कृतियों में महान रूसी लेखक तुर्गनेव का उत्तराधिकारी माना जा सकता है। उसने रूसी साहित्य के अन्धकार युग को अपनी महान् कृतियों से प्रकाशित किया। अत्यन्त यथार्थवादी होने के साथ-साथ वह महान् कलाकार भी था। हास्यरस और मानवीयता के रससे सिंचित होने के कारण उसका निराशावाद भी पाठक को उकताने वाला नहीं होता। रंगमंच के लिए भी उसने कुछ कृतियाँ लिखीं। इनमें भी देहात के हारे, थके, प्रमादी और विचारों के दरिद्र लोगों का चरित्र चित्रण है जो एक महान् कलाकार के हाथ से चित्रित होने के कारण ही पाठक की सहनशीलता का दम नहीं तोड़ते और उस समय के समाज का नग्न चित्र वास्तविकता के आवरण में प्रदर्शित करते हैं।

अण्टोनिओ पूसी

चौदहवीं सदी का इटालियन कवि। जिसका समय सन् १३१० से १३८८ तक है।

अण्टोनिओ पूसी इटाली का मध्यमवर्गी साहित्यकार था इसने अपने सॉनेटों और दूसरे छन्दों में तत्कालीन सामाजिक जीवन को प्रतिबिम्बित किया। इसकी कृतियों में "गिसमिराग्ते" "सेरिटलोकिओ" "लारीनार्दो ओरियण्टे आदि उल्लेखनीय हैं।

अढाई दिन का झोपड़ा

अजमेर का एक ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थान। इसको सबसे पहले अजमेर के सुप्रसिद्ध चौहान राजा वीसल देव ने एक संस्कृत विद्यालय के रूप में सन् ११५० के आसपास बनवाया था। उसके पश्चात् शाहबुद्दीन गोरी ने इस विद्यालय को तोड़कर एक मसजिद के रूप में परिणत कर दिया जो आजकल अढाई दिनका झोपड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके दरवाजों और मेहराबों की कोराई दर्शनीय है और उस समय की स्थापत्य कला का सुन्दर रूप पेश कर रही है।

अतसिक

ख्वारेज्म के शाह कुतुबुद्दीन का पुत्र जो सन् ११२८ में ख्वारेजम की गद्दी पर बैठा।

ख्वारेज्म उस समय सलजूकी तुर्क सम्राटों का एक करद राज्य था। उस समय सल्जूकी साम्राज्य की गद्दी पर सुलतान सिजर आसीन था जो कि इस वंश का सबसे प्रतापी और अन्तिम सम्राट् था। ख्वारेज्म, ईराक, ईरान, सीरिया के विशाल क्षेत्र पर इस साम्राज्य की विजय ध्वजा फहरा रही थी।

अतसिक ने ख्वारेज्म का शासक बनते ही सम्राट् से बगावत कर दी। मगर सुलतान सिजर ने उसपर आक्रमण करके उसके लड़के को मारडाला और अतसिक को बुरी तरह पराजित कर सुलेमान शाह को ख्वारेज्म का अधिकारी बनाकर चला गया। सम्राट् के लौटते ही अतसिक ने सुलेमान शाह को मार भगाया और सारे ख्वारेजम का मालिक बन बैठा उसने सुलतान के अफसरों को कैद करके उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया। तब सन् ११३८ में सुलतान ने एक भारी सेना लेकर ख्वारेज्म पर आक्रमण किया और दूसरी बार अतसिक को बुरी तरह से हराया। अतसिक भाग गया और सुलतान ने ख्वारेज्म पर अधिकार कर उसका शासक अपने भतीजे सुलेमान को बना दिया।

सुलतान के वापस लौटने पर अतसिक फिर ख्वारेज्म आ गया। ख्वारेज्म के लोगों ने सुलतान के व्यवहार से

रुष्ट होकर अतसिक का साथ दिया। अतसिक ने मुलतान के सब अफसरों को मार डाला। वहां का शासक सुलेमान भाग कर सुलतान के पास चला गया। अतसिक ने बुखारा पर भी आक्रमण कर दिया और वहाँ के गवर्नर को मार डाला। इसके बाद फिर उसने मुलतान के प्रति राज भक्ति की शपथ ली और मुलतान ने उसे माफ कर दिया।

इस प्रकार बार-बार विद्रोह कर बार-बार क्षमा माँगते हुए अतसिक ने सलजुकी साम्राज्य की नींव को कमजोर कर दिया और फलस्वरूप करा खताई लोगों ने वहां आकर सलजुकी तुर्क साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर डाला और सिंजर को मार डाला।

अणहिल्ल

नाडोल और जालोर के चौहान वंश का छठाँ राजा, राजा महेन्द्र का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी। इसका समय ई० सन् १०२१ के करीब का माना जाता है। सुन्धा पहाड़ी पर मिले हुए एक शिलालेख से प्रकट होता है कि अणहिल्ल ने अणहिलवाड़ा के भीम देव को हराया, सांभर पर अधिकार कर लिया, भोज के सेनापति को मारा और मुसलमानों को हराया। नाडोल के अन्दर बना हुआ अणहिलेश्वर का शिव मन्दिर इसी अणहिल्ल का बनाया हुआ माना जाता है।

अता-मलिक

फारसी साहित्य का एक इतिहासकार जो प्रसिद्ध मंगोल विजेता 'हलाकू' का सेक्रेटरी था और बाद में बगदादका गवर्नर बना दिया गया। इसका प्रसिद्ध ग्रन्थ तारीख-ए-जहांनुशा था। जिसमें चंगेज खाँ और हलाकू की दिग्विजयों का उल्लेख है। सन् १२८३ में यह विद्यमान था।

अथानीसियस

ईसाई धर्म का धुरन्धर विद्वान जिसने चर्च के सच्चे आचार विचार का निर्णय किया और एरियन पन्थ के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा। यह क्रिस्तान धर्म का पिता स्वरूप माना जाता है ई० सन् की चौथी शताब्दी में यह हुआ था।

अथर्ववेद

आर्य्य धर्म संस्था के मूल ग्रन्थ चार वेदों में से एक वेद।

आर्य्य धर्म के मूल और प्रमाणभूत ग्रन्थों में वेदों का स्थान सब से ऊँचा है। हिन्दू धर्म वेदों को अपौरुषेय या ईश्वर कृत मानता है।

अथर्ववेद में भी अन्य वेदों की भांति "त्रयी विद्या" अर्थात् ज्ञान, कर्म और उपासना पर विचार किया गया है। वैदिक साहित्य में अथर्ववेद के चार नाम मिलते हैं। निगद, ब्रह्म, अथर्व और छन्द। ये चारों नाम इसके चार गुणों के कारण पड़े हैं। निगद नाम इसको सरलता के कारण पड़ा है। ब्रह्म नाम इसका इसलिए पड़ा है कि यज्ञ का अधिष्ठाता ब्रह्मा इसी वेद के साथ नियुक्त होता है। इसी तरह इसका तीसरा नाम अथर्व है, अथर्ववेद में विराट् का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

यस्मादृचो अपात क्षन, यजुर्यस्मादपाकषत्
सामानि यस्य लोमानि, अथर्वांगिरसो मुखम्
(अथर्ववेद १०-७-२०)

इस मंत्र में अथर्व को विराट् का मुख बतलाया गया है विराट् के मुख से ही अग्नि की उत्पत्ति हुई है। इसलिए अथर्व का भाव अग्नि से होता है। अथर्व का चौथा नाम छन्द इसलिए पड़ा कि इसमें हर तरह के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

अथर्ववेद में औषधि विद्या और यंत्र, मंत्र तथा तंत्र विद्या का आश्चर्यजनक वर्णन है। तंत्र शास्त्र का तो उद्गम ही अथर्ववेद से है।

अथर्ववेद का देवता चन्द्रमा है, वही ज्योति है और जल स्थान है। पारसी धर्म के प्राचीन ग्रन्थ "अवेस्ता" के गाथा प्रकरण में अथर्ववेद को छन्द ही कहा है। कुछ लोगों की यह मान्यता है कि पारसी धर्म की बहुत सी बातों का मूल स्रोत अथर्ववेद रहा है।

अथर्ववेद की नौ शाखाओं में इस समय केवल दो "पैप्पलाद" और "शौनकीय" उपलब्ध है। शौनकीय शाखा २० मण्डल, ७३१ सूक्त, और ६००० पंक्तियों में संगृहीत है। इस संहिता के अधिकांश मंत्र, तंत्र विद्या,

झाड़ फूँक, मारन, उच्चाटन तथा चिकित्सा से सम्बन्ध रखते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि ऋग्वेद कालिक आर्यों की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना से इस काल में काफी अन्तर पड़ गया था। इस वेद के अन्तर्गत कुछ स्थान बड़े मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं। वरुण के प्रति कहे गये कुछ मंत्र तो अपनी शालीनता में समूचे वैदिक साहित्य में अपनी जोड़ नहीं रखते। मातृ भूमि सम्बन्धी सूक्त (१२-१-६३) देशप्रेम के रोमांचक आदर्शों से भरे पूरे हैं। राज्यारोहण सम्बन्धी कुछ मंत्र भी इसमें बड़े महत्व के हैं जो राजाओं के राजारोहण के समय बोले जाते हैं।

अदली शाह

सम्राट शेरशाह का भतीजा जो सन् १५५४ में शेरशाह के पुत्र सलीम शाह के मरने पर, राज्य के वास्तविक हकदार सलीम शाह के बारहवर्षीय पुत्र को मारकर गद्दी पर बैठा।

मगर अदलीशाह केवल साल भर ही दिल्ली के तख्त पर आसीन रह सका। इब्राहीम खां ने दिल्ली पर आक्रमण करके उसे भगा दिया, उसके बाद उसने चुनार में अपना आसन जमाया मगर वहाँ तीन बरस बाद वह मर गया।

अदहम खान

अनका माहम का पुत्र सम्राट अकबर का दूध भाई

अदहम खान स० अकबर की धाय अनका माहम का पुत्र था। यह स्वभाव का बड़ा दुष्ट और हीन चरित्र था। अनका माहम की सिफारिश से बादशाह अकबर ने इसे सन् १५६१ में मालवा पर आक्रमण करने के लिए सेनापति बनाकर भेजा। उस समय मालवे का शासक सूरवंश का पठान बाजबहादुर था। इसकी प्रेमिका रूपमती मेघमल्हार राग की भारत प्रसिद्ध गायिका थी। यह स्वयं भी संगीत का बड़ा प्रेमी था।

सारंगपुर के पास सन् १५६१ में बाज बहादुर की हार हुई। मालवे का खजाना शाही फौज के हाथ आया। रूपमती जहर खाकर मर गई। अदहम खां और पीर मुहम्मद ने मालवे में भारी क्रूरता की। इस क्रूरता के शिकार हिन्दू और मुसलमान दोनों हुए। विद्वान शेखों और सैय्यदों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। अदहम ने लूट के माल को अपने हाथ में रखना चाहा। इस माल में बाज बहादुर के हरम की दो सुन्दरी नवयुवतियाँ भी थीं। यह खबर सम्राट अकबर के पास पहुँची, तब अकबर ने यह सोचकर कि माहम अनका अपने पुत्र को बचाने के लिए सब कुछ करेगी। वह चुपचाप बिना खबर दिये मालवा को रवाना हो गया। अदहम खाँ उसे देखते ही हक्का-बक्का हो गया और उसने सम्राट के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। अकबर को मालूम होने के कुछ पहले ही माहम अनका ने बाज बहादुर के अन्तःपुर की दोनों सुन्दरियों को जहर देकर मरवा डाला।

सन् १५६२ में सम्राट अकबर ने शमसुद्दीन मुहम्मद अतगा को अपना मन्त्री बनाया। इस समाचार से माहम अनका और उसका पुत्र अदहम खान दोनों गुस्से से पागल हो गये। १६ मई १५६२ की दुपहर को जब कि मुहम्मद अतगा दरबार में बैठा हुआ अपना काम कर रहा था, अदहम खां कटार लेकर वहाँ पहुँचा और अपने दो साथियों की मदद से मुहम्मद अतगा को वहीं भरे दरबार में मार डाला। अदहम खान ने उसको मारने के बाद ही सम्राट अकबर को भी मार डालना चाहा जो उस समय महल में आराम कर रहे थे। शरीर रक्षकों ने अदहम खां का पागलपन देखकर दरवाजे को भीतर से बन्द कर लिया।

मगर ज्यों ही सम्राट को यह बात मालूम हुई वह दूसरे दरवाजे से तलवार लेकर बाहर निकला। अदहम खाँ ने सम्राट के बाहर निकलते ही उसका हाथ पकड़ लिया। तब अकबर ने एक जोर का मुक्का उसकी नाक पर मारा जिससे वह बेहोश होकर गिर पड़ा तब अकबर ने नौकरों से उसे बंधवा कर नीचे गिरवा दिया, अदहम खान का किस्सा तमाम हो गया।

अदहम खाँ की मृत्यु से माहम अनगा को इतना धक्का लगा कि चालीस दिन बाद वह भी इस संसार से कूच कर गई और अकबर का अन्तःपुर इस षड्यन्त्र-कारिणी से मुक्त हो गया।

अद्वैतवाद

प्राचीन वेदान्त-दर्शन के आधार पर जगद्गुरु शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित सुप्रसिद्ध "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" वाला अद्वैत सिद्धान्त जो वर्त्तमान हिन्दू धर्म के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है।

जगद्गुरु शंकराचार्य्य के पूर्व ही यद्यपि वेदान्त-दर्शन का निर्माण हो चुका था फिर भी साधारणतया हिन्दू-दर्शन विवेचना में संसार के निर्माण में प्रकृति और पुरुष इन दो तत्त्वों का निरूपण किया जाता था।

मगर शङ्कर ने अपनी तीव्र निर्णायक विवेचना से सिर्फ एक ही तत्व ब्रह्म का प्रतिपादन किया और अन्य सब वस्तुओं को माया का रूप बतला कर उन्हें असत् या निःस्सार बतलाया। उन्होंने बतलाया कि जिस प्रकार अंधेरे में रस्सी को सर्प समझकर मनुष्य भ्रम का शिकार हो जाता है उसी प्रकार असद्माया में भी वास्तविकता की कल्पना कर वह भ्रम में पड़ जाता है।

हम जिस वस्तु-जगत् को अपने चारों ओर देखते हैं वह ब्रह्म की सत्ता का केवल एक प्रतिबिम्ब है। लेकिन वह सत् नहीं है। वह सत और असत के बीच का एक रूप है।

विशुद्ध ब्रह्म किस प्रकार सब चीजों में व्याप्त है, किस तरह वह एक होकर अनेक रूप में आभासमान है, यह सब तर्क द्वारा समझ में नहीं आ सकता क्योंकि हमारा मस्तिष्क वस्तु जगत् से सीमित है। साधना के द्वारा जब मनुष्य के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं तभी अद्वैत की एकरूपता उसके सामने प्रत्यक्ष हो जाती है।

शंकर के दर्शन और दृष्टिकोण में दुनिया से इन्कार करने का और आत्मा की मुक्ति के लिए सांसारिक प्रवृत्तियों से बचने का भाव है। त्याग और वैराग्य पर उन्होंने बहुत जोर दिया।

शंकराचार्य्य का जन्म सम्भवतः आठवीं सदी के अन्त में मलाबार प्रदेश में हुआ था। इनके व्यक्तित्व में एक महान् और अलौकिक सामर्थ्य था। वह एक अपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे गुफाओं में जाकर बैठनेवाले या जंगल के एक कोने में बैठ कर एकान्तवास करनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने हिन्दुस्तान के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक की यात्राएँ की, अनगिनती लोगों से और विद्वानों से वे मिले, अपने अकाट्य तर्कों से वादविवाद में उन्हें परास्त कर उनको अपना अनुयायी बनाया।

शंकराचार्य ने अपने जीवन का एक निश्चित ध्येय अद्वैत-सिद्धान्त के प्रचार का बना लिया था। उनका कार्यक्षेत्र कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक का सारा हिन्दुस्तान था। सारे हिन्दुस्तान में वे एक सांस्कृतिक एकता का अनुभव करते थे और यह समझते थे कि बाहरी रूप चाहे जितने भिन्न हों अन्ततोगत्वा सब एक हैं। भारत वर्ष में उनके समय में विचारों की जो अलग-अलग धाराएँ बह रही थीं उनमें एक समन्वय पैदा करने का और विविधता के बीच एकता लाने का उन्होंने पूरा प्रयत्न किया।

भारत वर्ष के धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी तीव्र तर्कना शक्ति से उन्होंने एक तहलका मचा दिया। बत्तीस वर्ष के अपने छोटे से जीवन में उन्होंने जो काम कर दिखाया वह इतना व्यापक था कि कई लम्बे जीवनों में भी दूसरा व्यक्ति उसे न कर पाता। उन्होंने अपने शक्तिशाली मस्तिष्क और सम्पन्न व्यक्तित्व की ऐसी छाप हिन्दुस्तान पर डाली कि कई शताब्दियाँ बीत जाने पर भी वह आज तक बनी हुई है। उनमें दार्शनिक और विद्वान का, जड़वादी और रहस्यवादी का, कवि और सन्त का तथा एक व्यावहारिक सुधारक और योग्य संगठनकर्त्ता का अजीब मेल था।

शंकराचार्य्य के कामों का लेखा अद्भुत है। अपनी बुद्धि और तर्कशक्ति के बल पर उन्होंने बौद्ध धर्म के विद्वानों को पराजित किया, बौद्ध संघ की तरह उन्होंने भी सन्यासियों का संघ बनाया जिसमें सब जाति के लोग शामिल हो सकते थे। उन्होंने अपने सन्यासियों के चार विशाल मठ भारत वर्ष के चारों कोनों पर स्थापित किये। जिनमें से शृंगेरी मठ मैसूर में, दूसरा ज्योतिर्मठ बद्रीनाथ में, तीसरा शारदा मठ पश्चिमी द्वारिका में और चौथा गोवर्द्धन मठ जगन्नाथपुरी में था।

शंकराचार्य्य की तर्क-शक्ति के तीव्र प्रहार से बौद्ध धर्म जो पहले उत्तर भारत से दक्षिण भारत में चला गया था अब भारत वर्ष से करीब-करीब गायब हो चुका था। शंकर के ग्रंथों, काव्यों और तर्कों से सारे देश में एक

ौद्धिक हलचल मच गई । वे सिर्फ ब्राह्मणों के ही महान् ेता नहीं बने मगर सारे भारतीय जनसमाज को उन्होंने प्रपनी ओर आकर्षित कर लिया । यह एक असाधारण ात मालूम होती है कि कोई आदमी सिर्फ अपनी बुद्धि के ल पर एक महान नेता बन जाय और फिर करोड़ों ादमियों पर और इतिहास पर अपनी अमर छाप ाल दे ।

शङ्कराचार्य ने अपनी विजययात्रा को वाराणसी में ूर्ण किया जहाँ उनका अन्तिम शास्त्रार्थ मण्डन मिश्र ामक महान् विद्वान से हुआ । मण्डन मिश्र को पराजित र उन्होंने अपने अन्तिम प्रतिद्वन्दी को अपना अनुयायी नाया और फिर दक्खिन के गर्म प्रदेश का यह महान पस्वी हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान केदारनाथ में ऊँचे हिमालय के बर्फ से ढँके प्रदेश में केवल बत्तीस वर्ष की आयु में परलोकगामी हुआ ।

इतनी छोटी सी उमर में, इतने बड़े देश में एक ौलिक विचार धारा, एक नवीन आध्यात्मिक चिन्तन का ावाह बहा देना माननीय प्रतिभा के विकास का एक अनुपम और आश्चर्यजनक उदाहरण है ।

अन्द्रे-गीद
(Andre Gide)

फ्रेंच साहित्य के आधुनिक युग का साहित्यकार । अन्द्रेगीद की दो रचनाएँ उल्लेखनीय हैं पहली "ले काव ्यातिका" और "नृरितिर तैरेस" । गीद का चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्पष्ट और सीधा सादा होता है । चरित्रों का व्यक्तित्व धीरे-धीरे खुलता जाता है । कथानक का विकास धीमीगति से और एक सुविचारित पद्धति से होता है । जिसमें घटनाओं का विकास और आलोचना परस्पर गुथे हुए होते हैं । गीद की सारी रचनाएँ समाज, धर्म और आचार की परम्परा के विरुद्ध एक चुनौती है । उसके मत से व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार सब कुछ करने का अधिकार है । उसकी यह विचारधारा उसके सारे साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है उसकी शैली अत्यन्त मधुर और रोचक है ।

अनवरी

फारसी साहित्य का एक प्रसिद्ध कसीदाकार । यह मलिकशाह के पौत्र खुरासान के सुलतान संजर के समय में हुआ । इसने सन् ११५४ में हुए खुरासान के विध्वंस पर "खुरासान के आँसू" नामक काव्य लिखा जो अपने करुणराग के लिए प्रसिद्ध है ।

अनका माहम

सम्राट अकबर को बचपन में दूध पिलानेवाली धाय । जिसने आगे जाकर साम्राज्य की राजनीति में अनेक षड्यंत्र किये । इसी के षड्यन्त्र से सम्राट का गार्जियन बैरम खाँ सम्राट् की आँखों में खटक गया और अन्त में उसे वहाँ से निकलना पड़ा । तार्दीबेग का सर्वनाश कराने में भी इसी का हाथ था । पीर मुहम्मद शेरवानी इसका खास मददगार और कृपापात्र था ।

अनंगपाल तोमर

तोमर क्षत्रिय वंश का एक प्रसिद्ध राजा जिसने देहली शहर को बसाया । इससे पहले देहली के समीप ही इन्द्र प्रस्थ नामक स्थान देहली की तरह राजधानी का काम देता था ।

अनंगपाल प्रथम ने नवीं सदी में दिल्ली शहर को बसाया । अलबेरुनी की यात्रा के समय यह शहर अधिक महत्वपूर्ण नहीं था उस समय प्रतिहार क्षत्रियों की सत्ता के अन्तर्गत यह एक छोटा सा मांडलिक राज्य था ।

दिल्ली के सुप्रसिद्ध लोह स्तम्भ के लेख से पता चलता है कि तोमरवंश के दूसरे अनग पाल ने सन् १०५२ में इस स्तम्भ को मथुरा से उखाड़कर दिल्ली में लाकर खड़ा किया । यह लोह स्तम्भ १५०० वर्ष की धूप और बरसात सहते हुए भी आज ज्यों का त्यों खड़ा है । इस पर न तो जंग ही लगा है न उस पर के अक्षर ही मिटे हैं । अनंगपाल के वंशजों ने करीब १०० वर्षों तक देहली पर राज्य किया फिर साम्भर के चौहान वंशीय वीसलदेव ने सन् ११५२ में दिल्ली को जीत कर तोमर राज्य को समाप्त कर दिया ।

अनन्तदेव शिलाहार

ठाणा के शिलाहार वंश का राजा नागार्जुन का पुत्र माम्वानी का भतीजा सन् १०८५ से ११२५ तक।

अनन्तदेव शिलाहार नागार्जुन का पुत्र था सन् १०९४ के अपने शिलालेख में उसने अपने आपको कोंकण चक्रवर्त्ती लिखा है इससे पता लगता है कि यह बहुत पराक्रमी और तेजस्वी राजा था।

अनन्तराज

कश्मीर का राजा, राजा संग्राम राज का पुत्र सन् १०२९-१०३९ तक।

कश्मीर की कुख्यात दिद्दा रानी ने अपने पश्चात् अपने भाई के पुत्र संग्रामराज को उत्तराधिकारी बनाया। यह बड़ा बुद्धिमान और समर्थ राजा था। इसने मुहम्मद गजनवी के आक्रमण को दो बार विफल किया इसका राज्य काल १००३ से १०२६ तक कहा।

संग्रामराज का पुत्र अनन्त राज हुआ। इसके शासन काल में काश्मीर के एक राजद्रोही सरदार ने मुसलमानों को कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। मगर अनन्तराज और उसके साथी राजपुत्रों ने इस विशाल यवन सेना का बड़ी बहादुरी से मुकाबिला कर उसे भगा दिया। इसके बाद कश्मीर ३०० वर्षों तक मुसलमानी आकमणों से सुरक्षित रहा।

अनन्तराज की पत्नी का नाम सूर्य्यमती था जो एक त्रिगर्त राजा की कन्या थी। ये दोनों पति पत्नी बड़ी धार्मिक भावना के थे। दस वर्ष तक बड़े पराक्रम से न्यायपूर्वक शासन कर अपने पुत्र कलश को राज्य सौंप कर ये दोनों बनवास को चल दिये मगर बाद में कलश ने इन्हें बहुत दुःख दिया जिसके फलस्वरूप अनन्तराज की मृत्यु हो गई और सूर्य्यमती उसके साथ सती हो गई।

अनाम

इण्डोचायना का चीन की दक्षिणी सीमा से लग हुआ एक प्रान्त जो प्राचीन काल में एक स्वतंत्र राज्य के रूप में था।

अनाम का इतिहास बहुत पुराना है। चीन के हान वंश के सबसे शक्तिशाली सम्राट् वू-ती ने अनाम को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। वू-ती का शासनकाल ईस्वी सन् पूर्व १४० से ८७ तक था। उसके पश्चात् भी अनाम पर कभी चीन का प्रभुत्व हो जाता था और कभी वा स्वतंत्र हो जाता था। चीनी साम्राज्य के अन्दर चले जाने पर भी यहां के राजा तो वही रहते थे सिर्फ चीन वालों को एक नियमित कर दे दिया करते थे और वे चीन के माण्डलिक राजा कहलाते थे।

ईसा की दूसरी शताब्दी में अनाम के दक्षिण में स्थापित चम्पा नगरी के राजा श्रीमार ने अनाम और तोन्किन पर अधिकार कर लिया था। श्रीमार और उसके उत्तराधिकारी राजा भारतीय थे। इनकी भाषा संस्कृत थी इन लोगों के द्वारा खुदाये हुए शिलालेख दक्षिण अनाम में प्राप्त हुए हैं। चम्पा के राजाओं में भद्रवर्मन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह वेदों का विद्वान था उसने भद्रेश्वर शिव के एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया था कुछ ही समय में यह मन्दिर सारे दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रसिद्ध हो गया और धर्म तथा संस्कृति का एक प्रसिद्ध तीर्थ बन गया।

ईसा की तीसरी सदी में अनाम में पाण्डुरंग नामक शहर बहुत उन्नति कर रहा था और यहीं दो सौ वर्षों के बाद काम्बोज का भी एक बड़ा शहर बसाया गया जिसमें पत्थर की बड़ी-बड़ी इमारतें और मन्दिर थे।

लगभग तीन सौ वर्षों तक हिन्द चीन में तीन अलग हिन्दू राज्य थे मगर नवीं सदी में राजा जयवर्मन ने इन तीनों राज्यों को एक कर दिया और एक बड़े साम्राज्य का सूत्र पात किया। उसने अपनी राजधानी अङ्गकोर को बनाना प्रारम्भ किया जिसे उसके पुत्र यशोवर्मन ने पूरा किया।

अनाम और तोन्किंग के राज्यों में चीनी सभ्यता का प्रभुत्व जरूर था मगर इन राज्यों की अपनी भी संस्कृति, धर्म, भाषा और लिपि थी। चौदहवीं सदी में अनाम के लोगों ने अपनी एक लिपि का आविष्कार किया जिसके अक्षर चीनी लिपि के अक्षरों से भिन्न थे। इस लिपि में अनामी लेखकों ने अपना साहित्य लिखना प्रारम्भ किया। चित्र कला इत्यादि क्षेत्रों में भी इन राज्यों की अपनी पृथक शैली थी। साथ ही इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति और धर्म का भी काफी प्रभाव था। पहले यहाँ पर शैव मत का काफी प्रचार था उसके बाद बौद्ध धर्म प्रचारकों ने भी यहां बौद्ध मत का प्रचार किया।

सन १७७८ के आसपास अनाम की राजगद्दी के लिए उसके दो अधिकारियों में आपस में झगड़ा होने लगा। उस समय फ्रान्स के पादरी अनाम में ईसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे तथा फ्रान्स के कुछ व्यापारी तथा दूसरे लोग भी यहाँ रहते थे। इन लोगों ने अनाम की राजगद्दी के लिए लड़ने वाले दो उम्मीदवारों में से एक का पक्ष ले लिया। इसी समय फ्रांस में इतिहास प्रसिद्ध राज्य क्रान्ति हो जाने से वहाँ से तो इन लोगों को कोई मदद नहीं मिल सकती थी पर फ्रान्स के पादरियों और व्यापारियों की अपील पर बहुत से फ्रेन्च स्वयं सेवकों ने अपनी एक फौज बना ली और वे राज्य के उम्मीदवार "गिआलोंग" को विजयी बनाने के लिए उसकी मदद पर आ गये। इनकी मदद से गिआलोंग अनाम की गद्दी प्राप्त करने में सफल हो गया।

आगे चलकर यही गिआलोंग बड़ा प्रतापी सम्राट बना इसने अनाम के अतिरिक्त तोन्किन, कोचीन चायना, लाओस और कम्बोडिया को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। चूँकि गिआलोंग फ्रेंच लोगों की मदद से विजयी हुआ था अतएव स्वाभाविक था कि उसके राज्य में फ्रेन्च लोगों का राजनैतिक और धार्मिक प्रभुत्व बढ़ने लगा।

उन्नीसवीं सदी में भी फ्रेञ्च लोगों का प्रभाव वहाँ बढ़ता रहा पर अब यह चीज अनाम की जनता और वहाँ की सरकार की आँखों में खटकने लगी। जगह २ फ्रेञ्च लोगों के खिलाफ विद्रोह होने लगे। तब फ्रेञ्च सेनाओं ने अनाम के तत्कालीन राजा के खिलाफ युद्ध शुरू कर दिया अनाम का राजा मुकाबिला नहीं कर सका और सन् १८६३ की संधि में उसको कोचीन चायना का प्रदेश और एक बहुत बड़ी हरजाने की रकम फ्रेन्च लोगों को देनी पड़ी। १८८३ में अनाम के राजा ने भी फ्रान्स की अधीनता स्वीकार कर ली। १८६३ में लाओस भी फ्रान्स के कब्जे में आ गया और इस प्रकार धीरे २ सारे इण्डोनेशिया में फ्रान्स का प्रभुत्व कायम हो गया और सब बिखरे हुए राज्य एक केन्द्रीय शासन के अधीन हो गये। फ्रान्स के लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए यहाँ की जनता का मनमाने ढङ्ग से शोषण करना प्रारम्भ किया।

मगर संसार का दूसरा महायुद्ध मानों इन शोषित और पराधीन जातियों के लिए स्वाधीनता का अमर सन्देश लेकर आया।

ज्योंही द्वितीय महायुद्ध में जापान ने प्रवेश किया दक्षिण पूर्वी एशिया की जनता को साम्राज्यवाद के खिलाफ अपना मोर्चा संगठित करने का अपूर्व अवसर मिला।

उस समय अनाम का सम्राट बाओदाई फ्रेन्च सरकार की कठपुतली मात्र था, वह अनाम तथा इण्डोचायना में उठी हुई स्वतंत्रता की प्रगति को दबाने में असमर्थ था। उस समय यहाँ की स्वाधीनता आन्दोलन का प्रमुख नेता हो-ची-मिन्ह था जो कट्टर राष्ट्रवादी होनेपर भी कम्यूनिस्ट विचारधारा का था। अगस्त १९४५ में जब जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया तब उस अवसर का लाभ उठाकर इण्डोचायना में वियटनाम रिपब्लिक के नाम से रिपब्लिकन राज्य की घोषणा कर दी गई और अपने को फ्रेञ्च अधिपत्य से पूर्ण रूप से मुक्त कर लिया। अनाम के राजा बाओदाई ने सम्राट पद का परित्याग कर दिया और २ सितम्बर १९४५ को वियटनाम रिपब्लिक का शासन सम्पूर्ण अनाम पर व्यवस्थित रूप से कायम हो गया।

अनावृत

बरमा में ग्यारहवीं सदी के अन्तर्गत पागन राज्य का संस्थापक एक वीर पुरुष।

अनावृत बरमा के मध्यकालीन इतिहास का एक वीर पुरुष था। इसने ग्यारहवीं सदी में इरावती नदी के तट पर वर्तमान माण्डले के दक्षिण में पागन नामक एक नये

राजवंश का प्रारम्भ किया। मध्यकाल में यह राज्य बरमा का सबसे शक्तिशाली राज्य था। यह राजवंश लगभग दो शताब्दी तक बरमा में बहुत प्रबल रहा। अराकान, तेना सरिम और शान राज्यों के प्रदेश पागन राज्य के शासन में थे। पागन के राजाओं ने चीन के यूनान प्रान्त पर भी आक्रमण किया था और कुछ समय तक यह प्रदेश भी पागन राज्य के अन्तर्गत रहा था। तेरहवीं सदी में चंगेज खाँ के नेतृत्व में मंगोल सेनाओं ने बरमा पर आक्रमण किया, उसी समय पागन राज्य का भी उस हमले के कारण अन्त होगया।

अन्द्रेदा

जेसुइट सम्प्रदाय का ईसाई पोर्तुगीज पादरी जिसने सबसे पहले ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए तिब्बत में सन् १६२६ में प्रवेश किया मगर जो तिब्बत की राजधानी ल्हासा तक नहीं पहुँच सका।

अन्फू-क्लब

सन् १६१८ में चीन की पेकिंग सरकार के प्रधान मंत्री तुआन-ची-जुई द्वारा स्थापित उसके समर्थकों का एक दल।

चीन के राष्ट्रपति युआन-शी-काई की मृत्यु (१६१६) के पश्चात् रिपब्लिकन शासन का उत्तरी चीन में फिर से संगठन किया गया। कर्नल ली-युआन तुंग राष्ट्रपति बनाया गया और तुआन-ची-जुई प्रधान मंत्री बना जिसने नये मंत्रि मण्डल का संगठन किया। मगर यह सरकार एक दो महीने से अधिक नहीं चली और जुलाई १६१६ में उसका अन्त हो गया तथा राष्ट्रपति ली-युआन-तुगने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद फंग-कुओ-चुंग राष्ट्रपति बना। यह भी तुआन-ची-जुई के विरोध में था।

अक्टूबर १६१८ में फंग-कुओ-चुग का राष्ट्रपति काल समाप्त होने पर तुआन-ची-जुई ने पार्लियामेंट के मेम्बरों को पद और रुपये का लोभ देकर हसू-शिह-चिंग नामक अपने समर्थक को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित कर दिया।

इसी तुआन-ची-जुई ने अपनी सत्ता अक्षुण्ण रखने के लिए अपने समर्थकों का दल अन्फू क्लब के नाम से संगठित किया। इस क्लब के सदस्यों ने परस्पर मिल कर एक गुटबन्दी बनाई और राजकीय पदों की प्राप्ति के लिए ये एक दूसरे की सहायता करने लगे। तुआन-ची-जुई ने इसी समय जापान से बड़ी-बड़ी रकमें कर्ज लीं। जापान सरकार चीन पर अपना राजकीय और आर्थिक प्रभुत्व स्थिर करने के लिए खुले दिल से कर्ज देती थी और कर्ज की रकम का एक निश्चित भाग अन्फू क्लब के सदस्यों की जेब में पहुँच जाता था। इस प्रकार अन्फू-क्लब की सहायता से तुआन-ची-जुई ने पार्लियामेंट को अपने हाथ की कठपुतली बना रक्खा था। सन् १६२० तक अन्फू-क्लब की सहायता से तुआन-ची-जुई उत्तरी चीन के शासन में अपनी मनमानी चलाता रहा। उसके बाद मंचूरिया के सिपहसालार चांग-सो लिन और हुकुआंग के सिपहसालार स्माओ कुन की सम्मिलित सेनाओं ने पेकिंग पर आक्रमण कर तुआन ची-जुई को हराकर उसकी सत्ता को खतम कर दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार

संसार में सर्वश्रेष्ठ साहित्य का सृजन करने, मानव हित के लिए उपयोगी कोई वैज्ञानिक आविष्कार करने, संसार को युद्ध की लपटों से बचाकर शान्ति स्थापना में सक्रिय सहयोग करने इत्यादि मानव जाति में महान् कार्य करनेवाले लोगों का सम्मान करने के लिए संसार के कुछ धनी लोगों तथा संस्थाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार देने की कुछ योजनाएँ चालू कर रक्खी हैं जिनमें प्रमुख योजनाएँ इस प्रकार हैं।

१ – नोबेल पुरस्कार

स्वीडन के वैज्ञानिक आविष्कारक अलफ्रेड बर्नार्ड नोबेल ने अपनी संचित पूँजी ६० लाख पौण्ड को इस उद्देश्य से दान कर दी कि, उसे स्थायी कोष में जमा कर उसके ब्याज से प्रति वर्ष साहित्य, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, शरीर और औषध विज्ञान तथा विश्वशान्ति के कार्य्य क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण रचना करने या सहयोग देनेवाले महान् विद्वानों को एक-एक पुरस्कार प्रदान किया जावे। प्रत्येक

पुरस्कार की राशि करीब-करीब सवा लाख रुपयों तक होती है।

साहित्य विषयक पुरस्कार का निर्णय स्वीडेन की स्वीडिश एकेडेमी ऑफ लिटरेचर, रसायन और भौतिक शास्त्र विषयक पुरस्कार का निर्णय स्वीडिश एकेडेमी ऑफ साइन्स, शरीर शास्त्र और औषधि शास्त्र विषयक पुरस्कार का निर्णय स्टॉकहोम की कैरोलिस्का इन्स्टीट्यूट तथा शान्ति पुरस्कार का चुनाव नारवे की पार्लियामेंट द्वारा चुने हुए पाँच व्यक्ति करते हैं। कभी-कभी एक-एक पुरस्कार दो-दो तीन तीन विद्वानों में विभक्त हो जाता है, कभी उपयुक्त रचना न मिलने पर पुरस्कार नहीं भी दिया जाता है। नोबेल पुरस्कार का प्रारम्भ सन् १९०१ से हुआ। सन् १९१३ में साहित्य का नोबल पुरस्कार भारत के विश्वकवि स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर को मिला। और सन् १९३० का भौतिक विज्ञान सम्बन्धी पुरस्कार भारत के महान् वैज्ञानिक श्रीचन्द्रशेखर वेंकट रमण को मिला। कुछ पुरस्कार विजेताओं के नाम—

साहित्य और कला

सन् १९५५—आइसलैण्ड के श्रीहेलडार किलजन लेक्सनेस

सन् १९५६—पोर्टोरीको के श्री जुआन रैमोन जिमनेज

सन् १९५७—फ्रान्स के श्री अलबर्ट कैमास

सन् १९५८—रूस के श्री बोरिस पैस्टर नाक

सन् १९५९—इटली के श्री सेलवेटोर कासीमोडो

सन् १९६०—फ्रान्स के श्री सेण्ट जॉन पर्सा

शान्ति पुरस्कार

सन् १९५७—कनाडा के श्री लेस्टर बी० पियर्सन

सन् १९५८—बेलजियम के श्री रेवरेण्ड डोमेनिक जार्ज पायर

सन् १९५९—इंग्लैण्ड के श्री फिलिप जे० नोएल बेकर

कलिंग पुरस्कार

कलिंग के एक धनी व्यक्ति द्वारा यह १००० पौण्ड का पुरस्कार प्रति वर्ष संसार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक लेखक को दिया जाता है। सन् १९५८ में यह पुरस्कार आस्ट्रिया के श्री कार्लबोन फ्रिश को मिला था।

लेनिन शान्ति पुरस्कार

सोवियट रूस के द्वारा यह पुरस्कार शान्ति के लिए उद्योग करनेवाले संसार के श्रेष्ठ व्यक्तियों को दिया जाता है। सन् १९६० में यह पुरस्कार संयुक्त राज्य अमेरिका के श्री क्रूसइटोन को तथा इण्डोनेसिया के श्री डॉ० सुकर्ण को मिला था। यदि हम भूलते नहीं हैं तो भारतवर्ष के डॉ० किचलू भी इस पुरस्कार को पाने वालों में हैं।

जर्मनी पुस्तक व्यवसाय का शान्ति पुरस्कार

सन् १९५० से आधुनिक जर्मनी द्वारा यह पुरस्कार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उन बुद्धिजीवी लेखकों को दिया जाता है जिन्होंने अपने कार्य्य और आचरण के द्वारा मानव जाति की शान्ति रक्षा में योगदान दिया है सन् १९६१ में यह पुरस्कार भारत के उपराष्ट्रपति सर्व पल्ली राधाकृष्णन को मिला है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

(इन्टर नेशनल लेबर आर्गेनिजेशन)

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् सन् १९१९ में वार्सेलीज की संधि में राष्ट्रसंघ की एक शाखा के रूप में इस इण्टर-नेशनल लेबर आर्गेनिजेशन की स्थापना हुई थी। अब वह संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरण के रूप में काम कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार के द्वारा मजदूरों के रहन-सहन में सुधार करना, उनके आर्थिक और सामाजिक ध्येय की पूर्ति में योग देना इसका उद्देश्य है। संसार के औद्योगिक क्षेत्र का सर्वेक्षण, आंकड़ों को इकट्ठा करना तथा औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य के विकास का यह संगठन करता है। यह संगठन विश्व की सरकारों को इस बात का परामर्श देता है कि वे मजदूरों की रक्षा और विकास के लिए किस प्रकार का आधुनिकतम विधान पारित करें। इस संगठन का प्रधान कार्यालय जिनेवा में है। प्रतिवर्ष इसका एक अधिवेशन होता है जिसमें प्रत्येक देश से दो-दो प्रतिनिधि सरकार के एक प्रतिनिधि मजदूरों का और एक प्रतिनिधि पूंजीपतियों का

सम्मिलित होता है यह संगठन समय-समय पर औद्योगिक सामाजिक तथा श्रम सम्बन्धी प्रश्नों पर अपने प्रतिवेदन और सामयिक पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है। इसकी प्रबन्ध समिति में ४० सदस्य रहते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

कार्लमार्क्स के द्वारा सन् १८६४ में किये हुए लन्दन मजदूर सम्मेलन के द्वारा बनाया हुआ संसार का सर्वप्रथम मजदूर संगठन। इस संगठन ने संसार में सर्वप्रथम मगर बहुत छोटे रूप में मजदूर आन्दोलन की नींव डाली।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वितीय

(इण्टरनेशनल, सेकण्ड)

सन् १८८६ में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के निर्माण का साम्यवादी विचारधारा द्वारा दूसरा प्रयत्न। इस समय तक मजदूर संघों और श्रमजीवी दलों के बल और साधन काफी बढ़ चुके थे और उनके बहुत से वैतनिक कर्मचारी थे। सन् १८८६ में बना हुआ यह मजदूर संगठन इण्टर-नेशनल सेकण्ड कहलाता है। यह पच्चीस वर्ष तक चला। मगर प्रथम महायुद्ध के समय यह कसौटी पर खरा नहीं उतरा। इस संघ में कई ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने मजदूर आन्दोलन को अपने स्वार्थ का सीधन बनाया। आन्दोलन की आड़ में उन्होंने अपने-अपने देश में ऊँचे ऊँचेपद स्वीकार कर लिये। कोई प्रधान मंत्री बन गये और कोई राष्ट्रपति मगर जिनके बल पर उन्हें यह सौभाग्य नसीब हुआ था उन लाखों आदमियों को उन्होंने मझधार में छोड़ दिया। इसी संगठन को प्रथम महायुद्ध के बाद I. L. O के नाम से राष्ट्र संघ ने पुनः जीवन दान दिया। जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है।

अन्तर्राष्ट्रीय तृतीय श्रम संगठन

(इण्टरनेशनल थर्ड)

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने पर लेनिन ने सन् १९१९ में मास्को में एक नया अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ बनाया। यह विशुद्ध साम्यवादी संगठन था। इसमें केवल माने हुए साम्यवादी ही शामिल हो सकते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान में यह भंग कर दिया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम

(इण्टर नेशनल फाइनेंस कार्पोरेशन I. F. C.)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय कोष। जिसकी स्थापना जुलाई १९५६ में की गई।

इस कोष का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के कम विकसित देशों के निजी उद्योग क्षेत्रों (Private sectors) की उत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिए कर्ज देना है। इन कर्जों की वसूली के लिए यह सम्बन्धित राष्ट्रों की सरकारों से किसी प्रकार की गारण्टी नहीं लेता। इसकी अधिकृत पूंजी दस करोड़ रुपये की है। इसके कार्य संचालन के लिए एक संचालक मण्डल है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के सभी निर्देशक जो कम से कम एक राष्ट्र के प्रतिनिधि होते हैं सदस्य होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के अध्यक्ष इसके भी अध्यक्ष होते हैं। यद्यपि यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है पर इसका वैधानिक अस्तित्व और इसका कोष अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से बिलकुल स्वतंत्र है। इसका प्रधान कार्यालय वाशिंगटन में है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

(इण्टर नेशनल मॉनिटरी फण्ड)

विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग को पारस्परिक सहयोग के आधार पर सुदृढ़ एवं विस्तृत करने के उद्देश्य से दिसम्बर सन् १९४५ में इस कोष की स्थापना हुई। इसका प्रधान कार्यालय वाशिंगटन में है।

इसकी स्थापना तब हुई जबकि ब्रिटेन उड्स संविदापत्र के अनुसार इसके कोष का ८० प्रतिशत भाग विभिन्न राष्ट्रों के द्वारा जमा करा दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान में आनेवाली कृत्रिम रुकावटों को हटाना, कम अवधि के विनिमय को सुविधा देना, अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय को सुदृढ़ करना, इत्यादि इसके उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष वैदेशिक मुद्रा या सोने को

बिक्री सदस्य राष्ट्रों को करता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायता मिलती है। विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों को उनकी आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में यह उचित परामर्श भी देता है। यह लागत के मामले में मुद्रा स्फीति को रोकता है तथा आयात पर होने वाले नियंत्रण में कमी लाने का प्रयास करता है। वैदेशिक मुद्रा विनिमय के साधन भी वह सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए सुलभ करता है। आवश्यकता पड़ने पर यह अपने सदस्य राष्ट्र के पास उसकी आर्थिक एवं मुद्रा सम्बन्धी समस्याओं के हल के लिए विशेषज्ञों को भेजता है। ये विशेषज्ञ सदस्य राष्ट्र की समस्याओं के अतिरिक्त विनिमय सम्बन्धी बातों में भी अपना सुझाव देते हैं।

इसके १७ कार्यकारी संचालक होते हैं। जिसमें से पाँच सबसे अधिक धन जमा करने वाले सदस्य राष्ट्रों के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं शेष १२ सदस्य राष्ट्रों के गवर्नरों द्वारा चुने जाते हैं। इसका प्रबन्ध संचालक कार्यकारी संचालकों के द्वारा चुना जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय अणु शक्ति अभिकरण

(इण्टर नेशनल एटामिक एनर्जी एजेन्सी I. A. E. A)

समस्त संसार में अणुशक्ति का प्रयोग शान्ति, सुरक्षा एवं निर्माण की दिशा में करने के उद्देश्य से इस संस्था की स्थापना जुलाई १९५७ में की गई। इसका प्रधान कार्यालय विएना (आस्ट्रिया) में है।

यह संस्था अणुशक्ति के ऐसे प्रयोगों को प्रोत्साहन नहीं देती जिनसे युद्ध की सम्भावना तथा विध्वंस की आशंका बढ़े।

इसके विधान में एक साधारण सभा, प्रशासक परिषद् और एक महानिर्देशक की व्यवस्था है। प्रशासक परिषद् में अधिकतम २३ सदस्य होते हैं। साधारण सभा की बैठक वर्ष में एक बार होती है। प्रशासक परिषद् ही महानिर्देशक का चुनाव चार वर्षों के लिए करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय बल संकट कोष

(इण्टर नेशनल चिलरेन्स इमरजेन्सी फण्ड)

युद्ध पीड़ित बालकों की सहायता और उनके स्वास्थ्य की उन्नति के लिए दिसम्बर १९४६ में स्थापित संस्था।

सन १९५० में इसके कार्यक्षेत्र को बढ़ाकर, विश्व भर के खास कर अविकसित देशों के बालकों के लिए हर तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति इसके कार्यक्षेत्र में ले ली गई। सन् १९५३ में यह विभाग स्थायी बना दिया गया। इस समय इस संगठन का काम लगभग १०० देशों में चल रहा है। इसके द्वारा मलेरिया, यक्ष्मा आदि कठिन रोगों का निवारण, प्रसूतिगृह और शिशु कल्याण गृहों की स्थापना, शिशु आहार, दुग्ध संरक्षण और वितरण आदि कार्य्य किये जाते हैं। इन कार्यों के अतिरिक्त भूकम्प, बाढ़ आदि के समय यह विभाग प्रसूता स्त्रियों और बच्चों की अपेक्षित सहायता करता है। भारत के अन्दर भी इस संस्था के द्वारा करीब सौ से अधिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित हो चुके हैं।

अनेकान्तवाद

जैन दर्शन शास्त्र का वस्तु स्वरूप को निर्णय करने वाला सिद्धान्त जिसे स्याद्वाद भी कहते हैं।

जैन-तत्व ज्ञान की नींव स्याद्वाद या अनेकान्त दर्शन पर स्थित है। जर्मनी के विद्वान डॉ० हर्मनजेकोबी का कथन है कि इस स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रताप से ही महावीर ने अपने प्रतिद्वन्दियों को परास्त करने में बड़ी सफलता प्राप्त की थी। सञ्जय के अज्ञेयवाद के बिलकुल प्रतिकूल इसकी रचना की गई है।

अनेकान्तवाद का अर्थ है वस्तु के स्वरूप का भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना, देखना या कहना। इस सिद्धान्त को दूसरे शब्दों में हम अपेक्षावाद भी कह सकते हैं।

अनेकान्तवाद का कथन है कि "संसार में वस्तु का स्वरूप ही कुछ ऐसे ढंग का है वह एक ही समय में एक ही शब्द के द्वारा पूर्णतया नहीं कहा जा सकता। एक मिट्टी का घड़ा है और उसमें घी भरा हुआ है। ऐसी

हालत में यदि हम उसे एक ही शब्द में मिट्टी का घड़ा कहें तो भी वह ठीक नहीं होगा और यदि एक ही शब्द में उसे घी का घड़ा कहें तो भी ठीक नहीं होगा। इसलिए अनेकान्त कहता है कि द्रव्य रूप में वह मिट्टी का घड़ा है और पर्याय रूप में वह घी का घड़ा है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का निर्णय भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से करने पर ही हम उसके वास्तविक स्वरूप को समझ सकते हैं।

अनेकान्त निरूपण करता है कि संसार की प्रत्येक वस्तु द्रव्य रूप में अविनाशी है मगर पर्याय रूप में विनाशी है। इसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का निरूपण करने में जैन दर्शन ने सप्तभंगी सिद्धांत का निर्णय किया है जिसमें प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का सात दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है। ये सात दृष्टिकोण (१) स्याद्अस्ति (२) स्यान्नास्ति (३) स्यादस्तिनास्ति (४) स्याद्वक्तव्यम् (५) स्यादास्ति अवक्तव्यम् च (६) स्यान्नास्ति अवक्तव्यम् च, (७) स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यं च।

इन्हीं उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर जैन-न्याय शास्त्र की स्थापना हुई है। अंग्रेजी के विद्वान डॉ० थामस का कथन है कि "न्याय-शास्त्र में जैन न्याय का स्थान बहुत ऊँचा है। इसके कितने ही तर्क पाश्चात्य तर्कशास्त्र से मिलते-जुलते हैं। स्याद्वाद का सिद्धान्त बड़ा ही गम्भीर है वह वस्तु की अपेक्षाकृत दृष्टि से भिन्न भिन्न स्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।"

अन्नपूर्णा बाई

नागपुर के भोंसले घराने की विधवा राजमाता, राजा रघु जी भोंसले की धर्मपत्नी।

सन् १८५३ में बरार के राजा रघु जी भोंसले का एकाएक देहान्त हो गया। अपने जीवन काल में वे किसी दत्तक पुत्र को नहीं ले सके थे और न उनके कोई सन्तान थी। इसलिये लार्ड डलहौजी ने उनके सारे प्रान्त को जब्त करके उनके राजमहल के हाथियों को सौ-सौ रुपये में और घोड़ों को बीस-बीस रुपयों में नीलाम कर दिया और उनकी रानियों के सोने और मोतियों के अलंकारों को सरे बाजार नीलाम कर दिया। विधवा राजमाता अन्नपूर्णा का अन्तिम जीवन अत्यन्त अपमानपूर्ण और दुखःमय बीता।

अनन्तवर्मन

कलिंग देश का गंग वंशीय राजा राजराज का पुत्र, समय सन् १०८६ से ११५६ तक।

कलिंग देश आधुनिक उड़ीसा से लेकर आन्ध्र प्रदेश की सीमा तक फैला हुआ था आधुनिक गंजाम, विजगापट्टम और गोदावरी जिले, आन्ध्र अर्थात् पूर्वी घाट का उत्तरीय प्रदेश और महानदी का उत्तरीय प्रदेश तथा उड़ीसा इसमें शामिल था।

ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में कलिंग देश चालुक्य वंश के हाथ से निकल कर गंग वंश के हाथ में आया।

गंग वंश का दूसरा राजा राजराज था। राजराज का विवाह चोल राजा राजेन्द्र की कन्या रूप सुन्दरी से हुआ था इन्हीं का पुत्र अनन्त वर्मन था जो इस कुल का बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसके इतिहास पर प्रकाश डालने वाले चार शिलालेख प्राप्त हुए हैं।

एक शिलालेख में लिखा है कि राजराज ने चोल राजा द्रमिल से युद्ध करके विजयादित्य की रक्षा की थी। अनन्त वर्मन ने भी पूर्व में वेंगी की और पश्चिम में उत्कल राजा की सहायता की और दोनों दिशाओं में विजय के स्मारक रूप दो जय स्तम्भ खड़े किये।

अनन्त वर्मन का एक ताम्र लेख बंगाल ज० रा० ए० सो० में छपा है। जिसमें उसके द्वारा उड़ीसा को जीत कर अपने राज्य में मिला लेने का उल्लेख है। इस ताम्र लेख में यह भी लिखा है कि पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथ का मन्दिर इसी अनन्त वर्मन—जिसे चोड़-गंग भी कहते हैं—ने बनाया। समस्त संसार का उत्पत्ति कर्ता और संसार भर में व्याप्त जगन्नाथ इस सुन्दर मन्दिर में आकर रहने लगा और लक्ष्मी भी रत्ना कर के घर को छोड़ कर यहाँ पर आनन्दपूर्वक रहने लगी।

अएटोनी माल्येवस्की

पौलेएड का एक रोमाण्टिक कवि जिसका समय सन् १७६३ से १८२६ तक है। इसका प्रसिद्ध काव्य 'मार्जा' है जिसमें उसने तुर्कों के विरुद्ध पोलो और यूक्रेनियों के सम्मिलित संघर्ष का वर्णन किया है। इस काव्य में राष्ट्रीयता की उच्च भावनाएं, प्रेम और घृणा के सजीव दृश्य, भूत काल का गौरव और वीरता की कहानियाँ अंकित की गई हैं।

अदी-इब्न-जैद

छठी शताब्दी का प्रसिद्ध अरबी और फारसी भाषा का कवि। (सन् ५८० ६०२) यह ईराक का रहने वाला ईसाई था। इसका फारसी और अरबी दोनों शैलियों पर समान अधिकार था। इसका खानदान अलहीरा के अरब लखमियों का सेवक और प्रिय पात्र था। उस समय इसकी ख्याति अन्तर्जातीय हो गई थी और वह अलहीरा के सब से प्रसिद्ध बादशाह अल-नूमान तृतीय का कृपा भाजन था।

अनसन

इंग्लैएड के राजा जार्ज द्वितीय के समय में अंग्रेजी जलसेना का सेनापति जिसने सन् १७४७ ई० में फ्रान्स की जलसेना को हरा दिया और जिसके परिणाम स्वरूप सन् १७४८ में इंग्लैएड और फ्रान्स के बीच में एक्स ला चेपेल की सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार प्रशिया के राजा फ्रेडरिक दि ग्रेट को सिलीसिया का प्रान्त मिल गया और मेरिया थेरेसा को आस्ट्रिया की राजगद्दी का अधिकार प्राप्त हो गया।

अकागाता

जापान का नाटकीय रंगमंच जिसमें स्त्रियों का पार्ट जापान के अल्पवयस्क तरुण करते थे।

सोलहवीं सदी के अन्त तक जापान के रङ्गमंच पर स्त्री पार्ट की अदायगी वहाँ की महिलाएं करती थीं। इस रङ्गमंच को "ओन्ना काबुकी" (नारी रङ्गमंच) कहते थे। मगर सन् १६२९ में शीजापान के शोगुनी शासन ने इस नारी रंगमंच को सार्वजनिक सदाचार के खिलाफ समझ कर घोषणा के द्वारा उसका अन्त कर दिया। जब नारियां रंगमंच से अलग होगई तो उनकी जगह स्त्री-पात्र का काम छोटी उमर के तरुण लोग करने लगे इस नई योजना का नाम "अकागाता" रक्खा गया। मगर इस योजना से भी जब सर्वजनिक सदाचार की रक्षा होते नहीं देखी गई तो सन् १६५२ में एक दूसरी घोषणा के द्वारा अकागाता रंगमच भी बन्द कर दिया गया।

अनन्त कीर्ति

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्य्य जो अनुमानतः ई० स० १०२५ के आसपास हुए। ये बड़े यशस्वी तर्क-शास्त्र के पण्डित थे। इनके लिखे हुए दो ग्रन्थ धर्मज्ञ-सिद्धि और सर्वज्ञ-सिद्धि प्रकाशित हो चुके हैं।

अन्तिओकस द्वितीय

सिकन्दर के ग्रीक सेनापति सेल्यूकस द्वारा स्थापित ग्रीक बाख्त्री साम्राज्य का सम्राट अन्तिओकस द्वितीय। यह सेल्यूकस का उत्तराधिकारी था। इसने मध्यएशिया के अपने साम्राज्य का बहुत उत्तम संगठन और विस्तार किया। ग्रीक इतिहास में यह अन्तिओकस महान के नाम से प्रसिद्ध है मगर इसकी वृद्धावस्था में इसके साम्राज्य का संगठन ढीला हो गया और पार्थव तथा बाख्त्री लोगों ने विद्रोह करके स्वतन्त्रा प्राप्त कर ली।

इसके बाद इसके उत्तराधिकारी अन्तिओकस तृतीय ने अपने साम्राज्य को पुनर्संगठित करने के लिये बाख्त्रियों के नेता यूथीडेमो पर हमला किया मगर जब उसमें सफलता नहीं मिली तो उसने बाख्त्री राज्य की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया और यूथीडेमो के पुत्र दिमित्रिय के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इसके बाद अन्तिओकस ने भारत पर भी आक्रमण किया मगर उसमें भी उसे सफलता न मिली और वापस लौटना पड़ा।

अतिमालोगी

ईसाई सेण्ट इसीदोर द्वारा प्राचीन ज्ञान की रक्षा के लिए रचित एक विश्वकोष जो कई सदियों तक यूरोप में ज्ञान कोष का उपयोग देता रहा। इसकी रचना छठीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुई।

अनवर पाशा

तुर्की के जदीद (नवीन) दल का नेता। अनवर पाशा ने कमाल पाशा के पूर्व जदीद तुर्क दल का संगठन किया था और वह तुर्की का एक प्रभावशाली नेता रहा उसके प्रभाव को देख कर तुर्की के सुलतान ने उसे अपने शासन में उच्च स्थान दिया। मगर कमालपाशा का प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ तुर्की में अनवरपाशा का प्रभाव कम होने लगा और उसे भाग कर बुखारा आना पड़ा। बुखारा में भी जब मौलवियों के प्रभाव के कारण उसे सफलता न मिली तो वह ताजिकीस्तान की पहाड़ियों में आ गया। इन पहाड़ों में बसनेवाले बासमची लोगों ने अनवरपाशा का समर्थन किया मगर वे लोग भी केवल उसकी सैनिक योग्यता से लाभ उठाना चाहते थे। इसलिए यहाँ पर भी उसे अपने मिशन में सफलता नहीं मिली और इसी निराश स्थिति में उसकी मृत्यु हो गई।

अनानबेन-डेविड

यहूदी जाति में "करायट" सम्प्रदाय का संस्थापक जो आठवीं सदी में हुआ। इस सम्प्रदाय के लोग "ताल्मुद" धर्म ग्रन्थ को न मान कर बाइबिल मात्र को प्रमाण मानते थे और उसी के आदेशों पर चलते थे। करायट सम्प्रदाय के नेताओं ने अपना साहित्य भी प्रचुर मात्रा में निर्माण किया और बाइबिल तथा हिब्रू भाषा के प्रति अपनी निष्ठा से प्राचीन यहूदी परम्परा के नेताओं को प्रभावित किया।

अनाटोल फ्रान्स

फ्रेञ्च साहित्य का अमर उपन्यासकार जो उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में तथा बीसवीं सदी के प्रथम चरण में हुआ।

फ्रेञ्च साहित्य के अन्तर्गत बीसवीं शताब्दी, नये यथार्थ वादी आदर्श, नये प्रतीक और नई साधनाओं के साथ अवतीर्ण हुई। साहित्य के अन्तर्गत इस शताब्दी के परिवर्तन की झलक प्रसिद्ध उपन्यासकार "अनाटोल फ्रान्स" के उपन्यासों में। मिलती है। अनाटोल फ्रान्स ने अपनी लोह कलम से फ्रेञ्च भाषा के उपन्यास क्षेत्र को एक नवीन मोड़ दिया।

उसका प्रसिद्ध उपन्यास "थाया" है। थाया एक अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक नर्तकी थी। जिसके यहाँ उस समय के अनेक कवियों, दार्शनिकों और विद्वानो का जमघट लगा रहता था। एक ईसाई पादरी जो बड़ा कठिन तपस्वी था और टाट के बने हुए लबादों से अपने शरीर को ढके रहता था, उसको इलहाम हुआ कि थाया का उद्धार करो वह सारे नगर को पाप पथ पर ले जा रही है। पादरी थाया के यहाँ जाकर किसी प्रकार समझा-बुझा कर अपने आश्रम में ले आता है मगर उसका उद्धार करने के साथ ही उसके मन के किसी कोने में एक अहंकार की भावना जाग्रत होती है। उसके उपदेशों को सुनकर थाया एक आदर्श तपस्विनी हो जाती है मगर पादरी की भावनाएँ विकृत हो जाती हैं और वह थाया के साथ वासनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। उस समय उसकी मनोदशा का वर्णन करने में लेखक ने अपनी कलम तोड़ दी है और बतलाया है कि एक सूक्ष्म अहंकार की भावना ने बढ़ते बढ़ते उस पादरी के अन्दर कितनी कुत्सित भावनाएँ पैदा कर दीं जिसके परिणामस्वरूप थाया का उद्धार हो गया मगर उसके उद्धारक पादरी को अनन्त नरक की यातनाएँ उठाना पड़ी।

वास्तव में इस उपन्यास ने "अनाटोल फ्रान्स" को अमर कर दिया है इसके सिवाय इस लेखक की "लोर्मदु मेल" "ल-लिव्रद मोनामी" "ल-येती पीयर" "इस्तबार कोता पेरिन" इत्यादि रचनाएँ भी फ्रेञ्च भाषा की बहुमूल्य सम्पत्ति है।

अना केरेनिना

रूस के प्रसिद्ध साहित्यकार और महात्मा टॉलस्टाय का संसार प्रसिद्ध उपन्यास जो सन् १८७५-७६ में प्रकाशित हुआ।

इस उपन्यास में इस महान् कलाकारने रूस, और सेण्टपीटस वर्ग के उच्च वर्गीय सम सामयिक जीवन का एक सजीव, जीता-जागता, वास्तविक और अनूठा चित्र अंकित कर दिया है। इस उपन्यास में भी महान् कलाकार की कला ने इसकी दूसरी कृतियों ही की तरह राष्ट्रीय सीमा को लांघकर अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लिया है। इस कहानी को पढ़कर कोई भी पाठक यह अनुभव नहीं करता कि वह कोई विदेशी कहानी पढ़ रहा है। अद्भुत कलाकारिता के साथ व्रोन्स्की के प्रति अना के प्रेम का उद्घाटन और विकास होता है। अत्यन्त स्वाभाविक घात-प्रतिघात के साथ कहानी का प्रत्येक दृश्य, प्रत्येक घटना, प्रणय के उतार-चढ़ाव और अन्तिम विपत्ति तक सभी कुछ एक अद्भुत् तरीके से आगे बढ़ता है मगर अन्ततक कहीं भी शिथिलता या अत्यधिक विस्तार का अनुभव नहीं होता सभी कुछ सत्य, सुगम और स्वाभाविक दिखलाई पड़ता है।

अन्नाकस लुकानस

(Annacus lucanus)

लैटिन भाषा का एक प्रसिद्ध रोमन कवि। जिसका समय ईस्वी सन् ३९ से ६५ तक है।

अन्नाकस प्राचीन युग का एक लैटिन भाषा का कवि है। इसने पाम्पेयाई के फार्सलस-युद्ध पर एक वीर काव्य की रचना की। इसकी कविता रोमन महाकवि "वर्जिल" के समकक्ष मानी जाती है। उस काल के अन्य काव्यों की तुलना में यह श्रेष्ठ माना जाता है।

अन्नाकस सेनेका

लैटिन भाषा का एक प्रसिद्ध कवि, जिसका समय ईस्वी सन् पूर्व ४ से लेकर सन् ६५ ई० तक।

वह लुकानस का चाचा था। यह और लुकानस दोनों उस समय प्रचलित रूढ़िवाद के बहुत विरुद्ध थे। प्राचीन मान्यताओं ने उस समय रूढ़ियों का रूप धारण कर लिया था और वे समाज की उन्नति में बाधक हो गई थीं। अन्नाकस सेनेका ने अपनी कविताओं और नाटकों में इनका प्रबल विरोध किया। जिसके फलस्वरूप रोम के तत्कालीन सम्राट् नीरोने इन दोनों काका भतीजों को देशद्रोही करार देकर देश से निर्वासित कर दिया जिससे मजबूर होकर दोनों को आत्महत्या कर लेनी पड़ी। सेनेका ने नौ ट्रेजिडी-नाटक प्रवास में लिखे थे।

अन्सारी शौकत उल्ला

कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय भारतीय कांग्रेस के एक मुस्लिम नेता डा० शौकत उल्ला अन्सारी। सन १९२२ में जब महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिये गये उसके बाद कांग्रेस के अन्दर मतभेद होकर दो विचार धाराएं हो गईं। एक विचार धारा ब्रिटिश शासन की कौन्सिल प्रवेश के पक्ष में थी जो 'स्वराज्य पार्टी' के नाम से मशहूर हुई और दूसरी विचार धारा अपरिवर्त्तन के पक्ष में थी इस अपरिवर्तनवादी धारा के समर्थक डा० अन्सारी और राजगोपालाचारी थे। इसके पश्चात् १९२७ में जब मद्रास में कांग्रेस का अधिवशेन हुआ तब डा० अन्सारी इस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। इस अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार द्वारा भेजे जाने वाले साइमन कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का प्रस्ताव पास हुआ। इसी अधिवेशन में यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेस की कार्यकारिणी एक सर्वदल सम्मेलन का आयोजन करे और उसमें वह भारत वर्ष के लिये एक ऐसे विधान का ढाँचा बनाये जो सब दलों को स्वीकृत हो। इसी अधिवेशन में एक प्रस्ताव ऐसा भी पास हुआ जिसमें भारत का अन्तिम लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता रखा गया।

सन् १९३३ में जब देश के राजनैतिक आन्दोलन में निराशा का वातावरण छाया हुआ था देश की स्थिति में फिर से जीवन लाने के लिये डा० अन्सारी और डा० बिधानचन्द्र राय ने सन् १९३४ के मार्च महीने में कांग्रेसी सदस्यों की एक परिषद् बुलाई। इस परिषद् में अगले

चुनाव को लड़ने के लिये स्वराज्य पार्टी को फिर से जीवित करने का प्रस्ताव किया गया।

डा० अन्सारी राष्ट्रीय विचारों के मुसलमान थे। उन्होंने अंग्रेजी में 'पाकिस्तान' नामक एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक में पाकिस्तान की कल्पना के मूल आविष्कारक केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विद्यार्थी चौधरी रहमतअली पर एक टिप्पणी लिखते हुए उन्होंने लिखा है—

"उस समय केम्ब्रिज के भारतीय विद्यार्थियों का साधारणतः यह विश्वास था कि चौधरी रहमत अली को, जो कि न तो कोई विशेष पढ़ाई कर रहा है और न जिसके पास खर्च चलाने के लिये कोई व्यवस्था है, फिर भी जो प्रोपोगेण्डा और दावतों में खूब रुपया उड़ाता है, यह सारी प्रेरणा और धन लन्दन के इण्डिया हाउस से मिलता है। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि तब तक भारत में पाकिस्तान का नाम न तो किसी ने सुना था न यहां उसकी कोई चर्चा थी उस समय भी इंग्लैण्ड का चर्चिल पंथी दल और टोरी समाचार-पत्र उसका बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन कर रहे थे और पार्लियामेण्ट की दोनों सभाओं में उस पर अनेक बार प्रश्न किये जा चुके थे।"

इन सब घटनाओं से डा० अन्सारी ने उक्त पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पाकिस्तान और देश विभाजन के कार्य में तथा सम्प्रदायवाद को उकसाने में अंग्रेज राजनीतिज्ञों का कितना गहरा हाथ था।

अनुशीलन समिति ढाका

बंग-भंग के समय में ढाका के अन्दर क्रान्तिकारियों ने अनुशीलन समिति नामक एक संस्था की स्थापना की थी। ढाका अनुशीलन समिति के संस्थापक श्री पुलिन बिहारी दास थे। इस समिति की शाखाएं उत्तरी तथा दक्षिणी बंगाल के कई स्थानों पर फैली हुई थी। उनका अनुशासन और संगठन व्यवस्था भी अच्छी थी।

नवम्बर १९०८ में अब यह समिति गैरकानूनी घोषित की गई उस समय वहाँ से जो कागज प्राप्त हुए उनमे पता चलता था कि इस समिति में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को चार प्रतिज्ञाएं करनी पड़ती थीं जो (१) आदि प्रतिज्ञा (२) अन्तिम प्रतिज्ञा (३) प्रथम विशेष प्रतिज्ञा और (४) द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा कहलाती थी। इन प्रतिज्ञाओं में ईश्वर, अग्नि, मां काली और अपने नेता को साक्षी बना कर संस्था के आदेशों का पूरा-पूरा पालन करने और अपने विरोधियों को अधिक से अधिक चोट पहुँचाने और समिति के आन्तरिक रहस्यों को किसी पर भी प्रकट न करने का वचन देना पड़ता था और अन्त में कहना पड़ता था कि अगर मैं यह प्रतिज्ञा पूरी न कर सकूं तो ब्राह्मण, पिता-माता और महान देश भक्तों का अभिशाप जला कर मुझे खाक कर दे।

ये प्रतिज्ञाएं अधिकांश अवस्था में भवानी मन्दिर में माँ काली के सम्मुख देव-पूजा के बाद ली जाती थीं। ये भवानी मन्दिर शहर के कोलाहल से दूर एकान्त स्थान में होते थे जहाँ क्रान्ति के पुजारी ब्रह्मचारी और सन्यासी के रूप में शक्ति की आराधना करते थे।

सन १९०८ में ढाका अनुशीलन समिति के गैर कानूनी करार दिये जाने के पश्चात् इसकी शाखा कलकत्ते में खोली गई थी। यहाँ पर श्री मक्खन सेन के नेतृत्व में यह संस्था काफी फली-फूली। देश के अन्य भागों में क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने में भी यह संस्था बहुत प्रयत्नशील रहती थी।

अपभ्रंश साहित्य

प्राकृत और मागधी भाषा के परिवार की एक भाषा

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र अपभ्रंश साहित्य के पाणिनी माने जाते हैं। पाणिनी के ससार प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरण की ही तरह उन्होंने अपभ्रंश भाषा के एक व्याकरण को रचना की। इन्होने अपभ्रंश भाषा के साहित्य का एक संग्रह भी किया।

विक्रम की आठवीं और दसवीं सदी के बीच में कवि स्वयंभूदेव और उनके पुत्र त्रिभुवन देव हुए। जिन्होंने हरिवंश पुराण और परम चरित्र (रामायण) की रचना अपभ्रंश भाषा में की। विक्रम की लगभग दसवीं सदी में धनपाल नामक कवि हुआ जिसने "भावी संयता" नामक कथा की अपभ्रंश भाषा में रचना की।

इस कथा का अंग्रेजी अनुवाद जर्मनी के जैन धर्म के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० हरमनजेकोबी ने सन् १६१८ में प्रकाशित किया। और इसी का अनुवाद गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज ने प्रो०गुरो की प्रस्तावना और टिप्पणियों सहित प्रकाशित किया।

महाकवि धवल ने अपभ्रंश भाषा के १८००० श्लोकों में हरिवंश पुराण की। रचना की इसी प्रकार और भी कई जैन विद्वानों और कवियों ने अपभ्रंश साहित्य की खूब श्री वृद्धि की।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि आधुनिक गुजराती भाषा की मूल उत्पत्ति भी इसी अपभ्रंश भाषा से मानी जाती है।

अप्पा साहब

लार्ड डलहौजी के समय में सतारा का राजा।

सन् १८३६ में ब्रिटिश सत्ता को उलट देने के षड्यन्त्र में शरीक होने के अपराध में लार्ड डलहौजी ने सतारा के राजा छत्रपति प्रतापसिंह को गद्दी से हटाकर उसकी जगह अप्पा साहब को गद्दी पर बिठाया था।

मगर जब सन् १८४८ में अप्पा साहब की मृत्यु हो गई तो उनको निःसन्तान समझ कर सतारा के राज्य को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जब कि छत्रपति के साथ ब्रिटिश सरकार की जो सन्धि हुई थी उसकी पहली शर्त इस प्रकार थी।

"बहादुर अंग्रेज सरकार इस बात को मानती है कि दर्ज किया हुआ प्रान्त और प्रदेश छत्रपति महाराज को अथवा उनके संस्थान को दिया जायेगा। महाराज छत्रपति और महाराज के पुत्र-पौत्र वंशज तथा उत्तराधिकारियों को सदा के लिये याने पीढ़ी दर पीढ़ी उपर्युक्त प्रदेश पर राज्य करते रहने का अधिकार है।"

इस शर्त के होते हुए भी हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार अप्पा साहब ने दत्तक पुत्र गोद लिया था फिर भी अंग्रेजों ने सतारा नरेश के निःसन्तान होने का बहाना लेकर सतारा को जब्त कर लिया।

अप्पा राव

तैलगू के राष्ट्रीय कवि गुरजाडा अप्पाराव

आज से सौ वर्ष पूर्व ३० नवम्बर १८६१ को आन्ध्र के विशाखापट्टनम् जिले के रायवरम् नामक ग्राम में श्री गुरजाडा अप्पाराव का जन्म हुआ था। कॉलेज के दिनों में ही उन्होंने तैलगू और अंग्रेजी में कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया था। इन्हीं दिनों उनकी सारधंर और चन्द्रहास नामक कविताएँ बंगाल की "रीस एण्ड रैय्यत" नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। उस पत्रिका के तत्कालीन सम्पादक श्री शम्भूनाथ मुकर्जी ने इन कविताओं की बहुत प्रशंसा की थी। उन्होंने उन्हें लिखा था कि आप में देश भक्ति की प्रबल भावनाएँ हैं मगर आपके सामने काँटों का रास्ता है।

श्री अप्पाराव गुरजाडा ऐसे निर्भीक और साहसी कवि थे कि उन्होंने अपनी काव्य वीणा के द्वारा देश भक्ति के विभिन्न सुरों को झंकृत कर जाति को नूतन सन्देश दिया था। उनका "देश भक्ति" नामक गीत जो जनता का कण्ठहार बन गया इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है।

३० नवम्बर सन् १६१५ को उनका देहान्त हुआ और ३० नवम्बर १६६१ को उनकी शतवार्षिक जयन्ति सारे आन्ध्र प्रान्त में बड़ी धूमधाम से मनाई गई।

अपरादित्य प्रथम

शिलाहार वंश का प्रतापी राजा। सन् ११२५ से ११४५ तक

अपरादित्य प्रथम, शिलाहार राजा अनन्तपाल का पुत्र था। यह भी एक प्रसिद्ध राजा था। इसका एक पण्डित इसका प्रतिनिधि बन कर काश्मीर की राजसभा में गया था। जिसका कि कश्मीर के कवि मंखा ने अपने श्रीकण्ठ चरित्र में वर्णन किया है।

अपरादित्य द्वितीय

शिलाहार वंश का अन्तिम और प्रतापी राजा। मल्लिकार्जुन का पुत्र। सन् ११७५ से १२०० तक।

दूसरा अपरादित्य शिलाहार वंश का अन्तिम और प्रतापी राजा था। अपने शिलालेखों में उसने अपने लिए 'महामण्डलेश्वर' नहीं बल्कि "महाराजाधिराज" और "कोकण चक्रवर्त्ति" शब्द का प्रयोग किया है। इससे पता चलता है वह बिलकुल स्वतन्त्र राजा था। अनेक प्रतापी राजाओं की तरह अपरादित्य स्वयं भी बड़ा विद्वान था। याज्ञवल्क्य स्मृति पर अपरार्क टीका उसी की लिखी हुई है। यह ग्रन्थ सारे भारत में आज भी प्रमाणित मानी जाती है। काश्मीर जैसे सुदूर देशों में भी इसे प्रमाण भूत मानते हैं।

अपोलोनियस

ग्रीक साहित्य का कवि जो वीर-काव्यों का बड़ा पक्षपाती थे। इसका प्रसिद्ध काव्य "आर्गोनौटिका" है जिसमें उसने प्राचीन देवोत्तर प्रसंगों को अपने काव्य का आधार बनाया है। इस कवि का अपने समकालीन ग्रीक कवि काली मेकस से गहरा सैद्धान्तिक मतभेद था कालीमेकस स्फुट कविताओं का प्रवर्तक था और अपोलोनियस वीर काव्यों का हिमायती था इन दोनों कवियों के मतभेद से उस समय ग्रीक काव्य क्षेत्र में दो दल हो गये थे। अपोलोनियस का समय ई० स० पू० २६५ से २१५ तक है।

अफलातून
(Plato)

विश्व का एक महान दार्शनिक, विचारक तथा यूरोपीय राजनीति का जन्मदाता, जो यूनान में पैदा हुआ। जिसने सब से पहले राजनैतिक समस्याओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से क्रम बद्ध रूप में विवेचन किया।

अफलातून का जन्म ई० सन् से ४२७ वर्ष पूर्व यूनान के एथेन्स नगर में एक कुलीन घराने के अन्दर हुआ था। उस समय सारा यूनान राजनैतिक दृष्टि से नगर राज्यों में बँटा हुआ था। अफलातून का जन्म ऐसे समय में हुआ जब एथेन्स का नगरराज्य अपने स्वर्ण युग को पार कर अवनति के मार्ग पर आरूढ़ हो गया था। महान विचारक और राजनीतिज्ञ पैरेक्लीज मर चुका था और जनतन्त्र का स्थान "तीस आततायियों" (Thirty Tyrants) की आततायी शाही ने ले लिया था। इसी आततायी शाही ने अफलातून के गुरू सुकरात जैसे महात्मा को केवल अपनी स्वतन्त्र विचारधारा रखने के अपराध में जहर का प्याला पिलाकर मृत्यु-दण्ड दिया था।

सुकरात की इस अनीति पूर्ण हत्या का अफलातून को बहुत ही गहरा सदमा लगा जिसकी वजह से वह जनतन्त्रात्मक शासन के खिलाफ हो गया। वह ऐसे जनतन्त्र को पसन्द भी कैसे कर सकता था जिसने एक ऐसे व्यक्ति को मौत के घाट उतार दिया जिसे वह संसार का सर्वश्रेष्ठ, न्यायशील और बुद्धिमान पुरुष समझता था। संभव है इसी कारण से अपने "रिपब्लिक" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में उसने जनतन्त्रात्मक शासन पद्धति को बहुत ही नीचा स्थान दिया है।

प्लेटो जब बीस वर्ष का था तभी वह सुकरात के प्रभाव में आया और जब तक सुकरात जीवित रहा वह उसका शिष्य बना रहा। सुकरात की हत्या से उसकी यह धारणा बन गई कि एक दार्शनिक और एक राजनीतिज्ञ के बीच न केवल ध्येय की एकता का अभाव है वरन् वे एक दूसरे के बिल्कुल विरोधी हैं। मगर जन कल्याण के लिये यह आवश्यक है कि दार्शनिक और राजनीतिज्ञ के बीच की खाई को पाट दिया जाय जिससे सुकरात जैसे तपस्वियों का लाभ राजनीति का क्षेत्र ग्रहण कर सके।

इन सब घटनाओं के प्रकाश में इस महान विद्वान ने अपनी विचार परम्परा का विकास किया और एक ऐसे अद्भुत् तरीके से राज्य, समाज, शिक्षा इत्यादि सभी महत्वपूर्ण सामाजिक विषयों पर गहराई से विचार कर उनमें ऐसा सामञ्जस्य स्थापित किया कि हजारों वर्ष बीत जाने और मानव जाति की विचार धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाने के बावजूद उसकी विचार धारा की मौलिकता तथा समाज रचना के सम्बन्ध में उसके अनोखे

सिद्धान्तों की महत्ता में आज तक किसी प्रकार की कमी नहीं आई।

प्लेटो की वैसे तो बहुत सी कृतियां हैं मगर उसकी तीन रचनाओं ने संसार के साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान ग्रहण किया है—(१) रिपब्लिक (२) स्टेट्समेन (३) लॉज यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इन तीनों कृतियों की विचारधाराओं में थोड़ा बहुत मौलिक अन्तर भी आ गया है जो मनुष्य की आयु और उसके विचारों की परिपक्वता के हिसाब से स्वाभाविक भी है।

रिपब्लिक

सारे संसार का राजनीतिज्ञ और विद्वत् समुदाय रिपब्लिक को अफलातून की सबसे महान और सबसे श्रेष्ठ रचना मानता है। इस ग्रन्थ में अफलातून अपने पूर्ण और सुन्दर रूप में प्रकट हुआ है।

मौलिक रूप से यह एक राजनैतिक ग्रन्थ है जिसका प्रतिपाद्य विषय राज्य का स्वरूप तथा संगठन है मगर इसके साथ ही साथ इसमें समाज शास्त्र, आचार शास्त्र, शिक्षा शास्त्र और न्याय शास्त्र का भी समावेश हो गया है। इसलिये इस ग्रन्थ का एक नाम "कन्सर्निंग जस्टिस" (Concerning Justice) भी दिया गया है।

रिपब्लिक ग्रन्थ के अन्तर्गत जिस मौलिक प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न अफलातून ने किया है वह प्रश्न "न्याय क्या है? और जिस आदर्श राज्य में उसकी प्रतिष्ठा होती है उस राज्य का स्वरूप कैसा होना चाहिये?"

एक आदर्श राज्य की व्याख्या करते हुए अफलातून ने बतलाया है कि एक कल्याणकारी तथा दैवी सम्पद् युक्त राज्य का लक्षण ही यह है कि उसके अन्तर्गत सारे समाज को उचित न्याय प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसमें चार गुणों का समष्टिगत योग क्षेम होना आवश्यक है। ये चार गुण (१) ज्ञान (२) शौर्य्य (३) संयम (४) न्याय हैं।

दूसरी महत्व की बात कल्याणकारी राज्य के लिये उसने यह बतलाई है कि शासन की पवित्रता की रक्षा के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि राजनैतिक और आर्थिक इन दोनों शक्तियों को राज्य में कदापि एकत्रित न होने दिया जाय। शासन की स्वच्छता तथा कुशलता के लिये कोई चीज इतनी घातक नहीं होती जितनी कि राजनैतिक तथा आर्थिक इन दोनों शक्तियों के एकत्रित हो जाने से होती है। राज्य में जिन लोगों के हाथ में राजनैतिक शक्ति होती है उन्हीं के हाथों में अगर आर्थिक शक्ति भी आ जाय तो वे स्वार्थहीन न्याय तथा ज्ञान का मार्ग छोड़ कर अपने वैभव विलास के पीछे जनता का शोषण करना शुरू करते हैं।

इसलिये अफलातून ने रिपब्लिक में समाज को तीन वर्गों में बाँट कर उनके अलग-अलग कर्तव्य सुनिश्चित किये हैं—

(१) एक वर्ग शासकों का वर्ग है। राज्य का शासन चलाने और उसमें न्याय का योगक्षेम करने के लिये एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग होना चाहिये जिसने शासन सचालन के लिये विशेष प्रकार की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की हो। शासन संस्था उन्हीं लोगों के हाथ में होना चाहिये जिनमें इस कार्य के लिये आवश्यक प्रकृति प्रदत्त गुण हों। अफलातून ने शासक वर्ग की शिक्षा-दीक्षा पर बहुत जोर दिया है और रिपब्लिक का दूसरा तथा तीसरा अध्याय इसी विवरण से भरा पड़ा है। इस प्रकार के शासकों को उसने आदर्श राजा की संज्ञा दी है। इन राजाओं के कर्तव्य का वर्णन करता हुआ वह लिखता है कि—

"शासक वर्ग के इन बुद्धिजीवी लोगों के पास न तो अपना कोई घर होना चाहिये और न ऐसा गोदाम जो सबके लिये खुला न हो। उन्हें नागरिकों से केवल उतना ही वेतन लेना चाहिये जो उनकी सामान्य आवश्यकताओं को पूरा कर सके। उन्हें सामान्य भोजनालयों में भोजन करना चाहिये और साधारण घरों में सिपाहियों की तरह रहना चाहिये। सोना और चाँदी को उन्हें छूना भी न चाहिये और न पहनना चाहिये इसी में उनकी मुक्ति है और ऐसा ही करने से वे राज्य के सच्चे संरक्षक बन सकेंगे।

लेकिन यदि उन्होंने घर, भूमि या धन का संचय कर लिया तो वे शासक की जगह गृहस्थी और कृषक बन जावेंगे। सारे समाज के वे मित्र न रह कर शत्रु बन जावेंगे

और जनता के ऊपर अत्याचार करने लगेंगे। वे दूसरों से घृणा करेंगे और दूसरे उनसे घृणा करेंगे और जीवन भर उनके ऊपर बाहरी शत्रुओं की अपेक्षा आन्तरिक शत्रुओं का भय छाया रहेगा और राज्य का विनाश होने में देर न लगेगी!"

अफलातून के द्वारा राजपुरुषों के लिये बनाई हुई इस योजना के साथ जब हम महात्मा गांधी के द्वारा निर्मित मन्त्रियों की आचरण संहिता की तुलना करते हैं तो इन दोनों में एक अद्भुत साम्य नजर आता है। यह एक अजीब बात है कि ईसा से चार सौ बरस पहले का एक महान् दार्शनिक और ईसा की बीसवीं सदी का एक महान् सन्त दोनों एक ही ढंग से और करीब करीब एक ही आवाज में संसार को चेतावनी दे रहे हैं। १६ अप्रैल १९४७ को महात्मा गांधी ने शासकों या मन्त्रियों के लिये एक आचारसंहिता का निर्माण किया था। उसकी चौथी, पाँचवीं और आठवीं धाराएँ इस प्रकार हैं—

(४) मन्त्रियों का व्यक्तिगत जीवन इतना सादा होना चाहिये कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें हर रोज देश के लिये एक घण्टा शारीरिक श्रम करना ही चाहिये। भले ही वे घर में बैठ कर चर्खा कातें या अपने घर के आसपास साग-सब्जी या अन्न पैदा कर देश का उत्पादन बढ़ाएँ।

(५) मोटर और बंगला तो होना ही नहीं चाहिये। आवश्यक हो वैसा और उतना बड़ा साधारण मकान काम में लेना चाहिये। हाँ, दूर जाना हो तो जरूर मोटर काम में ली जा सकती है मगर उसका कम से कम प्रयोग होना चाहिये।

(६) आज जब देश में करोड़ों मनुष्यों को बैठने के लिये शतरंजी और पहनने को वस्त्र भी नहीं मिलते हैं उस हालत में मन्त्रियों को कीमती सोफासेट, चमकीले फर्नीचर और भड़कीली कुर्सियों का उपयोग नहीं करना चाहिये। ऐसे सादे, सरल और आध्यात्मिक विचार रखने वाले मन्त्रियों या जनता के सेवकों की रक्षा जनता बड़े प्रेम के साथ करेगी। प्रत्येक मंत्री के बंगले के पास जो छः या इससे अधिक सिपाहियों का पहरा रहता है वह अहिंसक मन्त्रिमण्डल के लिए बेहूदा लगना चाहिये।

मगर इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य के स्वाभाविक भोग प्रधान मनोविकारों ने और सत्ता की दुर्दमनीय लालसा ने शासक वर्ग को न तो उस युग में अफलातून की बातें सुनने दीं और न आज के युग में गांधी जी के आदेशों को क्रियात्मक रूप देने दिया। इतिहास मानव प्रकृति की स्वाभाविक कमजोरियों को लिए हुए आज भी उसी गति से चल रहा है जिस गति से ढाई हजार वर्ष पहले चल रहा था।

(२) रिपब्लिक में दूसरा वर्ग उन लोगों का निश्चित किया गया है जो समाज में साहस और शौर्य के गुण का योगक्षेम करे। यह वर्ग सैनिक वर्ग कहलाता है इस वर्ग के ऊपर समाज की आन्तरिक शान्ति की रक्षा और बाहरी आततायियों से उसे बचाने का कर्तव्य निश्चित किया गया था। इस वर्ग की आचार संहिता भी पहले बुद्धिजीवी वर्ग की भाँति रखी गई है अर्थात् यह वर्ग भी सम्पत्ति से तथा पारिवारिक स्वार्थों से अलग रखा गया है।

(३) तीसरा वर्ग समाज का उत्पादक वर्ग है जो खेती करके, वाणिज्य करके समाज के उत्पादन को बढ़ा कर उसका सारे समाज में योगक्षेम करता है। इस वर्ग के लिए सम्पत्ति संग्रह करने, पारिवारिक जीवन व्यतीत करने तथा भोग विलास की छूट रखी गई है। मगर इसे सांगोपांग रूप में उपरोक्त दो वर्गों के अधीन रहने की व्यवस्था दी गई है। शासन या सुरक्षा के मामले में न तो इस वर्ग से सलाह लेने की आवश्यकता समझी गई और न यह उसमें दखल दे सकता था। इसका काम सिर्फ उपरोक्त दो वर्गों के आदेशों का पालन करना रखा गया।

अफलातून की धारणा थी कि मानव प्रकृति में तीन तत्वों की विशेष रूप से प्रधानता रहती है सबसे पहला तत्व है इन्द्रिय तृष्णा (Appetite) इस तत्व में से भूख, प्यास, काम वासना तथा अन्य कामनाएँ पैदा होती हैं। राज्य के प्रारम्भिक तथा सरलतम रूप में जहाँ कि लोगों का संगठन सूत्र केवल आर्थिक होता है उस समय समाज में इस तत्व की प्रधानता रहती है। मगर यह स्पष्ट है कि समाज का यह स्वरूप अविकसित रहता है और समस्त मानव बुद्धि की अभिव्यंजना इससे नहीं होती। मनुष्य की भूख और कामनाओं से समाज में जो बखेड़े खड़े होते हैं उन पर नियंत्रण

करने के लिए मानव प्रकृति में शौर्य (Spirit) नामक गुण का विकास होता है जिसके परिणामस्वरूप यह आर्थिक समाज सैनिक संगठन में बदल जाता है। किन्तु फिर भी समाज का विकास अपूर्ण रहता है क्योंकि मानव जीवन के बुद्धि तत्व को वहन करने वाला कोई वर्ग उसमें नहीं रहता। इस तत्व का विकास हो जाने पर बुद्धिजीवी शासक वर्ग, शौर्य गुण प्रधान सैनिक वर्ग और इन्द्रिय तृष्णा प्रधान उत्पादक वर्ग तीनों वर्ग सामाजिक न्याय के लिये अपनी-अपनी सेवाएँ जब राज्य को अर्पित करते हैं तभी एक सुसंगठित और दैवी सम्पद प्रधान राज्य की समाज में स्थापना होती है।

अफलातून का यह वर्ग विभाजन भारतीय वर्ण व्यवस्था की पद्धति से इतना मिलता-जुलता है मानों एक पर दूसरे की छाया हो। भारतवर्ष की वर्ण व्यवस्था में भी इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे चार सामाजिक वर्गों की व्यवस्था दी गई है। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ शासन सत्ता का भार क्षत्रिय अर्थात् सैनिक वर्ग के हाथ में दिया गया है और ब्राह्मण वर्ग को उस शासक वर्ग पर नियंत्रण करने वाला निरीक्षक माना गया है। ब्राह्मण वर्ग का मान और प्रतिष्ठा क्षत्रिय या शासक वर्ग के ऊपर माना गया है जबकि उनके लिए भोग, विलास और सांसारिक वैभव की मनाई रक्खी गई थी।

भारतीय वर्णमूलक समाज व्यवस्था और अफलातून की समाज व्यवस्था में दूसरा मौलिक अन्तर यह है कि भारतीय वर्ण व्यवस्था का समाज में व्यवहारिक रूप से स्थापना हुई और इसके अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के परिणाम समाज को प्रत्यक्ष रूप में उठाने पड़े जब कि अफलातून की सारी व्यवस्था साहित्य और कल्पना के अन्दर ही सजीव रही। पश्चिमी संसार के कल्पनावादियों में अफलातून का स्थान सर्वप्रथम और सर्वोच्च है। मगर उसकी उत्कृष्ट कल्पना ने इतिहास में कभी साकार रूप धारण नहीं किया। अफलातून का महान लक्ष्य एक आदर्श की खोज था। आदर्श राज्य, राज्य का एक पूर्ण चित्र है, तुलना और समालोचना के द्वारा अफलातून ने उसकी खोज की है, और अपनी कल्पना के आदर्श राज्य के सुन्दर चित्र को उसने अपनी कलम से साहित्य में साकार किया है। रिपब्लिक, स्टेट्स मेन और लॉज, में उसके पात्र गण जो वार्तालाप आपस में करते हैं उनका एक मात्र उद्देश्य है एक पूर्ण राज्य के सिद्धान्तों की तलाश। यथार्थ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह एक ऐसे संसार का चित्र अङ्कित करता है जो मानव जीवन के सच्चे सिद्धान्तों पर आधारित है किन्तु यह सब कल्पना के जगत् में है वास्तविकता के रूप में इस वसुन्धरा पर उसका कोई अस्तित्व नहीं।

इसके विपरीत भारतीय समाज व्यवस्था जो वर्ण व्यवस्था के रूप में चित्रित हुई और राज्यव्यवस्था जो अधिकतर रूप में एकतंत्री शासन के रूप में प्रचलित हुई, यहाँ की समाज के अन्तर्गत उसकी रग-रग में बसी हुई है। हजारों बरसों से, इतिहास के एक अज्ञात काल से इसने हमारे समाज में पूर्ण रूप ग्रहण कर रक्खा है और अपने उन्नत रूप में जहाँ इसने वशिष्ठ, वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य, व्यास, मनु, अगस्त्य, शुक्र और कौटिल्य के समान महान समाज व्यवस्थापकों और राज्यनियंत्रकों को ब्राह्मण के रूप में पैदा किया वहाँ मान्धाता, हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, शिवि, दधीचि, युधिष्ठिर, चन्द्रगुप्त मौर्य्य, अशोक, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन इत्यादि अनेक न्यायप्रिय, प्रजावत्सल महान् शासकों को भी पैदा किया जो इसी व्यवस्था के बीच पैदा हुए, इसी व्यवस्था में जिन्होंने साँस ली और इसी व्यवस्था में प्रजा का पालन करते हुए जो इतिहास में अमर हो गये। फिर मनुष्य की स्वार्थपरता और उसकी लोभवृत्ति ने जब इस व्यवस्था के मूलप्राण को नष्ट कर दिया, इसके जीवन तत्व को समाप्त कर दिया तो इसके सड़े हुए ढाँचे ने समाज में एक बहुत बड़ा कहर भी पैदा किया, इस निर्बल ढाँचे को रौंदते हुए विदेशी आततायियों ने इस देश को खूब लूटा-खसोटा और अन्त में करीब १००० वर्षों तक यह देश विदेशियों की अमर गुलामी में फँस गया।

मगर इसमें सन्देह की कोई गुञ्जाइश नहीं कि अफलातून की समाज व्यवस्था और आदर्श राज्य की कल्पना केवल कल्पना जगत में फूली फली, वहाँ उसी से मिलती-जुलती समाज व्यवस्था ने भारतीय समाज में पूर्ण व्यवहारिक और साकार रूप धारण किया और इतिहास के

बड़े-बड़े भीषण धक्कों को खाते हुए भी, चाहे क्षत-विक्षत रूप में ही हो वह आज भी समाजमें जीवित है।

अफलातून की शिक्षा व्यवस्था

उपरोक्त समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए अफलातून के मत से यह आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करके उसमें उचित न्याय का योगक्षेम करे। इसके लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को विशेष कर शासक वर्ग और सैनिक वर्ग को योग्य शिक्षा से शिक्षित करके उसे उत्तम संस्कारों से संस्कारित करने की आवश्यकता है। इसके लिए अफलातून ने अपनी रिपब्लिक में दो प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का सुझाव रक्खा है। एक सामान्य शिक्षा और दूसरी उच्च और वैज्ञानिक शिक्षा। पहली को उसने दूसरी से अधिक महत्व पूर्ण माना है।

शिक्षा जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन करके जीवन में होनेवाली भूलों को रोकती है, समाज के प्रति व्यक्ति के कर्तव्य को वह प्रकाशित करती है। शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के घटक एक सामाजिक चेतना से भरकर समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना सीखता है।

सामाजिक उपयोगिता के साथ-साथ अफलातून ने शिक्षा के व्यक्तिगत महत्व को भी नहीं भुलाया है। उसके मतानुसार शिक्षा न केवल समाज सेवा का साधन है बल्कि वह व्यक्ति के लिए सत्य की खोज करने का एक साधन भी है। वह मनुष्य के ज्ञान चक्षुओं को आलोकित करती है ताकि वह इन्द्रिय जगत से परे वास्तविक सत्य का दर्शन कर सके। इस प्रकार सामाजिक धर्म के एक साधन तथा सत्य प्राप्ति के लिए एक ध्रुव बिन्दु के रूप में शिक्षा के ये दो स्वरूप अफलातून के सम्पूर्ण सिद्धान्त में बड़ी सुन्दरता के साथ ग्रथित किये हुए हैं।

अफलातून का मत है कि मानव-जीवन में शिक्षा का क्रम आजीवन चलना चाहिए, हाँ उसके साधन, अधिकरण और माध्यम मनुष्य की आयु के अनुसार बदलते रहना चाहिए।

बाल्यकाल में जीवन पर कल्पना का प्रभाव सर्वाधिक होता है, इसलिए प्रारम्भिक शिक्षा का कार्य उस कल्पना को परिमार्जित कर भावनाओं को परिष्कृत करना होता है। किशोर अवस्था प्राप्त होने पर मनुष्य में तर्क का उदय होता है और आत्मा तर्क के द्वारा ग्राह्य बन जाती है इसलिए इस अवस्था में विज्ञान और दर्शन की शिक्षा के द्वारा मनुष्य की तर्कशक्ति को प्रखर और तेजस्वी बनाना चाहिए।

प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति का विकास करना है और उच्चशिक्षा का ध्येय सत्य की साधना और ब्रह्म का दर्शन है। अफलातून ने सामाजिक प्रवृत्ति के विकास के लिए प्रारम्भिक शिक्षा को अधिक महत्वपूर्ण माना है और रिपब्लिक के एक बड़े भाग में उसका विस्तृत विवेचन किया गया है इसी से "रूसो" के समान महान् दर्शनशास्त्री ने "रिपब्लिक को शिक्षा-विज्ञान का एक महान् ग्रन्थ माना है।"

अफलातून की व्यवस्था में शिक्षा का अनिवार्य होना और उसके ऊपर सम्पूर्ण रूप से राज्य का अधिकार होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उसने अपने ग्रंथ में स्त्री और पुरुषों के लिए एक ही तरह की समान शिक्षा देने की व्यवस्था दी है, उसके मत से यौन-भेद के अतिरिक्त राज्य सम्बन्धी कार्यों में स्त्री और पुरुष के बीच कोई भेद नहीं है। उसकी यह व्यवस्था एथेन्स की तत्कालीन व्यवस्था के खिलाफ एक प्रकार की बगावत थी क्योंकि उस समय एथेन्स में स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन से बिलकुल अलग रक्खा जाता था।

इस शिक्षा व्यवस्था में दूसरी बात यह है कि अफलातून ने इसमें कहीं भी उत्पादक वर्ग का कोई उल्लेख नहीं किया है। यह सारी शिक्षा केवल शासक वर्ग और सैनिक वर्ग के निर्माण के लिए है। उत्पादन वर्ग के लिए कैसी शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए इसका उसने कहीं भी जिक्र नहीं किया है।

उच्चशिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा को समाप्त करने के पश्चात् दो वर्ष तक इन नवयुवकों को सैनिक शिक्षा ग्रहण करनी होगी

जिससे उनमें उचित साहस और वीरता के भावों की उत्पत्ति हो सके।

उसके पश्चात् उच्चशिक्षा की प्राप्ति के लिए उन तेजस्वी और वैज्ञानिक प्रवृत्ति के युवकों को छाँटा जावेगा जिनमें उच्चदर्शन और विज्ञान की अभिरुचि होगी। प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य जहाँ युवावस्था में नागरिकता के भावों का योग-क्षेम करना है वहाँ उच्चशिक्षा का उद्देश्य कुछ चुने हुए व्यक्तियों को राज्य का योग्य अभिभावक या शासक बनाना है। इस शिक्षा को बीस वर्ष से लेकर तीस वर्ष की आयु तक देने का रिपब्लिक में विधान है। उच्चशिक्षा का पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में ज्ञान का संचार करके उन्हें जीवन के रहस्यों का ज्ञाता बनाना है। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए रिपब्लिक में गणित और ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन का विधान है।

दस वर्ष तक इन विषयों का अध्ययन करने के पश्चात् पाँच वर्ष तक तर्क और न्याय (Dialectic) की शिक्षा ग्रहण करने का विधान है इसी शिक्षा के द्वारा विशुद्ध तत्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तत्वसम्बन्धी समस्त विचारों में सर्वोच्च विचार दैवी सम्पद् (Good) की समीक्षा है जो समस्त ज्ञान का लक्ष्य है।

सारांश यह कि उच्चशिक्षा का उद्देश्य "दार्शनिक राजा" तथा अभिभावकों को उत्पन्न करना है जिनका राज्य में सर्वोच्च स्थान रहेगा।

उच्चशिक्षा की जो रूपरेखा "रिपब्लिक" में दी गई है उसके चरितार्थ करने के लिए अफलातून ने ईस्वी सन् से ३८६ वर्ष पूर्व एथेन्स में एक ऐकेडेमी का स्थापना प्रशासक और राजनीतिज्ञ उत्पन्न करने के लिए की थी।

इस प्रकार की उच्चशिक्षा से प्रशिक्षित होकर जो आदर्श राजा शासन के लिए तैय्यार होंगे उनको अफलातूनी व्यवस्था मे निर्बाध और निरंकुश शासक के अधिकार दिये गये हैं। ऐसे निरंकुश शासकों के लिए किसी लिखित कानून या स्मृति का कोई नियंत्रण नहीं रक्खा गया है और न ऐसे शासकों को जनमत के प्रति किसी भी प्रकार उत्तरदायी भी माना गया है। ऐसे शासन में सर्वसाधारण का कोई भी भाग नहीं रक्खा गया। सर्वसाधारण को चुपचाप शासक वर्ग की आज्ञाओं का पालन करना पड़ा था।

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और विद्वान फोस्टर (Foster) के मतानुसार "अफलातून" की सम्पूर्ण राजनैतिक विचारधारा में "दार्शनिक राजा" की धारणा सबसे अधिक मौलिक है।"

फिर भी राजा के हाथ अत्यन्त निरंकुश सत्ता और प्रजा का उसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न होना अत्यन्त दोषपूर्ण है और यही कारण है कि अफलातून के शिष्य अरस्तू ने अपनी व्यवस्था में दार्शनिक राजा के लिए कोई स्थान नहीं रक्खा है। भारतीय राजनीति में भी आदर्श राजाओं पर कई प्रकार के नैतिक और व्यवस्था सम्बन्धी नियंत्रण रक्खे गये थे।

विवाह-व्यवस्था

शासक वर्ग और सैनिक वर्ग के लिए निजी सम्पत्ति का निषेध करने के साथ ही साथ अफलातून ने अपनी समाज व्यवस्था में इन दोनों वर्गों को पारिवारिक जीवन से भी वंचित कर दिया है।

उसने बतलाया है कि पारिवारिक और सम्पत्ति दोनों एक दूसरे पर आधारित हैं और दोनों ही चीजें मनुष्य की व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना को जागृत कर उसे सामाजिक कर्तव्यों से विमुख कर देती हैं। इसके अतिरिक्त परिवार के संकुचित जीवन ने समाज में स्त्रियों के स्थान को अत्यन्त हीन कर दिया है। इस प्रथा के फलस्वरूप स्त्री आर्थिक दृष्टि से पुरुष के अधीन होकर दासता का जीवन व्यतीत करती है, वह घर की चहार दीवारी में बन्द होकर केवल सन्तान उत्पन्न करने और उनका पालन करने के काम की रह जाती है। इस प्रकार समाज का आधा हिस्सा समाज की सेवा करने में असमर्थ हो जाता है।

इसलिए अफलातून स्त्रियों को राज्य की सेवा में लेने और उन्हें उच्चतम शिक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें गार्हस्थ्य के जुए से मुक्त करना चाहता था। इस प्रकार विवाह-संस्था का उन्मूलन कर वह नारी को पुरुष के स्तर पर ही ऊँचा उठाना चाहता था।

मगर इसके साथ ही स्त्री और पुरुष के बीच रहने वाली प्रकृति गत काम लिप्सा की महत्ता को भी वह समझता था और समाज में उत्तम नस्ल की संतान की आवश्यकता से भी वह पूरी तरह परिचित था। इसलिए उसने यह योजना बनाई कि उचित ऋतु और काल में राज्य की ओर से स्वस्थ और सर्वोत्तम युवकों और युवतियों को चुन कर उनको एक साथ रहने का अवसर दिया जाय।

इस प्रकार के समागम से जो सन्तानें उत्पन्न होंगी उनका पालन पोषण राज्य द्वारा स्थापित शिशु गृहों (Creches) में होगा। ताकि न तो किसी बालक को यह पता चलेगा कि उसके माता पिता कौन हैं और न किसी माता-पिता को ही पता चलेगा कि इन सब बच्चों में उनका बच्चा कौन सा है। एक ऋतु में उत्पन्न होने वाले सभी बच्चे उस समय विवाहित हुए व्यक्तियों के सामान्य पुत्र पुत्री होंगे, इस प्रकार राज्य स्वयं ही एक बड़ा परिवार हो जावेगा और मेरे तेरे का अन्तर बिलकुल मिट जावेगा।

राज्य के अधःपतित रूप

उत्तम और आदर्श राज्य का सम्पूर्ण विवेचन करने के पश्चात् अफलातून ने "रिपब्लिक" के आठवें और नवें प्रकरण में राज्य के अधःपतित और भ्रष्ट स्वरूपों का विवेचन किया है।

उसका कथन है कि जब समाज में दैवी सम्पद् का ह्रास होकर असुरी सम्पद् जोर पकड़ने लगती है तब राज्य का पतन प्रारम्भ हो जाता है। जब बुद्धि को पदच्युत कर के शौर्य उसका स्थान ले लेता है तब राज्य का पहला भ्रष्ट रूप हमारे सामने आता है जिसे सैनिक तंत्र (Timocracy) कहते हैं। इसके बाद एक स्वाभाविक स्थिति यह होती है जब बुद्धि और शौर्य्य दोनों को पराभूत कर धनिक वर्ग शासन सूत्र अपने हाथ में ले लेता है इसे धन-तंत्र (Oligarchy) कहते हैं। इसके आगे की अधःपतित स्थिति में धन का प्रभुत्व नष्ट होकर मनुष्य की विभिन्न तृष्णाएँ प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए आपस में संघर्ष करती हैं इसे जनतंत्रवाद (Democracy) कहते हैं। इसके बाद पतन की अन्तिम सीढ़ी वह है जब कि मनुष्य की निकृष्टतम इच्छाएँ समाज पर हावी हो जाती हैं और काम तथा लोभ व्यक्ति और समाज को वशीभूत कर लेते इसे आततायीवाद (Tyranny) कहते हैं। यह आसुरी सम्पद् या पतन का क्रमागत इतिहास जैसे वि क्रमागत उत्थान के इतिहास में आदर्श राज्य का विकास होता है।

स्टेट्स मैन और लॉज

रिपब्लिक के बाद अफलातून की दूसरी महत्वपूर्ण रचनाएँ "स्टेट्स मैन" और "लाज" हैं। यह उसके उत्तर जीवन की कृतियाँ हैं।

रिपब्लिक में आदर्श राज्य की व्यवस्था और दार्शनिक राजा की व्यवस्था करते समय अफलातून ने "सामाजिक कानून" की कोई विवेचना नहीं की। उस ग्रन्थ की विचार प्रणाली के अनुसार दार्शनिक राजा किसी भी रीति-रिवाज और लिखित कानून से बंधा हुआ नहीं होता और न वह शासन-प्रबन्ध में शासित लोगों की रजामन्दी या उनकी सलाह लेने के लिए बंधा हुआ होता है।

मगर रिपब्लिक की रचना के बाद अनुभवों में प्रौढ़ता आने पर उसे यह भान हुआ कि यह आदर्श केवल आदर्श की दुनिया तक ही सीमित है, वास्तविक मानव-समाज के भूतल पर इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतएव अपने अगले इन दो ग्रन्थों में जीवन की वास्तविकताओं के सामने वह झुक जाता है।

अपने स्टेट्स मैन ग्रन्थ में उसने राज्यों का जो वर्गीकरण किया है उसमें यह परिवर्त्तन स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ता है। इस ग्रन्थ में मोटे रूप में उसने राज्यों को दो भागों में विभक्त किया है। (१) कानून द्वारा निर्मित राज्य और (२) कानून विहीन राज्य। इन दोनों पद्धतियों के फिर उसने तीन-तीन विभाग किये हैं। एकतंत्र, कुलीनतंत्र और जनतंत्र। कानून से स्थापित राज्य में एक का शासन "राजतंत्र" कुछ लोगों का शासन "कुलीनतंत्र" और बहुत लोगों का शासन सुविचारित जनतंत्र कहलाता है इसी प्रकार कानून विहीन राज्य में एक का शासन अत्याचारी राज तंत्र, कुछ का शासन धन तंत्र और बहुत लोगों का शासन अविचारित गणतंत्र के रूप में प्रकट होता है।

कानून विहीन राज्य से कानून समर्थित राज्य निस्सन्देह उत्कृष्ट होता है। कानून विहीन राज्य में जनतंत्र धनतंत्र की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है मगर कानून समर्थित राज्य में जनतंत्र निकृष्ट श्रेणी का होता है मगर धनतंत्र की अपेक्षा तो दोनों ही हालतों में जनतंत्र श्रेष्ठ होता है।

इस प्रकार कानून को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करने की जो प्रवृत्ति "स्टेट्स मैन" में अफलातून के अन्दर उदय हुई "लॉज" में उसका पूर्ण विकास हुआ।

लॉज में उसने "आदर्श राज्य" की जगह एक ऐसे "उप आदर्श राज्य" की कल्पना की जो इस मानव लोक में स्थापित किया जा सके। इसलिए इस ग्रन्थ में अफलातून को कल्पना क्षेत्र में गुलांचे भरने के बजाय वास्तविकताओं से टक्कर लेनी पड़ी।

लॉज में अङ्कित राज्य रिपब्लिक में अङ्कित राज्य से कई बातों में भिन्न है। सबसे बड़ा मौलिक अन्तर इसमें यह है कि इस राज्य में कानून सबसे प्रधान है रिपब्लिक की तरह शासक प्रधान नहीं है। इस ग्रन्थ में अफलातून ने कानून को प्रतिष्ठित किया है जिसे रिपब्लिक में बिलकुल उखाड़ कर फेंक दिया था।

मगर अफलातून की कानून सम्बन्धी धारणा आधुनिक धारणा से कहीं अधिक व्यापक है। उसका कानून समस्त जीवन का नियम है। अफलातून कानून और न्याय में कोई भेद नहीं करता था जैसा आज की दुनिया में होता है। वह मनुष्य के समस्त नैतिक जीवन का कानून के द्वारा नियमन चाहता था। अफलातून द्वारा लॉज में वर्णित उप-आदर्श राज्य की दूसरी विशेषता मिश्रित संविधान का सिद्धान्त है जो कानून की प्रतिष्ठा से किसी भी कदर कम नहीं है।

रिपब्लिक में प्रतिपादित निजी सम्पत्ति और निजी परिवार के विरुद्ध विचार प्रणाली को "लॉज" में वह बदल देता है इसलिए इस ग्रन्थ में वह समस्त नागरिकों को चाहे वे शासक हों या शासित, निजी सम्पत्ति और परिवार रखने और उसका सुख भोगने की आजादी कुछ प्रतिबन्धों के साथ देता है। उसका मत है कि समस्त भूमि का नागरिकों में समान वितरण हो, किसी को भी अपनी भूमि बेचने और रेहन रखने का अधिकार न हो। स्थायी रूप से एक पति को एक पत्नी रखने का अधिकार भी इस ग्रन्थ में दिया गया है। इस ग्रन्थ में अफलातून ने नगर सभाओं, परिषदों तथा मजिस्ट्रेटों की भी व्यवस्था दी है इस ग्रन्थ के मतानुसार मजिस्ट्रेट तथा परिषद के सदस्य चुने हुए होने चाहिए।

यह कहना तो गलत होगा कि "लॉज" "रिपब्लिक" का एक विकसित रूप है मगर यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि "रिपब्लिक" में अफलातून ने जहाँ कल्पना जगत् में ऊँची-ऊँची उड़ानें भरी हैं वहाँ लॉज के अन्दर वास्तविकता की वह एक समतल भूमि पर उतर आया है और जीवन की वास्तविकताओं के संघर्ष से पार हो उसने मानव प्रकृति और यथार्थवाद से अपना नाता जोड़ा है और यही कारण है कि इसी बिन्दु से नाता जोड़ कर उसके शिष्य अरस्तू ने अपने राजनीति शास्त्र (Politics) को आगे बढ़ाया है।

अफनासी

रूस का एक सौदागर जिसने सन् १४६६ से १४७२ तक भारतवर्ष की यात्रा की। उसकी यात्रा का वर्णन कुछ इस प्रकार है—

हारमुस से मैं लार गया और लार से बन्दर। यही ओरमुज्द का बन्दर है। यहाँ से भारतीय सागर गया जिसे फारसी में हिन्द समुन्दर कहते हैं। ओरमुज्द बन्दर से समुद्र केवल चार मील है।

यहाँ से भारत में प्रवेश किया। यहाँ मालूम हुआ कि हिन्दू माँस नहीं खाते। न तो बाँझ मवेशी का, न भेड़ का, न मुर्गे-मुर्गियों का और न मछली का! वह सूअर भी नहीं खाते यद्यपि देश में सूअरों की बहुतायत है। वह दिन में दो बार भोजन करते हैं और रात में कुछ नहीं खाते। वह शराब नहीं पीते और न दूसरा ही ऐसा पेय जो नशा करने वाला हो। वह मुसलमानों के साथ नहीं खाते-पीते। उनका भोजन अच्छा नहीं होता। वह आपस में एक दूसरे के साथ नहीं खाते-पीते। यहाँ तक कि अपनी पत्नियों के साथ भी नहीं खाते। वह चाँवल और रोगन (घी) मिली खिचड़ी

और अनेक प्रकार की सब्जियाँ खाते हैं जिन्हें वह रोगन या दूध के साथ पकाते हैं। वह दाहिने हाथ से खाते हैं बाँयें हाथ से कुछ नहीं खाते। वह चम्मच का इस्तेमाल नहीं करते। सफर के समय हर आदमी अपना भोजन आप पकाता है। भोजन के समय वह पर्दा कर लेते हैं।

रूसियों की ही भाँति हिन्दू भी पूर्व की ओर मुँह करके प्रार्थना करते हैं। वह दोनों हाथ ऊपर उठाकर सिर पर रख लेते हैं। फिर जमीन पर पड़ जाते हैं। यही उनका प्रणाम (साष्टांग प्रणाम) करना है। भोजन के पहले उनमें से कुछ अपने हाथ-पाँव धोते हैं और कुल्ला करते हैं।

देवालयों में कोई दरवाजा नहीं होता। उनका रुख पूर्व की ओर होता है। कुछ मूर्तियों का मुख उत्तर की ओर भी होता है। जब हिन्दुओं में कोई मर जाता है तो उसके शरीर को जलाकर उसकी राख पानी में डाल देते हैं। जब किसी औरत के बच्चा होता है तो पति उसे ले लेता है। लड़के का नामकरण पिता करता है और लड़की का माता। उनके आचार व्यवहार अच्छे नहीं हैं और न उनमें कोई शर्म है। मिलते और अलग होते समय वह ईसाई साधुओं की भाँति अपने दोनों हाथ जमीन की ओर कर लेते हैं कुछ बोलते नहीं।

दाबुल से कालीकट पच्चीस दिन का रास्ता है। कालीकट से सिंघल पन्द्रह दिन का, सिंघल से जावा एक महीने का, जावा से पेगू (बर्मा) बीस दिन का, पेगू से चीन और महाचीन फिर एक महीने का! यह सारी यात्रा समुद्र की राह है। चीन से खिताई की यात्रा खुश्की से छः महीने की और समुद्र से चार महीनों की है।

हे मेरे भगवान! मेरी आशाएँ तुझ पर लगी हैं। मैं नहीं जानता कि हिन्दुस्तान से किधर को जाऊँ ओरमुज्द से खुरासान को राह नहीं। चगताई के लिये रास्ता नहीं और बहरैन और यज्द के लिये भी कोई मार्ग नहीं। सर्वत्र विद्रोह हो रहे हैं। सर्वत्र बादशाह भगाये जा रहे हैं। मिर्जा जहानशाह को उजून (हसन) बेग ने मार डाला है। सुल्तान अबूद सईद को जहर दे दिया गया है। उजून बेग अब शीराज में हैं पर उस मुल्क ने उसको स्वीकार नहीं किया है। यादगार मोहम्मद उसके पास नहीं जाता वहाँ जाने में उसको खतरा मालूम होता है और कोई राह नहीं। मेरे मक्का जाने का मतलब है मुसलमान हो जाना। ईसाई होने की वजह से मक्का जाने में मेरी खैरियत नहीं है। हिन्दुस्तान में रहने का मतलब है अपने पास जो कुछ है सबको खर्च कर डालना। क्योंकि यहाँ का रहन-सहन बहुत मँहगा है। मैं अकेला हूँ पर मेरा रोजाना खर्च ढाई अल्तीना (अशर्फी) है। यहाँ मन भर कर शराब मैंने कभी नहीं पी।

एक स्थान पर अफनासी लिखता है—भगवान रूस की रक्षा करे। इस संसार में रूस के समान अच्छा कोई मुल्क नहीं है यद्यपि वहाँ के बायर अच्छे नहीं हैं।

अफनासी वास्कोडीगामा के भारत पहुँचने से ३२ वर्ष पूर्व भारत में आया था। उस समय इस देश में बहमनी सुल्तान महम्मद शाह तृतीय शासन करता था।

अफीम का युद्ध

अफीम काले रंग की एक विषैली और नशीली वस्तु होती है। इसमें "मार्फिया" और "नरकोटाइन" नामक विषैले तत्व रहते हैं। भारतवर्ष में विशेष रूप से मालवा प्रान्त में इसकी बड़े पैमाने पर बहुत पुराने समय से खेती होती है।

भारत में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारिक पंजे दृढ़ता से जम गये तब उसने दूसरे व्यापारों के साथ अफीम के व्यापार की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया। चीन के लोग पन्द्रहवीं सदी से ही अफीम से थोड़े थोड़े परिचित हो गये थे। उसी समय से भारत से थोड़ी थोड़ी मात्रा में चीन को अफीम जाती थी मगर यह व्यापार बहुत सीमित था।

उन्नीसवीं सदी में योरोपीय लोगों के सम्पर्क से खास कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वजह से यह व्यापार चीन में जोर पकड़ने लगा। चीनी लोग तम्बाकू की जगह अफीम को ही पीने के आदी होने लगे। चीनी सरकार लोगों की इस आदत को छुड़ाना चाहती थी क्योंकि इसका वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ रहा था और यह

व्यापार देश का बहुत सा धन भी खींच कर बाहर ले जा रहा था।

सन् १८०० में चीनी सरकार ने एक आदेश जारी करके अपने देश में किसी भी काम के लिए अफीम का आना रोक दिया। लेकिन चूंकि इस व्यापार से विदेशी व्यापारियों को अन्धाधुन्ध फायदा हो रहा था इसलिए वे इस आदेश के बावजूद चोरी-चोरी अफीम लाकर कैंटन बन्दरगाह के द्वारा बड़े बड़े मुनाफे पर उसे बेचते थे।

अन्त में चीन सरकार ने अफीम की रोक थाम के लिए एक सख्त और ईमानदार व्यक्ति "लिन-सी-हो" को स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किया। उसने फौरन इसके लिए मजबूती से कदम उठाया। वह दक्षिण के कैंटन नगर पहुँचा जो इस अवैध व्यापार का मुख्य केन्द्र था। वहाँ पर उसने इन विदेशी व्यापारियों के पास से बीस हजार अफीम की अवैध पेटियाँ बरामद की और उन्हें नष्ट करवा दिया। इस कमिश्नर ने जो अफीम नष्ट करवाई थी उसमें अधिक तर अंग्रेज व्यापारियों की थी।

इस घटना से उत्तेजित होकर इंग्लैण्ड की सरकार ने सन् १८४० में चीन के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी जिसे "अफीम का युद्ध" कहा जाता है। क्योंकि यह युद्ध चीन पर अफीम लादने के लिए ही लड़ा और जीता गया था।

अंग्रेजों ने अपने जहाजी बेड़े से कैंटन और दूसरी जगहों की नाका बन्दी कर दी। चीन का कोई बस नहीं चला। दो वर्ष बाद सन् १८४२ में उसे अपमान पूर्ण संधि करनी पड़ी जिसे नानकिंग की संधि कहते हैं। इस संधि के अनुसार उसे अपने पाँच बन्दरगाह विदेशी व्यापार के लिए खासकर अफीम के व्यापार के लिए खोल देने पड़े। कैंटन के पास हांगकांग टापू पर भी अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया और युद्ध के हरजाने के रूप में तथा नष्ट की गई अफीम के हरजाने के रूप में करोड़ों रुपये चीन से वसूल किये। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए अफीम के समान जहरीला पदार्थ चीन की जनता पर जबर्दस्ती लाद दिया।

अफजल खां

बीजापुर की आदिलशाही सरकार का एक मशहूर सेनाध्यक्ष जो शिवाजी के खिलाफ अभियान करने में मारा गया।

सन १६५६ में आदिलशाह की मृत्यु होने पर बीजापुर के नवीन सुल्तान ने छत्रपति शिवाजी का पूर्ण रूप से पराभव करने का निश्चय किया क्योंकि उस समय शिवाजी ने अपनी सैनिक शक्ति का काफी संगठन कर लिया था और बीजापुर के तोरण, राजगढ़, सिंहगढ़, पुरन्धर, कोकण इत्यादि किलों पर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया था।

अफजल खाँ के सेनापतीत्व में एक बड़ी भारी सेना बीजापुर शासन ने भेजी। अफजल खाँ शिवाजी के दुर्गम पहाड़ी स्थानों पर पहुंच कर कुछ घबरा गया। उसने कृष्णा भास्कर नामक एक सन्देशवाहक के साथ शिवाजी को एक पत्र लिखा, जिसमें अफजल खां ने वचन दिया कि अगर शिवाजी युद्ध करने का विचार छोड़ दे तो वह उसके जीते हुए किलों व जिलों को स्थायी रूप से दिलवा देगा। पत्रवाहक कृष्णाजी भास्कर शिवाजी से बड़े प्रेम से मिला और उससे मीठी-मीठी बातें करके उसे कई प्रलोभन दिये। मगर शिवाजी उसकी सारी चालों को समझ गये। उन्हें अपने दूत से मालूम होगया था कि अफजल खाँ उन्हें इस कौशल से गिरफ्तार करना चाहता है। उन्होंने कृष्णा भास्कर से कहा कि किसी एक निश्चित स्थान पर वे दोनों बिना रक्षक के आपस में मिलेंगे। अफजल खाँ एक हट्टा कट्टा और कद्दावर पुरुष था। गले मिलते समय उसने शिवाजी को जोरों से दबाया और दाहिने हाथ से उनको छुरा भोंकने का उपक्रम करने लगा मगर शिवाजी पहले ही से सावधान थे। उन्होंने अपने पास छुपा कर रखे हुए बाघ नख को निकाल कर अफजल खाँ की छाती चीर दी और उसे गिराकर उसका सिर काट लिया। उसके बाद दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर लड़ाई हुई जिसमें शिवाजी की सेनाओं ने अफजल खाँ की सेना को करारी हार दी और उसके सामान और तोपों को लूट लिया।

अफ्रीकी एशिया ऐक्य सम्मेलन

(अफ्रीकी एशियन सालिडेरिटी कान्फ्रेन्स)

अफ्रीका और एशिया के देशों को एक सूत्र में बाँधने तथा पराधीन देशों की स्वाधीनता की आवाज को बुलन्द करने के लिए यह सम्मेलन मिश्र की राजधानी काहिरा में २६ दिसम्बर १९५७ से १ जनवरी १९५८ तक हुआ था। इस सम्मेलन में दोनों महादेशों से करीब ५०० प्रतिनिधि आये थे। इस सम्मेलन ने कई प्रस्ताव पास किये जिनमें साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, रंगभेद आदि की निंदा की गई। केनिया, कैमेरुन, उगाण्डा, सोमालीलैण्ड, मैडागास्कर, आदि देशों की स्वतन्त्रता की माँग की गई। उत्तरी और दक्षिणी कोरिया, तथा उत्तरी और दक्षिणी विएटनाम को मिला देने का समर्थन किया गया। राष्ट्रसंघ में साम्यवादी चीन और मंगोलिया को स्थान देने की सिफारिश की गई। तथा आइजनहोवर सिद्धान्त और बगदाद संधि को अरब राष्ट्रों के लिए घातक बतलाया गया। काहिरा में इस संगठन की एक स्थाई समिति निर्माण करनेका निश्चय किया गया। इस सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन सन् १९६० में कोमाकारी में हुआ।

इस सम्मेलन को साम्यवादी भावना का पूरक मानकर पाकिस्तान, थाइलैण्ड, फिलिपाइन, मोरक्को, मलाया, साइबेरिया, दक्षिणी विएटनाम, लाओस इत्यादि साम्यवाद विरोधी राष्ट्र इसमें सम्मिलित नहीं हुए। सोविएट संघ से इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए २७ व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि मण्डल आया था।

अफ्रीकी एशिया आर्थिक सम्मेलन

(अफ्रो-ऐशियन इकानामिक कोआपरेशन आर्गिनिजेशन)

एशिया और आफ्रिका दोनों देशों के बीच आर्थिक सहयोग की वृद्धि करने के उद्देश्य से स्थापित की हुई संस्था। जिसका पहला अधिवेशन सन १९५८ को दिसम्बर में काहिरा में हुआ।

इस सम्मेलन के अध्यक्ष मिश्र के श्री महम्मद रशीद थे। इस सम्मेलन ने दोनों देशों के उद्योग धंधों और वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति के लिए अनेक प्रस्ताव पास किये तथा इसके लिए एक स्थायी संस्था का निर्माण किया और इसका कार्यालय काहिरा में रक्खा गया। इस संगठन को सलाह देने वाली एक समिति का निर्माण किया गया जिसमें भारत, चीन, इथोपिया, इण्डोनेशिया, घाना, इराक गीनी, लीबिया, पाकिस्तान, सूडान और संयुक्त अरब गणतन्त्र के प्रतिनिधि रक्खे गये। संगठन की रूपरेखा तैयार करने का भार इसी समिति पर छोड़ा गया। इस सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन अप्रैल १९६० को काहिरा में हुआ।

अफ्रीकी जन सम्मेलन

अफ्रीका में अहिंसात्मक क्रान्ति लाने के लिए सुगठित योजना बनाने के लिए घाना में बुलाया हुआ अफ्रीकी देशों का सम्मेलन जिसका पहला अधिवेशन दिसम्बर १९५८ में घाना की राजधानी अंकारा में हुआ।

इस सम्मेलन में अफ्रीका के अलजीरिया, अंगोला, अरब गणतन्त्र, जंजीबार, उगाण्डा, ट्यूनीशिया, टोगोलैण्ड तांगानिका, दक्षिणी रोडेशिया, उत्तरी रोडेशिया, नाइजीरिया मोरक्को, लीबिया, साइबेरिया, केनिया, गिनी, घाना (गोल्डकोस्ट) अबीसीनिया, दहोमी, कैमेरून, सियरालिओन, बेसुटोलैण्ड देशों के प्रतिनिधि शामिल थे। इसके अतिरिक्त ५० राजनैतिक दलों, ट्रेडयूनियनों और छात्र संस्थाओं के भी करीब २०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। सम्मेलन की अध्यक्षता केनिया के श्रमिक नेता टॉम-मबोया ने की थी।

सम्मेलन ने एक प्रस्ताव के द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ से अनुरोध किया कि वह साम्राज्यवादी राष्ट्रों पर इस बात के लिए दबाव डाले कि वे इन देशों की सत्ता वहाँ की जनता के मताधिकार से चुनी हुई गणतन्त्रीय सरकार को सौंपकर स्वयं वहाँ से बिलकुल हट जाय।

दूसरे प्रस्ताव के द्वारा अफ्रीका के स्वतन्त्र राष्ट्रों से अनुरोध किया गया कि अफ्रीका के परतन्त्र देशों द्वारा प्रारम्भ किये गये स्वतन्त्रता संग्राम में वे उन्हें हर तरह की मदद पहुँचावे और दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति को प्रोत्साहन देने वाली सरकार से अपना राजनैतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लें।

अफ्रीका

अफ्रीका महाद्वीप एशिया के बाद संसार में सबसे बड़ा दूसरा महाद्वीप है। इसका क्षेत्र फल एक करोड़ पन्द्रह लाख वर्ग मील है। अर्थात् यह महाद्वीप एशिया का लगभग दो तिहाई, यूरोप का तिगुना और हिन्दुस्तान से छः गुना है। अफ्रीका के समान संसार में दूसरा कोई महाद्वीप ऐसा नहीं है जिस का तीन चौथाई भाग उष्ण कटि बन्ध में और सिर्फ एक चौथाई भाग शीत कटिबन्ध में हो। इसी कारण इस महाद्वीप में सहारा के समान विस्तृत और सूखा मरुस्थल और बड़े बड़े घने जंगल हैं जिनमें तरह तरह के भयानक बन-जन्तु और विशालकाय साँपों का निवासस्थान है। अफ्रिका के पश्चिमी भाग में गिनी तट का नाम "ह्वाइट मेन्स ग्रेव" अर्थात् गोरी जातियों का श्मशान ही पड़ गया है। क्योंकि यहाँ का गर्म और तर जल वायु (क्लाइमेट) मलेरिया के मच्छरों का जनक है जिससे यहाँ जाने वाले यूरोप निवासी आक्रान्त होकर मर जाते हैं।

अफ्रीका की पर्वत श्रेणियों में दक्षिण पूर्व में ड्रेकन्स बर्ग और पूर्व में कीनिया और किलीमंजरी नामक चोटियाँ सबसे ऊँची हैं।

झीलों में अफ्रीका की "विक्टोरिया झील" सारे संसार में मीठे पानी की दूसरे नम्बर की झील है। इस झील का क्षेत्र फल सारे सीलोन देश के क्षेत्रफल के बराबर है। विक्टोरिया झील से पूरब को ओर रुडाल्फ और न्यासा झीलें, तथा पश्चिम की ओर टाँगानिका और अलबर्ट नाम की झीलें स्थित हैं।

नदियों में अफ्रीका की सबसे बड़ी नदीयाँ नील, कांगो, नाइजर और जेम्बिजी हैं।

नील नदी अफ्रीका की सबसे बड़ी नदी है। इसकी लम्बाई ३५०० मील है। इसकी सहायक नदियों में ब्लू नील और अतबारा ये दो नदियाँ मुख्य हैं। ब्लूनील और अतबारा ये दोनों नदियाँ बाढ़ के समय अपने पानी के साथ चिकनी मिट्टी लाकर मिस्र की मरुभूमि को उपजाऊ बनाती रही हैं। इन्हीं के कारण इतिहास में मिस्र देश को नील का प्रासाद कहते हैं।

काँगो नदी ३००० मील लम्बी है। इसके किनारे पर बसे हुए देश का नाम ही कांगो पड़ गया है जो बहुत समय से बेलजियम का उपनिवेश था मगर सन् १९६० से स्वतंत्र होकर इस समय गृहयुद्ध की ज्वालाओं में झुलस रहा है।

नाइजर नदी २६०० मील और जेम्बिजी नदी १३०० मील लम्बी है। जेम्बिजी नदी के मध्य भाग में "विक्टोरिया प्रपात" नामक एक मशहूर जल प्रपात है जो ४०० फीट की ऊँचाई से एक दम नीचे गिरता है और जिसका शब्द मीलों तक सुनाई पड़ता है।

इतिहास

अफ्रीका के उत्तरी भाग में समुद्र के किनारे के कुछ प्रदेश रोमन साम्राज्य में सम्मिलित थे। उन्हें छठी—सातवीं शताब्दी में अरब और मूर लोगों ने जीत लिया था। सत्रहवीं शताब्दी में अफ्रीका के दक्षिणी किनारे पर डच लोगों ने "केप आफ गुड होप" बसाया था। उन्होंने सन् १६२५ में पूर्वीय देशों को जाने के लिये विश्राम-स्थल के रूप में एक केन्द्र स्थापित किया। धीरे-धीरे यहाँ पर डच लोग आकर रहने लगे। ये लोग यहाँ पर आदिम जातियों की सहायता से खेती करते थे। इसलिये इनका नाम बोअर पड़ा। यह शब्द "डच किसान" का अर्थ सूचक है। इन बोअर या डच किसानों को अफ्रीका की जंगली जातियों से कई युद्ध करने पड़े। ये लोग साहसी और तेजस्वी होते थे। मगर सभ्य देशों से दूर रहने को वजह से इनकी वृत्तियाँ बहुत संकुचित हो गई थीं।

सन् १८१४ में केप आफ गुड होप को अंग्रेजों ने जीत लिया और सन् १८२० से अंग्रेज लोग भी यहाँ आकर बसने लगे, मगर अंग्रेजों के आचार-विचार बोअर लोगों के आचार-विचारों से बिल्कुल भिन्न थे, तब बोअर लोगों ने अंग्रेजों से परेशान होकर आरेंज और वॉल नदी के बीच वाले प्रदेश में "आरेंज फ्री स्टेट" नाम से एक नवीन उपनिवेश की स्थापना की और वॉल नदी के दूसरे किनारे पर ट्रांसवाल नामक दूसरा उपनिवेश बसाया। इस प्रकार बोअर लोगों ने दो नवीन उपनिवेशों की स्थापना की मगर ये दोनों उपनिवेश स्वतन्त्र होने के

बावजूद आपसी कलह के कारण उन्नति नहीं कर सके। तब इंग्लैण्ड ने सन् १८७७ में इन दोनों उपनिवेशों को अपने राज्य में मिला लिया, मगर इससे ट्रांसवाल की सीमा पर बसने वाले जूलू जाति के लोग बहुत नाराज हुए और उन लोगों ने केटेवायो नामक अपने एक सरदार के नेतृत्व में चालीस हजार सेना एकत्रित कर ट्रांसवाल पर हमला कर के अंग्रेजी सेना को हरा दिया। मगर इसके बाद दूसरी लड़ाई में अंग्रेजी सेना ने जूलू लोगों को हरा कर उनके नेता केटेवायो को गिरफ्तार कर लिया। सन् १८८१ में इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री ग्लेडस्टन ने 'ट्रांसवाल' और 'आरेंज फ्री स्टेट' को बोअर लोगों के स्वतन्त्र उपनिवेश स्वीकार कर लिये।

ट्रांसवाल के स्वतन्त्र हो जाने पर वहाँ प्रजातन्त्र-शासन जारी हो गया और पालक्रूगर नामक एक बोअर नेता इस प्रजातन्त्र का अध्यक्ष हुआ। यह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और वह अपने उपनिवेशों का विस्तार कर के उनको शक्तिशाली बनाना चाहता था। मगर दूसरी ओर दक्षिणी अफ्रीका की केप कालोनी का प्रधान मंत्री सेसिल रोड्स (Cecil Rhodes) भी बड़ा साहसी व्यक्ति था। वह दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों का साम्राज्य बढ़ाना चाहता था। इन दोनों महत्वाकांक्षी नेताओं के बीच संघर्ष होना अनिवार्य था जो सन् १८९९ में प्रारम्भ हो गया।

बोअर लोगों को यह मालूम था कि हमें आज नहीं तो कल अंग्रेजों से युद्ध करना ही पड़ेगा। इसलिये पालक्रूगर ने पहले ही से युद्ध की तैय्यारी कर रखी थी। बोअर लोग शरीर से हृष्ट-पुष्ट और स्वभाव के साहसी थे। इसलिये उन्हें आरम्भ से ही अंग्रेजी सेना पर विजय प्राप्त होने लगी। उनकी एक सेना ने नैटाल के ऊपर हमला कर सर जार्ज व्हाइट को गिरफ्तार कर लिया। दूसरे दल ने किम्बर्ले के प्रदेश को उजाड़ दिया और तीसरे दल ने आरेंज नदी के समीप केप कालोनी के भाग पर हमला कर अंग्रेजी सेना को हरा दिया।

अंग्रेजी सेना की इस हार से इंग्लैण्ड का राज्य सिंहासन विक्षुब्ध हो उठा और उस देश की रक्षा के लिये सन् १९०० में कैनेडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की सहायता से ढाई लाख सेना लार्ड राबर्ट्स और लार्ड किचनर की अध्यक्षता में जमा कर दी गई। परिणाम जो होना था, वही हुआ। अंग्रेजों की संगठित शक्ति के सामने बोअर लोगों को घुटने टेकने पड़े और ३१ मई १९०२ को 'आरेंज फ्री स्टेट' और 'ट्रांसवाल' बोअरों के दोनों उपनिवेश अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिये गये और सन् १९०५ में उन्हें स्वराज्य के अधिकार प्रदान कर दिये गये।

सन् १९१० में दक्षिण अफ्रीका के आरेंज फ्री स्टेट, ट्रांसवाल, केप कालोनी और नैटाल-इन चारों उपनिवेशों का एकीकरण हो गया और इस संयुक्त राष्ट्र का नाम 'यूनियन आफ साउथ अफ्रीका' (Union of South Africa) रखा गया और इसका पहला प्रधान मंत्री बोथा (Botha) नामक एक अंग्रेज बनाया गया।

दक्षिण अफ्रिका में अंग्रेजी साम्राज्य

आरेन्ज फ्री स्टेट, ट्रांसवाल, केप कालोनी और नैटाल नाम के चार राज्यों को मिला कर यूनियन आफ साउथ अफ्रीका नाम का एक राज्य बना दिया गया और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत वहाँ के मूल निवासी बोअरों को स्वराज्य दे दिया गया।

अंग्रेज लोगों के दक्षिणी अफ्रीका में बस आने पर उनके खेतों में काम करने के लिये भारत से मजदूरों को भेजना प्रारम्भ हुआ। लाखों भारतीय मजदूर वहाँ पर भेजे जाने लगे। इन मजदूरों और दूसरे भारतीय लोगों के साथ जिनकी संख्या दक्षिणी अफ्रीका में करीब डेढ़ लाख थी, गोरे लोगों के द्वारा बड़े कठोर अत्याचार किये जाते थे। अंग्रेजी सरकार ने इन लोगों का अपमान करने के लिये कई ऐसे कानूनों का निर्माण किया जो मानवता के भी खिलाफ थे। सन् १८९७ ई० में पास किया हुआ "इमिग्रेशन ला", सन् १९०६ में उपस्थित किया गया एशिया के अमेण्डमेण्ट एक्ट का मसविदा और ट्रांसवाल एशियाटिक कानून जिसके अनुसार प्रत्येक एशियावासी को अपनी ऊँगलियों की छाप देकर रजिस्टर में नाम नोट करवाना पड़ता था भारतीयों के लिए कम अपमानजनक नहीं थे। इसके अलावा इण्डियन इमिग्रेशन-लॉ-अमेण्डमेण्ट ऐक्ट के अनुसार भारतवासियों के विवाह भी अवैधानिक माने जाने लगे और प्रत्येक भारतीय

को न्यायालय में जाकर फिर से विवाह रजिस्टर्ड कराने का कानून बनाया गया।

सन् १८९६ के नवम्बर मास में जब दूसरी बार महात्मा गाँधी नैटाल पहुँचे तो उनके साथ वहाँ के गोरों ने बड़ा अपमाजनक और धींगामुश्ती का व्यवहार किया। उनके जहाज को एक महीने तक बन्दरगाह पर रोक रखा गया। उसके बाद जब वे उतर कर शहर में जाने लगे तो लोगों ने उन पर पत्थर, मछली और सड़े हुए अण्डों की वर्षा की। इस प्रकार की घटनाएँ उनके साथ अनेक बार हुई थीं।

भारतीयों के साथ इस अपमानपूर्ण व्यवहार को देख कर वहीं पर पहले-पहल गांधी जी ने अपने सत्याग्रह आंदोलन का प्रयोग प्रारम्भ किया। यह प्रयोग सन् १९०७ से आरम्भ हुआ और सन् १९१४ तक चलता रहा, जिसके परिणामस्वरूप २ जून सन् १९१४ ई० के दिन 'इण्डियन रिलीफ बिल' को जनरल स्मट्स ने पेश किया और यह बिल पास होने पर १ जुलाई सन् १९१४ को इस पर सम्राट की स्वीकृति भी मिल गई। इस बिल के पास हो जाने से दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों को किसी प्रकार राहत की साँस मिली।

दक्षिण अफ्रीका में फ्रांस

अंग्रेजों की ही तरह फ्रांस ने भी अपने उपनिवेशों का विस्तार किया। सहारा का सम्पूर्ण मरुस्थल और अल्जीरिया, मोरक्को, ट्यूनीशिया इत्यादि उपनिवेश फ्रांस के अधिकार में हैं। गिनी तट पर फ्रेंच डहोमी, सूडान, नाइजीरिया, मेडागास्कर द्वीप इत्यादि भी फ्रांस के अधिकार में रहे हैं। अफ्रीका के पश्चिमी भागों में अंगोला पुर्तगाल का और कांगो बेल्जियम का उपनिवेश रहा है।

अफ्रीका में नवजागरण

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सारे संसार में स्वाधीनता की जो लहर दौड़ी, उससे अफ्रीका भी वञ्चित नहीं रहा। वहाँ के देशों में भी आजादी की लहर दौड़ गई। मेडागास्कर और अल्जीरिया फ्रांस के बन्धनों से मुक्त हो गये। कांगो ने बेल्जियम के बन्धन को तोड़ डाला। घाना अंग्रेजों के बन्धन से मुक्त हुआ। ट्यूनीशिया भी फ्रांस के बन्धन से निकल गया। अंगोला में पुर्तगाल के विरुद्ध भयंकर विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई और हो रही है। इस प्रकार अफ्रीका के पराधीन राष्ट्र अपने गुलामी के बन्धनों को तोड़ते हुए अपना नव-निर्माण कर रहे हैं।

अफ्रीका के प्रदेश

व्यवस्थित भौगोलिक दृष्टि से अफ्रीका के विभाग इस प्रकार हो सकते हैं:-

(१) नील नदी का बेसिन—नील नदी विषुवत् रेखीय प्रदेश से निकल कर अफ्रीका के पूर्वी ऊँचे पठार पर बहती हुई मिस्र देश में बहती है। सूडान और मिस्र देश की जितनी उन्नति हुई है उसका मूलकारण नील नदी को ही समझना चाहिये। अफ्रीका में मिस्र देश ही एक ऐसा विभाग है जिसकी सभ्यता का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मिस्र की प्राचीन सभ्यता की याद दिलाने के लिये अब भी वहाँ संसार को चकित करने वाले पिरामिड मौजूद हैं जो प्राचीन काल के विश्व विख्यात राजाओं की स्मृति में बनाये हुए हैं।

अठारहवीं शताब्दी से मिस्र अंग्रेजों के प्रभुत्व में चला गया था और उसकी सुप्रसिद्ध स्वेज नहर भी अंग्रेजों के अधीन हो गई थी। अंग्रेजी साम्राज्य के प्रभाव को खतम करने के लिए मिस्र में कई बार क्रान्तियाँ हुईं जिनमें जगलूल पाशा के वफद दल ने भी काफी काम किया मगर अन्त में जनरल नजीब के नेतृत्व में मिस्र वासियों ने अंग्रेजी साम्राज्य का तख्ता एकदम उलट कर मिस्र को बिल्कुल आजाद कर दिया। उसके बाद मिस्र के वर्तमान शासक जनरल नासिर ने जनरल नजीब की सरकार को उलट कर अपनी सरकार बनाई। उसके पश्चात् जनरल नासिर की सरकार ने स्वेज नहर के ऊपर अंग्रेजों के अधिकार को चुनौती देकर उस पर मिश्र का अधिकार घोषित कर दिया। जनरल नासिर की इस हिमाकत पर अंग्रेजी सरकार बहुत बौखलाई। उसकी फौजों ने मिस्र के ऊपर आक्रमण कर दिया। हजारों आदमी इस लड़ाई में मारे गये, करोड़ों रुपया बर्बाद हुआ, मगर नतीजा कुछ न निकला। स्वेज नहर पर मिस्र का अधिकार पक्का हो गया। अंग्रेजी फौजों को अपमान पूर्वक पीछे वापस जाना पड़ा।

मिस्र की राजधानी और उसका मुख्य नगर काहिरा है। यह अफ्रीका का सबसे बड़ा नगर है। स्वेज नहर के उत्तरी सिरे पर पोर्ट सैय्यद नामक एक बड़ा और विशाल नगर है जहाँ संसार के सभी देशों के जहाज आकर ठहरते हैं। सिकन्दर महान के द्वारा बसाया हुआ सिकन्दरिया नगर भी मिश्र की शान है और बहुत सुन्दर नगर है।

अटलस प्रदेश

अफ्रीका के जलवायु (क्लाइमेट) के विचार से अटलस प्रदेश एक अच्छा प्रदेश है। यहाँ समुद्र तट पर जाड़ों में अच्छी वर्षा होती है और रूमसागरीय वनस्पति पाई जाती है। अटलस प्रदेश के तीन राजनैतिक विभाग हैं—मरक्को, अल्जीरिया और ट्यूनीशिया। ये तीनों ही पहले फ्रान्स के उपनिवेश थे, मगर अब अल्जीरिया, ट्यूनीशिया आजाद हो गये हैं। अटलस प्रदेश के प्रसिद्ध शहरों में मरक्को की राजधानी फेज, अल्जीरिया की राजधानी अल्जीरियस और ट्यूनीशिया की राजधानी ट्यूनिस उल्लेखनीय हैं।

गिनी तट

गिनी तट के राज्यों में (१) गेम्बिया (२) सियरालिओन (३ गोल्ड कास्ट (४) नाइजीरिया (५) लाइबीरिया (६) केमरून और (७) फ्रेंचवेस्ट अफ्रीका इन सब राज्यों में से अधिकांश अंग्रेजों के प्रभाव में थे, मगर अब धीरे-धीरे ये सब राज्य भी स्वतन्त्रता की राह पर बढ़ते जा रहे हैं।

काङ्गो बेसिन

कांगो नदी के किनारे पर बसा हुआ अफ्रीका का प्रान्त कांगो बेसिन कहलाता है। इस सारे बेसिन पर अभी तक बेल्जियनों का अधिकार था मगर सन् १९६० में जनरल लुलुम्बा के नेतृत्व में कांगो की जनता ने बेल्जियम की सरकार को हटाकर स्वाधीनता प्राप्त कर ली। मगर बेल्जियम के वहाँ से हटते ही कांगो में गृह-युद्ध फूट निकला जनरल लुलुम्बा मार डाले गये और संयुक्त राष्ट्र संघ के बीच में पड़ने के बावजूद भी वहाँ अभी तक गृह-युद्ध जारी है। उसका एक प्रान्त कटांगा अभी तक कांगो में सम्मिलित होने में आनाकानी कर रहा है।

अफ्रीका का पूर्वी पठार

अफ्रीका का विशाल झीलों का पूर्वी पठार, अबीसीनिया की सीमा से दक्षिण में जेम्बिजी नदी तक फैला हुआ है। इस पठार के प्रदेशों में युगाण्डा, केनिया, टैंगानीका और न्यासालैण्ड सम्मिलित हैं।

युगाण्डा में कपास बहुत होती है तथा यहाँ कहवा, कोको, केला और तम्बाखू की उपज भी उन्नति कर रही है।

केनिया में कहवा, चावल, तम्बाखू, केला और आम की बहुत फसल होती है। मोम्बासा केनिया का प्रसिद्ध बन्दरगाह है और नैरोबी यहाँ का प्रसिद्ध नगर है।

टैंगानिका की राजधानी, मुख्य नगर और बन्दरगाह दारुस्सलाम है। यहाँ से टैंगानिका झील के किनारे तक रेल जाती है।

मोम्बासा और दारुस्सलम के बीच समुद्र तट के समीप जंजीबार और पम्बास नामक दो द्वीप हैं। इन द्वीपों की मुख्य उपज लौंग और नारियल है। ये दोनों द्वीप लौंग की उपज के लिए संसार भर में प्रसिद्ध हैं और सारे संसार को लौंग यहीं से भेजी जाती है।

खनिज सम्पत्ति

दक्षिणी अफ्रीका खनिज सम्पत्ति के लिए शुरू से ही प्रसिद्ध है। यहाँ के खनिज पदार्थों में हीरा, जवाहरात सोना और कोयला मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त ताँबा, टीन लोहा, सीसा, अभ्रक, जस्ता, मैगनीज और प्लेटीनम भी पाया जाता है। हीरे और जवाहरात साउथ वेस्ट अफ्रीका, किम्बर्ले और प्रिटोरिया के पास मिलते हैं। सोना ट्रान्सवाल में कई जगह मिलता है परन्तु ट्रान्सवाल का रैण्ड प्रान्त जिसमें जोहान्सबर्ग का मशहूर नगर स्थित है, सोने की खदानों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कोयले की प्रसिद्ध खानें ड्रेकन्स बर्ग, पहाड़ों के पूर्व की ओर न्यूकैसल नामक नगर में बहुत हैं। न्यूकैसल का कोयला बड़ा उत्तम होता है।

अफ्रीका के द्वीप

अफ्रीका में अटलांटिक महासागर में कुछ द्वीप हैं जिनमें मेडागास्कर सबसे बड़ा है। इस द्वीप में रबड़,

चावल, कपास, कोको, कहवा और तम्बाखू काफी पैदा होता है। दूसरा द्वीप मारिशस है यहाँ की लगभग सारी आबादी हिन्दुस्तानियों की है। यह द्वीप गन्ने की उपज के लिये बहुत प्रसिद्ध है। अफ्रीका के पश्चिम उत्तर में अटलांटिक महासागर के मॉडीरा और कनाड़ी नामक द्वीपों में फल बहुत पैदा होते हैं। जन्जीबार और पम्पा का वर्णन पहले किया जा चुका है।

अफगानिस्तान

भारत वर्ष के उत्तर-पूर्वी सीमान्त पर बसा हुआ एक मुस्लिम राष्ट्र जिसका क्षेत्रफल २५०००० वर्ग मील है जिसकी आबादी १३०००००० है, जिसकी राजधानी काबुल और जिसके प्रसिद्ध शहर कन्दहार, हिरात, मझार-इ-शरीफ और जलालाबाद हैं। इस देश की मुख्य भाषाएं फारसी, पश्तो और तुर्की हैं।

यहां का प्रधान धर्म सुन्नी इस्लाम है। कुछ अल्पमत में शिया लोग भी बसते हैं। यहां का राष्ट्रीय झण्डा काला, लाल और हरे रंग का होता है जिसमें सफेद धारियां होती हैं।

इतिहास

अफगानिस्तान एक प्राचीन देश है जहां का इतिहास कई प्रकार के उतार-चढ़ाव और घटनाओं से युक्त होने के कारण बड़ा दिलचस्प और मनोरंजक है। ईसा से करीब पाँच सौ वर्ष पहले यह देश ईरान के सुप्रसिद्ध अखामनी साम्राज्य का एक अंग था। सिकन्दर महान ने अपने प्रबल आक्रमण के द्वारा जब ईरान के अखामनी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया तब ईरान को पद-दलित करने के बाद भारत विजय के लिये उसे मार्ग में पड़ने वाले अफगानिस्तान को विजय करना पड़ा। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् यह देश उसके सेनापतियों के द्वारा स्थापित ग्रीक बेक्ट्रियन साम्राज्य का एक अंग रहा जो ईसा के दो सौ बरस पहले तक चलता रहा। उसके पश्चात् यह देश बुद्ध धर्म को मानने वाले कुछ घुमन्तू कबीलों की अधीनता में आता-जाता रहा। भारतवर्ष के मौर्य्य साम्राज्य और गुप्त साम्राज्य का शासन भी इस देश पर रहा था।

इसके पश्चात् जब अरबीस्तान में इस्लाम का उदय हुआ और उसका साम्राज्य सारे मध्य एशिया में फैलने लगा तब यह देश भी ईसा की सातवीं शताब्दी से इसी मुस्लिम प्रभाव में चला गया। उसके बाद गजनी में सुबुक्तगीन का उदय हुआ और उसके बाद सुल्तान मुहम्मद गजनवी ने अफगानिस्तान के गजनी नामक स्थान पर अपना शासन स्थापित कर वहीं से हिन्दुस्तान पर अपने सोलह प्रसिद्ध आक्रमण किये। उसके पश्चात् कई शताब्दियों तक यह देश संसार प्रसिद्ध विजेता, आक्रमणकारी चंगेज खाँ, तैमूर लंग, हलाकू आदि का क्रीडा-स्थल बना रहा।

सोलहवीं शताब्दी में मुगल विजेता बाबर ने भारत वर्ष को विजय करने के लिये काबुल को अपना प्रधान केन्द्र बनाया। उसके बाद सन् १७७४ में सुप्रसिद्ध विजेता अहमद शाह दुर्रानी ने इस देश को जीत कर अपना राज्य स्थापित किया और यहीं से उसने अपने दो प्रसिद्ध आक्रमण भारतवर्ष पर किये। अहमद शाह दुर्रानी के बाद उसी का वंश इस देश पर अपना राज्य करता रहा।

सन् १८३६ से १८४२ तक अफगानिस्तान में एक राज्य-क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति के फलस्वरूप वहां के अमीर शाह शुजा को अफगानिस्तान छोड़ कर भागना पड़ा और दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तान का अमीर हो गया। दोस्त मुहम्मद ने रूस के साथ मिल कर अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया और पहले अमीर शाह शुजा ने भारत वर्ष में आकर अंग्रेजों से अफगानिस्तान की गद्दी वापस दिलाने के लिये सहायता की प्रार्थना की। उस समय भारत वर्ष में ब्रिटिश शासन के गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड थे। जब उन्हें यह पता चला कि दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों के खिलाफ रूस के साथ मिल कर षड्यन्त्र कर रहा है तब उन्होंने दोस्त मुहम्मद को गद्दी से उतार कर शाह शुजा को गद्दी पर बिठाने के लिये अपनी सेना भेजी। इस सेना ने दोस्त मुहम्मद को हरा कर कैद कर लिया और शाहशुजा को अफगानिस्तान की गद्दी पर बिठा दिया। परन्तु शाहशुजा वहां की जनता में इतना बदनाम था कि उसके गद्दी पर बैठते ही अफगान प्रजा के अन्दर विद्रोह हो गया और उसने शाहशुजा की हत्या करके अफगानिस्तान की रक्षा के लिये रखी हुई अंग्रेज सेना को काट डाला! तब अंग्रेजी शासन ने जनरल बॉट और

पोलर की अधीनता में एक सेना भेजी। इस सेना ने काबुल को जीत लिया मगर पुराने अनुभवों से अंग्रेजी शासन ने यही निश्चय किया कि रूस और भारत के बीच में अफगानिस्तान को एक बफर स्टेट की तरह रखना चाहिये और उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना चाहिये।

इसके बाद दोस्त मुहम्मद को ही फिर से अफगानिस्तान का अमीर बना दिया गया।

मगर सन् १८८६ में अफगानिस्तान के अमीर शेर अली ने रूस के साथ षड्यन्त्र करके रूस के राजदूत को अपने यहां रख लिया और अंग्रेजों के राजदूत को निकाल दिया। तब अंग्रेजों ने अफगानिस्तान से फिर लड़ाई की घोषणा कर दी और अफगानिस्तान को हरा दिया। मगर इसी बीच शेर अली की मृत्यु हो जाने से उसके लड़के याकूब खाँ ने अंग्रेजों से दोस्ती कर ली और वह अफगानिस्तान का अमीर बना दिया गया। परन्तु पहले की भाँति फिर अफगानिस्तान में अंग्रेज राजदूत की हत्या हो गई और बहुत से अंग्रेज सैनिक कत्ल कर दिये गये। इसका बदला लेने के लिये अंग्रेजों ने लार्ड राबर्ट्स की अधीनता में एक फौज भेजी जिसने याकूब खाँ को हरा कर शेर अली के भतीजे अब्दुर्रहमान को अफगानिस्तान का अमीर बना दिया। इसके बाद अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करने का निश्चय कर अपनी फौजें वहाँ से वापस बुला लीं।

सन् १६०७ में एक एंग्लो-रशियन समझौता हुआ जिसमें दोनों देशों ने अफगानिस्तान की स्वतन्त्रता की गारण्टी दी। मगर फिर भी यह देश ब्रिटिश प्रभाव से प्रभावित रहा। इससे इस देश में ब्रिटेन विरोधी भावनाएं बहुत तीव्र हो गईं जिसके फलस्वरूप १६१६ में एक छोटी सी लड़ाई भी हुई।

सन् १६२६ में अफगानिस्तान के अमीर ने अपनी अमीर की पदवी को बदल कर बादशाह (King) की पदवी को ग्रहण किया।

इसके पश्चात् अफगानिस्तान में सामाजिक और राजनैतिक सुधारों के लिये सब से महत्वपूर्ण कदम अमीर अमानुल्ला ने उठाया। अमीर अमानुल्ला और उनकी बेगम दोनों ने इंग्लैण्ड में शिक्षा पाई थी। वहां की शिक्षा का प्रभाव उन लोगों के संस्कारों में बद्धमूल हो गया था और वे लोग अफगानिस्तान की प्रजा को पश्चिमी प्रजा के साँचे में ढालना चाहते थे। इसके लिये अमीर अमानुल्ला ने अफगानिस्तान में जोर-शोर से शिक्षा का प्रचार किया। वहां के बहुत से नवयुवकों को अध्ययन के लिये अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय राष्ट्रों में भेजा। स्त्रियों में पर्दा प्रथा तोड़ने के लिये कानून बनाये और कई बातें ऐसी कीं जिनको वहां के कट्टरपन्थी मुल्ला और मौलवियों ने इस्लाम की शरह के खिलाफ समझा। उन्होंने गुप्त रीति से अमानुल्ला के खिलाफ षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया और जब शाह अमानुल्ला अपनी बेगम सुरैय्या के साथ यूरोप की यात्रा को गये तब पीछे से बच्चा-ए-सक्का नामक एक भिश्ती के नेतृत्व में क्रान्ति कर दी गई और अफगानिस्तान की गद्दी पर खुद बच्चा-ए-सक्का बैठ गया। मगर तुरन्त ही अफगानी सेना का जनरल नादिरशाह, जो उस समय हिन्दुस्तान में था, वापस लौट कर आया और बच्चा-ए-सक्का को गद्दी से उतार कर स्वयं अफगानिस्तान की गद्दी पर बैठा। नादिरशाह के बाद उसका पुत्र मुहम्मद जहीर शाह अफगानिस्तान की गद्दी पर आया जो अभी तक वहां का शासन कर रहा है। मुहम्मद जहीर शाह ने भी अपने देश को आधुनिक सभ्यता के सांचे में ढालने का पूरा प्रयत्न किया है और संसार के उन्नत मुस्लिम राष्ट्रों में अपना एक स्थान बना लिया है।

अब्दुर्रहीम खानखाना

हिन्दी के महान कवि, सम्राट् अकबर के गार्जियन बैरम खाँ के पुत्र और एक महान् सेनापति।

अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म सन् १५५६ में बैरम खाँ की मेवाती बीबी के गर्भ से हुआ था। महाकवि रहीम एक असाधारण सुन्दर नवयुवक था। उसकी सुन्दरता को देख कर चित्रकार उसकी तस्वीरें उतारते थे जिन्हें अमीर लोग अपनी बैठकों को सजाने के लिये लगाते थे।

रहीम के पिता बैरम खाँ साहित्य, संगीत और कला में एक प्रवीण पुरुष था। उसकी माँ हरियाना प्रान्त की होने से रहीम के लिये हिन्दी भाषा भी तुर्की और फारसी की तरह मातृभाषा के समान थी। इन तीनों भाषाओं पर रहीम का अच्छा अधिकार था। पैतृक रूप में साहित्य और कविता रहीम को दाय रूप में मिली थी और उसके पश्चात् शायरों, कवियों और कलाकारों से लगातार सम्पर्क रहने के कारण उसको साहित्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ने का पर्याप्त अवसर मिल रहा था।

मगर सम्राट् अकबर रहीम का विकास एक कलाकार के रूप में नहीं एक महान सेनापति के रूप में देखना चाहता था। यही कारण है कि सिर्फ नौ वर्ष की उम्र में अकबर ने उसे "मन अम-खान" की उपाधि प्रदान की और उन्नीस वर्ष की उम्र में अकबर ने उसको गुजरात का गवर्नर बना दिया। इसके बाद कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में अकबर ने उसको सेनापति बना कर भेजा और रहीम ने इस सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को पूरी सफलता के साथ निभाया। इसके उपलक्ष्य में अकबर ने रहीम को खानखाना की उपाधि प्रदान की।

मगर उत्कृष्ट सेनापति होने के बावजूद भी रहीम के मस्तिष्क का साहित्यिक विकास में रुकावट नहीं आई। सन् १५६० में रहीम ने बाबर के आत्म-चरित्र "तुज़क बाबरी" का फारसी में अनुवाद किया। यह ग्रन्थ चगताई तुर्की भाषा का महान ग्रन्थ है।

रहीम का असली विकास, जिसने उसको भारत वर्ष में अमर कर दिया, एक बड़े सेनापति, एक बड़े राजनीतिज्ञ या एक बड़े दानी की तरह नहीं हुआ बल्कि एक महान कवि के रूप में हुआ। रहीम केवल हिन्दी ही का नहीं फारसी का भी महान कवि था और उसने सैकड़ों फारसी के कवियों को आश्रय दिया था। बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी के द्वारा "मासिर रहीमी" नामक एक बहुत बड़ा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में रहीम के आश्रित सैकड़ों फारसी कवियों की कविताओं का संग्रह दिया गया है।

रहीम की हिन्दी कृतियों में दोहावलि, बर्वे नायिका भेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी दम्पत्ति-विलास इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

रहीम की कविताओं के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

१—कमला थिर न रहीम यह साँच कहत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय॥

२—कह रहीम सम्पत्ति सगे बनत बहुत बहु रीत।
बिपत्ति कसौटी जे कसे तेई साँचे मीत॥

३—कह रहीम कैसे बने केर बेर को संग।
ये रस डोलत आपने उनके फटत अंग॥

४—जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाड़ति छोह॥

५—जे गरीब सों हित करें धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥

६—तरूवर फल नहीं खात है सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित सम्पत्ति संचाहि सुजान॥

७—रहिमन मोहिं सुहाय अमिय पियावे मान बिन।
जो बिष देहिं पिलाय मान सहित मरिबो भलो॥

जिस प्रकार इस महान कवि का पूर्व जीवन सफलता सम्मान, सुख और स्मृद्धि के अन्दर बीता उसके विपरीत इसका अन्तिम जीवन भयंकर कष्टों और विपत्तियों के अन्दर व्यतीत हुआ। सन् १५९७ में उसकी बीबी महाबानू और उसके पुत्र हैदर की मृत्यु हो गई। सन् १६०४ में अकबर के पुत्र और रहीम के दामाद दानियाल की मृत्यु हो गई। सन् १६०५ में महान सम्राट् अकबर की मृत्यु हुई और उसी दिन से महाकवि रहीम के दुर्भाग्य और दुर्दिनों का प्रारम्भ हुआ! जहांगीर का पुत्र खुर्रम रहीम का पोता दामाद था। खुर्रम में और नूरजहाँ के दामाद शहरयार में बहुत प्रतिस्पर्धा चलती रहती थी। रहीम अक्सर खुर्रम का पक्ष लेते रहते थे। इसलिये जहाँगीर और उनके बीच में मनमुटाव पैदा हुआ और फिर वह भयंकर दुश्मनी में बदल गया। जहाँगीर ने रहीम के पुत्र दाराब का सिर काट कर उसे थाली में रख कर उस पर कपड़ा ढक कर भेंट के तौर पर रहीम के पास भेजा और कहलवाया कि जहाँपनाह ने आप के पास खरबूजा भेजा है। सत्तर वर्ष के बुड्ढे बाप ने रूमाल को

हटाया तो वहाँ अपने बेटे का सिर देखा। मनुष्य के ऊपर जो अन्तिम दर्जे की मुसीबत और जुल्म हो सकता है वह रहीम ने देख लिया। इस घटना के लिये पीछे से बादशाह ने बहुत पश्चाताप किया और इस घाव को मिटाने के लिये फिर से उन्हें खानखाना की उपाधि, जागीर और पद भी दिया लेकिन वह गहरा घाव इन सब बातों से कैसे भर सकता था। फरवरी १६२७ में रहीम ने दिल्ली में अपना शरीर छोड़ा। हुमायूं के मकबरे से थोड़ी दूर पर उनका भी आलीशान मकबरा बना जिसमें लाल पत्थर में संगमरमर की पच्चीकारियाँ थीं।

अब्राहम लिंकन

यूनाइटेड स्टेट अमेरिका का इतिहास प्रसिद्ध राष्ट्रपति जो सन् १८६० में चुना गया।

संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास में अब्राहम लिंकन का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी उदारता, उसकी राष्ट्रभक्ति और मानवता के प्रति उसके अगाध प्रेम ने उसका नाम मानवीय इतिहास के उदारचेता महान् पुरुषों की श्रेणी में रख दिया है।

जिस समय अब्राहम लिंकन संयुक्तराष्ट्र का राष्ट्रपति चुना गया उस समय उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच एक बड़ा संघर्ष चल रहा था। दक्षिण अमेरिका में यूरोपियन लोगों की बड़ी-बड़ी खेतियाँ होने के कारण वहाँ पर गुलामी की प्रथा बहुत जोरों से चल रही थी।

उन्नासवीं सदी के शुरू में यूरोप के प्रायः सभी देशों ने गुलामी की प्रथा को गैरकानूनी कर दिया, मगर दक्षिणी अमेरिकनों के विरोध के कारण संयुक्तराज्य अमेरिका में गुलामों का व्यापार गैरकानूनी कर दिया जाने पर भी गुलामी जायज मानी जाती थी। इसलिये जब इंग्लैण्ड से गुलामी की प्रथा उठा दी गई तो गुलामों के व्यापार का प्रमुख बन्दरगाह न्यूयार्क बन गया।

अब्राहम लिंकन व्यक्तिगत रूप से तो गुलामी का विरोधी था ही मगर संयुक्तराज्य के राष्ट्रपति की हैसियत से भी वह गुलाम प्रथा का समर्थन नहीं कर सकता था। फिर भी अमेरिका को गृह-युद्ध की आग से बचाने के लिये और दक्षिण अमेरिका को उत्तरी अमेरिका से अलग न होने देने के लिये उसने समझौते की भावनाओं का अवलम्बन किया। उसने यह मंजूर कर लिया कि जहाँ पर गुलामी पहले से मौजूद है वहाँ पर उसे गैरकानूनी नहीं की जायगी। उसने दक्षिण वालों को खुश करने के लिये यह भी मंजूर कर लिया कि जहाँ पर गुलामी की प्रथा अभी चालू है वहाँ उसे संविधान में भी शामिल करके स्थायी रूप दे दिया जायेगा। वह किसी भी मूल्य के ऊपर संघ को छिन्न-भिन्न नहीं करना चाहता था।

मगर अब्राहम लिंकन की सारी कोशिशें बेकार हुईं। दक्षिण अमेरिका ने अलग हो जाने का फैसला कर लिया और ग्यारह राज्य अलग हो भी गये। अलग होने वाले राज्यों ने अपना संगठन करके उसे कानफेडरेटेड स्टेट्स का नाम दिया और उन्होंने जेफरसन डेविस को अपना नया राष्ट्रपति चुन लिया। गृह-युद्ध भी प्रारम्भ हो गया। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की दृढ़ता से दक्षिण अमेरिका वाले हार भी गये। मगर जीत होते ही लिंकन ने दक्षिण वालों के साथ अत्यन्त उदारता का बर्ताव किया। टूटे हुए दिलों को फिर जोड़ने का प्रयत्न वह कर ही रहा था कि किसी हत्यारे ने उसे गोली से मार दिया।

अब्राहम लिंकन का जन्म एक बहुत गरीब घराने में हुआ था। अपनी निजी प्रतिभा से वह अमेरिका के उद्धारकों में गिना जाने लगा और संसार के महानतम पुरुषों में आज उसकी गणना होती है।

अब्बास शाह

ईरान के सफावी वंश का प्रसिद्ध बादशाह शाह अब्बास। जिसने सन् १५८७ से १६२६ तक ४२ वर्ष राज्य किया।

सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में अर्थात् सन् १५०२ के पूर्व ईरान पर से तैमूरी लोगों के शासन का अन्त हो गया और ईरान की राष्ट्रीय जागृति के फलस्वरूप वहाँ पर सफावी नामक एक राजवंश का शासन प्रारम्भ हो गया। यह राजवंश सन् १५०२ से १७२२ तक ईरान पर शासन करता रहा। इस राजवंश का शासन ईरानी इतिहास में

एक उज्ज्वल सुवर्ण युग माना जाता है। इस शासन में ईरान की राजधानी बड़े-बड़े विशाल और सुन्दर प्रासादों से घिर गई।

सफावी वंश का सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध बादशाह अब्बास हुआ जिसने सन् १५८७ से १६२६ तक ईरान पर शासन किया। यह ईरान के सबसे महान शासकों में गिना जाता है। अपने शौर्य्य और संगठन से इसने आक्रमणकारी उजेबकों और उस्मानी तुर्कों को खदेड़ दिया और एक सुदृढ़ राज्य का निर्माण किया। अपनी राजधानी इस्फहान को अधिक से अधिक सुन्दर बनानेमें इसने अपनी शक्तियाँ लगा दीं। शाह अब्बास की इस्फहान की नगर निर्माण कला अपनी उत्कृष्ट रुचि की उत्कृष्ट कृति मानी जाती है।

सफावी शासन काल में ईरानी लोगों की शक्ति का बहुत विकास हुआ। वे तैमूरी शाहजादों को धीरे-धीरे पीछे हटाते गये और उन्हें वक्षु नदी के उसपार धकेल दिया। अब उन लोगों के हाथ में सिर्फ वक्षु नदी पार का भूभाग और अफगानिस्तान का कुछ हिस्सा रह गया।

सफावी शासकों में "शाह अब्बास" सबसे योग्य, नेक और महान था जो भारत के मुगल सम्राट अकबर और जहाँगीर का समकालीन था।

अब्दुल्ला ताहिरी

सन् ८१८ में ताहिर नामक एक व्यक्ति ने ताहिरी राजवंश की स्थापना की थी। ताहिर पहले खलीफा अल-मामून का सेनापति था। खलीफा के लिए पश्चिमी प्रदेश को जीतने के बाद खलीफा ने उसे मेसोपेटोमिया का गवर्नर बगदाद की सेना का सेनापति और इराक का अर्थ सचिव बनाया। मगर कुछ समय पश्चात् खलीफा ताहिर के खिलाफ हो गया और ताहिर ने बगावत कर ताहिरी राजवंश की अलग स्थापना की।

इसी ताहिरी राजवंश का चौथा शासक अब्दुल्ला ताहिरी था। अब्दुल्ला ताहिरी वंश का सब से शक्तिशाली शासक था। इसके समय में खलीफा का शासन नाम मात्र का रह गया था और अरबों के शासन के जुए से मुक्त होकर ईरानी अपना वंश स्थापित करने में सफल हो गये थे।

अब्बासी-खलीफा

महमूद पैगम्बर के चाचा अब्बास के नाम से चला हुआ वंश जो अब्बासी कहलाता है। इस वंश ने बनी-उमैया वंश को खिलाफत से हटाकर अरब में अब्बासी वंश की खिलाफत स्थापित की। अब्बासी खिलाफतों का प्रारम्भ सन् ७४९ से होता है।

अब्बासी वंश के महमूद अब्बासी ने खिलाफत पर से उमैयावंश को नष्ट करने के लिए ईरान के एक बहादुर नवयुवक अबू मुसलिम से सहायता ली। अबू मुसलिम ईरान के इस्फहान शहर का रहने वाला एक ईरानी मुसलमान था वह एक तीर्थयात्री दल के साथ मक्का आया हुआ था।

अबू मुसलिम की सहायता से महम्मद अब्बासी ने उमैया वंश को हरा दिया किन्तु विजय पूर्ण होने के पहले ही वह मर गया। उसके बाद उसका छोटा भाई सफ्फाह अबुल अब्बास खिलाफत की गद्दी पर बैठा।

अब्बासी वंश ने एक लम्बे समय तक हुकूमत की। इस वंश में कई खलीफा हुए मगर उनमें अबुल अब्बास मंसूर, महदी, हादी, अमीन, मामून और हारूँ-अलरशीद का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

उसकी राजधानी बगदाद उस समय शान, शौकत और वैभव में सारी दुनिया में अपना जोड़ नहीं रखती थी, इसकी आबादी रोम लाख से कम नहीं थी। यह एक लम्बी चौड़ी विशाल नगरी थी जिसमें बड़े-बड़े महल, स्कूल, कालेज बड़ी-बड़ी दुकानें, पार्क और बगीचे थे। यहाँ के व्यापारी पूर्व पश्चिम के देशों से बड़ा व्यापार करते थे। साम्राज्य के कोने कोने से राजधानी तक डाक लाने और ले जाने की पूरी व्यवस्था थी। हारूँ के जमाने में (७८६—८०९ तक) बगदाद अपनी शान शौकत की चोटी पर था। उसके दरबार में चीनी सम्राट के यहाँ से तथा सम्राट शार्लमन के यहाँ से राजदूत मण्डल आते जाते रहते थे।

साहित्यिक विकास

खलीफा मंसूर से लेकर हारू-अल रशीद तक का समय अरबी साहित्य के चरम विकास का समय है। साहित्य सृजन का जितना विशाल कार्य्य अरबी भाषा में

अब्बासी खलीफाओं के समय में हुआ उतना उसके पहले के किसी युग में नहीं हुआ। खलीफा मन्सूर के राज्य काल में (सन् ७५३ से ७७४ तक) वैद्यक, तर्कशास्त्र, दर्शन और विज्ञान के कई विदेशी ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ। इस समय के अनुवादकों में इब्न मुकफ्फा का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इब्न मुकफ्फा ईरानी जाती और ईरानी धर्म का अनुयायी था। उसने कितने ही ग्रीक दर्शनों के अनुवाद किये थे। संस्कृत साहित्य के भी कई ग्रन्थों का अनुवाद इस काल में अरबी में हुआ था।

खलीफा मामून ने बगदाद में "बेत-अल-हिक्मा" नामक एक ज्ञान सदन की नींव डाली जो सारे अरब जगत में सबसे पहली शोध-संस्था और अध्ययन पीठ थी। अपने विशाल पुस्तकालय और वेधशाला के कारण यह सारे संसार का आकर्षण केन्द्र बन गई थी इतनी बड़ी अनुवाद संस्था प्राचीन जगत् में कहीं भी नहीं देखी गई थी ज्योतिष के विषय में पहले जितना कार्य्य हो चुका था उसकी यहाँ छान बीन की गई। इसके अतिरिक्त और भी अनेक कार्य्य इस संस्था में अनुसन्धान सम्बन्धी हुए।

अब्बास तैय्यब जी

सन् १९३० के मई मास में नमक-सत्याग्रह के सम्बन्ध में महात्मा गांधी को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। तब उनकी गिरफ्तारी के बाद उस सत्याग्रह को संचालन करने का नेतृत्व अब्बास तैय्यबजी नामक एक वृद्ध पुरुष ने ग्रहण किया मगर वे भी १२ मई १९३० को गिरफ्तार कर लिये गये।

अब्बास तैय्यब जी एक प्रतिष्ठित वृद्ध पुरुष थे जो बड़ौदा के दीवान रह चुके थे।

अबीसीनिया

दक्षिणी अफ्रीका का एक प्राचीन देश जो लाल-सागर के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर अत्यन्त दुर्गम पहाड़ी प्रदेश में बसा हुआ है। इसे इथोपिया भी कहते हैं।

अबीसीनिया की इतिहास परम्परा बहुत प्राचीन है ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन काल में इस देश में एकसम नामक एक ऐश्वर्य्य सम्पन्न नगरी थी इस नगरी की रानी शेबा थी। शेबा का विवाह जेरूसलेम के सुलेमान (यहूदियों का पूर्व पुरुष) के साथ हुआ और इनके विवाह से जो पुत्र हुआ इसका नाम "मेनेलक" था यही मेनेलक अबीसीनिया का पहला शासक बना। अबीसीनिया के वर्तमान शासक हेलसिलासी मेनेलक की २२५ वीं पुश्त के नरेश हैं।

इस देश की अपनी प्राकृतिक परम्पराओं के कारण दूसरी बड़ी विशेषता यह रही है कि हजारों वर्ष के इतिहास में जब कि संसार के बड़े-बड़े साम्राज्य उलट गये, यह देश अजेय और स्वतन्त्र रहा। सन् १८८५ में इटाली ने इस देश पर आक्रमण का प्रयत्न किया था मगर वह आक्रमण इसके तटवर्ती प्रदेश इरीटिया तक ही सीमित रह गया था जब अबीसीनिया पर हमला हुआ तो अडोवा के ऐतिहासिक युद्ध में यहाँ के तत्कालीन नरेश मेनेलक द्वितीय ने इटाली को बुरी तरह भगा दिया।

सन् १९३५ में इटली के डिक्टेटर मुसोलिनी की सेना ने फिर अबीसीनिया पर हमला किया और इस बार पाँच बरस के लिए यह प्रदेश इटली के आधीन हो गया। मगर पाँच वर्ष पश्चात् फिर अंग्रेजी सेना की सहायता से इटली वाले भगा दिये गये।

इस प्रदेश की स्वतन्त्रता और अजेयता का प्रधान कारण इसकी प्राकृतिक सुरक्षा व्यवस्था है यह बहुत ऊँचे पठारी स्थान पर बसा हुआ है और चारों ओर से विकट पहाड़ियों से घिरा हुआ है कई पर्वत श्रेणियाँ इधर से उधर फैली हुई हैं। इसके अन्दर बहने वाली नदियों में अतबारा और तकाजी दो नदियाँ प्रमुख हैं। इस देश में कई झीलें भी हैं। जिनमें "तना" झील सबसे प्रमुख है। इसी झील से नीली "नील" नदी निकलती है जो व्हाइट नील से मिलकर मिस्र में बहने वाली विशाल "नील नदी" का रूप ग्रहण कर लेती है।

अबीसीनिया का कुल क्षेत्र फल ४,०७,१५० वर्ग मील है। जिसमें इसके तटवर्ती प्रदेश इरीशिया का क्षेत्र फल भी शामिल है। इस देश में हमेशा से अमर्यादित एक

तंत्री राजतन्त्र प्रचलित रहा है जिसमें सारी सत्ता राजा के अनियंत्रित अधिकार में रहती है।

इस देश के वर्तमान सम्राट हेलसिलासी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है। जब वे किसी राजमार्ग पर निकलते हैं तो लोग जमीन पर लेट-लेट कर उन्हें दण्डवत करते हैं।

अबीसीनिया का राष्ट्रीय झण्डा हरा, लाल और पीले रंग की आड़ी पट्टियों वाला है नवोदित सूर्य्य के सम्मुख शेर की आकृति यहाँ का राष्ट्रीय चिह्न है।

यहाँ बसने वाली जातियों में अमहारा, हरारी, तिगुनिया, गुरेज और सिदामो जातियाँ प्रधान हैं। इनमें से अधिकांश जातियाँ खानाबदोशों की तरह अपने-अपने खेतों में कच्चे मकान बना कर रहती है और ज्यादातर पशु पालन पर अपना निर्वाह करती है मध्य अबीसीनिया में अधिकांश लोग खेती पर गुजारा करते हैं।

धार्मिक दृष्टि से ये जातियाँ इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म इन दो धर्मों में बँटी हुई है, इस्लाम धर्म माननेवालों में बहुपत्नीत्व की प्रथा प्रचलित है मगर ईसाई धर्म मानने वाले अक्सर एक पत्नी ही रखते हैं।

अबीसीनिया प्रधान रूप से कृषि प्रधान देश है। यहाँ पर कॉफी की काश्त बहुत बड़े पैमाने पर होती है। कहा जाता है कि काफी का नामकरण ही यहाँ के "काफा" नगर के नाम पर हुआ है। खनिज पदार्थों की दृष्टि से भी यह प्रदेश काफी समृद्ध है। यहाँ सोना, लोहा, मैंगनीज और प्लेटीनम की बड़ी बड़ी खदानें हैं। मगर अभी तक उनका बराबर विकास नहीं हुआ है।

अबीसीनिया की राजधानी "अदीसअबाबा" है। जो ७८०० फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। यह यहाँ का सबसे बड़ा नगर है फिर भी कस्बे की तरह लगता है। अबीसीनिया को लाल सागर के द्वारा संसार से जोड़ने वाला बन्दरगाह "इरीट्रियो है।" यहाँ की प्रमुख भाषाएँ तिग्रिनिया और तिग्रे है।

अबुल फजल

अकबर के मशहूर दरबारी और वजीर, फारसी के महान् विद्वान, आईने अकबरी तथा अन्य कई ग्रन्थों के रचयिता, धर्म सुधारक तथा स्वतंत्र विचारक।

अब्दुल फजल का जन्म १४ जनवरी सन् १५५१ को आगरा में हुआ था इनके पिता शेख मुबारक अपने समय के के महान् विद्वान और उदारमतावलम्बी थे। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी फिर भी इनकी विद्वता से आकर्षित हो बहुत से युवक इनके पास शिक्षा ग्रहण करने आते थे। मुल्ला बदायूनी भी उनके शिष्य थे।

अपने बाल्यकाल की बातों का जिक्र करते हुए अकबर नामा में अबुलफ़जल लिखते हैं—

"१५ वर्ष की उमर में अपने पूज्य पिताजी के ज्ञान भण्डार का अधिकारी हो गया, फिर भी शिक्षा की बातों से सदा दिल मुरझाता था, दुनिया के खटकर्मों से मन दूर-दूर भागता था। पिता अपने तौर तरीके से विद्या और बुद्धि के मंत्र फूँकते थे। यद्यपि ज्ञान बढ़ता था पर वह दिल को नहीं लगता था, कभी तो जरा भी समझ में नहीं आता था कभी शंकाएँ रास्ता रोक लेती थीं। वाणी मदद नहीं करती थी, रुकावट हलका बना देती थी। मैं भाषणकला का भी उस्ताद था पर जबान नहीं खोल सकता था। जिन्हें आलिम कहा जाता था उन्हें मैंने बेइन्साफ पाया मन चाहता था कि अकेले में रहूँ या कहीं भाग जाऊँ।"

सन् १५७४-७५ में अबुल फजल ने अकबर के दरबार में प्रवेश किया। अबुल फजल वाणी और कलम दोनों के धनी थे। अकबर को ऐसी वाणी और लेखनी की बड़ी जरूरत थी उसने अपने लेखन विभाग में अबुल फजल को काम दिया और सल्तनत के कारनामों का इतिहास लिखवाना भी प्रारम्भ किया।

प्रतिभा कहीं छुपी नहीं रहती, घोर अन्धकार में भी उससे प्रकाश की किरण निकला करती है। अबुल फजल भी अपनी महान् प्रतिभा के बल पर अकबर की आँखों पर चढ़ गये। सम्राट अपने राज्य, घर और शरीर रक्षा की हर बात में इनसे मशविरा लेने लगा। इसी समय उन्हें

हजारी का मनसब प्राप्त हुआ और उसके बाद वे ढाई हजारी मनसबदार हो गये।

अबुल फजल ने अपने जीवन में कई किताबें लिखीं जिनमें (१) आइने अकबरी जिसमें तैमूर, बाबर, हुमायूँ और अकबर के शासन काल का जिम्मेदारी पूर्ण वर्णन है। (२) अकबर नामा (अकबर की सल्तनत का विशाल गजेटियर) (३) मुकाति बाते अल्लामी (अबुल फजल के पत्रों का संग्रह) (४) ऐयारे दानिश (पंचतंत्र का फारसी अनुवाद) (५) रुकआते अबुल फजल (अबुल फजल के छोटे पत्रों का संग्रह और (६) कश्कोल (सुभाषितों का फारसी संग्रह) प्रधान हैं।

अबुल फजल खाली कलम और वाणी के ही धनी नहीं थे वे तलवार के धनी और युद्ध कला के ज्ञाता भी थे। सन् १५९८-९९ में बादशाह ने उन्हें अहमद नगर के अभियान का सेनापति बनाकर भेजा। अहमद नगर की रक्षा उस समय इतिहास प्रसिद्ध वीरांगना चांदबीबी कर रही थी। अहमद नगर को जीतने के पहले असीरगढ़ को जीतना आवश्यक था। असीरगढ़ को लोग अजेय कहते थे। उसके उत्तर की ओर माली का किला था उसे पार करके ही असीरगढ़ पहुँचा जाता था। अबुल फजल को इस अजेय दुर्ग पर अधिकार करना था। उन्होंने इस गढ़ में प्रवेश करने के लिए एक पिछले रास्ते का पता लगाया और घोर अन्धेरीरात में जब कि पानी बरस रहा था अबुल फजल एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी को लेकर दुर्ग की समीपवर्ती सापिन नामक पहाड़ी पर चढ़ने लगे। आधी रात के कुछ पश्चात् उस टुकड़ी ने उस गुप्त रास्ते से होकर माली के फाटक को तोड़ दिया और नगाड़े को बजाया आवाज को सुनते ही अबुलफजल दूसरी ओर से सीढ़ी लगाकर किले के भीतर कूद पड़े और पौ फटते फटते माली के दुर्ग पर कब्जा कर लिया। असीरगढ़ का अधिकारी बहादुर खां इससे बहुत घबड़ा गया और उसने आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार अबुल फजल ने अपनी बहादुरी और बुद्धिमानी से असीरगढ़ जैसे अजेय दुर्ग और अहमद नगर पर विजय पाई।

अबुल फजल का धर्म मानवता का धर्म था। मानवता को वे सब धर्मों के ऊपर समझते थे। हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पारसी सब उनके लिए बराबर थे। बादशाह भी इसी मत के थे। अबुल फजल ने जब इंजील की प्रशंसा सुनी तो उसी का अनुवाद करने में लग गये। जरथुस्त्र के उपासक पारसी लोग जब अकबर के दरबार में आये और उन्होंने पारसी धर्म की विवेचना करते हुए जब अग्नि पूजा की तारीफ की तो बादशाह ने हुक्म दिया कि ईरान की तरह यहाँ भी ऐसे स्थान बनाये जांय जहाँ दिन रात अग्नि प्रज्वलित रहे। इन्हीं सब बातों के कारण कट्टर मुसलमान उन्हें और बादशाह को काफिर कहते थे। मगर अबुल फजल ने कभी इसकी परवाह नहीं की और हमेशा मजहबी संकीर्णता से ऊपर उठकर वे मानव-धर्म की उपासना में मशगूल रहे।

वास्तव में अबुल फजल अकबरी दरबार का एक ऐसा प्रकाशमान रत्न था जो आज भी उस इतिहास में अपनी उसी शान के साथ चमक रहा है और जिसकी बनाई हुई महान् कृतियां भारतीय साहित्य की बहुमूल्य निधि के रूप में सुरक्षित हैं।

अबुल कलाम आजाद

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के एक अग्रगण्य सेनानी। अरबी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान्, स्वाधीन भारत के शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद।

मौलाना अबुल कलाम आजाद मौलाना मुहम्मद खैरुद्दीन के पुत्र थे। मौ० मुहम्मद खैरुद्दीन भी अपने पुरखाओं के समान इसलाम के धर्मगुरु और अरबी तथा पारसी के धुरन्धर विद्वान थे। उन्होंने अरबी तथा पारसी में अनेक पुस्तकें लिखीं।

सन् १८५७ के गदर के समय देहली में अंग्रेजों के भयंकर अत्याचार को देख कर वे मक्का चले गये। वहीं पर मौ० आजाद का सन् १८८८ में जन्म हुआ। मौ० आजाद के पिता को अंग्रेजी भाषा की तालीम और विलायती रहन-सहन से सख्त नफरत थी। इसलिये उन्होंने मौलाना आजाद को अंग्रेजी तालीम से दूर ही रखा और अरबी तथा पारसी का उच्चतम ज्ञान देने के लिये पढ़ाई

शुरू कर के उनको दर्श-ए-निजामी का पाठ्यक्रम समाप्त करवा दिया।

१४ वर्ष की अवस्था में ही मौ० आजाद ने लिसानुस सिद्क' नामक उर्दू परचे का सम्पादन शुरू कर दिया। इस पत्र में एक बार ख्वाजा अल्ताफ हुसेन हाली जैसे पुरन्धर विद्वान को लिखी हुई सर सैय्यद अहमद खाँ की जीवनी की जोरदार समालोचना कर डाली। इस समालोचना से उर्दू के सारे पठित समाज का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ और केवल १६ वर्ष की उम्र में ये सन् १९०४ में अंजुमन-ए-हिमायत-ए-इस्लाम के लाहौर अधिवेशन के सभापति बनाए गये। उस समय इनके दिये हुए सारगर्भित भाषण से लोग बड़े खुश हुए और इनकी प्राकृतिक विभूति को देख कर हाली साहब ने कहा कि बच्चे के शरीर में बुड्ढे की खोपड़ी जड़ी हुई है।

सन् १९०५ में मिस्र के अल अजहर विश्व विद्यालय में अरबी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये ये गये। और सन् १९०७ में वहाँ से वापस आये। जिस समय वे यहाँ पर वापस आये उस समय बंगाल के विभाजन के कारण सारे बंगाल में अशान्ति की तीव्र लहर दौड़ रही थी। एक ओर तो बंगाली देश भक्त अपने शिर को हथेली पर रख कर इस अन्याय के विरुद्ध अंग्रेजी सरकार से लोहा ले रहे थे और दूसरी ओर सर सैय्यद अहमद के समान प्रभावशाली मुसलमान अंग्रेजी सल्तनत की बुनियाद को मजबूत करने का प्रयत्न कर रहे थे। मौलाना आजाद का झुकाव स्वाभाविकतया क्रान्तिकारियों की ओर था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सन् १९१२ में उन्होंने अल हिलाल, नामक उर्दू का साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारंभ कर दिया।

उस समय मौ० आजाद की उम्र सिर्फ २४ साल की थी और मुसलमानों में अंग्रेजी राज्य के समर्थन करनेवालों की संख्या और प्रभाव बहुत अधिक था। 'मुसलिम लीग' की स्थापना हो चुकी थी और मुसलिम लीग के एक प्रमुख निर्माता अली गढ़ कालेज के मंत्री नवाब मुश्ताक हुसेन ने अपने पहले भाषण में यह घोषणा की थी कि इस्लाम की तलवार सदा ब्रिटिश राज्य की सेवा में तत्पर रहेगी।

ऐसे संक्रमण काल में 'अलहिलाल' बड़ी सजधज और रोबदाब से सामने आया। चारों ओर तहलका मच गया। इसको देख कर अंग्रेजी सरकार और उसके समर्थक लोगों की बेचैनी बढ़ने लगी। इसी समय मौ० आजाद ने 'अलहिलाल' के एक अंक में लिखा :—

वक्त आने दे बता देंगे, तुझे ऐ आसमाँ।
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है।

अन्त में सरकार ने ७ अप्रैल सन् १९१४ को मौ० आजाद को पंजाब, संयुक्त प्रान्त और मद्रास से निष्कासित कर राँची में नजरबन्द कर दिया, जहाँ वे सन् १९२० तक नजरबन्द रहे। इसी नजरबन्दी के समय में उन्होंने अपने मूल्यवान संस्मरण 'तजकिरा' के नाम से लिखे और इसी नजरबन्दी की हालत में उन्होंने तरजुमानुल-ए-कुरान के नाम से कुरान शरीफ का अनुवाद कर के उस पर अपनी गवेषणापूर्ण टिप्पणियाँ लिखी हैं। इस पुस्तक के प्रारम्भ में मौ० आजाद की विस्तृत प्रस्तावना है जिसमें उनके इस्लाम सम्बन्धी गम्भीरतम ज्ञान का परिचय मिलता है।

सन् १९२० में रौलट ऐक्ट के खिलाफ महात्मा गांधी का जगत्प्रसिद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। १९२०-२१ के सत्याग्रह में महात्मा गांधी की रहनुमाई के अन्तर्गत देश की अद्भुत जागृति में मौ० आजाद ने बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। उनके ओजस्वी भाषणों से मुग्ध होकर जनता ने बड़ी तेजी से आगे कदम बढ़ाया। आंदोलन के बीच में जिस समय प्रिंस ऑफ वेल्स भारत में आये, उस समय यहाँ की जनता में बड़ी अशान्ति और आतंक छाया हुआ था। यहाँ के नेताओं ने ऐसी स्थिति में सार्वजनिक रूप से प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार घोषित कर दिया। इससे अंग्रेजी सरकार ने क्रुद्ध हो कर हजारों लोगों को जेलों में ठूँस दिया। मौ० आजाद भी इस सिलसिले में पकड़े गये और उनको सजा हुई।

सन् १९२३ में जब मौ० आजाद जेल से बाहर आये उस समय चौराचौरी-काण्ड हो जाने से महात्मा गांधी ने अपना आन्दोलन वापस खींच लिया था। उस समय कांग्रेस में दो प्रकार की विचारधाराओं का संघर्ष चल रहा था। एक विचारधारा असहयोग के पक्ष में थी और दूसरी कौंसिलों में जाकर वहाँ पर सरकारी पक्ष को परास्त करने के पक्ष में

थी। राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल और डा० अंसारी पहली विचारधारा के प्रतीक थे और पं० मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास और विट्ठल भाई पटेल जैसे लोग दूसरी विचारधारा के थे।

इस मतभेद को को दूर करने के लिए दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया। उस समय मौ० आजाद ने अपनी बुद्धिमानी से कांग्रेस को टूटने से बचा लिया। उनकी दलीलों से कांग्रेस ने निश्चय किया कि जो लोग चाहें धारा सभाओं में जाकर असहयोग आंदोलन को मुद्दद बना सकते हैं।

इसके बाद सन् १६३७ में कांग्रेस ने विधान सभाओं में जाकर फिर से शासन सूत्र ग्रहण किया। उस पर नियंत्रण रखने के लिये कांग्रेस ने ३ सदस्यों का एक पार्लामेंटरी बोर्ड बनाया जिसमें डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल और मौलाना आजाद सम्मिलित थे।

सन् १६३६ में द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर कांग्रेस ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि यदि योरोप की पेचीदगियों के कारण युद्ध छिड़ गया तो भारत, जो अपनी मर्जी और निर्णयों से वञ्चित कर दिया गया है, उसमें कोई भी भाग न लेगा।

मगर जब सरकार ने इस पर कोई ध्यान न दिया तो कांग्रेस के विधायक मंत्रिमंडलों से बाहर निकल आये। काँग्रेस के पदत्याग करते ही मि० जिन्ना के आदेश से मुसलिम लीग ने मुक्ति-दिवस मनाया। मुक्ति का अर्थ था काँग्रेसी राज्य से छुटकारा।

इसके बाद रामगढ़ काँग्रेस के अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना आजाद चुने गये। फिर सन् ४२ का इतिहास-प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' का आन्दोलन कांग्रेस ने प्रारम्भ किया जिसमें मौलाना आजाद भी गिरफ्तार कर अहमद नगर के किले में नजरबन्द कर दिये गये। इनकी इसी नजर बन्दी की अवस्था में बेगम आजाद का देहान्त हो गया।

उसके बाद युद्ध समाप्त हुआ। इंग्लैंड में मजदूर दल की सरकार स्थापित हुई। २ सितम्बर सन् १६४६ को पं० जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना हुई। देश का विभाजन होकर उसके दो टुकड़े हुए। महात्मा गान्धी और मौलाना आजाद इस विभाजन के प्रबल विरोधियों में से थे। इस समय के इतिहास पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी है जिसमें उस समय की सारी गतिविधियों का उल्लेख किया है। इस पुस्तक का कुछ अंश अभी तक अप्रकाशित है। जिसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा बतलाते हैं कि मेरी मृत्यु के १० वर्ष बाद इसे प्रकाशित किया जाय।

स्वाधीन भारत की केन्द्रीय सरकार में मौलाना आजाद शिक्षा-मंत्री बनाये गये और मृत्यु पर्यन्त वे इसी पद पर काम करते रहे।

अब्दुल्ला-बिन-मैमान

ईस्लाम धर्म में करामाती पंथ का संस्थापक। करामाती पंथ के अनुसार इस्लाम का सातवाँ इमाम अली अंतिम इमाम है। मृत पुरुषों का कयामत के समय पुनः फिर पुनरुत्थान होता है। इस सिद्धान्त को यह सम्प्रदाय नहीं मानता। इस पंथ के अनुयायी जब ईरान से भगा दिये गये तो वे भारत में आकर बसे। इस देश में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। तत्कालीन मुलतान का राजा और वहां की प्रजा का बहुत सा भाग इस सम्प्रदाय का अनुयायी था। महमूद गजनवी ने मुलतान पर आक्रमण कर इस सम्प्रदाय को छिन्न-भिन्न कर दिया।

अब्दुल्ला बुखारी

ईस्लाम का प्रसिद्ध धर्मशास्त्री जो कि सन् ६०६ से ६१६ तक सामानी वंश के अमीर अहमद के जमाने में मौजूद था। इसने हदीस जामे – अस्सहीत (सहीबुखारी) ग्रन्थ का संकलन किया। इसमें अब्दुल्ला ने सोलह साल के अथक परिश्रम के बाद मुहम्मद पैगम्बर के वचनों और आचारों को छः लाख परम्पराओं के द्वारा संग्रहीत किया। इस्लाम का आज भी यह बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

अबुल हसन रूद

फारसी का प्रथम महान कवि जिसकी फारसी कविताएं बड़ी सरस होती थीं। यह भी नौवीं शताब्दी के अन्त में हुआ।

अब्दुल-मलिक सामानी

ईरान के सामानी वंश का अमीर सन् ६५४-६६१तक

अब्दुल मालिक सामानी वंश के राजानूह प्रथम का पुत्र था। गजनी वंश का संस्थापक अलपतगीन इसके शासन में प्रतिहारों का अफसर था। सामानी दरबार ने इसको अपने पद से हटा कर इसके स्थान पर अबू-मन्सूर नामक एक व्यक्ति को नियुक्त कर दिया। इससे नाराज होकर अलपतगीन गजनी चला गया और वहां जाकर उसने गजनी वंश की स्थापना की। इसी वंश में कुछ ही समय बाद अलपत गीन का खरीदा हुआ तुर्की गुलाम सुबुक्तगीन गजनी का शासक हुआ। जो सारे संसार में इस्लाम के प्रचार और अपनी लूटमार के लिए प्रसिद्ध है। अन्त में सुबुक्तगीन और उसके पुत्र महमूद गजनवी ने सामानी साम्राज्य पर चढ़ाई कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

अब्दुल मजीद अफरीदी

तुर्की का नाममात्र का खलीफा सन् १६२२।

तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा की विजय के बाद वहाँ की नेशनल असेम्बली ने तुर्की की सुलतानियत को खतम कर दिया। सिर्फ धार्मिक खिलाफत को बाकी रक्खा और यह घोषणा कर दी कि तुर्की का खलीफा उस्मानी खानदान में से रहेगा। इसके थोड़े ही दिन बाद भूतपूर्व सुलतान वहिउद्दीन पर देश द्रोह का आरोप लगाया। यह देख कर वहिउद्दीन अंग्रेजों की मदद से भाग गया और उसकी जगह अब्दुल मजीद अफरीदी को नया खलीफा चुनकर उसे धार्मिक रस्म अदायगी के लिए अमीर-उल-मोमिनीन बना दिया।

अबू-मुसलिम

इस्पहान का रहने वाला एक बहादुर मुसलिम युवक जिसने अरब की खिलाफत से उमैया वंश को हटाकर अब्बासी खिलाफत की स्थापना की।

इस समय अरब की खिलाफत खलीफा हिशाम आसीन था और खलीफा की तरफ से खुरासान का गवर्नर नस्र था। अब्बासी वंश के लोग जिसका अधिकारी मुहम्मद अब्बास था अरबी खिलाफत पर अपना अधिकार समझते थे। जिस समय अबू-मुसलिम एक तीर्थयात्री दल के साथ मक्का गया वहां पर महम्मद अब्बासी के साथ उसकी भेंट हुई। मुहम्मद अब्बासी ने उसे अपने विश्वास में ले अपना समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे इराक में प्रचारार्थ भेजा। सन् ७४२ से ७४४ तक वह वहां अब्बासी वंश के लिए प्रचार करता रहा। वह अच्छा वक्ता, संगठनकर्ता और ईरानी होने के कारण ईरानियों का विश्वास पात्र था।

लोकमत को धीरे-धीरे अब्बासी वंश के अनुकूल कर सन् ७४७ में अपनी संगठित सेना को लेकर उसने सारे खुरासान और मेर्व पर विजय प्राप्त की और उमैया वंशकी खिलाफत को हटाकर खिलाफत पर अब्बासी वंश को प्रतिष्ठित किया। जिसके पहले खलीफा सफ्फाह-अबुल अब्बास थे जिन्होंने ७५० से ७५४ तक खलीफा की गद्दीपर शासन किया।

अब्बुल खैर

मध्यएशिया के उजबक राज्य का प्रधान संस्थापक एक बहादुर सेनापति जिसका जन्म सन् १४१३ में हुआ।

अब्बुल खैर ने अपने राज्य की सीमाका बहुत विस्तार किया। उस समय अन्तर्वेद और ईरान का सुल्तान तैमूर लङ्ग का पुत्र शाहरुख था। अब्बुल खैर ने शाहरुख के राज्य पर हमला करके कुछ इलाकों को छीन लिया।

सन् १४४८ ई० में उसे पता लगा कि सुल्तान शाह-रुख मर गया है और उसकी गद्दी को सम्हालने के लिये उसका लड़का उलूगबेग खुरासान की ओर गया है। उस समय समरकन्द को अरक्षित देखकर अब्बुल खैर ने समर-

कन्द पर हमला कर इस सुन्दर नगर को जिसे कला के महान प्रेमी शाहरूख ने निर्मित करवाया था, लूट कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

उसके बाद शाहरुख के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारियों में झगड़े हुए जिसमें अब्बुल खैर ने अबू सईद का पक्ष लेकर उसके प्रतिद्वन्दी अब्दुल्ला को शीराज में हराकर मार डाला और अबूसईद को गद्दी पर बैठा दिया। इस जीत के उपलक्ष में अबूसईद ने शाहरुख के पुत्र उलूगबेग की पुत्री राबिया सुल्तान बेगम को अब्बुल खैर को भेंट में दे दिया।

अब्बुल खैर के धन और प्रताप को बढ़ते देख उसके रिश्तेदारों ने विद्रोह करके सन् १४८९ में उसको मार डाला।

अब्दुल्ला शैबानी द्वितीय

उजबक जाति के शैबानी वंश का मशहूर शासक इस्कन्दर शैबानी का पुत्र उजबक जाति का बहादुर और इतिहास प्रसिद्ध खान, जिसने सन् १५८३ से १५९६ तक शासन किया।

'अब्दुल्ला द्वितीय उजबक जाति के शैबानी वंश का सबसे बड़ा खान था। अपने पिता इस्कन्दर शैबानी के समय में ही कजाख मरुभूमि से काबुल की सीमा तक के बहुत से प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर इसने एक बड़े उजबक राज्य की स्थापना की।

जिस समय भारत वर्ष में सम्राट अकबर और ईरान में सम्राट तहमास्प शासन कर रहे थे उसी समय अब्दुल्ला शैबानी अपने साम्राज्य का विस्तार करने में लगा हुआ था। शाह तहमास्प के मरने के बाद अब्दुल्ला की शक्ति का और विस्तार हुआ। सन् १५८५ में ईरान के प्रतापी शाह अब्बास को उस्मानी तुर्कों की लड़ाई में फँसा देखकर इसने हिरात शहर पर आक्रमण कर दिया और नौ महीने के मुहासिरे के बाद उस पर अधिकार कर लिया। उसके कुछ समय बाद अपने सेनापति अब्दुल मोमिन के सेनापतित्व में नेशापोर और मशद पर आक्रमण कर दिया। मशद को लूटते समय अब्दुल मोमिन ने हजारों स्त्री-पुरुषों का कत्ल कर डाला और शिया मुसलमानों के उस पवित्र तीर्थ स्थान को बुरी तरह से लूटा। वहाँ के विशाल पुस्तकालय को जला दिया। वहाँ की कब्रों को खोद-खोद कर उनकी लाशों को जलाकर हवा में उड़ा दिया। उन लाशों में शाह तहमास्प की लाश भी थी।

शियों के प्रसिद्ध इमाम रजा की समाधि पर चढ़ाए हुए अति विशाल सोने और रूपे के दीप स्तम्भ, बहुमूल्य धातुओं में जटित कवच, दुर्लभ रत्न तथा कितनी ही अनमोल चीजों को इन लुटेरों ने लूट लिया और नष्ट कर दिया।

जिन्दगी भर संघर्ष करते हुए भी अब्दुल्ला का जीवन असफल रहा। उत्तर से कज्जाख लोगों के खान तवक्कलन इसके राज्य को लूटता रहा और अन्त में उसी के लड़के ने सन् १५९७ में उसे मार डाला।

अब्दुल-नबी

शेख अब्दुल-नबी-सम्राट् अकबर के समय के प्रभावशाली सदर मौलवी (सन् १५६४-१५८२)।

' शेख अब्दुल-नबी चिश्ती-सूफी सम्प्रदाय के थे। इस्लामी धर्म शास्त्र और हदीस (पैगम्बर के वचन) के अच्छे जानकार थे। अकबर के शासन में जब मुल्ला मुलतान पुरी की किस्मत ढलने लगी तब इनकी किस्मत ऊरूज पर आगई। सन् १५६४ में अकबर ने इन्हें "सदरूस्सुदूर" अर्थात् सब मौलवियों का अध्यक्ष बना दिया।

शेख अब्दुल नबी के उपदेशों का बादशाह पर बहुत प्रभाव था। सम्राट् अकबर शेख के जूतों को उठाने और मसजिद में झाड़ू लगाने में भी अपना गौरव समझता था। एक दिन अपने जन्म दिवस के उपलक्ष्य में सम्राट् केसरिया पोशाक पहने महल के बाहर आया। तब शेख ने कहा कि—"यह रंग और केसरिया बाना शरीयत के सख्त खिलाफ है हमे नहीं पहनना चाहिए" यह कह कर उन्होंने एक डंडा बादशाह की उस पोशाक पर मारा।

शेख अब्दुल-नबी का भाग्य सितारा पूर्ण उरूज पर पहुँच गया। काबुल से बंगाल तक और दक्खिन से हिमालय तक फैले हुए विशाल साम्राज्य की मसजिदों के

इमामों की नियुक्ति बादशाह की ओर से ये ही करते थे। दरबार से फरमान जारी हुआ कि जब तक सदरूस्सुदूरे का हस्ताक्षर और प्रमाण पत्र प्राप्त न हो तबतक परगना हाकिम और तहसीलदार जागीर की आमदनी को मुजरा न दें।

सभी ऐसे जागीरदारों को अब दस्तखत और प्रमाण-पत्र लेने शेख के पास फतेहपुर सीकरी आना पड़ता था। सभी लोगों का शेख तक पहुँचना सम्भव नहीं था। जो किसी तरह पहुँच गये वे निहाल हो गये। इसलिए इन जागीरदारों को शेख तक पहुँचने के लिए उनके फर्रासों, दरबानों और भंगियों तक को रिशवतें देनी पड़ती थीं। जो इमाम ऐसा नहीं कर पाते थे उन्हें डण्डे मार कर बाहर निकाला जाता था। इनमें बहुत से लू में झुलस कर मर जाते थे। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ था। मगर बादशाह शरीयत का पाबन्द था कुछ कर नहीं पाता था। बारह वर्ष से अधिक समय तक शेखजी इसी प्रकार लोगों की छाती पर मूँग दलते रहे।

जब फैजी और अबुलफजल दरबार में पहुँचे तब उन्होंने बादशाह को इनकी करतूतों से वाकिफ करना शुरू किया इसी सिलसिले में उनके द्वारा दी हुई कई अवध जागीरों का भण्डाफोड़ हुआ। जिससे बादशाह का मन उनकी ओर से खट्टा होने लगा।

इन्हीं दिनों मथुरा के एक ब्राह्मण ने एक छोटी मस-जिद की जगह शिवालय बनाना चाहा, जब उसे रोका गया तो उसने एक पैगम्बर की शान के खिलाफ भी कुछ कहा तब इस ब्राह्मण को कुफ्र के अपराध में फतहपुर सीकरी लाया गया। अबुलफजल, फैजी और सम्राट् उसकी कत्ल के पक्ष में नहीं थे। मगर शेख का निश्चित मत था कि कुफ्र की सजा कत्ल होना चाहिए और उसको कत्ल करवा दिया गया।

ब्राह्मण के कत्ल की खबर जब बादशाह के पास पहुँची तो उसे बहुत क्रोध आया और अन्त में इन मुल्लाओं की धार्मिक संकीर्णताओं से ऊब कर उसने सन् १५८० में शेख अब्दुन्-नबी और मुल्ला मुलतानपुरी दोनों को जब-र्दस्ती मक्का-शरीफ हज करने के लिए भेज दिया और कह दिया कि बिना हुक्म के वहाँ से वापस मत आना।

मगर हिन्दुस्तान में एकाधिकार भोगनेवाले इन मुल्लाओं को मक्का का रूखा-सूखा जीवन कैसे पसन्द आता। उन्हें पता लगा कि अकबर का सौतेला भाई मिर्जा महम्मद हकीम काबुल से हिन्दुस्तान जीतने के लिए चल पड़ा है तो उन्होंने सोचा कि काफिर अकबर को खतम करने का यह अच्छा मौका है। सन् १५८२ में उनका जहाज खम्भात पहुँचा। फिर वे अहमदाबाद आये। वहाँ आने पर उन्हें मालूम हुआ कि अकबरी दरबार का सब ढाँचा बदल चुका है। अबुलफजल और फैजी दरबार के सर्वेसर्वा हो रहे हैं। फिर भी जाने पर कुछ काम हो सकेगा यह सोच कर अबुन नबी फतेहपुर सीकरी दरबार में पहुँचे। इनके पहुँचने के पहले ही दरबार में वे सब खबरें पहुँच गई कि ये मक्कामदीने में अकबर को किस प्रकार बेदीन और काफिर कह कर उसे बदनाम करते रहते थे।

इन्हें देखते ही बादशाह को बड़ा गुस्सा आया और उसने इस बुड्ढे के मुँह पर एक मुक्का मारा और टोडरमल को हुक्म दिया कि मक्का में बाँटने के लिए इनको जो ७००००) रुपये दिये गये थे उनका हिसाब लिया जाय। हिसाब गड़बड़ निकलने पर उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया जहाँ पर एक रात को किसी ने उन्हें गला घोट कर मार डाला।

अबुलमआली

हुमायूँ की सेना का एक सेनापति। बैरमखाँ का प्रति-द्वन्द्वी (१५५१ से १५५६)

अबुलमआली काशगर के किसी ऊँचे वंश का मुसल-मान था। हुमायूँ जब ईरान से कन्दहार लौटा तो यह उसके पास नौकर हो गया था। धीरे-धीरे अपनी सेवाओं से हुमायु के दिल में इसने अपने लिए बहुत स्नेह प्राप्त कर लिया और हुमायुं की फौज में बैरमखाँ के समान ही एक ऊँचा पद प्राप्त करने में सफल हो गया। फरवरी १५५५ में जब हुमायु ने लाहौर जीत कर शेरशाह सूरि के भतीजे सिकन्दर सूरि पर भारी विजय प्राप्त की उस समय लड़ाई में अबुलमआली भी बैरमखाँ के साथ-साथ बहादुरी से लड़ा

था और दोनों ही व्यक्ति विजय का श्रेय स्वयं लेना चाहते थे तब इस सारी विजय का श्रेय हुमायूँ ने अकबर को दिया।

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् १५५६ में जब अकबर की गद्दीनशीनी का समय आया तो अबुलमआली ने गद्दीनशीनी में शामिल होने से इन्कार कर दिया। समझाने पर उसने दरबार में अपने सुरक्षित स्थान के सम्बन्ध में कुछ खास शर्तें मंजूर करवाई और तब गद्दीनशीनी में शामिल हुआ। मगर दावत के समय बैरमखाँ के इशारे पर उसे कैद कर लिया गया। बैरमखाँ उसे उसी समय मरवा डालना चाहता था मगर अकबर ने उस शुभ समय में ऐसा करने से रोक दिया। कुछ दिनों बाद वह कैद से निकल कर भाग गया।

अब्दुल्ला खां

सम्राट अकबर के समय में मालवे का सूबेदार। जिसे पीर महम्मद की जगह अकबर ने शासक बनाया था।

अब्दुल्ला खां उजबक जाति का एक मुसलमान सरदार था। सन् १५६४ के जुलाई मास में इसने सल्तनत के खिलाफ विद्रोह का झंडा उठाया था। तब उसको दबाने के लिए स्वयं सम्राट अकबर सेना लेकर आया। माण्डू पहुँच कर सम्राट ने अब्दुला को हरा दिया। अब्दुल्ला भाग कर गुजरात चला गया।

अब्दुल्ला सैय्यद

दिल्ली में सम्राट फर्रुखशियर के समय में सुप्रसिद्ध सैय्यद भाइयों में से एक।

सन् १७१३ में जब दिल्ली की सल्तनत दिन प्रति दिन कमजोर होती जा रही थी उस समय यहाँ की राजनीति में सैय्यद बन्धु अब्दुल्ला खा और हुसैन अली दोनों बहुत आगे आ गये थे। इन दोनों भाइयों ने जहाँदार शाह को मार कर फर्रुखशियर को गद्दी पर बिठाया था।

मगर जब फर्रुखशियर ने बादशाह बनने के बाद सैय्यद अब्दुल्ला को प्रधान मंत्री बनाने से इन्कार कर दिया तो इनका आपसी युद्ध फिर चल पड़ा। बादशाह ने सैय्यद भाइयों का अन्त कर देने का बहुत प्रयत्न किया मगर सैय्यद भाइयों ने किले पर अधिकार करके बादशाह फर्रुखशियर का सिर कटवा डाला। उसके बाद दिल्ली के बादशाहों के पास नाम मात्र की सत्ता रही। वास्तविक शक्ति सैय्यद बन्धुओं के हाथ में केन्द्रित हो गई। करीब आठ वर्ष तक सत्ता उनके हाथ में रही। उसके बाद इनका पतन हुआ। सन् १७२२ में अब्दुल्ल खां को जहर देकर मार डाला गया

अब्दुर्रहमान

याकूब खां के बाद अफगानिस्तान का अमीर जो दोस्त मुहम्मद का भतीजा था।

सन् १८८० में लार्ड रिपन ने दोस्त मुहम्मद के भतीजे अब्दुर्रहमान को अमीर मानकर अफगानिस्तान से सन्धि कर ली। इससे अफगानिस्तान की विदेश नीति पर अंग्रेजों का नियन्त्रण हो गया। मगर इसी बीच शेर अली के पुत्र अयूबखां ने अब्दुर्रहमान के विरुद्ध विद्रोह किया और हिरात पर अपना स्वतन्त्र आधिपत्य घोषित किया। मैवन्द के युद्ध में उसने अब्दुर्रहमान की सेना को पराजित किया और वह कन्धार की ओर बढ़ा। अब्दुर्रहमान ने अंग्रेजी सहायता के लिये प्रार्थना की। अतः अंग्रेज सरकार ने जनरल रॉबर्टस को पुनः अफगानिस्तान भेजा। उसकी सहायता से अब्दुर्रहमान ने अपने विपक्षी को पूर्ण पराजित कर दिया और वह सम्पूर्ण अफगानिस्तान का अमीर बन गया।

अब्दुल नबी

औरंगजेब के शासनकाल में मथुरा का फौजदार और औरंगजेब का एक स्वामी-भक्त नौकर।

सन् १६६६ में अब्दुल नबी ने मथुरा में एक हिन्दू मन्दिर के भग्नावशेष के सामान से एक मस्जिद बनवाई और उस मन्दिर में लगी हुई खुदे हुए पत्थर की उस छड़ को जिसे दारा शिकोह ने केशवराय के मन्दिर को दिया था, निकलवा डाली। इस घटना से उस जिले के जाटों में जिनका नेता गोकुल नामक व्यक्ति था, बड़ा असन्तोष फैला और उन्होंने विद्रोह करके फौजदार अब्दुल नबी को

कत्ल कर डाला और सादाबाद के परगने को लूट लिया। तब बादशाह ने विद्रोह को दबाने के लिये एक बड़ी फौज भेजी। विद्रोही जाटों ने फौज के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया लेकिन अन्त में हार गये और उनका नेता गोकुल बन्दी बनाकर मार डाला गया।

अबूतालिब-अलमक्की

अरब के सूफी सम्प्रदाय का लेखक जिसने "कुतु-अल कुलूब" नामक रहस्यवादी ग्रन्थ की रचना की। इसकी मृत्यु सन् ९९६ में हुई।

अबू-मा-शर

अरब का प्रसिद्ध ज्योतिषी जिसने समुद्र में होने वाले ज्वार-भाटे का निरूपण करके उसका ज्ञान यूरोप वालों को सिखाया। इसके चार अरबी ग्रन्थों का लैटिन भाषा में अनुवाद हुआ। इसकी मृत्यु सन् ८८६ में हुई।

अबू-युसुफ

खलीफा हारूँ अल-रशीद के समय का हनीफी, प्रधान न्यायाधीश। खलीफा ने इसे "काजी-अल-कजा" अर्थात् चीफ जस्टिस की उपाधि दी थी। इसने 'किताब-अल-खराज' नामक राजनीति और कानून के एक ग्रन्थ की रचना की। इसका समय सन् ७३१ से ७९८ तक है।

अब्दुल गफ्फार खाँ

सीमा प्रान्त के एक सुप्रसिद्ध मुस्लिम नेता जिन्होंने गांधी जी के झण्डे के नीचे आकर अहिंसा व्रत का पूरी तौर से पालन किया और जो "सीमान्त गांधी" के नाम से प्रसिद्ध हुए।

भारत के राष्ट्रीय संग्राम के इतिहास में खान अब्दुल-गफ्फार खाँ का स्थान बहुत ऊँचा है। पठानों के समान लड़ाकू कौम में पैदा होकर भी इस महान व्यक्ति ने गांधीजी के सिद्धान्तों को हृदयंगम कर अहिंसा धर्म का निष्ठा के साथ पालन किया।

खाँ अब्दुलगफ्फार खाँ ने सीमाप्रान्त में खुदाई खिदमतगार या लाल कुर्ती दल के नाम से स्वयंसेवकों का एक विशाल दल संगठित किया। इस दल ने उक्त प्रान्त में बड़ी मुस्तैदी और सहनशीलता से काम किया और पठानों में बड़ी जागृति फैलाई। हजारों पठान नवयुवक इस दल के विजयी झण्डे के नीचे जमा हो गये। इस दल ने सीमा प्रान्त मे ब्रिटिश सरकार विरोधी आंदोलन का बड़ी सफलता से संचालन किया।

खान अब्दुलगफ्फार खाँ कांग्रेस और गांधी आन्दोलन के एक अविभाज्य अंग रहे। उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को आत्मसात करके पालन किया। वे भारत की एक राष्ट्रीयता के अनन्य भक्त रहे। देश के स्वाधीन हो जाने के पश्चात उनको मजबूरन पाकिस्तान का नागरिक बनना पड़ा। वहाँ पर उन्होंने पख्तूनिस्तान को अलग करने की माँग उठाई। उसके लिये आन्दोलन किया और उसके लिये वे अभी तक पाकिस्तान की जेल में बन्द हैं।

अब्दुल्ला सुलतानपुरी

मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी-हुमायूँ और अकबर के दरबार का सबसे बड़ा धर्माचार्य।

मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी इसलाम का एक कट्टर धर्म गुरु था अरबी साहित्य और इसलामी धर्मशास्त्र में इसने काफी योग्यता प्राप्त कर ली थी। कुरान की आयतें और हदीस इसकी जबान पर रहते थे। सन् १५३२ में ये बादशाह हुमायूँ के दरबार में पहुँचा बादशाह ने इसकी बड़ी इज्जत की और "मखदुल मुल्क" की सम्माननीय उपाधि से विभूषित किया।

हुमायूँ के यहाँ से भाग जाने के बाद यह शेरशाह के दरबार का और शेरशाह के मरने के बाद उसके पुत्र सलीमशाह के दरबार का प्रधान मौलवी हुआ। इसी समय में अर्थात् १५४९ में इसने मेंहदी सम्प्रदाय के धर्म गुरु शेखअलाई के विरुद्ध कुफ्र का फतवा देकर उसे भरे दरबार में मरवा दिया।

जब बादशाह हुमायूँ ने दुबारा दिल्ली के तख्त पर अधिकार कर लिया तब मुल्ला मुलतानपुरी का प्रताप एकदम चमक उठा। अकबर बादशाह के गद्दी पर बैठने के बाद भी उसकी नाबालिग अवस्था में इसका प्रताप खूब ऊरूज पर था, इसने उस समय लाखों रुपयों की दौलत जोड़ी। मगर जब बादशाह कुछ बालिग हुए और अबुल-फजल, फैजी तथा दूसरे स्वतन्त्र विचारकों की हवा उन्हें लगी, तब वे कट्टर मुल्लागिरि के खिलाफ हो गये। तब वे समय-समय पर मुल्ला मुलतानपुरी का मजाक उड़ाया करते थे।

इस सम्बन्ध में एक स्थान पर बदायूँनी लिखता है कि—

"बादशाह मौलाना सुलतानपुरी को अक्सर बेइज्जत करने और उसकी मजाक करने के लिए बुलाया करते थे। वे उसे अबुलफजल, हाजी इब्राहीम तथा अन्य लोगों से बहस में उलझा देते और उसकी बेइज्जती का मजा लिया करते थे।"

धीरे-धीरे मौलाना का प्रभाव बादशाह पर से और दरबार पर से उठ गया तब उन्होंने फतवा दिया "हिन्दुस्तान अब कुफ्र का मुल्क हो गया है इसलिए यहाँ रहना उचित नहीं है।" यह कहकर उसने एक मसजिद में डेरा डाल दिया और वहाँ से सम्राट् को काफर तथा शिया कहकर उनका अपमान करने लगा। यह खबरें अकबर के पास में पहुँचती थी अन्त में परेशान होकर उसने मौलाना को सन् १५७६ में मक्का भेज दिया और कह दिया कि बिना हमारे हुक्म के वहाँ से वापस नहीं आना। लाहौर में मुल्ला सुलतान पुरी के घर में बड़ी बड़ी कब्रें बनी हुई थीं जिन पर हरे वस्त्र ढँके रहते थे। असल में इन कब्रों की आड़ में उसने अपनी कमाई हुई सारी सम्पत्ति छिपा रक्खी थी। बादशाह को किसी ने इस बात की खबर दे दी। फिर क्या था बादशाह ने आदमी भेजकर सारी कब्रें खुदवाई तो उन कब्रों में से सैकड़ों सोने की ईंटे और चाँदी की ईंटें बरामद हुईं जिनका मूल्य उस जमाने में जब सोना ६-१० रुपया तोला था तीन करोड़ रुपये से ऊपर थी।

मुल्ला मुलतानपुरी एकदम पुराने ढंग के कट्टर इसलामी था। अपने विरोधियों का सिर कुचलने में इसे जरा भी अफसोस नहीं होता था आखिर मक्का से वापस लौटने पर सन् १५८२ में इसका देहान्त हुआ।

अबुलफज्ल अहमद

महमूद गजनवी के दरबार का एक साहित्यकार जिसने अरबी पद्य और गद्य की सम्मिलित शैली का ईजाद किया, इस शैली को "मकामात" कहते हैं।

अबूसैद-इब्न-अबुल खैर

फ़ारसी भाषा के साहित्य में सूफी आन्दोलन का पहला प्रसिद्ध कवि, जिसका समय सन् ९६८ से १०४९ तक है। जिसने शैली के रूप में रुबाइयों को सबसे पहले लोकप्रिय बनाया। ईश्वर की भक्ति के साथ शारीरिक और पार्थिव भोगों की उपमाएँ भी पहले पहल इसी ने प्रारंभ की। सूफीवादी काव्यधारा में प्रतीक के रूप में सौन्दर्य, प्रणय, मदिरा सभी प्रयुक्त हुए हैं।

अबू-अब्दुल्ला जाफर "रूदागी"

फारसी का पहला क्लासिकल कवि, जिसने ईरान में दरबारी कविता का प्रारंभ किया। इसका समय ९१४ से प्रारम्भ होता है रूदागी खुरासान का रहने वाला था। ईरान के सामानी नरेश नस्र का यह दरबारी कवि था। उस समय फारसी की कविताओं में नारी, मदिरा और संगीत का आकर्षण इस्लाम के मजहबी अनुशासन को तोड़ कर बढ़ाया जा रहा था। रूदागी की कविताएँ भी इस आकर्षण से बच न सकीं। उसका भावोद्रेक मजहब की प्राचीरें तोड़कर अनिर्वचनीय और अगम्य तत्व की स्तुति में बह चला। उसने तीन ऐतिहासिक काव्य लिखे जिसमें एक का नाम "वामिक और अज्रा" था।

अबु-नुवास

अब्बासी खलीफा हारूं-अल-रशीद के दरबार का विदूषक कवि (सन् ७५०–८१०)

अबु-नुवास जन्म से ईरानी था इसकी शिक्षा बसरा में हुई थी। संयोग से वह बगदाद में खलीफा के दरबार में पहुँच गया उसकी प्रतिभा के सम्मुख दरबार के सब तेजस्वी व्यक्ति दब गये।

अबु-नुवास ने प्रशस्ति, व्यङ्ग, मरसिया तथा उमर खैय्याम की तरह मदिरा सम्बन्धी गीतों तथा खमरियात की की काफी रचना की। उसके मदिरा सम्बन्धी गीतों को सुनकर श्रोता विमुग्ध हो जाते थे। उसने मदिरा पान का समर्थन करते हुए अपनी कविताओं में कहा कि "तौबा और परहेज करने की जरूरत नहीं क्योंकि खुदा की रहमत आदमी के गुनाहों से बड़ी है।" मदिरापान और विलास वासना का अबु-नुवास और उसके इरानी साथियों ने अरब लोगों में खूब प्रचार किया।

अबु-अल अताइया

अरब जनता में आठवीं शताब्दी का जन कवि। इसका जन्म अल-कुफा में एक अरब परिवार में हुआ था जो मिट्टी के बर्तन बनाकर अपनी रोजी कमाता था। अबु-अल अताइया पहला कवि था जिसने जन-भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया। उसकी कविता में धर्म भावना को भी काफी स्थान मिला है। इस दिशा में उसने एक युग-प्रवर्त्तक का काम किया।

अबू-दुला याह

अबीसीनिया का एक भाण्ड कवि जिसने अपनी कविताओं में इसलाम के विरुद्ध करारे व्यंग कसे हैं। इसकी मृत्यु सन् ७८० में हुई।

अबू-हनीफाह

मुसलिम कानून व्यवस्था का प्रथम निर्माता। अरब लोगों ने रोमन लोगों की कानून व्यवस्था (जूरिसप्रूडेन्स) के आधार पर "फकह" के नाम से कानून व्यवस्था की चार शाखाओं को जन्म दिया इसमें सबसे प्राचीन और महत्व पूर्ण शाखा "मजहब" अबूहनीफाह ने चलाई। जिससे उस व्यवस्था का नाम "हनीफा" पड़ा। हनीफा अलकूफा और बगदाद में रहा। उसके सम्प्रदाय में बड़ी सहिष्णुता थी।

अबू-बकर

इसलाम के पहले खलीफा, हजरत मुहम्मद के श्वसुर, जिन्होंने सन् ६३२ से ६४२ तक खलीफा की गद्दीपर शासन किया।

हजरत अबू-बकर के दस वर्षीय शासन में इसलाम का राजनैतिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियों से बहुत विकास हुआ। इन्हीं के समय में इसलाम की सत्ता रोम के दमिश्क नगर तक और फिलीस्तीन में पहुंच गई। इन्हीं के शासन काल में नहावन्द के युद्ध में अरब सेना ने इरानियों को करारी हार दी। ईरान के सासानी वंशका अन्तिम शाह यज्दगर्द तृतीय भागा-भागा फिरा और अन्त में मारा गया।

इनके सम्बन्ध का विशेष वर्णन "अरब" शब्द के विवेचन में देखें।

अब्दुल-मलिक (खलीफा)

उमैयावंश का चौथा खलीफा। सन् ६७३ से ७०५ तक।

उमैया वंश के तीसरे खलीफा म्याविया द्वितीय ने शासन के बोझ से घबरा कर खिलाफत की गद्दी मेरवान के लड़के अब्दुल मलिक के लिए छोड़ दी मगर गद्दी के उत्तराधिकार के लिए एक दूसरे सरदार अब्दुल्ला ने भी अपना दावा पेश कर दिया। नतीजा यह हुआ कि इस आपसी फूट से खिलाफत दो भागों में बंट गई। अब्दुल्ला ने यमन, सीरिया, फिलीस्तीन और मिस्र पर अपना कब्जा जमा लिया और अब्दुल मलिक ने राजधानी दमिश्क पर कब्जा करके अब्दुल्ला से सीरिया और मिस्र भी छीन लिया।

खलीफा अब्दुल मलिक के और भी प्रतिद्वन्दी थे। एक प्रतिद्वन्दी मुहम्मद मक्का मदीना में खलीफा बनकर

बैठ गया था उसको भी अब्दुल मलिक ने मारकर भगा दिया। अब्दुल मलिक के काल में भी अरब लोगों को मध्यएशिया में आगे बढ़ने में अच्छी सफलता मिली।

अब्दुल रज्जाक (यात्री)

मध्य एशिया के हिरात नगर से भारत आने वाला एक मुसलिम यात्री जो सन् १४४३ में खान महान् के दरबार से आया था।

"अब्दुलरजाक" जिस समय आया था उस समय भारत के दक्षिण में "विजय नगर" का राज्य अपने पूर्ण उरूज पर था। जब वह विजय नगर जाने लगा तो उसके रास्ते में "मंगलूर" शहर पड़ा। उसने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि "मंगलूर के पास मैंने एक अद्भुत मन्दिर देखा जो खालिस पीतल को गला कर ढाला गया था। यह १५ फुट ऊंचा था और इसकी कुर्सी ३० फुट लम्बी और ३० फुट चौड़ी थी" उत्तर की ओर आगे बढ़ने पर उसने बैलूर में और भी अधिक आश्चर्य जनक मन्दिर देखा जिसके लिए उसने लिखा कि "इस मन्दिर की प्रशंसा में यदि कुछ भी वास्तविक बात लिखूंगा तो लोग मुझपर अतिशयोक्ति का दोष लगावेंगे इस लिए कुछ न लिखना ही अच्छा है।" इसके बाद वह विजय नगर पहुंचा उसके वैभव को देखकर तो वह आश्चर्य में डूब गया उसने लिखा है कि "यह शहर ऐसा है कि सारी दुनिया में इसकी बराबरी का शहर न तो आंखों से देखने में आया न कानों से सुनने में आया।"

अबुल रज्जाक के इस वर्णन से विजयनगर के इतिहास और उसके वैभव पर काफी प्रकाश पड़ता है।

अब्दुल रजाक जामी

तैमूरी काल का प्रसिद्ध पारसी कवि जिसका जन्म सन् १४१४ में खुरासान के "जामी" नामक ग्राम में हुआ। फारसी के प्रधान सात कवियों में इसका भी नाम गिना जाता है। फारसी साहित्य में फिरदौसी वीर काव्य में रूमी रहस्यवादी काव्य में, शेखसादी नीति और आचार के काव्य में, और हाफिज लिरिक में प्रधान माना जाता था। मगर "जामी" की कीर्ति इन सभी क्षेत्रों में है। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है वह गद्य के क्षेत्र में भी उतना ही प्रभावशाली है। जितना पद्य के क्षेत्र में। लिरिक कविता में उसने तीन "दीवान" लिखे हैं। "हफ्तनौरंग" काव्य फारसी साहित्य में कल्पनाशक्ति और नीतिमत्ता का एक मौलिक और सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। "नफहातुल उन्स" उसके द्वारा लिखा हुआ सूफीसन्तों के चरित्र का एक कोष है। शेखसादी की 'गुलिस्तां" के अनुकरण पर उसने "बहारिस्तान" नामक एक सुन्दर फारसी काव्य की रचना की जो उसकी रचनाओं में सबसे अधिक लोकप्रिय हुई।

अब्राहम-इब्न एज्रा

सुप्रसिद्ध यहूदी विद्वान और ग्रंथकार जो इब्रानी (यहूदियों की भाषा) भाषा का प्रकाण्ड पण्डित था। इसका समय सन् १०९२ से ११६७ तक है।

अब्राहम-इब्न-एज्रा सर्वतोमुखी प्रतिभा का विद्वान था। वह ज्योतिष, विज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि सभी विषयों का विद्वान होने के साथ-साथ एक प्रतिभाशाली कवि भी था। इब्रानी भाषा पर उसका बहुत जबर्दस्त अधिकार था। उसने गणित, दर्शन, विज्ञान, व्याकरण आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर अपनी कलम चलाई। बाइबिल की वैज्ञानिक आलोचना करने वाला वह पहला व्यक्ति था। बाइबिल और पैण्टाट्यूक पर उसका किया हुआ भाष्य बड़ा लोकप्रिय हुआ। उसने अपने सब ग्रन्थ इब्रानी भाषा में ही लिखे।

अब्दुल्ला कुतुबशाह

गोलकुण्डा का शासक—समय सन् १६२६ से सन् १६७२ तक।

बहमनी सुल्तान महम्मद अली कुतुबशाह की मृत्यु के उपरान्त उनका एक सरदार सुल्तान कुली जो तेलिंगाना का सूबेदार था, स्वयं कुतुब शाह की पदवी धारण कर गोलकुंडा की राजगद्दी पर बैठ गया, तब से इसी खानदान में कुतुब शाह की पदवी प्रारम्भ हो गई जो गोलकुंडा के प्रत्येक सुल्तान के साथ लगती थी।

इसी वंश में आगे चलकर महम्मद कुतुब शाह का

पुत्र अब्दुल्ला कुतुब शाह गद्दी पर बैठा। सन् १६२६ से सन् १६७२ तक यह गोलकुंडा की गद्दी पर नाम मात्र का शासक रहा। वास्तविक शासन इसकी माता हयातबख्श बेगम करती थी।

सन् १६५६ ई० में बादशाह औरङ्गजेब ने इसके राज्य पर चढ़ाई की, तब इसने उसके साथ सन्धि करके अपनी दूसरी लड़की का विवाह औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद सुल्तान से कर दिया।

अब्दुल्ला कुतुबशाह कला, साहित्य तथा इमारतें बनवाने के सम्बन्ध में बड़ा शौकीन था। गोलकुण्डा में इसने कई अच्छी-अच्छी इमारतें बनवाई। कला और साहित्य का प्रेमी होने के कारण दूर-दूर से कवि और साहित्यकार आकर इसके राज्य में बसते थे। यह स्वयं भी फ़ारसी तथा दक्खिनी का कवि था। इसके दरबार में इब्न निशाती, गवासी इत्यादि प्रसिद्ध कवि रहते थे।

अब्दुल हसन कुतुब शाह

कुतुब शाही वंश का अन्तिम राजा जो सन् १६७२ ई० में गोलकुण्डा की गद्दी पर बैठा।

सन् १६८७ ई० में औरंगजेब ने गोलकुण्डा पर हमला करके उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। तब से कुतुब शाही राज-वंश का अन्त हो गया।

अब्दुल हसन कुतुब शाह स्वयं एक कवि और कवियों का आश्रय-दाता था। यह तानाशाह के उपनाम से कविताएँ करता था। इसके दरबार में तबई नामक कवि ने 'बहराम व गुलबदन' नामक एक प्रेम-कहानी को कविता रूप में लिखा है तथा इसी के समय में गुलाम अली नामक कवि ने पद्मावत का दक्खिनी भाषा में अनुवाद किया था।

अब्दुल फतह

दसवीं सदी में महमूद गजनवी के आक्रमण के समय मुलतान का शासक।

अब्दुल फतह इस्लाम के करामाती सम्प्रदाय का अनुयायी था। महमूद गजनवी करामाती सम्प्रदाय को नास्तिक संप्रदाय समझता था। इसलिए मुलतान से नास्तिकता का नाश करने के लिए उसने वहां हमला करना चाहा। मगर रास्ते में राजा आनन्दपाल का राज्य था इसलिए महम्मूद गजनवी ने मुलतान जाने के लिए आनन्दपाल से रास्ता मांगा मगर आनन्दपाल ने अब्दुल-फतह का मित्र होने के कारण रास्ता देने से इन्कार कर दिया। तब उसने आनन्दपाल के राज्य पर ही आक्रमण करके उसे कश्मीर तक खदेड़ दिया।

यह हाल देख अब्दुल फतह ने पहले ही राज्य का सारा सामान ऊँटो पर लदवा कर सीलोन भेज दिया और खुद भी वहाँ से भाग गया।

अबे-प्रेवोस्ट
(Abbe Prevost)

फ्रेन्च भाषा का प्रसिद्ध उपन्यास लेखक, जिसका उपन्यास "मानों-लेस्कों" अपने समय का (१७३१) सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। यह एक चरित्रवान पुरुष और चरित्रहीन नारी के कथानक पर लिखा गया है। इसकी भाषा प्राञ्जल और शैली सुरुचिपूर्ण है।

अब्दुल्ला

खलीफा अब्दुल मलिक द्वारा नियुक्त खुरासान का गवर्नर। एक प्रसिद्ध अरब सेनापति (सन् ६८६ से ७०४ तक)

अब्दुल्ला एक प्रसिद्ध अरब सेनापति था। यह खलीफा द्वारा खुरासान का गवर्नर नियुक्त किया गया था मगर कुछ समय बाद खलीफा की उपेक्षा कर यह खुरासान का निरंकुश शासक बन बैठा। इसने वहाँ अपने नामके सोने के सिक्के भी चलाये। खलीफा अब्दुल मलिक ने तब एक आज्ञा के द्वारा इसको कत्ल करवा दिया।

अब्दुर्रज़ाक समरकन्दी

तैमूरलंग के पुत्र शाहरूख के साथ रहने वाला एक इतिहास लेखक जिसका समय अनुमानतः सन् १४०० से १४६७ तक है।

अब्दुर्रज़ाक समरकन्दी एक इतिहास लेखक था जो तैमूरलंग के द्वितीय पुत्र शाहरूख का बड़ा कृपा पात्र था और प्रायः उसी के साथ रहता था। इसने "बकाया" लिखना शुरू किया था जिसकी परिपाटी भारत के मुगल सम्राटों ने भी जारी रक्खी थी। तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए उसके अभिलेख बहुत उपयोगी हैं। समरकन्दी के ग्रन्थ "मतल-सादैन" में प्रतिवर्ष की घटनाओं का उल्लेख है।

सन् १४०९ और १४१० के बकाया में एक स्थान पर वह लिखता है—

"उज्बेक मुल्क के स्वामी पुलादखान का अमीर आदिक् बहादुर और अमीर ईसा के नौकर दूत बनकर आए। उन्होंने शिकारी जानवर और दूसरी चीजें बादशाह शाहरूख को भेंट कीं। राजकुमार मिर्जा मुहम्मद जौकी के लिए लड़की की खास्तगारी करते हुए शाहरुख ने खान के लिए बहुत से उपहार और दूतों के लिए बहुत से इनाम भेजे।"

अबू सईद

तैमूरलंग के वंश का अन्तिम बादशाह जिसने सन् १४५२ से १४६९ तक शासन किया। यह भारत में मुगल वंश की स्थापना करने वाले मुगल वंशीय "बाबर" का दादा था।

उजबिकस्तान के खान अबुल-खैर की सहायता से बादशाह शाहरुख के पुत्र "अब्दुल्ला" को मारकर अबू-सईद हिरात की गद्दी पर बैठा। तैमूरीवंश का यह अन्तिम शक्तिशाली सुलतान था। अन्तर्वेद, पूर्वी ईरान और अफ-गानिस्तान उसके राज्य में थे। वह एक चतुर सैनिक और कुशल शासक था।

सन् १४६७ में उजबकों के खान मिर्जा सुलतान हुसेन ने अबू-सईद के राज्य में ख्वारेजम पर हमला कर उसे पामाल कर दिया दूसरी तरफ अजर बेजान में उजून हसन बेगने हमला किया। अबू-सईद उसे दबाने के लिए गया, मगर हारकर बन्दी हो गया और मारा गया।

अभय सिंह

जोधपुर के राठौरवंशी राजा अजित सिंह का बड़ा पुत्र जोधपुर का राजा जो सन् १७२४ में मारवाड़ की गद्दी पर बैठा।

राजा अभय सिंह जिस समय जोधपुर की गद्दी पर बैठे उस समय दिल्ली की सल्तनत दिन दिन कमजोर होती जा रही थी और सारे साम्राज्य में स्थान-स्थान पर विद्रोह पैदा हो रहे थे।

गुजरात का सूबेदार सरबलन्दखां भी इसी समय में विद्रोही हुआ। उसको दबाने के लिए बादशाह ने राजा अभयसिंह को उनके भाई बखत सिंह के साथ भेजा। १७ अक्टूबर सन् १७३० को अभयसिंह और सरबलन्द की फौजों का मुकाबला अहमदाबाद के पास मुचेड़ नामक ग्राम में हुआ। पांच दिन की घमासान लड़ाई के पश्चात् गुजरात के शासक को हराकर उसका शाही तोपखाना और माल असबाब इन्होंने लूट लिया जो अभी तक जोध-पुर के म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

सन् १७४३ में जयपुर के राजा जयसिंह का देहान्त हो जाने पर अभय सिंह ने अपनी सेना भेजकर अजमेर पर अधिकार कर लिया जो इस समय तक जयपुर के अधिकार में था। इसपर जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह ने अजमेर पर चढ़ाई की पर अन्त में दोनों की सन्धि हो गई और अजमेर अभय सिंह के ही कब्जे में रहा। सन् १७४९ में अभयसिंह का देहान्त हो गया।

अभयदेव सूरि

जैन धर्म के सुप्रसिद्ध आचार्य्य तर्क पंचानन अभय देव सूरि जो सन् ९५० ईस्वी के करीब हुए।

अभयदेव सूरि जैनाचार्य्य प्रद्युम्न सूरि के शिष्य थे। जैन सिद्धान्त और जैन न्याय दर्शन के उद्‌भट विद्वान थे। इन्होंने जैन सिद्धान्त के सुप्रसिद्ध न्यायशास्त्री सिद्धसेन दिवा-कर के "सन्मति तर्क" नामक ग्रंथ पर संस्कृत भाषा में "वादमहार्णव" नामक विशाल टीका की रचना की। इस टीका को देखने से मालूम होता है कि वे दर्शनशास्त्र के असाधारण विद्वान थे। जैन धर्म के अनेकान्त दर्शन का

विवेचन करते हुए उन्होंने इस ग्रन्थ में भारत में प्रचलित पक्ष और विपक्ष के समग्र दर्शन शास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। जिसके फलस्वरूप इस टीका को विक्रम की दसवीं शताब्दी तक प्रचलित सभी दर्शनग्रन्थों का संग्रह कर सकते हैं।

इस टीका के अन्दर वादपद्धति विद्वतापूर्वक इस प्रकार संगठित की गई है कि जिस पक्ष का विवेचन किया जाना है उस पक्ष का प्रतिनिधि अपने सिद्धान्तों का समर्थन पूरी विद्वता के साथ करता है। जिससे पाठक को उसका पूरा ज्ञान हो जाय। फिर दूसरा प्रतिपक्षी अपने मत की स्थापना करता है, फिर तीसरा प्रतिपक्षी दोनों के मत की भ्रान्तियों को दूर करता हुआ अपने मत की स्थापना करता है। इस प्रकार प्रत्येक पक्ष का मत खूबी के साथ प्रस्तुत हो जाता है और पाठक को सभी वाद स्पष्ट रूप से समझ में आ जाते हैं।

यद्यपि इस टीका में सैकड़ों ग्रन्थों का मन्थन करके उनका सार दिया हुआ है फिर भी कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक, नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य्य शांतिरक्षित के तत्वसंग्रह तथा दिगम्बराचार्य्य प्रभाचन्द के प्रमेय कमल मार्त्तण्ड तथा न्याय कमलचन्द्रोदय का विवेचन इस टीका में मुख्य तौर से किया गया है।

सन्मति-तर्क मूल ग्रन्थ प्राकृत में १६७ आर्याछन्द में है जिस पर अभयदेव सूरि की यह टीका २५००० संस्कृत श्लोकों में है। इसी से इस टीका की विशालता समझ में आ सकती है।

अभ्रक (Mica)

एक चमकदार खनिज पदार्थ जो अग्नि के अन्दर नहीं जलता और विद्युत् शक्ति के संचार को बड़ी सहायता देता है।

जब से मानवीय समाज में विद्युत् शक्ति का आविर्भाव हुआ है तब से अभ्रक के प्राकृतिक गुणों ने उसकी अतुलनीय उपयोगिता सब प्रकार से प्रमाणित कर दी है। यह वस्तु विद्युत् शक्ति को जिस प्रकार शून्य सिद्ध करती है उसी प्रकार अग्नि के प्रचण्ड प्रकोप को भी यह तृणवत् समझती है। इसी विशेष गुण के कारण आज के वैज्ञानिक युग में इस वस्तु ने बड़ा महत्व ग्रहण कर लिया है।

पूर्वकालीन युग में रोम, अमेरिका, ग्रीस तथा भारतवर्ष के लोग अभ्रक से परिचित थे और इस चीज को अकसर सजावट के काम में लिया करते थे।

रोम के प्राचीन साम्राज्य में वायु के झकोरों से दीपक की रक्षा करने के लिए अभ्रक के तख्तों से शीशे का काम लिया जाता था क्योंकि उस समय काँच का निर्माण नहीं हुआ था। अभ्रक से बनाये हुए इस प्रकार के प्रकाशदान रोम के इतिहास प्रसिद्ध हरक्युलेनियम (Herculaneum) में आज भी रक्षित पाये जाते हैं। प्लाइनी के मतानुसार उस समय शयनागार व स्नानागार की खिड़कियों में भी अभ्रक के आयने लगाये जाते थे।

यूनान वाले भी अभ्रक से प्राचीन युग में ही परिचित हो चुके थे। प्लाइनी के मतानुसार उस समय भी यूनानी भाषा में अभ्रक के लिये कई एक शब्द थे जो अभ्रक की विभिन्न प्रकार की जातियों के अर्थ के सूचक थे। कानराड गेस्नर नामक प्राचीन प्रकृति-शास्त्रज्ञ अभ्रक के तख्तों से पूर्ण रूपेण परिचित था। वह लिखता है कि

हैले (Halie) नामक स्थान में अभ्रक की खानें थीं उसका यह भी मत है कि अभ्रक का औषधि के रूप में सेवन करने से उन्माद और कुष्ठ रोग दूर होते हैं। बोटियस (Boetius) नामक लेखक लिखता है कि उस समय स्त्रियाँ अपने मुँह पर अभ्रक का चूर्ण मलती थीं जिससे मुँह की झुर्रियाँ दूर हो जाती थीं।

भारत वर्ष में भी अभ्रक की उपयोगिता से बहुत प्राचीन काल के लोग परिचित थे। खास कर भारतीय चिकित्सा शास्त्र में तो इस वस्तु ने बहुत ही महत्व ग्रहण किया। जिस अभ्रक को आज का युग अग्नि के प्रकोप से सुरक्षित समझता है उसी अभ्रक को भारत के प्राचीन चिकित्सा शास्त्रियों ने कई वनस्पतियों में घोट-घाट कर ऐसी भस्म तैय्यार की जिसका कभी पुनरोत्थान न हो सके। यह भस्म सौ पुटी, पाँच सौ पुटी और सहस्र पुटी इत्यादि कई प्रकार की होती है और खाँसी, दमा, उन्माद, क्षय इत्यादि अनेक भयंकर और दुसाध्य रोगों पर यह विजय

प्राप्त करती है। मगर अभ्रक का वास्तविक महत्व विद्युत् शक्ति का आविष्कार होने के पश्चात् प्रकट हुआ है। विद्युत् चमत्कार को प्रकट करने वाले पदार्थों में अभ्रक का सबसे ऊँचा स्थान है। अभ्रक जरा सी रगड़ में विद्युत् शक्ति उत्पन्न कर देता है और स्वयं विद्युत् शक्ति का शोषण न करने वाला होने के कारण उसके संचित स्वरूप का अनुभव करने का अवसर देता है।

अभ्रक गर्मी भी बहुत अधिक सहन कर सकता है। ४००° से ६००° गर्म करने पर भी उसकी पारदर्शक विशेषता और विद्युत् शक्ति के प्रति उदासीनता का गुण उसमें पाया जाता है। ६००° से १०००° की गर्मी से उसकी चमक और बढ़ जाती है और वह चांदी के समान मालूम होने लगता है। इससे भी अधिक गर्मी पाकर वह पिघल जाता है।

संसार में अभ्रक पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान सबसे ऊँचा है। संसार भर की खानों से निकलने वाले अभ्रक का ६०% भाग भारत की खानों से निकाला जाता है। भारत में अभ्रक के दो तीन कटिबन्ध हैं। बिहार के अन्दर मुंगेर, हजारीबाग तथा गया के जिलों में अभ्रक का कटिबन्ध सत्तर मील लम्बा और बारह मील चौड़ा है। इसका प्रधान स्थान कोडरमा है। दूसरा कटिबन्ध मद्रास प्रदेश के नैलोर जिले में फैला हुआ है। इस कटिबन्ध की प्रधान खाने रापुर में हैं। इन दो कटिबन्धों के अतिरिक्त राजस्थान के भीलवाड़ा जिले में भी अभ्रक की खदानें काम कर रही हैं।

अभिधम्मपिटक

बौद्ध साहित्य का एक महत्वपूर्ण आगम ग्रन्थ। इसमें भगवान बुद्ध के उपदेशों के आधार पर बौद्ध दार्शनिक विचारों की व्याख्या की गई है।

अभिधम्मपिटक में (१) धम्मसंगणी (२) विभंग (३) धातुकथा (४) पुग्गल पञ्यति (५) कथा-वत्थू (६) यमक और (७) पट्ठान इन सात ग्रन्थों का समावेश होता है।

धम्मसंगणी में धर्मों का वर्गीकरण और व्याख्या की गई है।

विभंग में उन्हीं धर्मों के वर्गीकरण को आगे बढ़ाया है और भंग जाल खड़ा किया गया है।

धातु कथा में धातुओं का प्रश्नोत्तर रूप में व्याख्यान किया गया है।

पुग्गल पञ्यति में मनुष्यों का विविध श्रेणी में वर्गीकरण किया गया है। इसका अंगुत्तर निकाय के तीन-पाँच निपात के साथ अधिक साम्य है। मनुष्यों का वर्गीकरण गुणों के आधार पर विविध रीतियों से किया गया है।

कथावत्थू का महत्व बौद्ध धर्म के विकास के इतिहास के लिये सर्वाधिक है। पिटकों के अन्तर्गत होने पर भी इसकी रचना तिस मोग्गलीपुत्त ने की है जो बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति के अध्यक्ष थे। यद्यपि यह ग्रन्थ ईसवी सन् से पूर्व तीसरी शताब्दी में उक्त आचार्य ने बनाया था फिर भी उसमें बाद के समय में बौद्ध धर्म में जो मतभेद हुए उनका भी संग्रह होता रहा है। प्रश्नोत्तर शैली में इस ग्रन्थ की रचना हुई है। मत-मतान्तरों का पूर्व पक्ष रूप में समर्थन करके फिर उनका खण्डन किया गया है। विशेष करके आत्मा के अस्तित्व या नास्तित्व पर बौद्ध मन्तव्य की स्थापना की गई है।

यमक में प्रश्नों का उत्तर दो प्रकार से दिया गया है और कथावत्थू तक के ग्रन्थों से जिन शंकाओं का समाधान नहीं हुआ उनका विवेचन इसमें किया गया है।

पट्ठान को महापकरण भी कहते हैं। इसमें नाम और रूप के चौबीस प्रकार के कार्यकरण भाव सम्बन्ध की चर्चा है और बताया गया है कि केवल निर्वाण ही असंस्कृत है बाकी सब धर्म संस्कृत है।

अट्ठ कथा

बौद्ध धर्म की पाँच निकायों पर सीलोन के बौद्ध भिक्षुओं ने जो व्याख्याएँ कीं उनको अट्ठ कथा कहा जाता है।

इन्हीं सीलोनी अट्ठ कथाओं के आधार पर ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में आचार्य बुद्धघोष ने पाँचों निकाय और अभिधम्मपिटक की व्याख्याएँ लिखीं। ये

व्याख्याएँ अट्ठ कथा कही जाती हैं। धम्म पद और जातक की अट्ठ कथाएँ भी बुद्धघोष कृत हैं, ऐसी परम्परागत मान्यता है।

अभिनव भारत सोसायटी

महाराष्ट्र के क्रान्तिकारी दल का एक संगठन जो अभिनव भारत सोसायटी के नाम से काम करता था। श्याम जी कृष्ण, वर्मा, सावरकर बन्धु इत्यादि व्यक्तियों ने इस संगठन का संचालन करने में बड़ा परिश्रम किया।

अभिधर्म कोष

बौद्ध धर्म के आचार्य वसुबन्धु के द्वारा रचित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अभिधर्म कोष।

बौद्ध धर्म के सुप्रसिद्ध आचार्य वसुबन्धु, जो आचार्य असंग के भाई थे और जिनका समय ३९० ई० से ४७० ई० के बीच का माना जाता है, ने इस महान ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ की मूल संस्कृत प्रति तिब्बत में सुरक्षित है। बौद्ध धर्म के महान विद्वान राहुल सांकृत्यायन तिब्बत से इस मूल ग्रन्थ के फोटो लाए थे। चीनी भाषा में इस ग्रन्थ के दो अनुवाद हैं एक परमार्थ का और दूसरा ह्वेनसाँग का। परमार्थ का अनुवाद ५६३ ई० का किया हुआ है।

इस ग्रन्थ का बौद्ध जगत पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। इस ग्रन्थ में छः सौ कारिकाएँ हैं और वसुबन्धु ने स्वयं इसका भाष्य लिखा है।

यह बड़े महत्व का ग्रन्थ है। सब निकायों में तथा सर्वत्र इसका बड़ा आदर हुआ। इसने बहुत शीघ्र अन्य प्राचीन ग्रन्थों का स्थान ले लिया। वसुबन्धु के अनुसार अभिधर्म कोष में वैभाषिक सिद्धान्त का निरूपण, काश्मीर नय से किया गया है। कोष के प्रकाशित होने पर सर्वास्तिवाद के प्राचीन ग्रन्थों का महत्व घट गया। कोष में अन्य ग्रन्थों से उद्धरण भी दिये गये हैं। इस प्रकार प्राचीन साहित्य के अध्ययन के लिये भी कोष का बड़ा मूल्य है।

अभिधर्म कोष पर कई टीकाएँ लिखी गई थीं किन्तु इस समय केवल यशोमित्र की "स्फुटार्था" व्याख्या पाई जाती है। इसका सम्पादन वोगिहारा ने जापान में किया है। लुई दि-ला-वाले-पूसें ने चीनी से इस ग्रन्थ का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया है।

अभिलाषितार्थ-चिंतामणि

कल्याण के चालुक्य वंशीय राजा सोमेश्वर (ई० सं० ११२६ से ११३८ तक) तृतीय के द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध ग्रन्थ। इसमें राजनीति, युद्धशास्त्र, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, काव्य, तर्क, दान, ज्योतिष तथा मानवीय जीवन में उपयोगी अनेक बातों का विवेचन किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के सम्बन्ध में लेखक ने शक १०५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार के ग्रह गणित के लिए ध्रुवाङ्क भी दिये हैं।

अभिज्ञान शाकुन्तल

महाकवि कालिदास की सर्वोत्कृष्ट रचना, संसार के साहित्य को भारतवर्ष की एक महान देन!

अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक का कथाभाग कालिदास ने महाभारत में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान से लिया है।

उन्होंने अपनी कथा का विस्तार इस प्रकार से किया है—

शकुन्तला विश्वामित्र मुनि और मेनका अप्सरा की सन्तान थी। महर्षि कण्व के आश्रम में उसका लालन-पालन हुआ था।

पहले अंक में राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए कण्व मुनि के आश्रम में प्रविष्ट होते हैं। यहाँ पर उनका शकुन्तला के साथ परिचय होकर वह प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है। दूसरे अंक में उस प्रेम का विकास होता है। तीसरे अंक में शकुन्तला और दुष्यन्त अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं और उन दोनों का गांधर्व विवाह हो जाता है। चौथे अंक में विरह में अन्यमनस्का शकुन्तला को अतिथि रूप में आने वाले महर्षि दुर्वासा के आदर सत्कार का ध्यान नहीं

रहता। इसपर दुर्वासा उसको शाप देते हैं। इसी अंक में राजा दुष्यन्त शकुन्तला से विदा होते समय निशानी या अभिज्ञान के तौर पर उसे अपनी अंगूठी देते हैं। पाँचवें अंक में दुष्यन्त की राजसभा में गौतमी और दोनों तपस्वियों के साथ शकुन्तला जाती है। निशानी की अंगूठी नहीं मिलने से राजा सन्देह में उसका त्यागकर देते हैं और शकुन्तला अन्तर्धान हो जाती है। इसके बाद धीवर को मछली के पेट में से वह अंगूठी मिलती है और वह उसे राजा के पास पहुँचा देता है। छठे अंक में विरही राजा का विलाप बतलाया गया है और स्वर्ग से इन्द्र का निमंत्रण राजा को प्राप्त होता है। सातवें अंक में स्वर्ग से लौटते हुए राजा दुष्यन्त हेमकूट पर्वत पर पहुँचते हैं। वहाँ वह अपने पुत्र को देखते हैं और उनका शकुन्तला से मिलन हो जाता है।

महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान के साथ कालिदास के नाटक के कथानक में प्रधान भेद दुर्वासा का शाप और दुष्यन्त की दी हुई अंगूठी है। इन दोनों घटनाओं का उल्लेख महाभारत में कहीं नहीं पाया जाता है। कालिदास की इन दोनों कल्पनाओं ने उनके नायक दुष्यन्त को कई प्रकार के दोषों से बचा लिया है। शकुन्तला को गुप्त रूप से ग्रहण करके फिर उसको त्याग देने का दोष दुष्यन्त पर न डाल कर दैव पर डाल दिया है। इससे उन्होंने संस्कृत-साहित्य के इस नियम था कि नायक को उदात्त और सर्व-गुण सम्पन्न होना चाहिये की रक्षा कर ली है।

इस नाटक के प्रधान चरित्र शकुन्तला और दुष्यन्त का चित्रण करने में कालिदास ने कला की चरम सीमा को छू लिया है। नाटक के पञ्चम अंक में दुष्यन्त के चरित्र की आलोचना करते हुए बंगाल के महान् नाटककार स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं—

"इस अंक में हम देखते हैं कि राजा दुष्यन्त कामुक और मिथ्यावादी चाहे जो हो, एक मनुष्य अवश्य हैं, उनमें मनुष्यता की मात्रा यथेष्ट है। सामने एक असाधारण रूपवती युवती पत्नी भाव से भिक्षा माँग रही है, वह कह रही है कि मैं तुम्हारी विवाहिता स्त्री हूँ, मुझे ग्रहण करो, किन्तु दूसरी तरफ धर्म का भय है। ब्राह्मण-कन्या गौतमी और ऋषिकुमार खड़े हुए कभी राजा से शकुन्तला के ग्रहण करने के लिये अनुनय-विनय करते हैं और कभी ब्रह्मकोप और अधर्म से विनाश का भय बतलाते हैं। राजा के एक ओर अलौकिक रूप सम्पन्न युवती है, ऋषि का क्रोध है, नारी का अनुनय-विनय है और दूसरी तरफ धर्म का भय है।"

"वे डूबते हैं, किन्तु तैरने में उस्ताद आदमी की तरह ऊपर उठने का प्रयास करके भी ऊपर उठ नहीं सकते। एक दैव-बल उन पर अपना प्रभाव डाले हुए है। वह एक कुहासे में से, उस अस्पष्ट आवरण में से बाहर निकलने की चेष्टा करते हैं, मगर निकल नहीं पाते। इस सारे दृश्य में एक मोह है, सौन्दर्य है, उल्लास भी है, दुष्यन्त हां, एक मनुष्य हैं।"

"इस पञ्चम अंक में हम एक और अपूर्व चीज देखते हैं। देखते हैं, अलक्ष्य में एक युद्ध हो रहा है। एक तरफ क्षत्रिय का तेज है और एक ओर ब्रह्मतेज है। ऋषिकुमारों ने और ऋषि-कन्या गौतमी ने राजा को बड़ी कड़ी झिड़कियाँ दीं, भर्त्सना में कोई बात उठा नहीं रखीं। दुष्यन्त क्रोध नहीं करते, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा से पग भर भी स्खलित नहीं होते, साथ ही ब्राह्मण का अभिशाप भी सिर-आँखों पर ग्रहण करते हैं। उसे भी त्याग नहीं कर सकते। अपूर्व दृश्य है।"

"मैं शकुन्तला नाटक के इस पञ्चम अंक को जगत् भर के नाट्य साहित्य में अद्वितीय, अद्भुत, अपूर्व और अतुलनीय समझता हूँ। ग्रीक नाटकों में मैंने ऐसा नहीं पढ़ा, फ्रेंच-नाटकों में भी नहीं पढ़ा, जर्मन-नाटकों में ऐसा दृश्य नहीं देखा, अंग्रेजी के नाटकों में भी नहीं देखा।"

शकुन्तला के चरित्र में भी कवि की लेखनी ने अपना चरम विकास किया है। जिस समय राजा दुष्यन्त सम्पूर्ण नारी-जाति के ऊपर झूठ बोलने और फरेब करने का अपवाद लगाते हैं, तब शकुन्तला का गर्व चोट खाकर जाग उठता है। वह क्रोध में आकर कहती है—हे अनार्य! तुम अपने हृदय के अनुरूप ही सबको देखते हो। तुम धर्म कंचुकधारी तृण से ढँके हुए कूप के समान हो, तुम्हारे समान और कौन होगा। राजन्! तुमने जो मेरा पाणि-ग्रहण किया है, उसका साक्षी धर्म के सिवाय और कोई नहीं है। कुल-ललनाएँ क्या कभी इस तरह निर्लज्ज होकर पर-पुरुष की आकांक्षा किया करती हैं। क्या तुम यह सम-

झते हो कि मैं स्वेच्छाचारिणी गणिका की तरह तुम्हारे मैं निकट उपस्थित हुई हूँ ?

इसके बाद जब राज पुरोहित राजा को सलाह देते हैं—

महाराज ! श्रेष्ठ ज्योतिषी पण्डित आपसे कह चुके हैं कि आपको पहले-पहल होनेवाला पुत्र चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त होगा। इस मुनि कन्या के होनेवाला बालक यदि चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त हो तब तो इसे विशुद्ध समझ कर अपने अन्तःपुर में स्थान दीजियेगा। अन्यथा इसे अपने पिता के घर भेज दीजियेगा।

पुरोहित के इस लज्जा-जनक प्रस्ताव को सुन कर शकुन्तला ने कहा कि हे भगवती वसुन्धरा ! मुझे स्थान दो। उसी समय स्त्री के आकार की एक ज्योति आकाश से उतर कर शकुन्तला को गोद में लेकर अन्तर्धान हो जाती है। शकुन्तला राजा के प्रत्याख्यान और दुर्वाशा के शाप को लात मार कर अन्तर्धान हो जाती है।

द्विजेन्द्र बाबू लिखते हैं—"इसी जगह कालिदास की कल्पना का महत्व है। यहीं पर शकुन्तला-चरित का चरम-विकास है। यहीं पर साध्वी स्त्री और असती स्त्री का अन्तर सबसे बढ़ कर व्यक्त है। साध्वी स्त्री यहाँ तक ऊँचा उठ सकती है कि पति की निष्करुण अवहेला को तुच्छ करके गर्व के साथ सिर ऊँचा करके खड़ी रहती है। शकुन्तला के प्रत्याख्यान के परिणाम में कवि ने दिखलाया कि दुष्यन्त-कृत शकुन्तला का त्याग अन्याय है और ऋषि का शाप उसे घेरे अवश्य रह सकता है, मगर उसके गौरव को नष्ट नहीं कर सकता।

सातवें अंक में शकुन्तला विरहिणी की अवस्था में देख पड़ती है।—

वसने परिधूसरे वसाना, नियमक्षाममुखो धृतैकवेणी
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला, मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्त्ति।

किन्तु यह विरह पूर्ववर्ती विरह से कुछ भिन्न प्रकार का है। प्रथम विरह प्रथम प्रेम की ही तरह उद्भ्रान्त, उच्छ्वास-पूर्ण और असंयत है। यह विरह दृढ़, शान्त और संयत है। प्रथम विरह में आशंका और सन्देह है। इस विरह में विश्वास और अपेक्षा है।

इस अंक में ही शकुन्तला-चरित्र का एक विशिष्ट सौन्दर्य हम देखते हैं। यह सौन्दर्य उसका पुत्र गर्व है। दुष्यन्त के आने पर बालक जब माता से पूछता है कि "यह कौन है ?" तब शकुन्तला उत्तर देती है कि "अपने भाग्य से पूछो।" इस उत्तर में पुत्र स्नेह, पति का अन्याय और दैव का अत्याचार सब कुछ आ जाता है। इस एक ही उत्तर में पुत्र के प्रति, स्वामी के प्रति, विधाता के प्रति साध्वी शकुन्तला का अभिमान प्रकट है। पुत्र नहीं समझा, इसी से चुप रह गया। राजा समझे, इसी से वे रोती हुई शकुन्तला के पैरों पर गिर पड़े और उन्होंने उससे क्षमा की प्रार्थना की। विधाता ने समझा, इसीसे उन्होंने दोनों प्रेमियों का मिलन सम्पन्न करा दिया।

कालिदास की विश्व जनीन प्रतिभा का प्रधान लक्षण यह है कि जो नाटक उन्होंने डेढ़ हजार वर्ष पहले लिखा है, वह आज भी पुरातन और नवीन अलंकार-शास्त्र के अनुकूल रह कर आचार, नीति और विश्वास के परिवर्तनों को तुच्छ कर के सारे समालोचकों की तीक्ष्ण दृष्टि के सामने पर्वत के सदृश अटल भाव से वैसे ही सिर उठाये गर्व के साथ खड़ा है। यह रचना ऊषा के उदय की तरह उस समय जैसी सुन्दर थी, आज भी वैसी ही सुन्दर है।

जर्मनी के महाकवि गेटे ने अभिज्ञान शाकुन्तल पढ़ कर जो उल्लासोक्ति की है, वह भी बिल्कुल सार्थक है।

'Wouldst thou see spring's blossoms and the fruits of its decline,

Wouldst thou see by what the souls entraptured feasted fed,

Wouldest thou have this earth and heaven in one soul name combine

I name thee Shakuntala, and all at once is said."

गेटे के इन वचनों का बहुत ही सुन्दर भावानुवाद श्री मिराशी ने इस प्रकार किया है :—

वासन्तं कुसुमं फलंच युगपद्, ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।

एकी भूतमभूत पूर्वमयवा, स्वर्लोक-भूलोकयो–
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रिय सखे शाकुन्तलं सेव्यताम् ॥

यदि तुम वसन्त और गीष्म के फूलों और फलों का तथा मन को प्रसन्न करने वाले रसायनों का और स्वर्ग लोक तथा भूलोक के ऐश्वर्यों का एक साथ आनन्द उठाना चाहते हो तो शकुन्तला का अध्ययन करो।

अमरसिंह राठौर

जोधपुर के राठौर वंशी राजा गजसिंह का बड़ा पुत्र जिसका जन्म सन् १६१३ में हुआ था।

राजा गजसिंह ने अपने बड़े पुत्र अमरसिंह राठौर को स्वेच्छाचारी और उद्दण्ड होने के कारण सन् १६३३ में जोधपुर से देश निकाला दे दिया था। मगर अमरसिंह बहुत बहादुर और साहसी तबियत का नव युवक था। उसकी वीरता की कहानियां उसकी छोटी उमर से ही सब दूर प्रचलित हो गई थी। जोधपुर से निकल कर वह बादशाह शाहजहां के दरबार में दिल्ली पहुँचा। शुरू में बादशाह ने उसको कुछ साधारण काम देकर सेना में नौकर रख लिया। कुछ दिनों के बाद उसके अच्छे कामों से प्रसन्न होकर सन् १६३७ में राव की पदवी और मनसब देकर नागौर का शासक बना कर भेज दिया। इसी समय उसकी शादी डूंगरपुर के रावल पूंजा अहाड़ा गहलौत की बेटी अहाड़ी अजायबदे से हुआ। ऐसा कहा जाता है कि इस रानी के प्रेम में अमरसिंह देहली दरबार के प्रति अपने कर्तव्य की उपेक्षा करने लगा। इससे बादशाह ने उसको देहली दरबार में तलब किया। वहां पर सन् १६४४ में दरबार के बख्शी सलाबत खाँ से इसका झगड़ा हो गया और उसने क्रोधित होकर भरे दरबार में कटारी से सलाबत खाँ को मार डाला और उसी समय किसी दूसरे दरबारी के द्वारा उसका भी प्राणान्त हो गया।

राव अमर सिंह की वीरता की कहानियाँ आज भी राजस्थानी लोगों की जबान पर मौजूद हैं और इनके वीरता पूर्ण जीवन पर कई पुराने ढंग के नाटक अभिनय किये जाते हैं और आधुनिक चलचित्रों के युग में भी इनके ऊपर चलचित्र बनाये गये हैं।

राव अमरसिंह राठौर की स्मृति में नागौर में एक विशाल छत्री भी बनी हुई है जो दर्शनीय है।

अमरसिंह थापा

नाहन का राजा अमरसिंह थापा, जो नैपाल दरबार का प्रधान सेनापति था।

जिस समय अंग्रेजी फौजों के मेजर जनरल जिलेप्सीने नैपाल की सीमा उल्लंघन कर देहरादून क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय अमरसिंह ने अपने भतीजे बलभद्र सिंह को केवल छह सौ गुरखा सैनिक देकर जिलेप्सी का अवरोध करने को भेजा। बलभद्र सिंह ने बड़ी फुर्ती से देहरादून से साढ़े तीन मील दूर नाला पानी की सबसे ऊँची पहाड़ी पर एक छोटा सा अस्थायी किला खड़ा किया। उस पर नैपाली झण्डा चढ़ा कर उसे "कलंगा दुर्ग" का नाम दिया।

जिलेप्सी ने कर्नल भावी की अध्यक्षता में एक हजार गोरा पल्टन और ढाई हजार देशी पलटन उस किले पर आक्रमण करने के लिए भेजी। अंग्रेजी फौजों ने सात दिन तक रात दिन कलंगादुर्ग पर गोली बार किया उधर नैपाली भी अपनी बन्दूकों से रात-दिन गोली बार कर रहे थे अंग्रेजी फौजों के सतत प्रयत्न और बढ़िया युद्ध सामग्री के बावजूद भी कलंगा दुर्ग अजेय खड़ा रहा।

जनरल जिलेप्सी ने अंग्रेजी फौजों की विफलता का यह समाचार सुना तो गुस्से से लाल होकर अपनी सुरक्षित सेना को लेकर नाला पानी पर पहुंच गया। उसने तीन दिन तक सारी स्थिति पर विचार करके अपनी सेना को चार विभागों में विभक्त किया और चार कुशल अंग्रेज कप्तानों के नेतृत्व में चारों दिशाओं से एक साथ आक्रमण कर दिया। उधर से नैपाली गुरखे और उनकी स्त्रियाँ भी किले पर से बराबर बन्दूकें दाग रही थीं। अंग्रेजी सेना का जो योद्धा किले के द्वार के पास पहुँचता वहीं ढेर हो जाता था।

इस बार बार की विफलता से चिढ़कर जनरल जिलेप्सी स्वयं तीन कम्पनी गोरे सिपाहियों को साथ लेकर बढ़ा परन्तु दुर्ग पर से जो गोलियों और पत्थरों की बौछारें

शुरू हुई तो गोरी पल्टन भाग खड़ी हुई। तब जनरल जिलेप्सी अकेला ही नंगी तलवार घुमाता हुआ कलंगादुर्ग के फाटक की ओर बढ़ा। वह फाटक से करीब तीस गज की दूरी पर था कि एक गोली उसकी छाती को पार करती हुई निकल गई और वह वहीं पर खतम हो गया।

जनरल जिलेप्सी की मृत्यु से सारी अंग्रेजी सेना में भयंकर आतंक छा गया तुरन्त कर्नल मावी ने अंग्रेजी फौजों को वापस लौटने का आदेश दिया और वहाँ से वापस लौट कर देहली के केन्द्र को और मदद भेजने के लिए लिखा। दिल्ली से एक भारी तोपखाना और गोरी पलटन मदद को आ पहुँची। किले पर भयङ्कर गोलाबारी शुरू हुई उधर किले में पानी का अकाल पड़ गया। तब बलभद्रसिंह ने किले का द्वार खोल दिया और बचे हुए सत्तर प्यास से त्रसित स्त्री पुरुषों को लेकर अंग्रेजी सेना के बीच में से निकल गया और उसी जंगल में सबके साथ ऐसा गायब हुआ कि किसी को पता नहीं लगा।

अमरसिंह

सन् १८५७ की महान सैनिक क्रान्ति के महान और बहादुर नेता कुँवर सिंह का भाई अमर सिंह।

२६ अप्रैल सन् १८५८ को सैनिक क्रान्ति के महान बीर ८० वर्ष के वृद्ध कुँवर सिंह की मृत्यु हो गई। इस महान व्यक्ति के इतिहास के रंगमंच से निकल जाने पर उसी की जोड़ के शूर और देशभक्त उसके भाई अमर सिंह ने रंगमंच पर पदार्पण किया। वैसे यह कुँवर सिंह के साथ भी अपनी वीरता के जौहर दिखा चुका था।

भाई की मृत्यु के बाद चार दिन का विश्राम भी न लेकर अमर सिंह ने आरा के ऊपर धावा बोल दिया। आरा के अंग्रेजों की हार के समाचार मिलने पर ब्रिगेडियर डगलस तथा जनरल लुगार्ड के नेतृत्व में गङ्गा के इस ओर पड़ी अंग्रेजों की सेना ने गङ्गा पार होकर अमर सिंह पर हमला किया। सम्मुख युद्ध में सफलता न पाने के कारण उसने छापामार तरीके से लड़ाई लड़ना शुरू किया। इससे अंग्रेजी सेना बड़ी परेशान हो गई और सेनापति लुगार्ड १५ जून को रिटायर होकर इंग्लैण्ड चला गया और उसकी सेना छावनी को लौट गई। इससे उत्साहित होकर अमर सिंह अपने भाई कुँवर सिंह की खास राजधानी जगदीशपुर में प्रवेश कर गया और जगदीशपुर पर अधिकार कर के वहाँ पर स्वाधीनता का झण्डा फहरा दिया और जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर तीन महीने तक वहाँ के सिंहासन पर आसीन रहा। ब्रिगेडियर डगलस और उसकी सात हजार सेना ने अमर सिंह को नष्ट करने के लिये सात दिशाओं से जगदीशपुर पर हमला किया। १७ अक्टूबर को अंग्रेजी सेनाओं ने जगदीशपुर को पूरी तरह घेर लिया। मगर अमर सिंह किसी तरह उस घेरे को तोड़ कर निकल भागा। जगदीशपुर अंग्रेजों के हाथ आ गया मगर अमर सिंह नहीं आया।

१९ अक्टूबर को अंग्रेजी सेना ने नौदी गाँव में अमर सिंह की क्रान्तिकारी सेना को पूरी तरह से घेर लिया। ४०० क्रान्तिकारियों में से ३९७ वहीं पर कट गये सिर्फ तीन आदमी बचे जिनमें से एक अमर सिंह था। उसके बाद अमर सिंह कहाँ गया इसका पता न अंग्रेजी सेनाओं को लगा और न आज तक इतिहास को ही लगा।

अमरसिंह महाराणा

मेवाड़ के महाराणा प्रताप के पुत्र जिनका राज्यारोहण सन् १५९७ की जनवरी में चावण्ड में हुआ।

महाराणा अमर सिंह के समय में सम्राट् अकबर ने शाहजादा सलीम के नेतृत्व में एक सेना मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए सन् १६०० में भेजी, मगर महाराणा अमर सिंह की सेना ने शाही सेना को बुरी तरह शिकस्त दी। तब शाहजादा सलीम निराश होकर मेवाड़ से बंगाल चला गया।

इसके बाद ई० सन् १६०३ के दशहरे के दिन बादशाह ने शाहजादा सलीम को फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। मगर शाहजादा सलीम मेवाड़ से पूरी तरह परिचित था अतः उसने वहाँ जाने से आनाकानी की और इलाहाबाद चला गया।

सन् १६०५ में सम्राट् जहाँगीर ने गद्दीनशीन होते ही शाहजादा परवेज के नेतृत्व में २०००० सवार तथा कई

बहादुर सेनानायकों को देकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने को भेजा। मगर इस लड़ाई में भी राणा अमर सिंह ने शाहजादा परवेज को करारी टक्कर दी। जिससे नाराज होकर बादशाह ने परवेज को युवराज पद से खारिज कर दिया।

सन् १६०८ में शाहजादा परवेज की असफलता के पश्चात् बादशाह ने महावतखाँ को १२००० सवार, २००० बंदूकची, ६० हाथी और ७०-८० तोपें देकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने भेजा। मगर इस लड़ाई में भी राणा ने महावत खाँ को बुरी तरह हरा कर भगा दिया। तब बादशाह ने महावत खाँ को बुला कर उसकी जगह अब्दुल्ला खाँ को भेजा।

सन् १६११ में अब्दुल्ला खाँ ने राणापुर की घाटी के पास मेवाड़ की सेना पर हमला किया मगर इस लड़ाई में भी शाही सेना की पराजय हुई हालांकि मेवाड़ की सेना के भी बहुत से बहादुर योद्धा मारे गये। तब बादशाह ने अब्दुल्ला खाँ को वहाँ से हटा कर गुजरात का सूबेदार बना कर भेज दिया।

इन बड़ी-बड़ी हारों से परेशान हो कर स्वयं बादशाह जहाँगीर सन् १६१३ मे अजमेर पहुँचा और वहाँ से शाहजादा खुर्रम की अध्यक्षता में १२००० सवार और साथ देकर मेवाड़ पर हमला करने को भेजा और पूरी शक्ति से मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। इस विशाल आक्रमण से महाराणा अमर सिंह अपनी रक्षा नहीं कर सके और अन्त में उन्हें बादशाह के साथ सन्धि करनी पड़ी।

एक बार महाराणा अमरसिंह ने अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि रहीम के पास दिन रात की लड़ाईयों से घबरा कर यह दोहा लिख भेजा था—

गौड़, कछाहा राठवड, गोखाँ जोख करन्त
कह जो खानाखान ने, बनचर हुआ फिरन्त

अर्थात्—गौड़, कछवाहा और राठौड़ तो महलों के झरोखा में मौज कर रहे हैं। खाना-खाना से कहना कि हम जंगलों में भटक रहे हैं।

इसके उत्तर में रहीम ने यह दोहा लिखा था—

धर रहसी, रहसी धर्म, खपजासी खुरसाण
अमर विशंभर उपरा, राखो नहचो राण

हे राणा अमर तुम ईश्वर पर भरोसा रक्खो धरती और धर्म रह जायँगे खुरासान वाले (मुगल) खप जावेंगे।

अमर सिंह (महाराणा) द्वितीय

मेवाड़ के राणा जय सिंह के पुत्र अमर सिंह जिनकी गद्दीनशीनी सन् १६७२ ई० में हुई।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् शाही गद्दी के उत्तराधिकार के सिलसिले में राणा अमरसिंह द्वितीय ने शाहजादा मुअज्जम का पक्ष लिया था। यही शाहजादा मुअज्जम आगे चल कर मुअज्जम शाहआलम बहादुर शाह के नाम से गद्दी पर बैठा।

अम्बर मलिक

अहमद नगर के आदिलशाही बादशाह का मंत्री तथा सेनापति मलिक अम्बर जो असाधारण बुद्धिवाला उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ और कुशल सेनानायक था।

मलिक अम्बर का जहाँगीर कालीन अहमदनगर राज्य के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। वहाँ के शासन प्रबन्ध में उसने कई महत्वपूर्ण सुधार किये। उसने वहाँ की जमीन का लगान का प्रबन्ध राजा टोडरमल की प्रणाली के अनुसार किया। उसने दक्षिण भारत में एक नवीन युद्ध प्रणाली का आविष्कार किया। निजामशाही राज्य की सैनिक शक्ति को उसने बहुत बढ़ा दिया। उसी ने पहले-पहल मराठों को गुरिल्ला युद्ध प्रणाली की शिक्षा दी। इस बहादुर सेनानायक ने करीब बीस वर्ष तक मुगलों की सैनिक शक्ति को परेशान किया।

सन् १६११ में मुगल सेनाओं ने खानजहाँ की अध्यक्षता में अहमद नगर पर आक्रमण किया किन्तु मलिक अम्बर के मराठा सवारों ने उन्हें बुरी तरह पराजित करके गुजरात की ओर भगा दिया। इसके बाद बादशाह ने खानखाना को फिर दक्षिण विजय के लिये भेजा। इस बार उसने मलिक अम्बर की सेना को एक लड़ाई में पराजित कर दिया मगर उससे उसका बल नहीं टूटा।

इस पर शाहजादा खुर्रम की अधीनता में बादशाह ने सब प्रसिद्ध सेनापतियों के साथ एक बड़ी सेना अहमदनगर

पर आक्रमण करने के लिये भेजी। शाहजादा खुर्रम ने आदिलशाह के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा जिसको उन्होंने तत्काल मंजूर कर लिया। पन्द्रह लाख रुपये की भेंट के साथ स्वयं आदिल शाह शाहजादे के पास हाजिर हुआ और उसने मलिक अम्बर के द्वारा जीते गये सब प्रदेशों को लौटा देने की प्रतिज्ञा की। बादशाह ने इस सन्धि को मंजूर कर लिया और आदिलशाह को फर्जन्दे हिन्द की उपाधि इनायत की।

अम्बा प्रसाद

गुहिल वंश के मेवाड़ का राजा, शक्ति प्रसाद का पुत्र। रावल समर सिंह के समय की सन् १२७४ की प्रशस्ति में इसका नाम आम्र प्रसाद लिखा हुआ है। साम्भर के चौहान राजा वाक्पति राज ने उसे युद्ध में मार डाला।

अमरू

काश्मीर का एक कवि जो सातवीं सदी के लगभग हुआ। इस कवि का "अमरू-शतक" नामक काव्य संस्कृत के सौ सुन्दर श्लोकों में समाप्त हुआ है। इस काव्य की एक-एक पंक्ति प्रणय और रोमांस का सुन्दर वर्णन करती है। संस्कृत साहित्य में यह शतक काफी लोकप्रिय हुआ और इसके श्लोक अनेक स्थानों पर उद्धृत किये जाते रहे हैं।

अमरू सफ्फारी

ईरान के सफ्फारी वंश का दूसरा शासक जिसका समय सन् ८७८ से ९०० ई० तक है।

अमरू खलीफा मोतजिद के शासन काल में खुरासान का गवर्नर था। उस समय अरब से अलग पूर्वी प्रदेश के दो भाग थे (१) ईरान और (२) मावराऊन्नहर (अन्तर्वेद)। अन्तर्वेद का शासन सामानी साम्राज्य के अन्तर्गत था और खुरासान तथा ईरान का एक भाग सफ्फारी वंश के शासक अमरू के अधीन था। नेशापोर के शासक रफी को मार कर अमरू सारे ईरान का शासक हो गया। इसके बाद उसने सामानी साम्राज्य के तत्कालीन शासक ईस्माइल सामानी के खिलाफ अन्तर्वेद पर आक्रमण करने का विचार किया मगर सामानी ने उससे पहले ही बलख को घेरकर थोड़ी लड़ाई के पश्चात् अमरू को पकड़ कर जेल में डाल दिया और सन् ९०३ में उसे कतल करवा दिया।

अमरू बड़ा साहसी, उदार और राजनीतिज्ञ था। सेना और प्रजा उसे बहुत चाहती थी। लेकिन खलीफा का सन्देह उस पर बराबर बना रहा, इसीसे उसने सामानी शासक इस्माइल को खुरासान और ईरान का अमीर बना देने का लालच देकर अमरू के खिलाफ उसकाया। जिस समय सामानी की सेना मेर्व में पहुँची उस समय उसमें केवल दो हजार सवार थे। उस समय अमरू नेशापोर में था और उसके पास सत्रह हजार सवार थे। जब बलख में दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ तो बिना किसी विशेष प्रतिरोध के ही अमरू गिरफ्तार कर लिया गया। उसकी सेना में न तो कोई मरा, न किसी को चोट आई और न कोई कैदी हुआ।

इस प्रकार अमरू के साथ ही सफ्फारी वंश का अंत हुआ।

अमर-कोश

संस्कृत-भाषा का एक सुन्दर शब्दकोश, जिसके रचयिता का नाम श्री अमरसिंह है।

संस्कृत भाषा के इस लोकप्रिय कोश में इसके रचयिता ने शब्दों के प्रणयन एवं क्रम के वर्गीकरण में उत्कृष्ट बुद्धि का परिचय दिया है।

संस्कृत भाषा में इसके पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती और भी कोश पाये जाते हैं, मगर अमर-कोश की क्रमबद्ध शैली और लालित्य पूर्ण विवेचना से संस्कृत के विद्यार्थी आज भी इसी कोश को ज्यादा पसन्द करते हैं।

अमर कोश में दिये हुए पर्यायवाची शब्द प्रायः सभी शास्त्र, पुराण, काव्य, नाटक और उपाख्यानों में यथार्थ रूप में प्रयुक्त किये गये हैं।

अमर चन्द्र सूरि

संस्कृत साहित्य के एक विद्वान जैनाचार्य जो सन् १२३० ईस्वी के लगभग गुजरात में हुए। ये एक प्रकार से भक्ति सम्प्रदाय के कवि थे। इन्होंने ब्राह्मण साहित्य में भी बाल भारत और कवि कल्पना नामक ग्रन्थों की रचना की। इनके अन्य ग्रन्थों में छन्द रत्नावलि, काव्य कल्पना परिमल, अलंकार प्रबोध, पद्मानन्द काव्य तथा स्यादि-समुच्चय उल्लेखनीय है।

अमृत चन्द्र

दि० जैन सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध आचार्य्य जिनका समय विक्रम संवत् की बारहवीं सदी में किसी समय माना जाता है। दि० जैन सम्प्रदाय में आध्यात्मिक विषय के विद्वानों में आचार्य्य कुन्दकुन्दाचार्य्य के पश्चात् आचार्य्य अमृतचन्द्र का ही नाम आता है। आचार्य्य अमृत चन्द्र के बनाये हुए पांच. ग्रन्थ इस समय संस्कृत सहित्य में उपलब्ध हैं (१) पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, (२) तत्वार्थ-सार (३) समय-सार टीका (४) प्रवचनसार टीका और (५) पंचास्तिकाय टीका।

इनमें से पहला ग्रन्थ मौलिक है जो जैन श्रावकों के आचार पर प्रकाश डालता है। यह ग्रन्थ दूसरे सब श्रावकाचारों से निराला और अपने ढंग का अद्वितीय है, दूसरा ग्रन्थ आचार्य्य उमास्वाति के "तत्वार्थसूत्र" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पर की हुई सुस्पष्ट और सुन्दर पद्य-बद्ध संस्कृत टीका है। शेष तीन ग्रन्थ आचार्य्य कुन्दकुन्दाचार्य्य द्वारा लिखे हुए समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय पर की हुई सुन्दर और विद्वतापूर्ण टीकाएं हैं।

अमित गति सूरि

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के एक बहुश्रुत आचार्य्य जो धारा नगरी के इतिहास प्रसिद्ध राजा मुंज के समकालीन थे। इनका जन्मकाल ई० सन् ६६३ के करीब माना जाता है।

आचार्य्य अमितगति दि० जैन सम्प्रदाय के माथुर संघ के आचार्य्य थे। माथुर संघ का नाम मथुरा नगर के नाम पर पड़ा है। ये जैन धर्म के बड़े विद्वान और विचारशील आचार्य्य थे। इन्होंने निम्नलिखित जैन ग्रन्थों की संस्कृत भाषा में रचना की—(१) सुभाषित रत्न सन्देह—इस ग्रन्थ में जैन श्रावकों के श्रावक धर्म का निरूपण बड़ी सरल संस्कृत भाषा में बड़े सुन्दर ढंग, से किया गया है। यह ग्रन्थ सन् ६६३ में लिखा गया है। (२ धर्मपरीक्षा—इस ग्रन्थ में अविश्वसनीय पौराणिक कथाओं की आलोचना बड़े मजाकिया ढंग से की गई है। यह ग्रन्थ सन् १०१३ में लिखा गया। इसके अतिरिक्त पंच संग्रह, आराधना, योगसार प्राभृत इत्यादि ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है।

अम्बर का युद्ध

चन्दा साहब मुजफ्फर जंग और डूप्ले की सम्मिलित सेनाओं के साथ कर्नाटक नवाब के उत्तराधिकारी अनवरुद्दीन की लड़ाई जो सन् १७४६ में हुई और जो इतिहास में अम्बर के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में चन्दा साहब की सेनाओं ने अनवरुद्दीन को हरा कर मार डाला और कर्नाटक पर अधिकार कर लिया।

अम्ब्रोस

सेण्टअम्ब्रोस, ईसाई धर्म के प्रसिद्ध संत, इटाली के मिलान नगर चर्च के विशप, संत अगस्टाइन के गुरु जिनका जन्म सन् ३४० में और मृत्यु ३६७ में हुई।

संत अम्ब्रोस का ईसाई धर्म के इतिहास में तथा तत्कालीन राजनैतिक विचारधारा में एक महत्वपूर्ण स्थान है। ये सम्राट् थ्यूडोसियस और सम्राट् वेलीण्टाइन के समकालीन थे, जब सम्राट् वेलीण्टाइन ने सत्ता के मद से अभिभूत होकर चर्च के धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया तो उन्होंने उनका बड़ी दृढ़ता से विरोध किया और लिखा कि राजनैतिक मामलों में सम्राट् स्वतंत्र हैं मगर धार्मिक क्षेत्र में सम्राट् चर्च के आधीन हैं चर्च उनके आधीन नहीं है। इस प्रकार बहादुरी के साथ उन्होंने चर्च के अधिकार की रक्षा की।

अमृतबाजार पत्रिका

भारतवर्ष की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्रिका जो कलकत्ता से इस समय अंग्रेजी भाषा के दैनिक पत्र रूप में प्रकाशित होती है।

भारतीय पत्र कला के इतिहास में राष्ट्रीय जागरण उद्देश्य के निमित्त अमृतबाजार पत्रिका का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है।

सन् १८६८ में जैसोर जिले के अमृतबाजार नामक गाँव से शिशिरकुमार घोष और मोतीलाल नामक घोष बन्धुओं ने अमृतबाजार पत्रिका के नाम से एक बंगला की साप्ताहिक पत्रिका निकालना प्रारम्भ किया।

यह वह समय था जब पत्र पत्रिकाओं का प्रचार बहुत ही कम था और पत्रकारों को बड़ी आर्थिक कठिनाइयों में से गुजरना पड़ता था, मगर शिशिरकुमार घोष का उत्साह इतना प्रबल था कि ये स्वयं लिखते, कम्पोज करते और छापते थे। अगर कागज नहीं होता तो हाथ से कागज भी बना कर अपनी बनाई हुई स्याही से छाप लेते थे।

सन् १८७२ में पत्रिका का दफ्तर कलकत्ते में लाया गया और तब से अब तक यह पत्रिका कलकत्ते से ही निकलती है।

२१ मार्च सन् १८७८ से पत्रिका का प्रकाशन अंग्रेजी भाषा में होने लगा। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की तरफ से इस पत्रिका का प्रभाव देख कर इसे नीम सरकारी बना देने का प्रस्ताव भी आया। सन् १८७६-७७ में बंगाल के तत्कालीन गवर्नर सर एसली ईडेन ने जब शिशिर बाबू के सामने पत्रिका को नीम सरकारी बना देने का प्रस्ताव रखा तब उन्होंने सर एसली से यह कह कर वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया कि क्या आप देश में एक भी ईमानदार पत्र का अस्तित्व नहीं रहने देना चाहते।

इसके पश्चात् सन् १८७८ से सन् १९४७ तक पत्रिका के ७० वर्ष अनेक प्रकार के उत्थान और पतन के धक्कों में से गुजरे। मगर इस पत्रिका ने अपने राष्ट्रीय आदर्श को कायम रख कर ब्रिटिश सरकार से बराबर लोहा लिया। इसने कई दफे देशी राजाओं को उन पर चलने वाले राजनीति के कुठार से बचाया। शिशिर बाबा के पश्चात् पत्रिका का सम्पादन उनके छोटे भाई मोतीलाल घोष के हाथ में आया। मोतीलाल घोष के पश्चात् पत्रिका का सम्पादन तुषारकान्ति घोष के ऊपर आया। तब से यह पत्रिका बराबर उन्नति करती जा रही है और इसका एक संस्करण कलकत्ता से और एक संस्करण इलाहाबाद से निकलता है। कलकत्ता से इसी आफिस से बंगला में दैनिक युगान्तर और इलाहाबाद से हिन्दी में अमृतपत्रिका के नाम से पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं।

अम्बेडकर

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में परिगणित जातियों के नेता और स्वतन्त्र भारत की पार्लियामेण्ट में देश के कानून मन्त्री।

दूसरी गोल मेज परिषद् में परिगणित जातियों की ओर से डा० अम्बेडकर ने भाग लिया था। उन्होंने परिगणित जातियों के लिये पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था का समर्थन किया था और जब दूसरी गोलमेज परिषद् ने हरिजनों को प्रथक निर्वाचन का अधिकार दिया तो डा० अम्बेडकर और उनके दल को बड़ी प्रसन्नता हुई लेकिन राष्ट्रीय विचार धारा के लोगों को इससे बड़ा दुख हुआ और इस निर्णय के खिलाफ महात्मा गान्धी ने आमरण अनशन करने की घोषणा कर दी।

सारे देश में बड़ी खलबली मच गई और अन्त में मध्यस्थ लोगों के प्रयत्न से २५ सितम्बर १९३२ को पूना पैक्ट बना। इस समझौते में डा० अम्बेडकर ने सवर्ण हिन्दुओं को अधिकाधिक दबाने का प्रयत्न किया फिर भी पृथक निर्वाचन का सिद्धान्त रद्द कर दिया गया।

डा० अम्बेडकर परिगणित जातियों के विकास के पक्षपाती तो थे मगर व इन जातियों को सवर्ण हिन्दुओ के साथ सम्मिलित रखना नहीं चाहते थे। वे इन जातियों को एक प्रथक इकाई के रूप में रख कर अधिक से अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के पक्ष में थे। इसी भावना से प्रेरित होकर एक बार उन्होंने समस्त परिगणित जातियों को बौद्ध धर्म स्वीकार करने का फतवा भी दे दिया था।

अम्बोयना का हत्याकाण्ड

सन् १६०५ में डच लोगों के द्वारा किया गया अंग्रेजों का भीषण हत्याकाण्ड।

सन् १६०१ में पुर्त्तगालियों के समृद्धिशाली व्यापार को देखकर डच लोगों ने भी पूर्वी देशों में एक कम्पनी स्थापित की।

इस कम्पनी के पास प्रचुर साधन और सम्पत्ति थी। इसके सदस्य महत्वाकांक्षी और साहसी व्यक्ति थे। सन् १६०५ में डच कम्पनी ने अम्बोयना पर अधिकार कर लिया। उसी समय अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी खुल चुकी थी और वह भी भारतीय तथा पूर्वी देशों में व्यापार को बढ़ाना चाहती थी। अतः अंग्रेजी कम्पनी और डच कम्पनी में संघर्ष अनिवार्य था। सन् १६२१—२२ में डच कम्पनी ने अंग्रेजों को लेएटोर और पूलोरन से निकाल दिया। सन् १६२३ में अम्बोयना का भीषण हत्याकाण्ड हुआ जिसमें बहु संख्यक अंग्रेज डच लोगों के हाथ से मारे गये। इस हत्याकांड की सूचना से इंगलैण्ड में क्षोभ छा गया। उसके थोड़े ही दिनों बाद इंग्लैण्ड का शासन क्रामवेल के हाथों में आया। तब उसने कड़ी कारवाई करके डचों को सन्धि करने के लिये बाध्य किया। इस सन्धि के अनुसार पूलोरन अंग्रेजों को वापस मिला। ८५ हजार पौण्ड डच लोगों ने अंग्रेजों को जुर्माने के रूप में दिये तथा अम्बोयना में मारे गये अंग्रेजों के उत्तराधिकारियों को भी क्षति पूर्ति के रूप में काफी धन दिया गया।

अब्दुल्ला-बिन-मैमान

इस्लाम धर्म में करामाती पंथ का संस्थापक। करामाती पंथ के अनुसार इस्लाम का सातवाँ इमामअली अन्तिम इमाम है। मृत पुरुषों का कयामत के दिन पर फिर पुनरुत्थान होता है इस सिद्धान्त को यह सम्प्रदाय नहीं मानता। इस पंथ के अनुयायी जब ईरान से भगा दिये गये वे भारत में आकर बसे। इस देश में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। तत्कालीन मुलतान का राजा अब्दुलफतह और वहाँ की प्रजा का बहुत बड़ा हिस्सा इस सम्प्रदाय का अनुयायी था।

अमरदास गुरु

सिक्ख सम्प्रदाय के दूसरे गुरु अङ्गद के शिष्य जिनका जन्म सन् १४७६ में अमृतसर के निकट बसरखा गाँव के एक खत्री परिवार में हुआ।

सिक्ख गुरु अङ्गद की लड़की इनके भतीजे से ब्याही गई थी एक बार उस लड़की के मुँह से सिक्ख गुरू के कुछ पद सुन कर ये विमुक्त हो गये और उमर में गुरू अंगद से बड़े होने पर भी उनके पास जाकर इन्होंने दीक्षा ले ली। गुरू अंगद ने मृत्यु के समय इन्हें अपनी गद्दी पर बिठाया। उस समय इनकी अवस्था ७३ वर्ष की थी मगर इस वृद्धावस्था में भी उन्होंने सिक्ख सम्प्रदाय के लिए काफी काम किया। इनकी रचनाएँ "आदि ग्रन्थ' के अन्तर्गत महलाइ के नीचे उद्धृत की गई हैं। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना "आनन्द" है जो सिक्ख धर्म के उत्सवों के अवसर पर गाई जाती है। २२ वर्ष तक गद्दी पर रहने के बाद ६५ वर्ष की आयु में सन् १५७४ में इनका देहान्त हुआ!

अमानत

सैयद आगा हसन अमानत, उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि, जिनका जन्म सन् १८१६ में हुआ।

उर्दू भाषा में इन्दर सभा नामक पद्यमय नाटक लिख कर इन्होंने सबसे पहले उर्दू में रंगमंच की परंपरा का प्रारंभ किया। इनके लिखे हुए दीवानों में खजायनुल-फ़साहत और गुलदस्तये अमानत प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कृतियों में शब्दावली उत्तम मानी जाती है। इनकी कविताओं का नमूना—

परियों की मोहब्बत में एक हाल है दोनों का,
फरजान हुआ तो क्या, दीवाना हुआ तो क्या!
नरगिस को बागबाँ से महल है हिजाब का,
चोरी गया चमन से कटोरा गुलाब का।

अमाडियस हाफमेन

उन्नीसवीं सदी में जर्मन साहित्य का प्रसिद्ध कवि कहानीकार, कलाकार और गायक। इसकी कृतियों में रूमानी व्यंग और उच्छृंखलता भरी हुई रहती थी। भूत, प्रेत आदि की अनेक भयानक आकृतियों, छायाओं, स्वप्नों इत्यादि का उसने उपन्यासों में चित्रण किया। उसके उपन्यासों में "डी-एलेक्जीर डेस तुफेल्स" "डरेगोलुने तोफ" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

अमानुल्ला अमीर

अफगानिस्तान का प्रसिद्ध सुधारवादी अमीर जिसने कमालपाशा की नकल पर अफगानिस्तान में तेजी से पाश्चात्य ढङ्ग के सुधार करना चाहे मगर जो अपनी योजना में असफल रहा।

अफगानिस्तान का अमीर अमानुल्ला अमीर हबीबुल्ला का छोटा लड़का था। यह सन् १६१६ में अफगानिस्तान की गद्दी पर बैठा। यह अंग्रेजी सरकार की नीति और उसके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दवाव के बहुत विरुद्ध था। उसने गद्दी पर बैठते ही भारत पर हमला कर दिया। अंग्रेजों और अफगानों के बीच लड़ाई छिड़ गई यह लड़ाई बहुत थोड़े समय चली मगर इसके फलस्वरूप जो संधि हुई उसमें अंग्रेज सरकार ने अफगानिस्तान की स्वतंत्र सत्ता का मान लिया और वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में भी उस पर के सब बन्धन हटा लिये। इस प्रकार अमानुल्ला का एक उद्देश पूरा हो गया।

इधर से निश्चिन्त हो अमानुल्ला ने अपने देश की सामाजिक और शैक्षणिक दशा सुधारने की ओर ध्यान दिया। उन्हीं दिनों कमालपाशा ने भी तुर्की का पश्चिमी करण बड़ी सफलता के साथ किया था। अमानुल्ला ने भी उसका अनुकरण कर अफगानिस्तान का पश्चिमी करण करना प्रारम्भ किया। उसकी बेगम सुरैय्या इस कार्य्य में उसकी पूरी मददगार थी। सुरैय्या ने पश्चिमी शिक्षा पाई थी और बुर्के तथा परदे से उसे बेहद नफरत थी।

अमानुल्ला ने अपने देश के बहुत से छात्रों और छात्राओं को शिक्षा ग्रहण करने के लिए विदेशों में भेजा। उसने अफगान लोगों की दाढ़ियों को मुँड़वा कर उन्हें कोट, पेंट और हेट पहना दिये। स्त्रियों का बुर्का और परदा तोड़ कर उन्हें आजादी से घूमने-फिरने की स्वतंत्रता दे दी।

अपनी शासन व्यवस्था में भी उसने काफी सुधार कर उसे अनुशासनवद्ध कर दिया। अपने पड़ोसी देशों के साथ मित्रता पूर्ण संधियाँ करके अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी इसने अपनी स्थिति मजबूत बनाई। सोविएट रूस, तुर्की, इरान इन सब देशों से उसने अफगानिस्तान सम्बन्ध को सुधार कर सबसे अलग-अलग संधियाँ कीं।

सन् १६२८ में अमानुल्ला और बेगम सुरैय्या यूरोप की शानदार यात्रा पर रवाना हुए। सारे यूरोप में उनका शानदार स्वागत हुआ। मगर यह यात्रा ही उनके पतन का मूल कारण बन गई। उनके पीछे से उनके विरोधी तत्वोंने अफगानिस्तान में उन्हें तरह तरह से बदनाम करना प्रारम्भ किया और अपना एक मजबूत संगठन बना लिया। उधर अमानुल्ला अपनी बेगम के साथ यूरोप यात्रा का आनन्द ले रहे थे इधर अफगानिस्तान में उनके खिलाफ आग की लपटें उठने लगी थी।

अमानुल्ला यूरोप यात्रा से वापस लौट कर फिर अपने सुधार कार्य्य में लगे मगर उसी समय सुलगी हुई आग भड़क उठी। विरोधी पार्टियों ने बचा-सक्का नामक एक भिस्ती के नेतृत्व में बगावत का झण्डा खड़ाकर अमानुल्ला को गद्दी से हटा दिया अमानुल्ला और बेगम सुरैया को देश छोड़ कर भागना पड़ा और बचा-सक्का अफगानिस्तान का थोड़े ही समय के लिए हो बादशाह बन बैठा। मगर थोड़े ही दिनों के बाद उसके सेनापति नादिर खाँ ने जो उस समय भारत में था वापस आकर बचा-ए-सक्का को खदेड़ दिया और स्वयं अफगानिस्तान का अमीर बन गया।

अमीर मीनाई

उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि, जिनका पूरा नाम मुफ. अमीर अहमद 'अमीन' था और जिनका जन्म सन् १८२ में लखनऊ में हुआ।

अमीर मीनाई सैयद मुजफ्फरअलीखाँ असीर के शिष्य थे। इनकी कविताओं से प्रसन्न होकर नवाब वाजिद अलीशाह ने सन् १८५२ में इन्हें अपने दरबार में रख लिया।

इनकी लिखी हुई कृतियों में इर्शादुद्सुल्तान, हिदायतुलसुल्तान, मिरातुल गैब, इन्तखाबे यादगार, सनम खानदे इश्क इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनकी कविता का नमूना—

मस्जिद में बुलाता है हमें जाहिदे नाफहम,
होता जो अगर कुछ होश तो मैखाने न जाते।
कह रही है अस्ल में यह आँख शरमाई हुई,
हाय, कि कैसी इस भरी महफिल में रुसवाई हुई।
फना कैसी, बका कैसी, जब उसके आशना ठहरे,
कभी इस घर में आ निकले कभी उस घर में जा ठहरे।

अमृतसर

पूर्वी पंजाब का एक प्रसिद्ध और समृद्ध नगर। सिक्ख जाति का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान।

अमृतसर पूर्वी पंजाब प्रान्त का एक सुसम्पन्न नगर है। कुछ समय पूर्व कपड़े के व्यापार के लिए यह सारे भारत में दूसरे नम्बर की मण्डी था। यह स्थान सिक्खों का पवित्र तीर्थ स्थान है। सिक्खों के द्वारा निर्मित यहाँ का प्रसिद्ध स्वर्णमन्दिर संसार के दर्शनीय स्थानों में अपना विशेष स्थान रखता है।

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के समय में इस नगर ने भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में अपना विशेष स्थान बना लिया है। पंजाब हत्याकाण्ड का सुप्रसिद्ध जलियान वाला बाग इसी नगर में स्थापित है जिसपर घेरा डाल कर जनरल डायर ने सैकड़ों हजारों मनुष्यों को गोली के घाट उतार दिया था। भारतीय स्वाधीनता का इतिहास १३ अप्रैल, जलियान वाला और जनरल डायर को किसी भी प्रकार भुला नहीं सकता।

अमेरिका

दक्षिणी भूखण्ड का एक महान् महाद्वीप, जो ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी तक सभ्य संसार से अपरिचित रहा और जिसका सबसे पहले स्पेनी नाविक कोलम्बस ने पता लगाया। इसके पश्चात् इटली के एक उत्साही नाविक "एमेरिगो वेसपुक्की" के नाम पर इस देश का नाम अमेरिका पड़ा। अमेरिका महाद्वीप उत्तरी अमेरिका, मध्य-अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका ऐसे तीन भागों में बँटा हुआ है। कोलम्बिया, इक्वेडर ब्राजील, अमेजिनबेसिन अर्जेण्टिना, क्यूबा, हेटी, जमैका, प्यूरिटोरिका इत्यादि प्रान्त तथा द्वीप दक्षिणी अमेरिका में हैं—मध्य अमेरिका में पनामा, निकारगुआ, होण्डुरास, कोस्टारिका, सात साल-वेडेर ग्वाटेमाला इत्यादि प्रदेश शामिल हैं। उत्तरी अमेरिका महाद्वीप संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में न्यू इंग्लैण्ड, पेनिसिलवीनिया, वर्जीनिया, मेरीलैण्ड, न्यूयार्क, डेलविर, केरोलिना, टेनेसी, नियाग्रा, डेट्राइट इत्यादि क्षेत्र सम्मिलित हैं।

उत्तरी अमेरिका औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में सारे संसार में अपना पहला स्थान रखता है और दक्षिणी अमेरिका का कृषि उत्पादन अपनी चरमसीमा पर है।

इतिहास (मय सभ्यता)

ईस्वी सन् से करीब एक हजार वर्ष पूर्व उत्तरी अमेरिका में मय-सभ्यता* के नाम से एक सभ्यता बन गई थी। इस सभ्यता के तीन प्रधान केन्द्र थे मैक्सिको, मध्य अमेरीका और पेरू। इन सभ्यताओं का प्रारम्भ कबसे हुआ यह ठीक तौर से नहीं कहा जा सकता। लेकिन मैक्सिको का पंचांग ई० सन् से पूर्व सन् ६१३ से प्रारम्भ होता है ईस्वी सन् के

* बहुत सी नवीन खोजों से पता लगता है कि प्राचीन काल में भारत और अमेरिका के बीच आवागमन के साधन थे। अमरीका के कई स्थानों पर भारतीय ढंग की मूर्तियाँ निकली हैं। महाभारत में पाण्डवों के युग में मय-दानव का उल्लेख आता है जो भवन-निर्माण कला का बहुत विशेषज्ञ था, इसे पाण्डवों ने पाताल लोक से बुलाया था। सम्भव है यह पाताल लोक अमेरिका और मय दानव मय सभ्यता का ही प्रतिनिधि हो।

प्रारम्भ होने तक वहाँ भवन निर्माण कला का बहुत विकास हो चुका था। कई शहरों का निर्माण हो चुका था। रंगाई और बुनाई की कला उरूज पर पहुँच चुकी थी। ताम्बा और सोना काफी तादाद में मिलता था मगर लोहे का ज्ञान लोगों को नहीं हुआ था। उस समय की मूर्तिकला चरम उन्नति की स्थिति में पहुँच चुकी थी।

इस सभ्यता के अन्तर्गत कई छोटे-छोटे राज्य थे, कई भाषाएँ थीं और उन भाषाओं में काफी साहित्य था। शासन सुसंगठित और मजबूत था। शहरों में एक सुसंस्कृत और बुद्धिजीवी समाज था। इन राज्यों का कानून और अर्थ-व्यवस्था बहुत उन्नत थी। सन् ६६० ई० के लगभग "उक्षमल" नगर की नींव डाली गई यह शहर एशिया के बड़े-बड़े शहरों की टक्कर का हो गया था। इसके अतिरिक्त लाबुवा, मयपान, चाओ पुल्लन वगैरह बड़े-बड़े शहर थे।

मध्य अमेरिका के तीन मुख्य राज्यों ने मिल कर एक संघ बनाया था जिसका नाम "मयपान-संघ" था। यह ईस्वी सन् १००० के लगभग की बात है। इससे यह पता लगता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में मध्य अमरीका में सभ्य राज्यों का एक शक्तिशाली संगठन था। दुनिया की दूसरी सभ्यताओं की तरह यहाँ पर भी धर्म गुरु समुदाय जनता और शासन पर अपना पूर्ण प्रभाव रखता था। ज्योतिष उस समय सबसे प्रतिष्ठित विज्ञान समझा जाता था। मयपान का यह संघ सन् ११६० तक कायम रहा उसके बाद सीमावर्ती किसी जाति के आक्रमण से यह नष्ट हो गया लेकिन दूसरे नगर ज्यों के त्यों बने रहे।

इसके सौ वर्ष बाद मैक्सिको से अजेटक जाति के लोगों ने आकर वहाँ एक साम्राज्य का निर्माण किया।

इसी समय दक्षिण अमरीका में पेरू भी सभ्यता का केन्द्र था इस देश में "इनका" का शासन था। यह एक प्रकार का दैवी राज माना जाता था। पेरू में भी कला का बहुत विकास हुआ था। खासकर सुनारों का काम बहुत ही ऊँचे दर्जे का था।

ईसा की सोलहवीं सदी से इस देश में स्पेनी लोगों ने आना प्रारंभ किया मैक्सिको में हर्नेनकोर्टे ने अपने घोड़ों और बन्दूकों के बल से अजटेक साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया और पेरू में स्पेनी यात्री "पिजारो" ने "इनका" के राज्य को खतम कर दिया और उसे स्पेन के विशाल साम्राज्य में मिला लिया।

मय सभ्यता और पेरू सभ्यता के बहुत से अवशेष मैक्सिको के संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं जिनमें एक सुन्दर कलापूर्ण परम्परा के दर्शन होते हैं।

अमरीका में इस प्रकार स्पेनी साम्राज्य की स्थापना होते देख पुर्तगाल, फ्रान्स, इंग्लैण्ड इत्यादि देशों में भी साम्राज्य विस्तार की भावनाएँ बढ़ने लगीं। और इन लोगों ने भी अमेरिका के समान सम्पन्न भूमि में अपने हाथ-पैर फैलाना प्रारम्भ किया।

नवीन इतिहास

अमेरिका के प्राचीन इतिहास की रूपरेखा हम ऊपर बतला चुके हैं। आधुनिक अमेरिका जो यूरोपीय देशों के उपनिवेशों के रूप में बसना प्रारम्भ हुआ, उसका इतिहास पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से शुरू होता है जब कि स्पेन का प्रसिद्ध यात्री कोलम्बस भारत वर्ष को ढूंढते-ढूंढते रास्ता भूल कर अचानक यहां आ पहुँचा था। उसके पश्चात् स्पेनिश लोगों ने मेक्सिको, वेस्टइण्डीज और दक्षिण अमेरिका में अपने उपनिवेश बसा लिये थे।

उसके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोपीय लोगों का अमेरिका जाकर बसने के लिये एक प्रवाह चलता रहा। इतनी बड़ी संख्या में इतनी लम्बी दूरी पर जाकर एक साथ हजारों आदमियों के बसने के उदाहरण इतिहास में कम ही मिलते हैं। इसी प्रवाह के कारण एक अज्ञात तथा बियाबान महाद्वीप में एक ऐसे नये राष्ट्र का निर्माण हो गया जिसकी अपनी ही विशेषताएँ और अपना ही भविष्य था।

अपनी मातृभूमि को छोड़ कर यूरोप के निवासियों के द्वारा इतनी दूर एक अज्ञात और बियाबान देश में बसने के कई कारण थे जिनमें आर्थिक और धार्मिक कारण प्रमुख थे। सन् १६२० और १६३५ के मध्य में अनेक प्रकार की आर्थिक कठिनाइयों के कारण इंग्लैंड में लाखों आदमी बेकार हो गये। ऐसे लोग रोजगार की तलाश में दूसरे देशों की तरफ निगाह डालने लगे।

इसी प्रकार सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों की धार्मिक क्रान्ति के काल में इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम के राज्यकाल में अपनी धार्मिक स्वाधीनता पर आघात होते देख कर बहुत से प्रोटेस्टेण्ट और प्यूरिटिन सम्प्रदाय के लोग सन् १६२० में मेफ्लावर नामक जहाज पर बैठ कर एक अज्ञात देश की ओर चल पड़े और अमेरिका के किनारे पहुँच कर उन्होंने न्यू-प्लीमथ की पिलग्रिम कालोनी बसाई।

सन् १६३० में इंग्लैण्ड के राजा चार्ल्स प्रथम के राज्यकाल में कुछ प्यूरिटिन लोगों ने अपने धर्म गुरुओं के साथ मेसैचूसेट्स बे नामक कालोनी की स्थापना की।

इसी प्रकार इंग्लैण्ड में क्वेकरों* की स्थिति से असन्तुष्ट होकर विलियम पेन नामक व्यक्ति ने अपने नेतृत्व में बहुत से लोगों को ले जाकर अमेरिका में पेनिसिल्वेनिया नामक उपनिवेश की स्थापना की। सेसिल कैलवर्ट ने इंग्लिश कैथोलिकों के प्रति ऐसी ही भावना से प्रेरित होकर मेरी लैण्ड नामक उपनिवेश की स्थापना की।

जान स्मिथ नामक व्यक्ति ने अपने नेतृत्व में वर्जीनिया नामक उपनिवेश की स्थापना की।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के अन्त में जर्मनी के अनेक छोटे राजाओं की धर्म के सम्बन्ध में अत्याचारपूर्ण नीति के कारण जर्मन लोग भी भारी संख्या में अमेरिका में आकर बसने लगे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम तीन चौथाई भाग तक जो यूरोपीय लोग अमेरिका में आये उनमें बहुत अधिक संख्या अंग्रेजों की थी। मगर सन् १६८० के पश्चात इंग्लैण्ड से आने वाले लोगों की संख्या कम हो गई और जर्मनी, फ्रान्स, आयरलैण्ड और स्विट्जरलैण्ड से आने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई। सन् १६९० तक अमेरिकन उपनिवेशों की जो आबादी करीब ढाई लाख थी वही सन् १७७५ में पच्चीस लाख से ऊपर पहुंच गई।

अमेरिका में बसे हुए इन उपनिवेशों को भौगोलिक स्थिति और सभ्यता के लिहाज से तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) पहला विभाग न्यू इंग्लैण्ड का था। इसके निवासी प्रधानतया व्यापारी और व्यवसायी थे। न्यू इंग्लैण्ड की भूमि कई प्राकृतिक कारणों से कृषि के लिये उपयोगी नहीं थी। इसलिये इस प्रदेश के निवासियों ने दूसरे लाभदायक पेशे खोज निकाले। इन्होंने पानी की शक्ति को बाँध कर मिलें बना लीं, बन्दरगाहों का निर्माण किया और जहाज बनाने के व्यवसाय को बढ़ावा दिया। इन कारणों से इस उपनिवेश के लोगों का जीवन शहरी रूप में बदलने लगा।

(२) उपनिवेशों का दूसरा बड़ा भू भाग मध्यवर्ती उपनिवेशों के नाम से बसा हुआ था। वहां की आबादी न्यू इंग्लैण्ड की अपेक्षा अधिक मिली-जुली और सहिष्णु थी। पैनिसिल्वेनिया और इसके साथ लगे हुए डिलावेयर की आरम्भिक सफलता का श्रेय विलियम पेन को था। यह अत्यन्त व्यवहारकुशल क्वेकर था। उसका लक्ष्य ही यह था कि किंग चार्ल्स द्वितीय से उसे जो विस्तृत प्रदेश मिला है उसमें विविध धर्मों और विविध जातियों के लोगों को बसाया जाय। इस उपनिवेश का केन्द्र फिलाडेल्फिया था। यह नगर अपनी छायादार और चौड़ी सड़कों, पत्थरों और ईंटों से बने हुए मजबूत मकानों, व्यस्त जहाजी घाटों और भिन्न भिन्न भाषाओं, धर्मों और पेशों के लोगों की वजह से बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

पेनिसिल्वेनिया की तरह ही न्यूयार्क में भी बहु भाषाभाषी लोग एकत्र हो रहे थे। न्यूयार्क का पुराना नाम डच लोगों की अधीनता में होने के कारण न्यू-एम्सटरडम था। मगर १६६४ में अंग्रेज लोगों ने इस बस्ती को जीत कर इसका नाम न्यूयार्क रख दिया।

(३) न्यू इंगलैण्ड और मध्यवर्ती उपनिवेशों के बाद तीसरा विभाग वर्जीनिया, मेरीलैण्ड, कैरोलाइना और जार्जिया नामक दक्षिणी बस्तियों का था जिनकी स्थिति न्यू इंग्लैण्ड और मध्यवर्ती उपनिवेशों से सर्वथा विपरीत

* सन् १६४९ में विलियम फाक्स ने इंगलैंड में सोसायटी आफ फ्रेण्ड्स नामक संस्था कायम की थी जिसका उद्देश्य धर्म के ढकोसलों को छोड़ना और शान्ति स्थापित करना था। इस संस्था के अनुयायियों को क्वेकर कहते थे।

थी। इन बस्तियों को कैप्टन जान स्मिथ नामक व्यक्ति के नेतृत्व में लण्डन कोलोनाइजिंग कम्पनी की प्रेरणा से इंग्लैण्ड से आने वाले लोगों ने बसाया था। सन् १६१४ में वर्जीनिया तम्बाकू को तैय्यार करने की एक नवीन विधि का आविष्कार हो जाने से इन उपनिवेशों की स्थिति बहुत मजबूत हो गई। इन उपनिवेशों में बसने वाले लोगों ने गुलामों की सहायता से वहाँ की बढ़िया और विस्तृत भूमि पर खेतियाँ करना प्रारम्भ की थीं और वे इन गुलामों की मेहनत के ऊपर रईसों की शान से रहते थे। इनका प्रधान बन्दरगाह चार्ल्सटन था।

इस प्रकार ये सब उपनिवेश स्वतन्त्र रूप से छोटे-छोटे समूहों में अपनी स्वतन्त्र शासन व्यवस्था के साथ रहते थे। नाममात्र को ये लोग ब्रिटिश सम्राट् के मातहत थे पर वस्तुतः यह शासन नाममात्र का ही था। इन सब उपनिवेशों में अमेरिका की भौगोलिक स्थिति और भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों के सहयोग से एक नवीन संस्कृति का उदय हो रहा था। इस संस्कृति का वर्णन करते हुए सन् १७८२ में केण्ट जोन क्रेवकोअर नामक फ्रेंच लेखक ने लिखा था कि अमेरिकन मनुष्य क्या चीज है वह भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के मिलन का एक अद्भुत परिणाम है। आपको अमेरिका में ऐसे परिवार मिलेंगे जिसका दादा अंग्रेज था और दादी डच थी। उसके पुत्र ने एक फ्रेंच स्त्री से विवाह किया और उस पुत्र के चार पुत्रों ने चारों विभिन्न राष्ट्रों की कन्याओं से विवाह किया। यही परिभाषा अमेरिकन की है जो अपने सब पुराने विश्वासों और रीति-रिवाजों को पीछे छोड़ आया है और उसने एक नया जीवन अपनाया है और नये आचार-विचारों को ग्रहण कर लिया है।

हम ऊपर लिख आए हैं कि अमेरिका में बसे हुए ये सब उपनिवेश अपनी-अपनी अलग शासन व्यवस्था के अन्दर एक प्रकार से पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग कर रहे थे। मगर जब १७५४ के लगभग अमेरिका में मिसीसिपी घाटी पर से फ्रेंच लोगों का कब्जा हटाने के लिये अंग्रेजों और फ्रेंच लोगों के बीच सप्तवर्षीय युद्ध हुआ उस समय इंग्लैंड ने विजयी होकर फ्रांस को मिसीसिपी घाटी से निकाल तो दिया मगर इस युद्ध में उसको इतना भारी खर्च आया कि वह खर्च अकेले इंग्लैण्ड वासियों से प्राप्त कर लेना सम्भव नहीं था। तब इंग्लैण्ड के बादशाह ने अमेरिकन उपनिवेशों पर अपने शासन का पंजा मजबूत करके अमेरिका वासियों पर कुछ नवीन टैक्स लगा कर इस खर्च को पूरा करना चाहा और इन टैक्सों को वसूल करने के लिये एक सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति के निर्माण की भी उसने आवश्यकता समझी।

इस प्रकार का पहला कदम सन् १७६४ में शुगर-एक्ट के रूप में उठाया गया। इस एक्ट के व्यवहार में आते ही अमेरिकन जनता के अन्तर्गत एक व्यापक असन्तोष फैल गया। इस कानून पर टिप्पणी करते हुए जेम्स ओटिस नामक एक विद्वान ने लिखा था कि—

"पार्लमेण्ट के इस एक कानून ने छः महीनों में अमेरिका के इतने अधिक आदमियों को इतना अधिक सोचने के लिये विवश कर दिया जितना कि इन आदमियों ने अपने सारे जीवन में पहले नहीं सोचा होगा।"

शुगर-एक्ट का यह असन्तोष देश में छाया ही हुआ था कि उसके तुरन्त बाद ही इंगलैंड की पार्लमेण्ट में करेन्सी-एक्ट, बिलिटिंग-एक्ट और स्टाम्प-एक्ट नामक कानून बनाकर अमेरिकन जनता पर और भारी प्रहार किया। इन टैक्सों का विरोध करने के लिये अमेरिका के तेरहों उपनिवेशों के लोग संगठित हो गये और सन् १७६५ के अक्टूबर में न्यूयार्क में सब उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की एक कांग्रेस बुलाई गई।

इस कांग्रेस ने दृढ़ता पूर्वक यह निर्णय किया कि हमारी धारासभाओं के अतिरिक्त किसी भी शक्ति ने न कोई टैक्स अभी तक लगाये हैं और न संविधान के अनुसार आगे लगा सकती है।

इस प्रकार भयंकर प्रतिरोध को देख कर इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट ने सन् १७७० में चाय टैक्स को छोड़ कर शेष सब प्रकार के टैक्सों को उठा देने की घोषणा की। इससे नरम दल वाले लोगों को काफी सन्तोष हो गया और तीन साल तक इस सन्तोष ने अमेरिकन जनता में एक कृत्रिम शान्ति पैदा कर दी। मगर गरम दल के लोग अभी तक

इस परिवर्तन से सन्तुष्ट नहीं थे। इन गरम दलीय लोगों का नेता सेम्युअल एडम्स नामक एक व्यक्ति था। वह अमेरिका की पूर्ण स्वतन्त्रता का पक्षपाती था। वह ऐसे अवसर की खोज में था जब कि उसे आन्दोलन के लिए उपर्युक्त बहाना मिल जाय।

यह अवसर उसे सन् १७७३ में प्राप्त हुआ जब कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उपनिवेशों को निर्यात की जाने वाली चाय के समस्त व्यापार पर एकाधिकार प्रदान कर दिया। इससे औपनिवेशिक व्यापारियों का चाय का व्यापार डूब गया। जिससे वे लोग बड़े उत्तेजित हुए। अमेरिकन गरम दल के लोग १६ दिसम्बर की रात को सेम्युअल एडम्स के नेतृत्व में रेड इण्डियनों का वेश बना कर चाय के तीन जहाजों पर चढ़ गये और उन्होंने चाय की पेटियों को उठा-उठा कर समुद्र में फेंक दिया।

इस घटना ने इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच के सम्बन्धों को बहुत बिगाड़ दिया और इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट ने एक कानून बना कर बोस्टन के बन्दरगाह को तब तक के लिये बन्द कर दिया जब तक कि अमेरिका के लोग डूबी हुई चाय का मूल्य अदा न कर दे।

इसी प्रकार और भी कई दमनकारी कानून इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट ने अमेरिकनों के विरुद्ध बनाये।

इससे उत्तेजित होकर अमेरिका के अन्दर व्यापक असन्तोष फैल गया और जिसका अनिवार्य परिणाम इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच सप्तवर्षीय युद्ध के रूप में प्रकट हुआ। अमेरिका के हर नगर और हर उपनिवेश में स्वाधीनता के पुजारियों ने अपनी-अपनी सेनाएँ तैय्यार कर लीं और इन सब सेनाओं की सम्मिलित कमान जार्ज वाशिंगटन के हाथ में देकर उसको इन सेनाओं का प्रधान सेनापति बना दिया।

मगर इस सारे असन्तोष के बावजूद अमेरिकन जनता का बहुत बड़ा भाग और काँग्रेस का बहुत बड़ा बहुमत इंग्लैण्ड से सर्वथा पृथक् हो जाने के पक्ष में नहीं था। संघर्ष और लड़ाई के बीच में भी क्रान्तिकारी लोग सम्राट् के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट करते थे। मगर जब अगस्त १७७५ में किंग जार्ज ने एक घोषणा के द्वारा अमेरिका के उपनिवेशों को विद्रोही घोषित कर दिया तब स्थिति और बिगड़ गई और अमेरिकन लोगों की सम्राट के प्रति रही हुई वफादारी धीरे-धीरे कम होने लगी। जून १७७६ में अमेरिका के इतिहास प्रसिद्ध नेता टामस जेफरसन के नेतृत्व में एक समिति का निर्माण किया गया और उसे पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा का मसविदा तैय्यार करने को कहा गया।

४ जुलाई १७७६ को टामस जेफरसन के द्वारा लिखी हुई स्वाधीनता की घोषणा को स्वीकृत किया गया। इस घोषणा ने न केवल एक नये राष्ट्र के जन्म की सूचना दी बल्कि उसने मानवीय स्वाधीनता के उन नवीन सिद्धान्तों की भी नींव डाल दी जो आगे चल कर समस्त संसार के लिये एक प्रेरक शक्ति सिद्ध हुई। इस घोषणा का आधार कोई विशिष्ट शिकायतें नहीं अपितु मानवीय स्वाधीनता के वे मूल तत्व थे जिनका समर्थन समस्त अमेरिका में सर्वत्र हुआ। इस घोषणा में कहा गया था—

"हम इस सत्य को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सब मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं। रचयिता ने उन्हें जीवन, स्वतन्त्रता और सुखप्राप्ति के अधिकारों से सम्पन्न पैदा किया है। इन अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये ही मनुष्य समाज में शासनतन्त्र की स्थापना होती है। जब कभी कोई शासन इन उद्देश्यों का बाधक बन जाता है तब सब लोगों का कर्तव्य हो जाता है कि वे उसे समाप्त कर दें और इस सिद्धान्त को सत्य साबित कर दें कि शासन जनता के लिये है, जनता शासन के लिये नहीं।"

इस घोषणा को घोषित करने के पश्चात् स्वतन्त्रता का युद्ध तीव्रता से चलने लगा। स्पेन और फ्रान्स की सेना भी स्वाधीनता के सैनिकों की मदद करने के लिये आ पहुँची। स्वाधीनता की यह लड़ाई करीब सात वर्षों तक चली और कई हार-जीतों के पश्चात् अन्तिम विजय अमेरिका की हुई और सन् १७८३ में पेरिस के अन्दर अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन की सन्धि हुई। इस शान्ति सन्धि में अमेरिका की तेरह स्टेटों की स्वतन्त्रता पूर्णरूप से स्वीकार कर ली गई और इसी दिन अमेरिका एक सार्वभौम सत्ता सम्पन्न महाद्वीप के रूप में संसार के अन्दर अवतीर्ण हुआ।

अमेरिकन संविधान की स्थापना

पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् अमेरिकन उपनिवेशों का संगठन और उनके संविधान की रचना का प्रश्न सामने आया। वैसे भिन्न-भिन्न उपनिवेशों को अपनी सुविधाओं के अनुसार अपने-अपने संविधान बनाने का आदेश अमेरिकन काँग्रेस १० मई सन् १७७६ को ही दे चुकी थी। मगर सब उपनिवेशों को संगठित करके एक केन्द्रीय शासन निर्माण कर उसके संविधान को निर्माण करने का काम अभी बाकी था। इसके लिये मई सन् १७८७ में फिलाडैल्फिया स्टेट हाउस में एक फेडेरल कन्वेन्शन हुआ जिसमें सभी उपनिवेशों के विशिष्ट और अनुभवी नेता प्रतिनिधि बन कर आये थे। इस फेडरेशन में जार्ज वाशिंगटन, बेन्जामिन फ्रैंकलिन, गवर्नियर मौरिस, जेम्स विलसन, अलेक्जेण्डर हैमिल्टन और टामस जेफरसन के समान अमेरिका के अत्यन्त सुलझे हुए मस्तिष्क उपस्थित हुए थे।

अन्त में महीनों के वाद विवाद और तीव्र मतभेदों के निराकरण के बाद अलेक्जेण्डर हैमिल्टन के नेतृत्व में सन् १७८८ में न्यूयार्क स्टेट ने नये संविधान को स्वीकृत कर लिया।

अमेरिका का विधान

सन् १७८८ में अलेक्जेण्डर हैमिल्टन के नेतृत्व में तीव्र विवादों के पश्चात् संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का जो संविधान स्वीकृत किया गया वह शायद संसार के लिखित विधानों में सबसे पहला था।

इस विधान में अधिकारों का वितरण करते हुए कन्वेन्शन ने टैक्स लगाने, ऋण लेने, समान रूप से तट-कर लगाने और माल के उत्पादन पर कर वसूल करने के अधिकार पूर्ण रूप से केन्द्रीय शासन को दिये। केन्द्रीय शासन को अधिकार दिया गया कि वह मुद्रा ढाले, वजन और नाप के परिमाण को निश्चित करे, पेटेण्ट और कापी राइट की स्वीकृति दे और डाकघर तथा डाक की सड़कें बनवावे। उसे स्थल और जल सेनाएँ संगठित करने और स्टेटों के बीच व्यापार नियन्त्रित करने के अधिकार भी दिये गये। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और युद्ध के विषय में भी पूर्ण अधिकार उसको दिये गये। उसको अधिकार मिला कि वह विदेशियों को नागरिक बनाने के कानून बनाये, सार्वजनिक भूमियों का नियन्त्रण करे और नये राज्यों को पुरानों के समान यूनियन में सम्मिलित करे।

इस विधान में कानून-निर्माण, शासन और न्याय-विभाग पृथक्-पृथक् रखे गये। परन्तु तीनों का एक दूसरे पर नियन्त्रण रहा। कांग्रेस में पास की हुई कोई भी बात तब तक कानून नहीं बन सकती जब तक कि उसे प्रेसिडेण्ट की स्वीकृति न मिल जाय। साथ ही प्रेसिडेण्ट को भी प्रायः सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ तथा सब सन्धियाँ सीनेट के सामने पेश करनी पड़ती थीं। कांग्रेस को अधिकार दिया गया कि समय आने पर प्रेसिडेण्ट पर महाभियोगारोपण करके उसे उसके पद से अलग कर दे।

इस विधान के अनुसार राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में समान रूप से सर्वोपरि रखी गईं। वे किसी भी संवैधानिक अर्थ में किसी की अधीन संस्थाएँ नहीं हैं और केन्द्रीय तथा राजकीय शासन दोनों की नींव जनता की सर्व-प्रभुत्व सम्पन्नता के विशाल आधार पर स्थिर रखी गई।

आज के इस युग में भी एक अमेरिकन नागरिक का सम्बन्ध केन्द्रीय शासन की अपेक्षा राज्य-शासन से अधिक पड़ता है क्योंकि म्युनिसिपल और स्थानीय शासन का नियन्त्रण, पुलिस के कार्य, कारखानों और मजदूरों के नियम, कम्पनियाँ बनाने की इजाजत, दीवानी और फौजदारी मामलों में न्याय, शिक्षा का नियन्त्रण और जनता के स्वास्थ्य, सुरक्षा और सुख-सुविधा की व्यवस्था आदि सारे महत्वपूर्ण कार्य राज्य शासन के ही अधिकार में रखे गये हैं, केन्द्रीय शासन के हाथ में नहीं।

संविधान के अन्तर्गत भविष्य में संशोधन अथवा परिवर्तन की व्यवस्था भी रखी गई मगर साथ ही उसके नियम बहुत कठोर रखे गये हैं जिससे अन्धाधुन्ध संशोधन और परिवर्तन से बचा जा सके। कांग्रेस की दोनों सभाओं के दो-तिहाई सदस्य या दो-तिहाई राज्य कन्वेन्शन में एकत्र होकर संविधान में संशोधन पेश कर सकते हैं। ये संशोधन दो प्रकार से कानून बनते हैं या तो स्टेटों की तीन चौथाई

धारा-सभाओं द्वारा या तीन-चौथाई स्टेटों के कन्वेन्शनों के द्वारा स्वीकृत होने पर। इन दोनों में से किस उपाय का प्रयोग किया जाय इस बात का निर्णय कांग्रेस करती है।

इंग्लैण्ड से दूसरी लड़ाई

सन् १८१२ में अमेरिका से इंग्लैण्ड की एक और झड़प हो गई। इंग्लैण्ड के जहाजों ने सन् १८०६ से १८१२ तक छः हजार सत्तावन बार अमेरिकन नागरिकों को बलपूर्वक भर्ती किया इसके अतिरिक्त उत्तर पश्चिमी प्रदेश के निवासियों पर कनाडा स्थित ब्रिटिश एजेण्टों ने इण्डियनों के द्वारा आक्रमण करवा के उनको बहुत कष्ट पहुँचाया था। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण ऐसे पैदा हो गये थे जिससे इंगलैण्ड के प्रति अमेरिका की भावनाएँ बहुत कुंठित हो रही थीं। इसी के परिणाम स्वरूप सन् १८१२ में इंगलैण्ड और अमेरिका के बीच दूसरा युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में भी अमेरिका ने इंगलैण्ड को करारी पराजय दी मगर अमेरिका के लिये यह विजय बहुत मँहगी पड़ी। इसमें उसके इक्कीस हजार नाविक, तीस हजार सिपाही और चौदह सौ जहाज नष्ट हो गये। पर इतनी भयंकर हानि के बावजूद भी इस युद्ध ने सारे अमेरिका में राष्ट्रीय एकता और देश-भक्ति की भावनाओं को बहुत सुदृढ़ कर दिया।

अमेरिका का गृह युद्ध

अमेरिका के ये उपनिवेश स्वतंत्र हो गये मगर इनके घरेलू झगड़ों का अन्त नहीं हुआ। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच संघर्ष प्रारम्भ हुआ। उत्तरी अमेरिका सभ्य संसार के साथ रहकर गुलामी की प्रथा को खतम करना चाहता था।

मगर दक्षिणी अमेरिका की स्थिति इससे कुछ भिन्न थी। दक्षिणी अमेरिका के देशों में ब्राझील, गायना, वेनेजुला, कोलम्बिया, इक्वेडर, पेरू, बोलीविया, अर्जेण्टिना, उरुग्वे, चिली, पाराग्वे इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इन देशों में स्पेन, पुर्त्तगाल, अंग्रेज इत्यादि सभी यूरोपियन जातियों के लोग बसते थे। यह एक विस्तृत देश होने से इन लोगों की खेती बड़े-बड़े विस्तृत क्षेत्रों में होती थी। इन विस्तृत क्षेत्रों की खेती के लिए इन्हें हजारों मजदूरों की आवश्यकता पड़ती थी। वहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियन इन लोगों की मजदूरी करना पसन्द नहीं करते थे। इस लिए इन लोगों की मजदूरों की जरूरतों को पूरी करने के लिए लोग अफरीका से हबशी मजदूरों को पकड़ कर लाते थे। गुलामों का व्यापार उस समय बाकायदा संगठित व्यापार हो गया था। जिस प्रकार इस समय पशुओं की खरीद बिक्री के लिए बाकायदा हाट, मेले और मण्डियाँ लगती हैं उसी प्रकार इन गुलामों की खरीद बिक्री के लिए बड़ी-बड़ी मण्डियाँ लगती थीं जहाँ पर ये गुलाम स्त्री, पुरुष और बच्चे बड़ी निर्दयतापूर्वक खरीदे और बेचे जाते थे।

दक्षिण अमेरिका में भी यह गुलाम प्रथा अपने चरम बीभत्स रूप में प्रचलित थी। वहाँ पर तमाखू के विशाल खेत इन्हीं गुलामों की मेहनत से सर सब्ज रहते थे।

इस प्रकार उत्तर और दक्षिणी अमरीका के अन्तर्गत दो विभिन्न प्रकार की अर्थ प्रणालियों का विकास हो रहा था। उत्तरी अमेरिका में भूमि कम होने से वहां कल, कारखाने और मशीन युग का संचार हो रहा था जिससे वहाँ पर लोगों के अन्दर किसी कदर कुछ-कुछ समानता की भावना का विकास हो रहा था और दक्षिण अमेरिका में खेतों के बड़े-बड़े विशाल फार्म होने से वहाँ पर गुलामी की प्रथा कानून से सम्मत और आवश्यक मानी जाती थी। उत्तरी अमेरिका वाले औद्योगिक प्रदेश होने के कारण गुलामी की प्रथा से घृणा करते थे और उसे मिटाना चाहते थे।

सन् १८३० में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच तट कर और चुंगी को लेकर कई झड़पें हो गईं। हर एक राज्य अपने-अपने अधिकारों के प्रति सावधान था और फेडेरल सरकार के ज्यादा हस्तक्षेप को कोई पसन्द नहीं करता था। इन मतभेदों के कारण उत्तर और दक्षिण अमेरिका के बीच मत भेदों की खाई चौड़ी होती गई।

इसी बीच सन् १८६० में इतिहास प्रसिद्ध मानवता का समर्थक "अब्राहम लिंकन" यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया। यह चुनाव दक्षिण वालों के लिए सिर दर्द हो गया। क्योंकि अब्राहम लिंकन गुलामी प्रथा का विरोधी था। फिर भी अमेरिका की तत्कालीन परिस्थिति

को देखकर उसने स्पष्ट कर दिया कि जिन क्षेत्रों में अभी गुलामी की प्रथा चल रही है वहाँ उसे बन्द नहीं किया जावेगा मगर नये क्षेत्रों में वह चालू नहीं की जावेगी।

मगर इस आश्वासन से दक्षिणी क्षेत्रों को संतोष नहीं हुआ और धीरे-धीरे उनमें से कई राज्य अमेरिकन संघ से अलग हो गये और ऐसी स्थिति दिखलाई देने लगी कि अब संयुक्त राज्य छिन्न-भिन्न हो जायगा। अब्राहमलिंकन ने अपने सिद्धान्तों से नीचे उतर कर भी राष्ट्र की एकता कायम रखने के लिए समझौता करने की पूरी कोशिश की मगर उसे सफलता नहीं मिली। दक्षिण के ग्यारह राज्यों ने संयुक्त राष्ट्रों से अलग होकर "कॉनफेडरेटेड स्टेट्स" के नाम से अपना एक अलग संघ बनाया और 'जेफर सन डेविस' को अपने संघ का राष्ट्रपति चुन लिया।

इसके बाद सन् १८६१ के अप्रैल में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच बाकायदा गृहयुद्ध छिड़ गया। दोनों तरफ की विशाल फौजें युद्ध के मैदान में आ गई। उत्तरी अमेरिका के पास औद्योगिक क्षेत्र होने के कारण आवागमन के साधन तथा दूसरी सामग्रियाँ और जन बल ज्यादा था। दक्षिण अमेरिका में दूसरे साधन कम होने पर भी सैन्य संचालन की पद्धति अच्छी थी। उनका प्रधान सेनापति जनरल "ली" युद्ध-कौशल का अच्छा जानकार था। इसलिए शुरू में दक्षिण अमेरिका को एक के बाद दूसरी विजय मिलती गई मगर इस लम्बी लड़ाई में दक्षिण अमेरिका वाले लड़ते-लड़ते अन्त में पस्त हो गये। उत्तरी अमेरिका के जहाजी बेड़े ने उनके समुद्री रास्ते को काट कर इंग्लैण्ड से उनका सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। अन्त में सन् १८६५ में उत्तरी अमेरिका की विजय के साथ यह गृह युद्ध समाप्त हुआ।

गृह युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जब प्रेसिडेण्ट लिंकन देश का पुनर्निर्माण की योजना बनाने में व्यस्त थे उसी समय उन्हें किसी दुष्ट व्यक्ति ने गोली से मार दिया।

लिंकन की मृत्यु के बाद अमरीकन कांग्रेस ने युद्ध के अपराधी दक्षिणी क्षेत्र के गोरों को भिन्न-भिन्न कठोर सजाएं दीं, कइयों के मताधिकार छीन लिए, गुलामी प्रथा को एकदम गैर कानूनी घोषित कर दिया। हब्शी गुलामों को नागरिकता के पूरे अधिकार देकर इसे अमेरिकन संविधान में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार इस महान् देश से गुलामी के समान दारुण प्रथा का अन्त हुआ।

इस गृह युद्ध ने यद्यपि अमेरिका की शक्तियों का बहुत ह्रास किया, मगर इस देश के पास कोयला, लोहा, पेट्रोल इत्यादि बुनियादी उद्योग की मूलभूत वस्तुओं का प्रचुर भण्डार होने से अपने उद्योगों का तेजी से विकास कर सारी क्षति की पूर्ति कर ली और अगले पन्द्रह वर्षों में अर्थात् सन् १८८० तक संसार के औद्योगिक क्षेत्र में यह इंग्लैण्ड से मुकाबिला करने लगा।

अमेरिका का आर्थिक विकास

सन् १८६५ में गृह-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका के औद्योगिक, व्यवसायिक और कृषि सम्बन्धी विकास ने अत्यन्त तेजी के साथ अपनी कलाबाजी दिखाना प्रारम्भ की। इसी समय अमेरिकन राष्ट्र का आधार भूत बुनियादी उद्योग फौलाद अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गया। फौलाद उद्योग में ओपियन हर्थ नामक एक नवीन प्रणाली का आविष्कार हो जाने से उत्कृष्ट श्रेणी का फौलाद बनाने में केवल पैंतीस डालर प्रति टन व्यय पड़ने लगा जब कि इसके पहले तीन सौ डालर प्रति टन पड़ता था।

अमेरिका में फौलाद उद्योग का विकास करने में वहाँ के धन कुबेर एण्डू कार्नेगी का सबसे प्रधान हाथ है। सन १८७५ ई० में उसने मनॉग हीला नदी के तीर पर जो फौलाद की मिल स्थापित की थी वह सारे देश में सबसे बड़ी थी। कई दृष्टियों से कार्नेगी की कहानी यूनाइटेड स्टेट्स के बड़े व्यापार का इतिहास है। सन् १८७५ से अगले पच्चीस वर्षों तक उसने इस व्यवसाय पर अपनी प्रभुता रखी। मगर सन् १९०१ में लोहे के सब कारखानों को मिला कर एक नया संगठन बनाया गया जिसका नाम "यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन" रखा गया। लोहे के उद्योग की तरह ही दूसरे उद्योग भी अमेरिका में तेजी से फलने-फूलने लगे। सन् १८४४ में एफ० बी० मोर्स के द्वारा बिजली की टेलिग्राफी पूर्ण कर लेने के पश्चात् इस

महाद्वीप के दूर-दूर के भाग खम्भों और तारों के जाल द्वारा एक दूसरे से बंध गये।

सन् १८७६ में अलेक्जेण्डर ग्राहम बैल के द्वारा टेलिफोन के यन्त्र का आविष्कार हो जाने पर आधी शताब्दी के अन्दर एकसौ साठ लाख टेलिफोन देश के आर्थिक और सामाजिक जीवन को गति प्रदान करने लगे। सन् १८८६ में लीनो टाईप कम्पोजिंग मशीन के आविष्कार के बाद आठ पेजी समाचार-पत्रों की दो सौ चालीस हजार प्रतियाँ हर एक घण्टे में छप कर निकलना संभव हो गया।

अमेरिका के वैज्ञानिक विकास में टामस एडीसन का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सन् १८८० में विद्युत् शक्ति के प्रयोग में इसने डायनुमा का प्रयोग करके अमेरिकन जीवन में क्रान्ति पैदा कर दी। सन् १८८०के बाद एडीसन के द्वारा आविष्कृत चमकीले बिजली के लैम्पों ने लाखों घरों को इतनी सस्ती, सुरक्षित और उत्तम रोशनी पहुँचा दी जितनी कि उसमें पहले कभी उपलब्ध नहीं हुई थी। इसके बाद ही एडीसन ने ग्रामोफोन के सुप्रसिद्ध बोलने वाले यन्त्र का आविष्कार किया और उसके बाद जार्ज ईस्टमेन की सहायता से उसने सिनेमा मशीन का भी निर्माण किया।

कृषि की उन्नति

औद्योगिक क्रान्ति के समान ही कृषि-उद्योग के अन्तर्गत भी अमेरिका में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई। सन् १८६० से १६१० तक पचास वर्षों में यूनाइटेड स्टेट्स में खेतों की संख्या बीस लाख से बढ़ कर साठ लाख पर पहुँच गई और खेती का क्षेत्रफल चालीस करोड़ एकड़ से बढ़ कर अट्ठासी करोड़ एकड़ हो गया। गेहूँ का उत्पादन सत्रह करोड़ तीस लाख बुशल से बढ़ कर तिरसठ करोड़ पचास लाख बुशल हो गया। मकई का उत्पादन चौरासी करोड़ बुशल से बढ़ कर दो सौ अट्ठासी करोड़ बुशल पर जा पहुँचा। रूई का उत्पादन अड़तीस लाख इकतालीस हजार गाठों से बढ़ कर एक करोड़ सोलह लाख गाँठ हो गया।

१८६० के बाद के तीस वर्षों में जितनी भूमि अमेरिका में खेती के नीचे आई उतनी उसके सारे इतिहास में कभी नहीं आई थी। इसी अवधि में अमेरिका की जनसंख्या भी बढ़ कर दुगुनी हो गई।

कृषि उद्योग की इस असाधारण सफलता का कारण पश्चिम दिशा में अमेरिकन उपनिवेशों का विस्तार था। इस सफलता का दूसरा कारण कृषि-कार्यों में यन्त्र-कला का उपयोग था। सन् १८४० में सायरस मैकोरमिक नामक मिस्त्री ने एक ऐसे रीपर का आविष्कार किया जिससे एक आदमी एक दिन में पाँच या छः एकड़ की फसल काट सकता था। उसने इन रीपरों का कारखाना खोल कर सन् १८६० तक बीस वर्षों में ढाई लाख रीपर बेच दिये।

इसी प्रकार अन्न बोने, काटने, दाने को भूसे से अलग करने, छिलका उतारने, दूध से क्रीम निकालने, खाद फैलाने, आलू बोने इत्यादि सब प्रकार की मशीनों के आविष्कारों ने किसान के श्रम को हल्का करके उसकी दक्षता को बढ़ा दिया।

प्रथम महायुद्ध और अमेरिका

सन् १६१४ में प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ हुआ। अमेरिका बहुत समय तक इस युद्ध से तटस्थ रहा। मगर जब जर्मनी ने सन् १६१७ में बौखला कर तटस्थ राष्ट्रों के भी जहाज डुबाने प्रारम्भ कर दिये तब अमेरिका इसे सहन नहीं कर सका और उसने सन् १६१७ के अप्रैल में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। सन् १६१८ के नवम्बर में इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका की सम्मिलित शक्ति ने जर्मनी को हरा दिया और ११ नवम्बर १९१८ को अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन के इतिहास प्रसिद्ध चौदह सूत्रों के आधार पर विरामसंधि हो गई। सन् १६१६ में पेरिस में विजयी मित्र राष्ट्रों का एक शान्ति-सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन महान कीर्ति और लोकप्रियता के साथ आये थे। उनके घोषित १४ सूत्रों की सारे संसार में चर्चा हो रही थी। मगर जब वर्साई की संधि का मसविदा संसार के सामने आया तो लोगों ने महसूस किया कि केवल सिद्धान्त और लच्छेदार बातों से ही संसार का कल्याण नहीं हो सकता। वर्साई की संधि भी उन्हीं साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का एक अशोभनीय नमूना था जो विलसन और लायडजार्ज के दिमाग से निकली थी।

दूसरा महायुद्ध और अमेरिका

दूसरे महायुद्ध की घोषणा सन् १९३८ में हुई। इसमें भी अमेरिका शुरू-शुरू में तटस्थ रहा। फिर जब जर्मन फौजों ने फ्रांस को जीत कर डंकर्क की लड़ाई में मित्रराष्ट्रों को भारी पराजय दी, इंगलैण्ड पर हवाई आक्रमण करना प्रारम्भ किया और ऐसे विपत्तिकाल में शासन की बागडोर महान् राजनीतिज्ञ चर्चिल के हाथ में आई तब उसने अमेरिका जाकर रूजवेल्ट को युद्ध में उतरने के लिए तैय्यार किया। उधर जर्मनी की मदद करने के लिए जापान भी तैयार हो रहा था। जैसे ही अमेरिका ने युद्ध घोषणा की वैसे ही कुछ दिनों के बाद जापान के जहाजी बेड़े ने अमेरिका के हवाई बन्दर पर पहुँच कर सारे अमेरिकन बेड़े को डुबो दिया और इधर सिंगापुर में मित्रराष्ट्रों के प्रिन्स ऑफ वेल्स और एक दूसरे विशाल जहाज को डुबो दिया। उधर रूस में जर्मनी बढ़ता जा रहा था इधर बर्मा पर अधिकार करके जापान हिन्दुस्तान की ओर बढ़ रहा था। इस विपत्ति से पार पाने के लिए अमेरिका और इंग्लैण्ड दोनों ही भयंकर रूप से चिन्तित थे। ऐसे कठिन समय में अमेरीका की विज्ञान प्रयोगशाला में परमाणु बम के तैयार होने की सूचना मिली और राष्ट्रपति रूजवेल्ट और प्रधान सेनापति आइजनहोवर ने सलाह करके जापान के हिरोशिमा और नागासाकी दो शहरों पर परमाणु बम का प्रहार किया।

यह प्रहार अत्यन्त भीषण हुआ। दोनों शहर अपने आस-पास की सैकड़ों वर्ग मील भूमि के साथ बरबाद हो गये। हजारों बेगुनाह नागरिक, स्त्रियाँ और बच्चे उस भयङ्कर मृत्यु प्रहार में चिरनिद्रा में सो गये। जो बचे वे अन्धे, लूले, लंगड़े और अपंग हो गये।

इधर जापान में यह भयंकर दुर्घटना घट रही थी उधर रूस के भयंकर जाड़े ने जर्मन सेना के हाथ पैर ढीले कर दिये और रूसी सेना के प्रबल प्रहार से वह दम तोड़ कर भागने लगी।

एकदम युद्ध का पासा पलट गया। विजयोन्मत्त नाजी सेनाओं की जीत हार में बदल गई, जापान को बिना शर्त आत्मसमर्पण करना पड़ा और मित्रराष्ट्रों की विजय के साथ द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका समाप्त हुई और जैसे पहले के युद्ध के पश्चात् शान्ति रक्षा के लिए लीग ऑफ नेशन्स अस्तित्व में आई थी उसी प्रकार इस बार संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट के पश्चात् ट्रूमेन अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया और अमेरिका का विदेश मन्त्री जॉन डलेस हुआ।

इस युद्ध के पश्चात् अमेरिका और रूस दोनों देश संसार की दो महान् शक्तियों के रूप में प्रकट हुए। अमेरिका लोकतन्त्री और साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है और रूस साम्यवादी शक्तियों का।

मित्रराष्ट्रों ने अपने संगठन बल से नाजी शक्तियों को खतम कर दिया मगर उनकी जगह उनसे बहुत अधिक शक्तिशाली रूस और उसके सहायक कम्युनिस्ट राष्ट्र उनके प्रबल प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में सामने आकर खड़े हो गये हैं जो नाजी शक्तियों से बहुत अधिक शक्तिशाली हैं।

यह प्रतिद्वन्दता बहुत तेजी के साथ इतिहास के पृष्ठों को बढ़ती आ रही है। दोनों शक्तियाँ संसार के नव-स्वाधीनता प्राप्त देशों को अपने ग्रुप में मिलाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना बहा रही है। वैज्ञानिक आविष्कार, उच्चतम शक्ति के परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, राकेट इत्यादि संहार अस्त्रों के निर्माण में मानों बाजी लगाकर दोनों देश भागे चले जा रहे हैं। नव-स्वाधीनता प्राप्त देशों में प्रतिदिन कहीं न कहीं क्रान्ति होने के समाचार आते हैं। कहीं सरकार उलटती है, कहीं फौजी शासन होता है, कहीं हत्याएँ होती हैं, कहीं जासूस पकड़ जाते हैं, कहीं शान्ति सम्मेलन होते हैं, कहीं निरस्त्रीकरण पर विचार होता है मगर पारस्परिक सन्देह, भय और आतंक का जो वातावरण संसार पर छाया हुआ है वह कम होने के बजाय बढ़ता जा रहा है, इतिहास मानव जाति को एक अनिश्चित धारा में पड़ कर बह रहा है और कल सबेरे संसार के किस देश में क्या होनेवाला है इसकी भविष्यवाणी आज शाम तक कर सकने में भी कोई समर्थ नहीं है।

अमेरिका अपने मित्र देशों की संख्या बढ़ाने और उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अरबों, खरबों डॉलर

दूसरे देशों को कर्ज के रूप में दे रहा है। जहाँ कहीं कम्यु-निस्टों का आतंक उसे बढ़ता हुआ दीखता है उसे कम करने के लिए यह हर तरह की सहायता भेजने का प्रबन्ध करता है।

राष्ट्रपति ट्रूमेन के पश्चात् अमेरिका का युद्धकालीन सर्वोच्च सेनापति जनरल आइसनहोवर अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया। इसके समय में भी शस्त्रास्त्रों की घुड़-दौड़ और विदेशी सहायता का प्रवाह उसी प्रकार चलता रहा। विदेश मंत्री डलेस की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के कारण कुछ क्षेत्रों में अमरीका की बदनामी हुई।

राष्ट्रपति आइसनहोवर के पश्चात् डिमाक्रेटिक पार्टी का नेता श्री कैनेडी अमेरिका का वर्तमान राष्ट्रपति हैं। श्री कैनेडी एक युवक, उदार चेता, साहसी और विश्वशान्ति के निर्माण के लिए ईमानदारी से काम करनेवाले व्यक्तियों में से एक हैं। उधर रूस का प्रधान मंत्री खुश्चेव भी अपने पूर्ववर्ती डिक्टेटरों की अपेक्षा कुछ नरम और समझौता पसन्द प्रवृत्ति का व्यक्ति हैं वह भी चाहता है कि किसी प्रकार यह विनाशकारी प्रतिद्वन्दता और मनुष्य की युद्धलिप्सा खतम होकर सब राष्ट्रों को रचनात्मक रूप में अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रचार और अपने राष्ट्र को सर्वांगीण उन्नति करने का अवसर मिले मगर दिखलाई ऐसा पड़ रहा है कि स्टेलिनवादी कट्टर पन्थियों का जोर अभी रूस में कम नहीं पड़ा है और चीन तो उनका खास अड्डा ही है ये लोग खुश्चेव की समझौतावादी नीति को सफल नहीं होने देना चाहते।

इस प्रकार अभी तक इतिहास टेढ़ी-मेढ़ी गति से आगे बढ़ रहा है। लोकतंत्रवादी और साम्यवादी ये दो विशाल समूह अपनी भयङ्कर प्रतियोगिता में सारे विश्वमानव को पीस डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस समय विश्व की दो प्रमुख शक्तियों में एक महान् शक्ति अमेरिका की है और निकट भविष्य में मानव-जाति का जो काला या उजला इतिहास लिखा जाने वाला है उसकी एक प्रमुख जिम्मेदारी इस देश पर रहेगी।

अमेरिका के बड़े नगर

न्यूयार्क—अटलांटिक तट पर बसा हुआ अमेरिका का सबसे बड़ा नगर और अमेरिका की राजधानी। पहले इस नगर को हालैण्ड निवासी प्रवासियों ने न्यू-एम्सटर्डम के नाम से बसाया था मगर अंग्रेजों के अधिकार में आने पर इस नगर का नाम न्यूयार्क रक्खा गया। यह आबादी के लिहाज से संसार का दूसरे नम्बर का नगर है। इसकी आबादी ७५ लाख से अधिक है। न्यूयार्क की स्थिति बड़े मार्के की है, यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है और मध्यवर्ती मैदान, झीलों और सेण्टलॉरेन्स नदी से नहरों और रेलों द्वारा मिला है। न्यूयार्क के गगनचुम्बी भवन संसार में प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर कुछ इमारतें हजार-हजार फीट से भी ज्यादा ऊँची हैं। जिनमें सौ-सौ मंजिल तक बने हुए हैं। न्यूयार्क में लोहे का सामान और कपड़ा बनाने के बहुत से कारखाने हैं।

शिकागो

शिकागो नगर अमरिका के मकई पैदा करने वाले क्षेत्र का मुख्य केन्द्र है। इस नगर ने पिछले सवा सौ वर्षों में आश्चर्यजनक उन्नति की है। सन् १८४० में यह ४००० आदमियों की एक छोटी सी बस्ती थी। अब यह पचास लाख से ऊपर आबादी का एक विशाल नगर हो गया है। यह करीब चालीस रेलवे लाइनों का जंकशन, और मिशीगन झील के दक्षिण सिरे का प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ करीब ५० मील के फैलाव में जहाजों के ठहरने के डाक बने हुए हैं। यह नगर सारे संसार में मांस की सबसे बड़ी मण्डी है। यहाँ के कसाईखानों में करीब दो लाख पशु प्रतिदिन कटते हैं। यह नगर संसार में अपनी धन-सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध मगर दुराचार, व्यभिचार और अनैतिक कार्यों के लिए कलंकित है।

वाशिंगटन

अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन के नाम पर बसाया हुआ यह शहर भी यूनाइटेड स्टेट्स का प्रमुख नगर है। यह यूनाइटेड स्टेट्स के पश्चिमी भाग में स्थित है। इसके आसपास के क्षेत्रों में सेब के बड़े-बड़े बगीचे लगे हुए हैं। यहाँ से फलों के मौसम में १०००० से

अधिक लदे हुए रेल के वैगन पूर्वी प्रदेशों को भेजे जाते हैं।

पिट्स वर्ग

अपालेशियन कोल क्षेत्र के उत्तरी सिरे पर बसा हुआ यह नगर संसार में इस्पात बनाने का सबसे बड़ा केन्द्र है।

डेट्रायट

ह्यूरेन झील से ईरी झील को आते हुए जलमार्ग पर डेट्रायट नाम का प्रसिद्ध नगर है जिसकी आबादी बीस लाख के करीब है यहाँ पर मोटरकार, चेसिस और ट्रेक्टर बनाने के बड़े-बड़े विशाल कारखाने हैं।

अमेरिकन साहित्य

राजनैतिक और आर्थिक विकास के साथ-साथ ज्ञान, विज्ञान और साहित्य के विकास की परम्परा भी अमेरिका में खूब तेजी के साथ चली। विज्ञान के क्षेत्र में जहाँ "एडिसन" के समान महान् विभूतियों ने पैदा होकर नवीन खोजों की एक शृंखला बद्ध विकास क्रान्ति का प्रारम्भ किया वहाँ साहित्य और विचार के क्षेत्र में राल्फ-वाल्डो एमर्सन, हेनरी डेविड थोरो, हेनरी वर्ड्सवर्थ लांग-फेलो, मार्कट्वेन, डोन हार्वेल्स, वाल्टह्विटमेन, एमिली डिकिन्सन इत्यादि साहित्यकारों ने अपनी गम्भीर विचार प्रणाली और उत्कृष्ट लेखन शैली से संसार के साहित्य में अपना उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

इमर्सन संसार की अंगुली पर गिनने योग्य उन महान् प्रतिभाओं में से एक है जिसने अपनी विचारपरम्परा, चिन्तनशीलता और निबन्धकारिता से सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इसकी कृतियों में "नेचर" "दी अमेरिकन स्कालर", "दी डिविनिटि स्कूल एड्रेस" इत्यादि कृतियां बहुत प्रसिद्ध हैं। एमर्सन का समय सन् १८०३ से १८८२ तक है।

ऐसा कहा जाता है कि एमर्सन अमेरिका के सुप्रसिद्ध विचारक और चिन्तक हेनरी डेविड थारो का शिष्य था। थारो एक प्रकृतिवादी लेखक था और आध्यात्मिक स्वतंत्रता में विश्वास करता था। उसका जीवन एक संत के जीवन की तरह था। महात्मा गांधी रूस के टालस्टाय की तरह थारो की विचारधारा से भी बड़े प्रभावित थे। उसकी कृतियों में "लाइफ विदाउट प्रिन्सिपल", "दी मेन उड्स", "केप-काड" आदि प्रसिद्ध हैं। इसका समय सन् १८१० से १८६२ तक था।

वाल्टह्विटमेन भी अमेरिका के साहित्य में एक महान् प्रतिभा के रूप में प्रकट हुआ। अपनी कविताओं में उसने प्राचीन परम्पराओं और शास्त्रीय पद्धति की परवाह नहीं थी। कविता की शैली, पिङ्गल, तुक, संकेत, छन्द इत्यादि सभी क्षेत्रों में उसने एक नवीन युग का सृजन कर दिया। इसकी कृतियों में "लीव्हज् ऑफ ग्रास" "डिमाक्रेटिक विस्टाज" इत्यादि प्रसिद्ध हैं। उसकी सबसे पहली कृति "लीव्हज ऑफ ग्रास" है जो सन् १८५५ में तैय्यार हुई। उसने लिखा "कि मेरी कृतियों को सावधानी से पढ़ो क्योंकि वे रक्त मांस से निर्मित मानव को छूती हैं। अमेरिका से भी अधिक ख्याति ह्विटमेन को इंग्लैण्ड में मिली। इसका समय १८१६-१८६२ है।

महिला साहित्यकारों में "एमिलि डिकिन्सन" अमेरिकन साहित्य में एक प्रकाश पुंज की तरह जगमगा रही है। उसके बनाये हुए "लिरिक" माधुर्य्य, ओज और प्रासाद गुणों से भरे हुए हैं। इसका समय १८३० से १८८६ तक है।

यथार्थवादी क्षेत्र में "विलियम डीन हॉवेल्स" और "हेनरी जेम्स" का नाम प्रसिद्ध है। उसके उपन्यास, कहानियां, कविताएँ, निबन्ध इत्यादि सभी साहित्य कई खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इसके उपन्यासों में सबसे सुन्दर "दी लैदर उड गॉड" है। इसका समय सन् १८३७ से १९२० तक है।

हेनरी जेम्स का समय सन् १८४३ से १९१६ तक है। यह भी यथार्थवादी साहित्य के क्षेत्र में बड़ा नामाङ्कित है। इसके उपन्यासों में "दी एम्बेसेडर" "दी गोल्डन बॉल" "दी पोर्ट्रेट ऑफ लेडी" इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

अमेरिका की प्रसिद्ध लेखिका हैरियट बीचर स्टो. की महान् कृति "अंकिल टॉम्स केबिन" ने सारे अमेरिका में गुलामी-प्रथा के विरुद्ध धूम मचा दी। यह कृति सन् १८५२ में प्रकाशित हुई।

मार्कट्वेन व्यङ्ग और विनोद के क्षेत्र में अपनी सानी नहीं रखता मगर गम्भीर साहित्य रचना में भी वह पीछे

नहीं है। "टॉम साअर" "लाईफ ऑन दी मिसीसिपी" "हकलबेरी फिन" इत्यादि उसकी श्रेष्ठ कृतियां हैं। इसका समय १८३६ से १६१० तक है।

इसी प्रकार एडगर एलेन पो (१८०६-४६) विलियम कलेनब्रियां (१७६४-१८४८) फिलिप फ्रेनू इत्यादि साहित्यकार भी अमेरिकन साहित्य के चमकते हुए सितारे हैं।

अमेरिका में हिब्रू-साहित्य

अंग्रेजी साहित्य के साथ-साथ अमेरिका में बसे हुए यहूदी साहित्यकारों के द्वारा हिब्रूभाषा का साहित्य भी प्रकाश में आया। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण से वहाँ हिब्रू साहित्य का प्रकाशन शुरू हुआ। जे० डी० आइन्जेस्टाइन ने हिब्रू भाषा के कोष और काव्य संग्रह प्रकाशित किये।

अमेरिकन हिब्रू साहित्यकारों में इस्राइल एफ्रान्स और मेयर वेक्समेन नामक दार्शनिक विद्वानों के नाम उल्लेखनीय है। हिब्रूभाषा के कवियों में फाइन्स्टाइन, हालकीन, हिलेल बाव्जी, सिल्किनेर इत्यादि तथा उपन्यासकारों में ब्लैक, रिजेलसन, टबेस्कां इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है।

अमेरिका के राष्ट्रपति

१—जार्ज वाशिंगटन	सन् १७८६–६७
२—जान एडम्स	सन् १७६७–१८०१
३—टॉमस जैफरसन	सन् १८०१–१८०६
४—जेम्स मेडिसन	सन् १८०६–१८१७
५—जेम्समनरो	सन् १८१७–१८२५
६—ऑनक्विन्सी एडम्स	सन् १८२५–१८२६
७—एण्ड्रयू जैक्सन	सन् १८२६–१८३७
८—मार्टिनवान बुरेन	सन् १८३७–१८४१
९—विलियम हैरीसन	सन् १८४१–१८४१
१०—जान टाइलर	सन् १८४१–१८४५
११—जेम्स नौक्स पोक	सन् १८४५–१८४६
१२—जैकारी टेलर	सन् १८४६–१८५०
१३—मिलर्ड फिलमार	सन् १८५०–१८५३
१४—फ्रेंकलिन पियर्स	सन् १८५३–१८५७
१५—जेम्स बुकानिन	सन् १८५७–१८६१
१६—अब्राहम लिंकन	सन् १८६१–१८६५
१७—एण्ड्रयू जॉनसन	सन् १८६५–१८६६
१८—यूलिसिस एस० ग्राण्ट	सन् १८६६–१८७७
१६—रूदर फोर्ड बी० हेस	सन् १८७७–१८८१
२०—जेम्स गारफील्ड	सन् १८८१–१८८१
२१—चेस्टर ए० आर्थर	सन् १८८१–१८८५
२२—ग्रोवरक्लीवलैण्ड	सन् १८८५–१८८६
२३—बेंजामिन हैरीसन	सन् १८८६–१८६३
२४—ग्रोवर क्लीवलैण्ड	सन् १८६३–१८६७
२५—विलियम मैक किन्ले	सन् १८६७–१६०१
२६—थियोडोर रूजवेल्ट	सन् १६०१–१६०६
२७—विलियम हावर्ड टैफ्ट	सन् १६०६–१६१३
२८—वुडरो विलसन	सन् १६१३–१६२१
२६—वारेन डी० हार्डिंग	सन् १६२१–१६२३
३०—केलविन कूलिज	सन् १६२३–१६२६
३१—हर्बर्ट हूवर	सन् १६२६–१६३३
३२—फ्रेंकलिन डी० रूजवेल्ट	सन् १६३३–१६४५
३३—हैरी ट्रूमेन	सन् १६४५–१६५३
३४—डवाईट डी० आइजनहोवर	सन् १६५३–१६६१
३५—जॉन एफ० कैनेडी	सन् १६६१–

अम्बपालिका

भगवान् बुद्ध के समय में लिच्छवि गण राज्य वैशाली की एक इतिहास प्रसिद्ध नगर वधू।

अम्बपालिका एक अज्ञात कुल शीला लड़की थी जो वैशाली के बाहर एक आम के वृक्ष के नीचे पड़ी हुई पाई गई थी इसीलिए इसका नाम आम्रपाली या अम्बपालिका रक्खा गया।

अम्बपालिका ने बाल्यावस्था में से निकल कर जब यौवन की देहली में पैर रक्खा तो उसका सौन्दर्य्य मानों शत सहस्र धाराओं से फूट निकला। उसके सारे अङ्गों की बनावट अत्यन्त सुघड़ और सुन्दर थी, उसकी आँखों में मदिरा

का दरिया लहराता था और उसकी हंसी में संगीत के सारे स्वर मानों एक साथ बज उठते थे।

कहा जाता है कि उस समय वैशाली राज्य में एक कानून था कि जो लड़की अप्रतिम सौन्दर्य्य की अधिकारिणि होती थी और अज्ञात कुल शीला होती थी, उसकी शादी न करके उसकी स्थापना नगर वधू के रूप में कर देते थे। इस रूप में वह कला की अधिष्ठात्री देवी बन कर सारे समाज में अपनी दिव्य कला का योगक्षेम करती थी। सारे समाज के रसिक और कला प्रेमी लोग उसकी कला का रसास्वादन लेते थे।

अम्बपालिका भी वैशाली की नगर वधू बनी। संगीत नृत्य, काव्य, वाद्य इत्यादि सभी कलाओं में पारंगत हो उसने भारत के रसिक समाज का ध्यान आकृष्ट करना प्रारम्भ किया। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, सरदार तथा पठित समुदाय के लोगों से उसकी महफिल में जमघट जमा रहता था। स्वयं मगधराज बिम्बिसार भी उसकी कला के अनुरक्त और प्रेमी थे ऐसी इतिहास की कल्पना है।

इतनी शान, शौकत, वैभव और सुख के होते हुए भी अम्बपालिकाको यह भान होता था कि इस सब वैभव के बीच भी न मालूम कैसी एक अनजान अपूर्णता उसके दिल को कचोटती रहती है। न मालूम कैसी एक शून्यता उसके मन पर अपनी छाया डाले हुए है। वह इसकी खोज करती भी मगर पता नहीं चलता था।

इतने में ही तथागत भगवान् बुद्ध का वैशाली में आगमन हुआ। हजारों दर्शनार्थी उनके दर्शनों को जाने लगे यह देख कर अम्बपालिका भी अपने सुवर्ण रथ पर सवार होकर भगवान् बुद्ध के दर्शनों को चली।

भगवान् बुद्ध के दर्शन करते ही उसे ऐसा भान हुआ मानों जिस अज्ञात वस्तु की वह खोज में थी। वह अचानक उसे मिल गई। उसने बड़ी श्रद्धा से उन्हें अपने घर भोजन का निमंत्रण दिया, भगवान् बुद्ध ने उसे स्वीकार किया। उसके घर जाकर बुद्ध ने उसे प्रबोध दिया, वह प्रभावित हुई और दुनिया के सारे सुख वैभव को लात मार कर ***बुद्ध सरणं गच्छामि संघम सरणं गच्छामि धम्मंम सरणं गच्छामि***—कह कर बुद्ध देव की शिष्य हो गई।

अय्यूब खाँ

पाकिस्तान के राष्ट्रपति, उसके पहले पाकिस्तानी सेनाओं के सेनापति उसके पहले सम्भवतः ब्रिटिश शासन के समय में नसीराबाद सैनिक छावनी के एक अफसर।

सन् १६४७ में पाकिस्तान के राष्ट्र का सूत्रपात हुआ। वहाँ श्री मुहम्मदअली जिन्ना के आधिपत्य में सरकार बनी। श्री जिन्ना की मृत्यु के पश्चात् वहाँ कई बार नई-नई सरकारें बनीं। शासन में स्थायित्व बिलकुल नहीं आने पाया। शासन की इस अस्थिरता के कारण सारे देश में भ्रष्टाचार और अनैतिकता का दौर दौरा हो गया। जनता में दरिद्रता बढ़ने लगी।

इस सारी स्थिति को देखकर सन् १६५८ में पाकिस्तान के तत्कालीन गवर्नर जनरल श्री इस्कन्दर मिर्जा ने जो सम्भवतः वहाँ के सैनिक कमाण्डर भी थे, फौजी क्रान्ति की घोषणा कर मन्त्रिमण्डल को बरखास्त कर दिया और सारे शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिये इस कार्यवाही में जनरल अय्यूब उनके सहयोगी थे।

मगर तुरन्त ही इस्कन्दर मिर्जा से जनरल अय्यूब के तीव्र मतभेद हो गये, जिसके फलस्वरूप इस्कन्दर मिर्जा को देश छोड़ कर जाना पड़ा और पाकिस्तान की सारी शासन सत्ता जनरल अय्यूब के हाथों में आ गई।

सत्ता हाथ में लेते ही जनरल अय्यूब ने सारे पाकिस्तान में फौजी कानून की घोषणा कर दी। जिससे सारे देश में आतङ्क का साम्राज्य छा गया।

उसके बाद जनरल अय्यूब ने सारे देश में भ्रष्टाचारी मंत्रियों और अधिकारियों की जाँच करना प्रारम्भ किया। कई मंत्रियों के पास से गैर कानूनी ढङ्ग से रक्खा हुआ लाखों टन अनाज बरामद किया। कई भ्रष्टाचारी उच्चपदाधिकारियों को बरखास्त किया, कइयों की जायदादें जप्त कीं। कइयों को जेल भेजा, कइयो को राजनैतिक क्षेत्र से निकाल बाहर किया।

इसके बाद जैसे-जैसे व्यवस्था जमने लगी वैसे-वैसे उन्होंने फौजी कानून की सख्ती में ढील देना शुरू किया। और कुछ समय तक ऐसा मालूम होने लगा मानों सारे देश में सुव्यवस्था और शान्ति की स्थापना हो गई है।

इस जमाने में पाकिस्तान का उत्पादन भी बढ़ा, वहाँ के औद्योगिक क्षेत्र में भी उन्नति हुई, वहाँ से होने वाले निर्यातकों के अंकों में भी सन्तोषजनक वृद्धि हुई तथा वहाँ की प्रजा में किसी कदर खुश हाली नजर आने लगी।

जनरल अय्यूब की दिखलाई देनेवाली इन सफलताओं का और पाकिस्तान की अस्थिर शासन व्यवस्था में स्थायित्व लाकर उसे एक सुसंगठित राष्ट्र बनाने की प्रक्रिया का अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव भी अच्छा हुआ जिसके फलस्वरूप अमेरिकन सरकार के निमन्त्रण पर जब वे अमेरिका गये तो उनका इतना भारी स्वागत हुआ जो अब तक किसी भी पाकिस्तानी नेता का नहीं हुआ था।

मगर सारी बातों के बावजूद जनरल अय्यूब अपनी तानाशाही प्रवृत्तियों को ज्यों की त्यों कायम रखना चाहते थे। प्रजा के अन्दर बढ़ती हुई विधान की माँग और गणतन्त्रीय पद्धति से चुनाव की आकांक्षा को दबाने के लिए उन्होंने "बुनियादी प्रजातन्त्र" के नाम से एक नवीन नुस्खे का आविष्कार किया। जिसमें बालिग मताधिकार की जगह उन्होंने "मर्यादित मताधिकार" की व्यवस्था रक्खी।

मगर ऐसा दिखलाई पड़ता है कि इस नवीन योजना में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली और जनता के अन्दर भीतरी असन्तोष बढ़ता रहा। इस असन्तोष का विस्फोट पूर्वी पाकिस्तान में सबसे पहले प्रारम्भ हुआ, वहाँ के विद्यार्थी समुदाय ने साहस पूर्वक वहाँ जोरदार आन्दोलन शुरू किया जो जबर्दस्त दमन के बावजूद भी दबाया नहीं जा सका।

जनरल अय्यूब ने भारतवर्ष से अपने बिगड़े हुए सम्बन्ध सुधारने के लिए भारतवर्ष का भी दौरा किया और फिर अपने देश में भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू को बुला कर उनका भारी स्वागत किया। भारत वर्ष के बीच के नहरी पानी, नदियों का बँटवारा आदि समस्याओं का उन्होंने और पं० नेहरू ने मिल-जुल कर समझौता निकाल लिया जिससे कुछ समय के लिए ऐसा मालूम होने लगा मानों दोनों देशों के बीच बिगड़े सम्बन्ध अब सुधर जावेंगे और इस क्षेत्र में भी जनरल अय्यूब यश प्राप्त कर लेंगे।

लेकिन यह सारा स्वप्न भंग हो गया जब भारत और पाकिस्तान के बीच की मूलभूत समस्या कश्मीर का प्रश्न सामने आया। इस समस्या का समाधान न निकलता था न निकला बल्कि इस समस्या को लेकर दोनों देशों में तनाव पहले से भी अधिक बढ़ गया।

इस असफलता से क्रुद्ध होकर एक तरफ तो उन्होंने फिर से सुरक्षा परिषद् के दरवाजे को खटखटाया है दूसरी तरफ भारत के शत्रु चीन से सांठगांठ कर उससे सीमा समझौता करने की धमकी भारत को दे रहे हैं। और इस प्रकार अपनी राजनैतिक विफलता में एक अध्याय और जोड़ रहे हैं।

जनरल अय्यूब एक कुशल संगठनकर्ता, दृढ़-प्रतिज्ञ, साहसी और अपने देश के प्रति वफादार व्यक्ति हैं। पाकिस्तान की बिगड़ी हुई अस्थिर शासन व्यवस्था को उन्होंने एक स्थिर और दृढ़ रूप दिया है मगर उनका दिमाग एक कुशल सेनाध्यक्ष का दिमाग है, मंजे हुए राजनीतिज्ञ का नहीं। सेनानायकों के अन्तर्गत जो तानाशाही प्रवृत्ति रहती है उससे वे बच नहीं सके हैं। यह प्रवृत्ति उनके दिमाग में सोलहों कला से जाग्रत है जो उन्हें एक प्रगल्भ राजनीतिज्ञ बनाने से हमेशा रोकती रहती है देखना यह है कि आनेवाला समय उनके सम्बन्ध में क्या निर्णय देता है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय

हिन्दी भाषा में भिन्न तुकान्त पद्य के एक सफल कवि जिनका जन्म सन् १८६५ में आजमगढ़ जिले के निजामाबाद में हुआ। इनका उपनाम "हरिऔध" था। ये गद्य और पद्य दोनों के सफल लेखक थे। हिन्दी के साथ ही संस्कृत और फारसी के अच्छे जानकार थे। इन्होंने कई पुस्तकों के अनुवाद भी किये और संस्कृत की शैली पर कुछ फुटकर कविताओं की रचना की।

मगर इनका सबसे उत्कृष्ट महाकाव्य जिसने इनको हिन्दी के अग्रणी महाकवियों की पंक्ति में बिठा दिया वह "प्रिय-प्रवास" है। कृष्ण के वियोग में विक्षुब्ध राधा की मनोभावनाओं का इस महाकाव्य में सजीव चित्रण किया गया है। कालिदास के मेघदूत की भाँति पवन को

अपना दूत मान कर राधा जो सन्देश अपने प्रिय को भेजती है वह बड़ा हृदयग्राही है।

एकाध पद्य का नमूना देखिए—

"जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से आत्मार्थी है न कह सकते आत्मत्यागी उसे हैं जीसे प्यारा जगतहित और लोकसेवा जिसे है प्यारी सच्चा अवनितल में आत्मत्यागी वही है।"

अयोध्या सिंह उपाध्याय का दूसरा महाकाव्य वैदेही बनवास है।

अयोध्या

भारतवर्ष की अत्यन्त पवित्र सप्त महा नगरियों में से एक प्रसिद्ध नगरी जहाँ पर भगवान रामचन्द्र अवतीर्ण हुए थे।

भारत की पौराणिक परम्परा में इन सप्त महानगरियों का वर्णन करते हुए लिखा है :—

अयोध्या मथुरा माया, काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव, सप्तैते मोक्षदायिकाः॥

इसी अयोध्या नगरी में रघुवंश के महाराजा रघु ने रघुवंशी सत्ता की स्थापना की थी। इसी रघुवंश की परम्परा में मान्धाता, हरिचन्द्र, दिलीप, अज, दशरथ आदि हमारी प्राचीन गौरवमयी परम्परा के महान् शासकों ने शासन किया था।

राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र हुए। उनके समय में अयोध्या नगरी की क्या शोभा थी इसका वर्णन करते हुए महर्षि बाल्मीकि लिखते हैं :—

"पवित्र सरयू नदी के किनारे कौशल प्रान्त की राजधानी के रूप में बसी लोकप्रसिद्ध अयोध्या नगरी है। जिसकी लम्बाई १२ योजन और चौड़ाई ३ योजन है। इस नगरी में बड़ी-बड़ी विशाल अट्टालिकाएँ और बड़े-बड़े राजमार्ग बने हुए थे जिन पर सदैव जल का छिड़काव होता था। उनके किनारे-किनारे छाया के लिये लगाये हुए पुष्प वृक्षों की सुगन्धि से सारा वातावरण सुगन्धित रहता था। राजप्रासाद सुन्दर और भव्य बने हुए थे।

राजा रामचन्द्र का शासन इतना न्यायपूर्ण और उदार था कि उनके रामराज्य की कल्पना विकास के इस महान् युग में भी भारतवासियों के लिये आदर्श बनी हुई है और इसी ने राजा रामचन्द्र को भगवान रामचन्द्र के रूप में परिणत कर दिया जो आज भी ३५ कोटि मनुष्यों के उपास्य देवता हैं।

आज भगवान् रामचन्द्र की यह महापुरी अपनी बहुत साधारण अवस्था में स्मृति रूप में फैजाबाद जिले में बसी हुई है और चैत्र की रामनवमी पर यहाँ बहुत बड़ा दर्शनीय मेला लगता है।

अरब

मध्यएशिया के दक्षिण पथ का एक रेगिस्तानी देश, जिसके पश्चिम में मिस्र, उत्तर में सीरिया और ईराक, पूर्व में ईरान, दक्षिण में भारतवर्ष और उत्तर पश्चिम में एशिया कोचक और कुस्तुन्तुनिया हैं। यह देश इस्लाम धर्म का मूल उत्पत्ति-स्थान है।

रेगिस्तानी देश होने के कारण अरब उपजाऊ प्रदेश नहीं है। इसलिए यहाँ के निवासी इसलाम के उदय के पूर्व अकसर छोटे बड़े कबीलों में रहकर घुमक्कड़ जीवन-व्यतीत करते थे। सिर्फ मक्का और मदीना के दो नगर इस देश में सम्पन्न थे जहाँ व्यापारी, सामन्त और पुजारी लोग रहा करते थे।

इस्लाम के उदय के पूर्व इस देश के लोग मूर्ति-पूजक थे। मक्का में प्राचीनकाल में एक मन्दिर बना हुआ था जिसे लोग काबा कहते थे। इसमें मूर्ति की जगह एक काला पत्थर जिसे "हज्र-अस्वद" कहते थे रक्खा हुआ था। इसका आकार शिवलिंग से कुछ मिलता-जुलता था। इसके अतिरिक्त इस मन्दिर में लात, मलात, शम्स (सूर्य) आदि की कई मूर्तियाँ थीं। हर साल इस मन्दिर में एक मेला लगता था जिसमें दूर-दूर से हजारों यात्री आकर दर्शन करते थे।

अरब कबीलों का जीवन अक्सर घुमक्कड़ और खाना-बदोश जीवन था। दो-दो, चार-चार खानदान अपने

कबीले बनाकर रहते थे। खानदान का व्योवृद्ध आदमी इन कबीलों का मुखिया होता था। सन् ५७० के पहले इस रेगिस्तानी मुल्क में इतिहास की कोई बड़ी घटना नहीं घटी।

मगर सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस देश में ऐसी जबर्दस्त घटना हुई जिसने न केवल इस देश के बल्कि सारे संसार की इतिहास में एक भारी तूफान और क्रान्ति पैदा कर दी। यह घटना अरब में पैगम्बर मुहम्मद का अवतीर्ण होना और उनके द्वारा संसार में इस्लाम के सन्देश का प्रचार करना था।

पैगम्बर मुहम्मद का जन्म मक्का के हाशिम वंश में सन् ५७० में हुआ। उनके पिता का नाम अब्दुल्ला और माँ का नाम आमना था। अरब जाति की उस समय जैसी दुर्दशा हो रही थी छोटे-छोटे कबीलों में बँटकर वे लोग आपस में जिस प्रकार लड़ते रहते थे उसे देखकर उनके दिल पर बड़ी चोट पहुँचती थी। वे शुरू से ही बड़े तेजस्वी और प्रतिभावान् व्यक्ति थे। वे पढ़े लिखे नहीं थे। फिर भी अपनी स्वाभाविक बुद्धि से वे कई वर्षों तक मक्का की एक धनाढ्य स्त्री खादिजा के कारवाँ के सरदार होकर देश-विदेश में घूमने जाया करते थे। आगे जाकर यही खादिजा उनकी पत्नी हुई।

देश-विदेश में घूमने के कारण उनकी भेंट ईसाई और यहूदी धर्म के विद्वानों और धर्माचार्य्यों से होती रहती थी। इन मुलाकातों के कारण धीरे-धीरे उनका विश्वास मूर्ति पूजा पर से हट गया।

धीरे-धीरे उनके अन्दर एक इलहाम एक अन्तः-प्रेरणा का प्रकाश फैलने लगा, भीतर से कुछ गैबी आवाज का उन्हें अनुभव होने लगा जिसके परिणामस्वरूप चालीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपने आपको खुदा का पैगम्बर घोषित कर दिया और अपने चलाये हुए नये मत का नाम इसलाम रक्खा। मूर्ति पूजा के खिलाफ उन्होंने जिहाद कर दिया।

धार्मिक क्रान्ति

मूर्ति पूजा के खिलाफ दिये गये उनके फतवे से मक्का के पण्डे पुजारी और दूसरे लोग उनके खिलाफ हो गये जिसके फलस्वरूप मुहम्मद को सन् ६२२ में मक्का से भाग कर मदीने जाना पड़ा। इस हिजरत के उपलक्ष्य में इस्लाम में हिजरी संवत् का प्रारम्भ हुआ। मदीना के लोगों ने हजरत मुहम्मद का बड़ा स्वागत किया और उस शहर का पुराना नाम "यस्रिब" बदल कर मदीनतुन्नबी या मदीना कर दिया। मदीना के जिन लोगों ने विशेष रूप से हजरत मुहम्मद की मदद की थी वे "अन्सार" कहलाये।

सामाजिक क्रान्ति

धार्मिक क्षेत्र में हजरत मुहम्मद मूर्ति पूजा के खिलाफ जोरदार आवाज बुलन्द कर रहे थे और सामाजिक क्षेत्र में वे इसलाम के झण्डे के नीचे आने वाले सब लोगों में भाई चारे की भावना का जोशीला मंत्र फूंक रहे थे। इस्लाम में आने के पहले व्यक्ति चाहे जिस छूत, अछूत, नीच ऊँच जाति का रहा हो इसलाम के झण्डे के नीचे आते ही वह सब जमात में बराबरी का दर्जा प्राप्त कर लेता था। यद्यपि ये नियम आगे जाकर ढीले हो गये और मानव स्वभाव की भेदभाव मूलक प्रवृत्ति ने अरब के मुसलमानों और बाहर से आने वाले मुसलमानों के बीच भेद भाव की एक रेखा खींच दी मगर यह अपवाद रूप में थी। इसलाम का असली सिद्धान्त उसके झण्डे के नीचे आने वाले हर इन्सान में समानता और भाई चारे का व्यवहार करना था। इसलाम के इस सिद्धान्त ने उस समय के लाखों लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। क्योंकि उस समय प्रचलित जरथुस्त्री, ईसाई और बौद्ध धर्म के अनुयायियों में भेदभाव की ये दीवारें बहुत मजबूत होती जा रही थीं।

धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण के साथ-साथ पैगम्बर ने राजनैतिक और आर्थिक दृष्टिकोण का भी इसलाम की स्थापना के समय पूरा-पूरा ध्यान रखा।

राजनैतिक और आर्थिक क्रान्ति

वे जानते थे कि उस युग में बिना राजनैतिक और सैनिक शक्ति के किसी भी धर्म का प्रचार सम्भव नहीं

था। लोग समझाने बुझाने की शक्ति की अपेक्षा तलवार की शक्ति पर अधिक विश्वास करते थे इसलिए पैगम्बर ने इसलाम के धार्मिक संगठन के साथ उसका राजनैतिक और सैनिक संगठन भी बहुत तत्परता के साथ किया।

राजनैतिक और सैनिक संगठन की मजबूती के लिए ऐसी अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता थी जिसमें नीचे के सैनिकों से लेकर ऊपर के अधिकारियों तक को लूट की आमदनी में से उचित हिस्सा मिले। लूट की आमदनी को उस समय "माले गनीमत" कहते थे, हजरत मुहम्मद ने माले गनीमत की एक नई व्याख्या करके विजय से प्राप्त होने वाली आमदनी में से ⅕ सरकारी खजाने में (बैतुल-माल) देकर शेष आमदनी को सब योद्धाओं में बराबर-बराबर बांट देने की व्यवस्था की।

लूट में बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ और दास दासी भी आते थे। इनका बंटवारा भी पद और हैसियत के अनुसार ही जाता था सबसे सुन्दर और तरुण स्त्रियाँ बड़े अधिकारियों को मिलती थीं और बची हुई दूसरे लोगों के हिस्से में आती थीं।

विस्तृत राज्य स्थापित करने के इच्छुक एक व्यवहार कुशल धर्म नेता की यह अनोखी सूझ थी। जिसने मनुष्य की "कामिनी और कांचन" की भावनाओं को जाग्रत कर रेगिस्तान के दुर्द्धर्ष जीवन को बितानेवाली घुमक्कड़ बुद्दू जाति में तथा आसपास के दूसरे देशों की जनता में इसलाम के झण्डे के नीचे आने के लिए एक अजीब उत्साह पैदा कर दिया। जिसकी प्रेरणा से हजारों सैनिक प्रवृति के लोग इसलामी सेना में भरती होने लगे और बढ़ते हुए बैतुल माल के खजाने से एक बलशाली सैनिक शक्ति की नींव डाल दी।

माले गनीमत की इस नई व्याख्या ने आर्थिक वितरण को एक नये रूप में पेश किया। जिसने अल्लाह के स्वर्गीय इनाम तथा अनन्त जीवन के ख्याल से उत्पन्न होने वाली निर्भीकता से मिलकर दुनिया में वह उथल-पुथल पैदा की जिसे हम इसलाम का सजीव इतिहास कह सकते हैं। जिस इतिहास ने केवल पचहत्तर वर्षों में सिंधुतट से लेकर स्पेनतक और सिर दरिया से नील नदी तक फैले एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

हिजरत के दस वर्ष बाद सन् ६३२ में हजरत मुहम्मद का देहान्त हो गया उनकी मृत्यु के समय पश्चिमी अरब के कितने ही प्रमुख कबीलों ने इस्लाम को स्वीकार किया तथा अपनी निरंकुशता को कम करके एक संगठन में बंधना चाहा। उस समय तक सारे अरबी भाषी लोगों में इसलाम घर कर चुका था। पैगम्बर ने अरब देश की परस्पर में लड़ने वाली अनेक जंगली जातियों को संगठित करके एक नवीन इस्लामी राष्ट्र का निर्माण किया।

खिलाफत का प्रारम्भ

अबू बकर (६३२–६४२)

पैगम्बर की मृत्यु के पश्चात् खलीफा पद के लिए कुछ झगड़े हुए मगर अन्त में हजरत अबू-बकर पहले खलीफा हुए। अबू-बकर दस साल तक खलीफा रहे इन्हीं के समय में खालिद के सेनापतित्व में अरबी सेना ने रोम को हराकर दमिश्क पर कब्जा कर लिया। फिलीस्तीन पर भी इन्हीं दिनों अरब लोगों ने अपनी विजय पताका फहरा दी और ईरान के सासानी वंश के शाह यज्दगर्द तृतीय को भी हराकर अरबी सेना ने ईरान में इसलाम का प्रचार किया। सन ६४२ में हजरत अबू-बकर का देहान्त हुआ।

हजरत ऊमर

हजरत अबू बकर के पश्चात् हजरत ऊमर इसलाम के दूसरे खलीफा हुए। इनके समय में इसलाम विशुद्ध धार्मिक रूप से बदलकर एक विश्वविजयी सैनिक संगठन का रूप ले चुका था। अब इसलाम पैगम्बर के जमाने का इसलाम नहीं था जब कि इसलाम स्वीकार करते ही आदमी सामाजिक समानता का अधिकारी हो जाता था। अब अरबी मुसलमान और बाहर के मुसलमानों के बीच भेदभाव की एक हलकी रेखा पैदा हो गई थी।

हजरत ऊमर के समय में मिश्र के ऊपर अरबी सेनाओं ने अधिकार कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि मिस्र की विजय के समय सिकन्दरिया का विशाल पुस्तकालय जो उन

दिनों शायद संसार में सबसे बड़ा पुस्तकालय था अरबी सेनाओं ने जला दिया। आजकल के कुछ इतिहासकार इस घटना को गलत भी बतलाते हैं।

हजरत ऊमर केवल दो बरस खलीफा रहे, इस थोड़े से समय में ही उनके सादे जीवन और न्यायप्रियता की बहुत सी कहानियाँ इतिहास में लिपिबद्ध हुई। लेकिन वह सब केवल अरबी मुसलमानों के लिए थीं विदेशी या विजातीय मुसलमान उसके अधिकारी नहीं थे।

अन्त में एक ईरानी गुलाम ने अपनी जाति पर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिए हजरत ऊमर की हत्या कर डाली।

उसमान

हजरत ऊमर के बाद तीसरे खलीफा उस्मान हुए जिन्होंने सन् ६४४ से ६५२ तक शासन किया। इनके शासन काल में उमैया वंशी सरदार म्याविया को सीरिया का शासक बनाकर दमिश्क भेजा गया। जिसने रोमन राज्य प्रणाली के ढंग पर वहाँ शासन करना प्रारम्भ किया।

खलीफा उसमान के शासन में खुरासान और तुर्कों के राज्य पर अरबों ने जोरदार आक्रमण किया। ख्वारेज्म और बलख के लोगों ने भी खलीफा की अधीनता स्वीकार थी। खलीफा उसमान के बढ़े हुए ऐश्वर्य्य और विलास को देखकर किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने उनकी भी हत्या कर डाली

खलीफा अली
(सन ६५२–६६१)

खलीफा उसमान के कतल के पश्चात् पैगम्बर के दामाद अली इसलाम के चौथे खलीफा हुए। इन पर तथा इनके पुत्र हसन और हुसेन पर पैगम्बर का बड़ा प्रेम था। लेकिन दमिश्क का गवर्नर म्याविया जो एक शक्तिशाली व्यक्ति था, अली से बहुत जलता था। अली का सारा समय म्याविया के साथ संघर्ष में बीता। म्याविया के षड्यन्त्र से अली के बड़े पुत्र हसन को उन्हीं की बीबी ने जहर देकर मार दिया और म्याविया के पुत्र यजीद ने अली के दूसरे पुत्र हुसैन को उनके ६९ साथियों के साथ घेर कर प्यास से तड़पा-तड़पा कर मार दिया। करबला में हुसैन और उनके ६९ साथियों की मौत बड़ी नृशंसतापूर्ण दर्दनाक घटना है जिसको याद करके आज भी इसलाम को मानने वाले लोगों की आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं। इस घटना ने करबला और हुसेन को इसलामी इतिहास में अमर कर दिया जिसकी स्मृति में आज भी संसार के सुन्नी मुसलमान मोहर्रम का दिन मनाते हैं।

उम्मैय्या-वंश

खलीफा अली की मृत्यु के पश्चात् खलीफा की गद्दी उमैया वंश के हाथों में आई। उमैया वंश का पहला खलीफा म्याविया मेरवान हुआ। जो कि पहले खलीफाओं के शासन में दमिश्क का गवर्नर था। इसका समय सन् ६६१ से ६७० तक है।

म्याविया खलीफा के राज्यकाल में उसके गवर्नर अब्दुल्ला ने खुरासान को विजय कर लिया। इसके बाद अब्दुल्ला के भाई हाकिम ने सबसे पहले वक्षु नदी को पार कर के तुखारिस्तान को जीता और बलख के दक्षिण पूर्व हिन्दुकुश पहाड़ तक प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

खलीफा म्याविया के शासनकाल में बुखारा और समरकन्द भी उसके अधिकार में आ गये।

म्याविया मेरवान के सहित उमैया वंश में तेरह खलीफा हुए जिनके नाम क्रमशः (१) म्याविया मेरवान प्रथम (६६१-६७०) (२) यजीद (६८०-६८३) (३) खलीफा म्याविया द्वितीय (६८३) (४) खलीफा अब्दुल मलिक (६८३-७०५) (५) खलीफा वलीद (७०५-७१४) (६) खलीफा सुलेमान (७१४-७१७) (७) खलीफा ऊमर द्वितीय (७१७-७२०) (८) खलीफा यजीद द्वितीय (७१९-७२४) (९) खलीफा हिशाम (७२१-७४२) (१०) खलीफा वलीद द्वितीय (११) खलीफा यजीद (तृतीय) (१२) इब्राहीम (१३) मेरवान।

इन खलीफाओं में पाँचवें खलीफा वलीद के शासन काल में मर्व का गवर्नर कुतैब नामक एक बहादुर और कट्टर मुसलमान को बनाया। मध्यएशिया में अरब

शासन और इसलाम की मजबूत नींव डालने में कुतैब ने बड़ी बहादुरी से काम लिया। *

इसी काल के लगभग अर्थात् सन् ७११ में दक्षिण अफ्रीका का अरब सेनापति "तरीक" समुद्र पार कर स्पेन पहुँचा। वह जिब्राल्टर पर उतरा था इसलिए उसकी स्मृति में उसका नाम "जबलुतरीक" (तरीक की पहाड़ी) रक्खा गया जो आगे चल कर "जिब्राल्टर" के रूप में बदल गया।

तरीक के नेतृत्व में अरबी सेनाओं ने केवल दो बरस में स्पेन को जीत लिया। कुछ दिनों के बाद पुर्तगाल को भी उन्होंने अपने राज्य में मिला लिया। फ्रान्स में भी वे घुस गये और इस बात की सम्भावना नजर आने लगी कि सारा यूरोप उनके अधिकार में चला जावेगा मगर इसी समय सावधानी से काम लेकर वहाँ की फ्रेंक जाति ने चार्ल्स माटेल के नेतृत्व में अरबों को रोकने की कोशिश की और एक बड़ी सेना तैय्यार कर तूर की लड़ाई में अरबों को बुरी तरह से हरा दिया। इस हार से अरबों का सारे यूरोप को जीतने का स्वप्न चूर-चूर हो गया। फिर भी स्पेन पर उनका शासन ईसाइयों के जबर्दस्त दबाव के बावजूद पाँच सौ बरस तक बराबर चलता रहा। उन्होंने अपनी राजधानी कारडोवो को एक विशाल, सुन्दर और अरब संस्कृति का उच्चतम मॉडल बना दिया जिसकी आबादी दस लाख थी।

कुछ ही समय पश्चात् अरब की खिलाफत पर से उमैया वंश हट कर अब्बासी वंश आ गया। मगर स्पेन के गवर्नर ने जो कि उमैया वंश का था अब्बासी खलीफा को मानने से इन्कार कर दिया। इस तरह स्पेन अरब साम्राज्य से अलग हो गया और बगदाद का खलीफा बहुत दूर होने के कारण तथा घरेलू झगड़ों के कारण इधर ध्यान नहीं दे सका।

अब्बासी खलीफा
(७४९-८१८)

उमैया वंश की खिलाफत को अब्बासी वंश के सरदार अबुल अब्बास ने अबू-मुसलिम नामक एक बहादुर ईरानी सरदार की सहायता से सन् ७४९ में खतम कर दी। और हजरत पैगम्बर के चचा अब्बास के नाम से स्थापित अब्बासी वंश की खिलाफत प्रारम्भ हुई। इस खिलाफत में कुल ३७ खलीफा हुए।

अब्बासी वंश की उमैया वंश से पुरानी दुश्मनी थी। हजरत अली के अनुयायी करबला की दर्दनाक घटनाओं को भूल नहीं सकते थे। उमैया वंश से बदला लेने के लिए अब्बासियों ने उन्हें चुन-चुन कर कत्ल करना प्रारम्भ किया। चारों तरफ खून के दर्दनाक नजारे नजर आने लगे। अब्बासी वंश के पहले खलीफा अबुल अब्बास ने उमैया वंश को जड़ मूल से नष्ट करने का हुक्म दे दिया। जब इतने से भी संतोष न हुआ तो उमैय्या वंश की कब्रों को खुदवा कर उनकी लाशों के कंकालों को चूर-चूर कर के हवा में उड़ा दिया। उधर खुरासान के गवर्नर अबू-मुसलिम ने भी उमैया वंश का नाम मिटा देने में कोई कसर नहीं रक्खी।

तब उमैया के पक्षपातियों ने चीनी सम्राट् स्वेन-चुंग की सहायता से बुखारा, सान और फर्गाना में भयंकर संघर्ष किया। लेकिन समरकंद के शासक जियाद ने अत्यन्त निर्दयता से बगावत को दबा दिया।

अब्बासी खलीफाओं के समय में अरबों और इरानियों के सम्बन्ध में बहुत सुधार हुआ। इन्हीं खलीफाओं के समय में संस्कृत, ग्रीक इत्यादि भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रंथों का अरबी में अनुवाद करवा कर अरबी भाषा के साहित्य को समृद्ध किया गया। ईरान के सासानी राज्य का प्रभाव अब खलीफा शासन में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा।

दूसरे अब्बासी खलीफा मन्सूर ने सन् ७६२ में ईराक के सुप्रसिद्ध बगदाद नगर की स्थापना की और सन् ७६८ में उसे खलीफा की राजधानी बनाया गया। इसके पहले उमैया वंश के खलीफाओं की राजधानी दमिश्क (सीरिया) थी और अब्बासी खलीफाओं ने पहले अपनी राजधानी कूफा में और उसके बाद मदैन में बनाई जो बहुत पहले से ईरान की राजधानी रहती आई थी।

* इसका विशेष वर्णन "कुतैब" नाम के साथ देखें।

अब्बासी वंश का लम्बा शासन अपेक्षा कृत अच्छा था। यद्यपि खून खराबी, कत्लेआम पहले ही की तरह चल रहे थे फिर भी अरब इतिहास में अब्बासी युग ज्ञान-विज्ञान का युग समझा जाता है। इस जमाने में उमैयाओं के जमाने से काफी तब्दीलियाँ शुरू हो गई थीं। अरब के गृहयुद्ध ने सारे अरब साम्राज्य को हिला दिया था। स्पेन के अरब राज्यपाल ने जो उमैया था अब्बासी खलीफा को मानने से इन्कार कर दिया। उत्तरी अफ्रीका की गवर्नरी भी स्वतन्त्र हो गई और मिस्र ने तो अपना दूसरा खलीफा ही घोषित कर दिया। इस तरह अब्बासियों की खिलाफत में सारा अरब साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब खलीफा का सारी इस्लामी दुनियाँ पर प्रभुत्व नहीं रहा। मुसलमानों में इतनी फूट पड़ गई कि स्पेन के अरब और अब्बासी आपस में एक दूसरे को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे।

अब्बासी युग में उसके पाँचवें खलीफा हारूँ-अल-रशीद का युग सबसे ज्यादा उरुज पर था। इसका समय सन् ७८६ से ८०६ तक था। हारूँ अल-रशीद और शहरजादी तथा अलिफ्लैला की कहानियों से सारा अरबी साहित्य चमक रहा है। बगदाद का नाम भी इन्हीं दिनों इतिहास में अमर हो गया। हारूँ के दरबार में सम्राट् शार्लमेन और चीनी सम्राटों के यहाँ से राजदूत मंडल आये थे। अब्बासी साम्राज्य के देश शासन की व्यवस्था में, ज्ञान में, विज्ञान में और व्यापार में यूरोप से बहुत आगे बढ़े हुए थे।

इन्हीं दिनों अरब लोगों में विज्ञान के अन्दर नई दिलचस्पी पैदा हुई इसीलिए अरबों को आधुनिक विज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। आयुर्वेद की चरक, सुश्रुत आदि कई ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। गणित के सम्बन्ध में भी अरबों ने भारतवर्ष से बहुत कुछ सीखा। भारतीय चिकित्सक और गणितज्ञ बड़ी संख्या में बगदाद जाते थे और बहुत से अरब विद्यार्थी पढ़ने के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में आते थे। जो उस समय आयुर्वेद की शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध था। उन्हीं दिनों अरबों ने कागज बनाने की कला चीन से सीखी। खुद अपने आविष्कार भी अरब वैज्ञानिकों ने किये उन्होंने ही सबसे पहले दूरबीन और कुतुबनुमा का आविष्कार किया। चिकित्सा में अरब के हकीम और जर्राह सारे यूरोप में मशहूर थे। इस सारे ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र बगदाद था।

आधुनिक इतिहास

सऊदी अरब साम्राज्य

क्षेत्रफल ६००,००० वर्गमील, जनसंख्या ७,०००,००० (लगभग)

राजधानी—मक्का (या हेजाज), रियाध (या नेज्द)

प्रमुख नगर—होफुफ, मुबर्रज, शाकरा नेज्द में, मदीना, जिद्दा, याम्बू हेजाज में। जिद्दा मक्का का तथा याम्बु मदीना का बन्दरगाह है।

धर्म—मुसलमान भाषा—अरबी

सऊदी अरब अरब के पठार का मुख्य राज्य है। इस राज्य का निर्माण स्वर्गीय इब्न सऊद के द्वारा किया गया था। सन् १६०१ में जब उसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी उसने अपने चालीस साथियों की सहायता से रियाध के अमीर पर विजय प्राप्त कर ली एवं शीघ्र ही वह अरब राज्यक्रांति का नेता बन गया। प्रथम विश्व युद्ध के समय उसे टी. ई. लारेन्स (T. E Lawrence) से आर्थिक सहायता एवं अस्त्र-शस्त्रों की मदद मिली। टी. ई. लारेन्स एक अंग्रेज एजन्ट था उसने सउद को टर्की के विरुद्ध की गई रेगिस्तानी क्रांति (Desert Revolt) में सहायता की। युद्ध के अंतिम काल में टर्की की हार होने पर सऊद ने सम्पूर्ण अरब के पठार को टर्की की दासता से मुक्त करा दिया एवं कुछ स्थानीय सैनिकों की सहायता से स्वयं को सन् १६२७ में हेजाज, नेज्द एवं अन्य अधिनस्थ राज्यों का बादशाह घोषित कर दिया। उसके द्वारा शासित प्रदेश सन् १६३२ में सउदी अरब साम्राज्य बन गया।

हेजाज एवं नेज्द आज भी अलग-अलग शासित राज्य हैं। नेज्द में जिसकी राजधानी रियाध है इब्न सऊद का पूर्ण अधिकार था। इब्न सऊद की अनुपस्थिति एवं बीमारी की अवस्था में उसका सबसे बड़ा लड़का राजकुमार सऊद वाइसराय के रूप में कार्य करता था। हेजाज, जिसकी राजधानी मक्का है, के संविधान में एक मंत्रियों की समिति का

प्रबंध किया गया था जिसका प्रमुख सऊद का दूसरा लड़का राजकुमार फ़जल था एवं वह अपने पिता की अनुपस्थिति में वाइसराय की तरह कार्य करता था। मक्का में एक सलाहकार विधान सभा एवं कई गाँवों में नगरपालिकाएँ एवं जातीय समितियाँ हैं जिनके सदस्यों का चयन बादशाह स्वयं करता था।

इस मरुस्थलीय पिछड़े हुए देश में थोड़ी सी सड़कें एवं रेलमार्ग हैं। यहाँ पर केवल एक रेलमार्ग डाम्मन (बेहरिन के पास) से रियाध तक है जो सन् १९५१ में प्रारंभ किया गया था और एक सड़क जिद्दा से मक्का और रियाध तक तथा दूसरी मक्का से मदीना तक है।

आधुनिक वर्षों में सऊदी अरब की प्रगति :—

बादशाह अब्दुल अजीज इब्न सउद की मृत्यु और उसके पुत्र सउद के राज्याभिषेक के पश्चात से सऊदी अरब एक निश्चित एवं सुचारु शासन व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है।

तेल इस मरुस्थलीय राज्य के लिए तरल सोना साबित हुआ है। इसका उत्पादन संयुक्त राज्य की अरेबियन-अमरिकन आइल कम्पनी द्वारा होता है जिसका प्रमुख क्षेत्र फारस की खाड़ी के किनारे धारन है। इस तेल से प्राप्त होने वाले अतिरिक्त धन से अरब की सामाजिक गति में शीघ्रता से परिवर्तन हो रहा है।

इब्न सऊद की मृत्यु के कुछ माह पूर्व भावी बादशाह सऊद ने जो आधुनिक विचारधारा का व्यक्ति है तथा पाश्चात्य विचारों एवं शासन प्रणाली से परिचित है, सरकारी ढाँचा बनाना प्रारम्भ किया। देश की समस्याओं का निरीक्षण करने के लिए कई मंत्रियों की नियुक्तियाँ की गई।

बादशाह ने सर्वप्रथम अपने देश की सुरक्षा के लिए सेना को शक्तिशाली बनाया। इसके लिए प्राविधिक (Technical) और फौजी सहायता आवश्यक थी किंतु विदेशों द्वारा जब यह सहायता प्रदान की गई तो उसने इन्कार कर दिया क्योंकि उसके विचार में इस प्रकार की सहायता का अर्थ देश प्रभुत्व पर दूसरों का अधिकार करना था जिसको वह कदापि सहन नहीं कर सकता था। दूसरी प्रमुख समस्या उसके विस्तृत साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों को जोड़ने के लिए उत्तम यातायात व्यवस्था की थी। अतः नई सड़कें तथा रेल मार्गों के निर्माण के लिए बहुत बड़ी स्वीकृति दी गई।

इसी समय सऊद ने स्कूलों, कालेजों एवं सैनिक स्कूलों के निर्माण के लिए एक योजना प्रारंभ की। अशिक्षा एवं अज्ञान के विरुद्ध प्रारंभ किये गये इस आन्दोलन में विदेशों से शिक्षकों एवं अध्यापकों की सहायता ली गई। देश की वर्तमान समय की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए प्राविधिक (Technical) शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया। वे सऊदी जो पहले ऊँट और घोड़ों पर सवार होते थे अब जहाजों एवं रेलों पर यात्रा करते देखे जाते हैं। स्वास्थ्य योजनाओं पर भी बहुत साधन व्यय किया गया। ग्रामों एवं शहरों के लिए जलाशय बनाये गये। नये अस्पताल एवं स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण किया गया। बादशाह सऊद के पथ-प्रदर्शन में सऊदी अरब सामाजिक एवं कृषी संबंधी सुधार एवं प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

इसके बावजूद भी ये राजकुमार देश में परिवर्तन लाने के लिए जो आन्दोलन चल रहा है, उसके प्रमुख हैं। क्योंकि उनकी विदेश यात्राओं ने उनको नियमित जीवन का विचार प्रदान किया है जिसको बदावू शासक इब्न सउद नहीं समझ सकता था। दूसरे लोग जो अच्छी सरकार के लिए तर्क देते हैं वे वही सऊदी युवक हैं जिन्हें विद्याध्ययन के लिए ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य भेजा गया है।

अरबी साहित्य

अरब लोगों का साम्राज्य विस्तार जितना विशाल और प्रभाव पूर्ण है उनका साहित्य विस्तार भी उससे कम वैभव पूर्ण नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने सारे संसार से बहुत कुछ लिया भी है और बहुत कुछ दिया भी है।

जिस प्रकार अरब का राजनैतिक और सामाजिक इतिहास वास्तव में इस्लाम के उदय के साथ-साथ चलता है उसी प्रकार उसके साहित्यिक इतिहास का शृंखलाबद्ध निर्माण भी इस्लाम के बाद ही देखने में आता है। जिस

अरबी भाषा और साहित्य का आज प्राधान्य है और जिसने सैकड़ों वर्षों तक संसार में प्रसिद्धि पाई है वह कुरैश जाति की बोली थी। वही उस समय के सांस्कृतिक विचारों, धार्मिक चिन्तन और साहित्यिक भावनाओं का माध्यम बनी।

इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि इस्लाम के पूर्व अरब में कोई साहित्यिक चेतना थी ही नहीं। ईस्लाम के पूर्व भी अरब में गद्य, पद्य और ख्यात गीतों का हवाला मिलता है। ये ख्यात गीत ज्यादातर मौखिक रूप में ही सुनाये जाते थे और इनको सुनाने वाले उस जमाने में 'राविया" कहलाते थे।

आठवीं सदी के राबियों और कवियों में "हम्माद-अल-राविया" "अलशन्फरा" "इम्रू-आल-कैस",अल-इब्न-आदिया (यहूदी) आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध है। यह अरबी साहित्य का पहला युग था। इस समय अरबी कसीदों का उदय और विस्तार हो चुका था।

इस्लाम के उदय के कुछ पहले अल-हिजाज का जुहैर इब्न-अबी- सुल्मा अरबी साहित्य के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हो रहा था।

हजरत मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् अरबी साहित्य एक नवीन युग में प्रवेश करता है। जब अरबी सेनाएँ युद्ध के मैदान में देश पर देश विजय करती हुई एक विशाल इस्लामी साम्राज्य की रचना में मशगूल हो रही थीं उसी समय धार्मिक दृष्टि से कुरान और धर्म-शास्त्रों का पाठ शुद्ध करने की ओर लोगों का ध्यान गया। इन्हीं दिनो "वाहब-इब्न मुनब्बीह" "अल-हसन-अलबसरी इसलामी धर्म-ज्ञान के प्रतीक माने जाते थे।* इस्लाम के अनेक फिरकों ने अल-हसन को अपना प्रधान धार्मिक नेता माना था।

इसके बाद अरबी साहित्य का तीसरा युग अब्बासी खलीफाओं के समय में प्रारम्भ हुआ। इस समय इस्लामी सल्तनत ने एक जमे हुए साम्राज्य का रूप ग्रहण कर लिया था। लोगों को सोचने, समझने और साहित्य निर्माण के लिए अवकाश मिलने लगा था। अब्बासी खलीफा वैभव, ऐश और आराम के साथ-साथ साहित्य और कविता की उन्नति पर भी ध्यान देने लगे थे क्योंकि यह भी उनके मनोरंजन के अनेक पहलुओं में से एक पहलू था।

अब्बासी खलीफा हारूंअल रशीद और अलमामून के जमाने में अरबी साहित्य की बहुत उन्नति हुई। खलीफा अल-मामून ने अपनी राजधानी बगदाद में "बैतल-अल-हिक्मा" नामक एक शोध केन्द्र की स्थापना की जिसमें बढ़िया-बढ़िया विदेशी साहित्य का अरबी भाषा में अनुवाद किया जाता था। भारतीय साहित्य के एक गणित ज्योतिष के ग्रन्थ का अनुवाद एक अरबी लेखक इब्राहीम अलफजरी ने "अल-सिन्द-हिन्द" के नाम से किया जिसने अरब ज्योतिष के मूलभूत सिद्धान्तों में ही एक क्रान्ति लादी। इस ग्रन्थ के द्वारा भारतीय अङ्क-प्रणाली का भी अरब लोगों को पहले-पहल ज्ञान हुआ और अरबों के द्वारा ही यह अङ्क प्रणाली संसार में फैली।

इस काल के प्रधान लेखकों और कवियों में अबु-नुवास, अबु-अल-अताइया, अबु-हर्नीफार इत्यादि विशेष प्रसिद्ध थे। इनका विशेष परिचय इसी ग्रन्थ में इनके नामों के साथ देखना चाहिए।

इसी युग में अरबी साहित्य में विज्ञान की भी काफी प्रगति हुई। "अबू मा-शर" ने ज्वार भाटे के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। लैटिन भाषा में उसके चार ग्रन्थों के अनुवाद हुए और भी अनेक अरबी ग्रन्थों के विदेशी भाषा में अनुवाद हुए।

इन्हीं दिनों इस्लाम के अन्दर प्रसिद्ध सूफीमत का भी प्रचार हुआ। इन सूफी सन्तों में भी बड़े-बड़े कवि, दार्शनिक और तत्वज्ञानी पैदा हुए। इनमें "अल-मुहासिबी" ,'अल-मर्की" "जुनैद", "अल-हल्लाज" इत्यादि सूफियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

दसवीं सदी में "अलिफलैला" की हजार कहानियों ने अरबी साहित्य में एक उत्क्रान्ति कर दी। राग, रंग, वैभव, विलास और यौन-सम्बन्धों से परिपूरित होने के कारण विद्वान और धार्मिक अरब विद्वानों ने इनकी बहुल निन्दा की मगर संसार की अनेक भाषाओं में छोटे, बड़े, संक्षिप्त

* इन नामों का विशेष विवेचन इन नामों के साथ के विवेचन में देखें।

पूरे अनेक अनुवाद इस ग्रन्थ के हो जाने से अरबी साहित्य की तरफ सारे संसार का ध्यान आकर्षित हो गया।

इसके बाद सोलहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ तक अरबी साहित्य गैबी दुनिया में छिपा रहा उसके बाद उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में इसका नवीन जागरण हुआ।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में अरबी साहित्य के अन्तर्गत नाटकों और उपन्यासों का बहुत विकास हुआ। इसके पहले अरबी में नाटक और रंगमंच का कोई खास स्थान न था क्योंकि यह चीज इस्लाम की शरह के कुछ विपरीत जाती थी। मगर अब चारों ओर नई सभ्यता की हवा फैल रही थी और लोग मजहब की संकीर्णताओं से ऊपर उठ कर खुले मैदान में आने लगे थे। इस क्षेत्र में सीरिया, मिस्र और ईराक दूसरों की अपेक्षा ज्यादा प्रगतिशील थे।

इस क्षेत्र में अब्दुल्ला अल बुस्तानी, अहमद शौकी, जमील सिदकी, अलजहावी, अलरुस्तफी इत्यादि साहित्यकारों के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। अहमद शौकी की रचनाओं में "मजनू-लैला" "अली-बे-अल कबीर" "अमीरत-अल-अन्दुलस" इत्यादि रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। अल जहावी की "सौरह फिअल-जहीम" (नरक में विद्रोह) नामक रचना अरबी साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुई।

अराकान

बर्मा का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह; जहाँ पर सत्रहवीं सदी में मंगोल राजवंश राज्य करता था। बंगाल के चटगाँव जिले के सबंध मे बंगाल के मुसलमान शासकों और अराकान के मंगोल राजाओं में संघर्ष होता रहता था। यद्यपि सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में दोनों पार्टियों ने केर्नो नदी को दोनों राज्यों की सीमा मान लिया था मगर अराकानियों के जहाजी बेड़े में बहुत से पुर्तगीज नाविक भर्ती हो गये थे ये लोग चटगांव में बस गये थे और कइयों ने वहाँ की औरतों से शादी कर ली थी। इन जोड़ों से उत्पन्न होनेवाली अधगोरी सन्तानें भी अराकान के जहाजी बेड़े में भर्ती हो गई थी।

ये लोग बड़े साहसी और चतुर नाविक थे। इनमें माघ और पुर्तगीज दोनों जातियों के लोग थे। ये जलमार्ग से बंगाल में घुस आते थे और लूट-मार करके भाग जाते थे। इन लोगों की हरकतों से बंगाल का वह भाग उजाड़ हो चला था। अपनी लूट के माल में से ये लोग आधा भाग अराकान के राजा को दे देते थे और आधा आपस में बाँट लेते थे। ये लोग "हरमद" कहलाते थे।

पूर्वी बंगाल की इस लूट खसोट को समाप्त करने के लिए बादशाह ने शाईस्ता खाँन को बंगाल का सूबेदार बनाकर भेजा, शाईस्ता खाँ बड़ा मेहनती, उत्साही और बहादुर आदमी था उसने इन समुद्री डाकुओं का मुकाबिला करने के लिए तुरन्त एक वर्ष के भीतर एक जहाजी बेड़ा तैय्यार करवाया और उसे सम्पूर्ण युद्ध सज्जा से सज्जित करके बहुत से फिरंगियों को अच्छी नौकरी की लालच देकर अपनी ओर फोड़ लिया। सन् १६६५ में उसने एकाएक आक्रमण करके "सन्दीप" टापू को जीत लिया।

अब शाइस्ता खाँ ने चटगाँव को जीतने की योजना बनाई। उसने अपने लड़के उम्मेद खाँ को एक भारी सेना देकर खुश्की रास्ते से और इब्नसऊद की कमान में अपना जहाजी बेड़ा जलमार्ग से भेजा। इस लड़ाई में मुगल सेना ने अराकानियों को करारी हार दी, अराकानियों के १३० जहाज मुगल सेना के हाथ लगे और चटगाँव पर मुगल फौजों का अधिकार हो गया।

अराकी

एडमिरल अराकी, जापान के सैतो मन्त्रिमण्डल का एक प्रभावशाली सदस्य।

सैयुकाई दल के नेता श्री इनुकाई की हत्या (सन् १६३२) हो जाने के पश्चात् जनरल सैतो और जनरल अराकी के नेतृत्व में जापान में नये मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ। जिस समय मंचूरिया में अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए जापानी सरकार पूरा प्रयत्न कर रही थी उस समय जनरल अराकी ही उसका प्रधान संचालक था। इनका मन्त्रिमण्डल १६३४ तक कायम रहा।

अरीता

जापान का परराष्ट्र मन्त्री, जो थी मत्सुओका से पूर्व जापान का विदेश मन्त्री था (सन् १९४०)

द्वितीय महायुद्ध के समय में अरीता जापान का एक प्रभावशाली परराष्ट्र मन्त्री था जब द्वितीय महायुद्ध चल रहा था और जर्मन सेनाएँ हालैण्ड की भूमि को रौंद रही थी उस समय दक्षिण पूर्वा एशिया के हालैण्ड के साम्राज्य को खतरे में देख जापान की निगाह उस तरफ गई और विदेश मंत्री अरीता ने अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहा कि—

"यदि यूरोपीय युद्ध की प्रगति के कारण डच ईस्ट इण्डीज या इण्डोनेशिया की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुआ तो जापान उसकी उपेक्षा नहीं कर सकेगा। क्योंकि नीदरलैण्ड ईस्ट इण्डीज का जापान के साथ बहुत अधिक घनिष्ठ और आर्थिक सम्बन्ध है" अरीता को डर था कि जब जर्मनी हॉलेण्ड पर कब्जा कर लेगा तो हॉलैण्ड के अधीनस्थ इण्डोनेसिया ब्रिटेन और अमेरिका के प्रभाव में चला जायेगा और जापान को वहां से पेट्रोल, रबर, टीन आदि वस्तुएँ मिलना बन्द हो जायेंगी। जापान को यह इष्ट नहीं था इसलिए विदेश मंत्री अरीता ने पहले ही यह घोषणा कर दी।

अरकचे येफ

रूस के जार अलेक्झेंडर प्रथम का सलाहकार जनरल अरक्चेयेफ। यह किसानों की अर्द्धदासता का जबर्दस्त समर्थक था। इसी के कहने से अलेक्झेण्डर ने किसानों की इच्छा के विरुद्ध उनकी सैनिक बस्तियाँ बसाई थीं। रूस की पश्चिमी सीमा पर सन् १८२० के करीब ३७५ हजार सैनिक बस्तियां थीं। किसानों ने जबर्दस्ती बसाई जाने वाली सैनिक बस्तियों के खिलाफ कई विद्रोह किये जिनको जनरल अरक्चेयेफ ने निर्दयतापूर्वक दबा दिये। कुछ लोगों ने जब जार से इन सैनिक बस्तियों को उठा देने के लिए कहा तो उसने जवाब दिया कि "हर हालत में सैनिक बस्तियाँ मौजूद रहेंगी चाहे इसके लिए हमें पीटर्स बर्ग से चूदवालक के सारे रास्ते लाशों से ढक देने पड़े।"

अर्बन द्वितीय

रोमन चर्च का अधिपति जो सन् १०६५ में रोमन चर्च की गद्दी पर था।

उन्हीं दिनों सेलजुक तुर्क लोगों ने शक्तिशाली होकर रोमन साम्राज्य के पूर्वीय भाग के कुस्तुन्तुनिया के सम्राट् को हरा दिया। (सन् १०७१) और एशिया माइनर को छीन लिया। ये लोग जेरूसलेम और फिलस्तीन जाने वाले ईसाई यात्रियों को सताने लगे। कुस्तुन्तुनिया के ठीक सामने नेसिया का किला था वह तुर्कों के हाथ में था। यह रोम के पूर्वीय साम्राज्य के लिए घातक था।

सन् १०८१–१११८ में सम्राट् अलेक्सियस रोम की गद्दी पर बैठा। उसने नास्तिकों को निकालने में अपने को असमर्थ समझा, चर्च के अधिपति अर्बन द्वितीय से सहायता माँगी।

अर्बन द्वितीय ने सन् १०६५ में फ्रान्स के क्लेर्मण्ट नामक स्थान में एक धर्म-सभा बुलाई।

पोप ने अपने निमंत्रण पत्र में—जिसका परिणाम इतिहास बहुत अच्छा हुआ—वीर भटों और पैदल सिपाहियों के आपसी कलह की तीव्र निन्दा की और पूरब में अपने पीडित भाइयों की रक्षा के लिए सब ईसाई मतावलम्बियों को आह्वान किया। उसने लिखा—

"यदि ऐसा न किया जावेगा तो अहंकारी तुर्क अपनी शक्ति को बढ़ाते चले जावेंगे और ईश्वर के सच्चे सेवकों को दुःख देंगे। मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारे ईश्वर का वह पवित्र समाधि स्थान जो कि अपवित्र नास्तिकों के हाथ में पड गया है तुम्हारे द्वारा फिर से अपने अधिकार में आ जाय। ईश्वर इसके लिये तुम्हें शक्ति दे। वहाँ की पवित्र भूमि दूध और शहद से भरी पड़ी है। पवित्र मन्दिर की यात्रा का मार्ग पकड़ो। दुष्टों के हाथ से उसे छुड़ाकर अपने अधीन कर लो। ईश्वर तुम्हारा सहायक है।"

इस एहलान के साथ अर्बन द्वितीय ने लोगों को उस महान् क्रूसेड यात्रा के लिए आह्वान किया जिसके बड़े-बड़े वर्णनों से यूरोप के मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठ रंगे हुए पड़े हैं।

पोप ने कहा "जो लोग क्रूसेड यात्रा करना चाहते हैं उन्हें जाते समय एक क्रॉस छाती पर बाँधना पड़ेगा और यह दिखलाने के लिए कि वे अपना काम पूरा करके लौट रहे हैं उसी क्रास को लौटते समय पीठ पर बाँध कर आना होगा।

अर्बन ने इस भाषण के द्वारा केवल उन्हीं लोगों को उत्तेजित किया था जो अपने स्व-जातीय बन्धुओं से लड़ रहे थे तथा जो डाकू पेशा थे। इन लोगों ने पोप की बात पर विशेष ध्यान दिया और इनमें से बहुत से क्रूसेडर (धर्मयोद्धा) हो गये।

अर्बन पंचम

रोमन चर्च का पोप (सन् १३६६) जिसने इंग्लैण्ड के राजा से वह कर माँगा जो कि पोप का सामन्त होने पर राजा जॉन ने देने का वचन दिया था। इसके उत्तर में इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट ने कहा कि बिना अनुमति लिये प्रजा को इस प्रकार के बन्धन में डालने का राजा जॉन (इंग्लैण्ड का पूर्ववर्ती राजा) को अधिकार नहीं था। इस समय पर जॉन विक्लिफ नामक आलोचक ने पोप की कठोर आलोचना करना प्रारम्भ की। उसने सिद्ध करना चाहा कि राजा जॉन के साथ पोप की जो शर्तें हुई थीं वह न्याययुक्त न थी। उसने इस बात का जोरों से समर्थन करना प्रारम्भ किया कि यदि धर्मसंस्था को सम्पत्ति का दुरुपयोग हो तो राजा को उसे जब्त करने का अधिकार है तथा बाइबिल के अनुसार काम करने के अतिरिक्त पोप को और किसी बात का अधिकार नहीं है।

अर्जुन देव गुरु

सिक्ख सम्प्रदाय के पाँचवें गुरु। गुरु अर्जुन देव सिक्ख सम्प्रदाय के चौथे गुरू रामदास के पुत्र थे। गुरु अमर दास इनके नाना थे। इनका जन्म सन् १५६३ में अपने नाना के घर हुआ था।

गुरु अर्जुन देव ने सिक्ख धर्म के लिए अपने छोटे से जीवन काल में बहुत से काम किये। अमृतसर, तरन तारन जैसे नगरों में उन्होंने कई तालाब खुदवाये। सिक्खों की शिक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध किया। इनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य "आदिग्रंथ" का सम्पादन और संशोधन करवाना था। यही आदिग्रन्थ आज तक सिक्ख सम्प्रदाय के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन का काम कर रहा है। आदिग्रन्थ को उन्होंने गुरु अङ्गद द्वारा निर्मित गुरुमुखी लिपि में भाई गुरुदास से लिखवाकर सन् १६०४ में तैय्यार किया था। गुरु अर्जुन देव की रचनाएँ उक्त ग्रन्थ के अन्तर्गत संख्या में सबसे अधिक है और वे महला ५ के नीचे भिन्न-भिन्न रागों में लिखी गई हैं।

गुरु अर्जुनदेव को कुछ लोगों के षड्यंत्र से बादशाह जहाँगीर के राज्य काल में राजद्रोही घोषित करके जेल में डाल कर अनेक कष्ट दिये गये। वहाँ से निकलने के बाद केवल ४३ वर्ष की अवस्था में राबी नदी में डूब कर इन्होंने जल समाधि ले ली।

अर्जुन

कन्नौज के सम्राट् हर्षवर्द्धन का एक मंत्री जिसने सम्राट् हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त सिंहासन पर अधिकार कर लिया तथा अपने दरबार में चीन के राजदूत वांग-ह्वेन-सी पर आक्रमण किया। इस समाचार से तिब्बत का राजा स्रांग त्सन्-गम्-पो बहुत नाराज हुआ और उसने भारतवर्ष पर आक्रमण कर तिरहुत को जीत कर अर्जुन को बन्दी बना लिया।

अर्विद जर्नेफिल्ट

फिनलैण्ड का प्रसिद्ध साहित्यकार जिसका समय १८६१-१९३२ तक है। यह टालस्टाय के अनुकरण पर लिखने वाला एक प्रतिभाशाली साहित्यकार था। उसके कई उपन्यास, नाटक और कहानियों की रचनाएँ फिनलैण्ड के साहित्य में एक सुघड़ परम्परा का प्रारम्भ करती है।

अर्किलोकस

ग्रीक साहित्य में लिरिक काव्य का रचयिता प्राचीन ग्रीक-कवि।

आर्किलोकस का समय ईस्वी पूर्व सातवीं सदी समझा

जाता है। इस कवि के आइएम्बिक छन्दों में अपनी कविताएँ लिखीं जो आगे के कवियों के लिये मार्ग-दर्शक बनी। ये कविताएँ उसने अपना अपमान करने वाली पत्नी और उसके पिता के विरुद्ध लिखीं। आर्किलोकस की कविताएँ राजनीति और प्रेम दोनों विषयों पर होती थीं।

अरिस्टो फेनीज

ग्रीक नाट्य-साहित्य में कॉमेडी (सुखान्त) नाटकों का प्राचीन लेखक। इसका समय ई० पू० ४५० से ३८५ तक है।

अरिस्टो फेनीज के ग्यारह कॉमेडी नाटक इस समय उपलब्ध हैं। अरिस्टो फेनीज एथेन्स की प्राचीन कॉमेडी का सबसे प्रधान लेखक था। उसने अपने कई नाटकों में एथेंस और स्पार्टा के पारस्परिक युद्धों के खिलाफ शांति स्थापना के पक्ष में आवाज उठाई थी। इन नाटकों में एथेन्स के युद्ध लोलुप लोगों की बड़ी मजाक उड़ाई गई है।

अर्णो राज

अजमेर के प्रसिद्ध चौहान वंशीय राजा अजय राज का पुत्र। इसको आनाख, आनलदेव और आनाजी भी कहते हैं। इसका समय ई० सन् ११०८ और ११५० के बीच माना जाता है।

अर्णोराज की तीन रानियाँ थीं पहली मारवाड़ की सुधवा, दूसरी गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह की कन्या कान्चन देवी और तीसरी सोलंकी राजा कुमार पाल की बहन देवल देवी।

इनमें से पहली रानी सुधवा से उसके जगदेव और विग्रह राज नामक दो पुत्र हुए तथा दूसरी रानी से सोमेश्वर नामक एक पुत्र हुआ।

अर्णोराज ने अजमेर में आना सागर नामक तालाब बनाया।

अर्णोराज की अपने साले सिद्धराज से और गुजरात के राजा कुमार पाल से लड़ाइयाँ हुई थीं। कुमारपाल के एक राज कर्मचारी आहड़ को अर्णोराज ने अपनी तरफ मिला लिया था और आहड़ ने कुमारपाल के सैनिकों को धन देकर पहले ही अपनी तरफ मिला लिया था। इसलिये जब कुमारपाल और अर्णोराज के बीच लड़ाई शुरू हुई तो कुमारपाल के सैनिक बिना लड़े ही पीठ दिखाकर भागने लगे। यह स्थिति देख कर कुमारपाल अपना हाथी अर्णोराज के समीप ले गया और अपने बाण से अर्णोराज को घायल करके कुमारपाल ने उसके हाथी घोड़े छीन लिये इस पर अर्णोराज ने अपनी बहन जल्हण का विवाह कुमारपाल से करके आपस में मैत्री कर ली।

सन् ११५१ में अर्णोराज के बड़े पुत्र जगदेव ने अर्णोराज की हत्या कर डाली और खुद राजगद्दी पर बैठ गया।

अरविन्द घोष

बंगाल के महान राजनैतिक और आध्यात्मिक नेता। बंगाल के अन्तर्गत बंग-भंग के समय जिन महान नेताओं ने देश में जागृति की ज्योति फैलाई थी उनमें श्री अरविन्द घोष का आसन बहुत ऊँचा है।

श्री अरविन्द घोष का जन्म लन्दन में हुआ था। वहीं पर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। देश लौट कर शुरू-शुरू में वे बड़ौदा कालेज के वाइस प्रिंसिपल हो गये। मगर जब बंगाल में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ तब वे कलकत्ता चले गये और "वन्दे मातरम्" नामक अंग्रेजी पत्र का सम्पादन करने लगे। अंग्रेजी भाषा पर उनका अद्‌भुत अधिकार था और उनके लेखों में लोकमत को उत्तेजित करने की भारी शक्ति थी। लोग उनके लेखों को बड़े आदर के साथ पढ़ते थे। बंगाल के राजनैतिक जागरण के समय वे वहाँ के एक प्रभावशाली नेता थे।

अलीपुर के प्रसिद्ध षड्यंत्र केस में श्री अरविन्द घोष भी पकड़ लिये गये और उन पर हत्या तथा राजद्रोह के भयंकर आरोप लगाये गये। मगर उस समय के प्रमुख और तरुण वकील देशबन्धु चितरंजन दास की तर्क-पूर्ण पैरवी से वे उस केस से छूट गये।

मगर श्री अरविन्द घोष का महत्व संसार में उनकी राजनैतिक प्रवृत्तियों से नहीं अपितु उनकी आध्यात्मिक

प्रवृत्तियों से बहुत बड़ा है। षडयन्त्र केस से मुक्त होने के कुछ ही समय बाद वे ब्रिटिश भारत को छोड़ कर पाण्डुचेरी चले गये और वहाँ पर उन्होंने एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक आश्रम की स्थापना की। आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्होंने जो महान चिन्तन और मनन किया और उसके आधार पर जो साहित्य तैय्यार किया वह न केवल भारत वर्ष में प्रत्युत् समस्त संसार के आध्यात्मिक साहित्य में एक अपूर्व निधि की तरह सुरक्षित रहेगा। अरविन्द घोष ने अपने चिन्तन और अनुभूतियों के द्वारा भारतीय योग-शास्त्र को नवीन और आधुनिक रूप दिया है। उनके आश्रम से सैकड़ों जिज्ञासुओं ने अपनी आत्म-पिपासा को शान्त किया है। उनका लिखा हुआ "सावित्री" नामक महाकाव्य साहित्य और आध्यात्मिक विज्ञान को उनकी एक अनोखी देन है।

अरविन (वाइसराय)

सन् १६२८ में भारत के सुप्रसिद्ध वाइसराय लार्ड अरविन। जिनके शासन काल में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अपने लाहौर अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को छोड़ कर तथा नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकार कर पूर्ण स्वतन्त्रता को भारत का लक्ष्य घोषित किया।

सन् १६२८ में कांग्रेस अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार को यह अल्टीमेटम दिया गया कि यदि सरकार ३१ दिसम्बर १६२६ तक सर्वदल सम्मेलन द्वारा आयोजित नेहरू रिपोर्ट को पूर्ण रूप से स्वीकार कर ले तो कांग्रेस उतने से ही सन्तुष्ट हो जायगी अन्यथा वह पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित कर अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का संगठन करेगी।

इस पर तत्कालीन वाइसराय लार्ड अरविन ने ३१ अक्टूबर १६२६ को यह घोषित किया कि २० अगस्त १६१७ के प्रसिद्ध वक्तव्य के अन्तर्गत सरकारी नीति का खास लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य ही है और इसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए सरकार ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की एक राउण्ड टेबिल कान्फरेन्स बुलाने का विचार कर रही है मगर इस परिषद् से कांग्रेसी लोग सन्तुष्ट नहीं हुए और उन्होंने लाहौर कांग्रेस में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर दी।

और इसके परिणामस्वरूप अपने लक्ष्य पर आगे बढ़ने के लिये गाँधी जी ने नमक कानून भंग करने का एलान किया। १२ मार्च सन् १६३० को उनकी सुप्रसिद्ध डांडी-यात्रा प्रारम्भ हुई। इस आन्दोलन के फलस्वरूप सारे देश में अपूर्व उत्साह का संचार हुआ और सारे देश में चारों ओर नमक कानून भंग किया जाने लगा। सारे देश में गिरफ्तारियाँ हुईं, जुलूसों पर लाठी-प्रहार किये गये। हजारों स्त्री-पुरुषों से देश की जेलें भर गईं।

अन्त में भारतीय नेता तेजबहादुर सप्रू, जयकर, श्रीनिवास शास्त्री इत्यादि की मध्यस्थता से १७ फरवरी १६३१ को महात्मा गाँधी लार्ड अरविन से मिले और ३१ मार्च सन् १६३१ को भारत के राजनैतिक इतिहास में प्रसिद्ध गाँधी-अरविन पैक्ट हो गया। असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया, सम्पूर्ण राजनैतिक बन्दी मुक्त कर दिये गये और दूसरी राउण्ड टेबिल कान्फरेन्स की तैय्यारी होने लगी। अप्रैल सन् १६३१ में लार्ड अरविन त्यागपत्र देकर चले गये।

अर्थ शास्त्र

मनुष्य और समाज की आर्थिक परम्पराओं का नियमन करके आर्थिक जीवन को सुसंगठित करने में पथ प्रदर्शन करने वाला शास्त्र जिसे अंग्रेजी में इकानोमिक्स (Economics) कहते हैं।

विज्ञान के विकास के साथ जब समाज में मशीन युग का आविर्भाव हुआ और समाज का उत्पादन छोटे-छोटे घरेलू उद्योगों के बजाय बड़े-बड़े विशालकाय कारखानों के द्वारा होना प्रारंभ हुआ, तब सारे संसार में एक महान् औद्योगिक क्रान्ति हुई और समाज में पूंजीवादी वर्ग और मजदूर-वर्ग नाम के ऐसे दो वर्ग कायम हो गये।

इसी औद्योगिक क्रान्ति की वजह से समाज में १—धन की उत्पत्ति, २—धन का विनिमय, ३—धन का वितरण और ४—धन का उपभोग। इन चारों चीजों का

नियमन करने के लिए एक नवीन शास्त्र के निर्माण की आवश्यकता हुई।

इसके पहले भी धन की उत्पत्ति और विनिमय सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिए समाज में कुछ नियम बने हुए थे, मगर उन्होंने एक विशिष्ट शास्त्र का एक रूप ग्रहण नहीं किया था।

भारत में आज से ढाई हजार वर्ष पहले मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक आचार्य कौटिल्य का लिखा हुआ 'अर्थ-शास्त्र' इस समय पाया जाता है। यह अर्थ शास्त्र वास्तव में राजनीति और समाज नीति को निर्देश करने वाला महान् ग्रन्थ है, मगर आधुनिक अर्थ-शास्त्र की परिभाषा में इसका पूर्ण रूप से समावेश नहीं हो सकता।

वर्तमान रूप में अर्थ-शास्त्र के शास्त्रीय रूप का विकास पाश्चात्य देशों में प्रारम्भ हुआ। मशीन युग का प्रारम्भ सबसे पहले वहाँ होने के कारण वहाँ पर इस शास्त्र को फूलने-फलने का अनुकूल वातावरण मिला। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री आदम स्मिथ अर्थ-शास्त्र के जन्मदाता माने जाते हैं। मार्शल ने इस शास्त्र को स्थायी रूप प्रदान करने में सराहनीय कार्य किया है। अब बहुत तीव्रगति से इस शास्त्र का विकास हो रहा है और इसकी गणना सामाजिक विज्ञान में होने लगी है।

फिर भी अर्थ-शास्त्र के बहुत से सिद्धान्त अभी तक निर्विवाद नहीं हैं। पूँजीवादी और साम्यवादी देशों की आर्थिक धारणाओं में कई स्थानों पर मौलिक अन्तर पाया जाता है।

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध विद्वान जॉन रस्किन ने उन्नीसवीं सदी में मौजूदा अर्थ-शास्त्र के कई सिद्धान्तों के विरुद्ध (Unto this last) 'अंटू दिस लास्ट' नामक एक छोटी सी पुस्तक में अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी अपने मौलिक विचारों को प्रकट किया। इंग्लैण्ड के पूँजीवादी समाज में इससे बहुत तहलका मच गया था। उसके अर्थ शास्त्र सम्बन्धी विचार अत्यन्त मौलिक थे। उसने अपने पूर्ववर्ती अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्तों का जो समाज में विषमता और पूँजीवाद को जन्म देते हैं, डटकर विरोध किया। कहना न होगा कि रस्किन के इन विचारों का आगे जाकर अर्थशास्त्र की पुरानी धारणाओं पर काफी प्रभाव पड़ा। फिर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों समाज में पूँजी और मजदूरी की विषमता कम होती जा रही है, त्यों-त्यों इस शास्त्र के सिद्धान्त स्थायी रूप ग्रहण करते जा रहे हैं।

अरस्तू (Aristotal).

यूनान का संसार प्रसिद्ध दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, विचारक और समाज-शास्त्री, अफलातून का शिष्य, यूनान की तत्कालीन महान् शिक्षा संस्था "लेसियम" का संस्थापक। जन्म ईस्वी सन् पूर्व ३८४, मृत्यु ईस्वी सन् पूर्व ३२२।

अरस्तू का जन्म मकदूनिया के स्टेगीरा नामक स्थान में ईस्वी सन् से ३८४ वर्ष पूर्व हुआ था। १८ वर्ष की अवस्था में वह एथेन्स आया और शिक्षा प्राप्त करने के लिए अफलातून की एकेडेमी में भरती हुआ और बीस वर्ष तक अर्थात् अफलातून की मृत्यु तक वह उसी एकेडेमी में रहा। इन बीस वर्षों के लगातार सम्पर्क के कारण अफलातून की विचारधारा का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। ईस्वी सन् से ३४२ वर्ष पूर्व वह मकदूनिया में संसार के महान विजेता सिकन्दर महान् का शिक्षक नियुक्त हुआ। ईस्वी सन् पूर्व ३३४ में उसने फिर एथेन्स में आकर अपने प्रसिद्ध विद्यालय "लेसियम" की स्थापना की।

अरस्तू यद्यपि अफलातून का शिष्य था और उसकी आचार शास्त्र सम्बन्धी तथा राजनैतिक विचार धाराओं का उसके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था फिर भी वह उसका अन्धानुयायी न था। अफलातून ने राज्य के सम्बन्ध में जहाँ एक आदर्श की खोज में उत्कृष्ट कल्पनाएँ कीं वहाँ इस बात की उसने तनिक भी चिन्ता नहीं की कि मानवीय दुर्बलताओं को मद्देनजर रखते हुए वास्तविकता के धरातल पर इस आदर्श की स्थापना सम्भव है या नहीं। मगर अरस्तू ने अपनी हरएक विचारधारा का निर्णय करते समय मानवीय दुर्बलता और समाज की स्थिति को कभी नजरअन्दाज नहीं किया। साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि अफलातून एक महान् भावुक और कल्पनावादी विचारक था जबकि अरस्तू एक यथार्थवादी और जीवन की वास्तविकताओं पर ध्यान देने वाला महान् व्यक्ति था। उसने कल्पना और सिद्धान्त तथा

वास्तविकता और व्यवहार के बीच स्पष्ट रूप से एक विभाजक रेखा खींचकर अपनी विचारधारा का संचालन किया है।

पालिटिक्स

अरस्तू की सबसे महान् और संसार प्रसिद्ध रचना "पालिटिक्स" नामक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आठ खण्डों में विभक्त है। इनमें से सातवें और आठवें खण्ड में आदर्श राज्य और उसके सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। चौथे, पाँचवे तथा छठे खण्ड में संविधानों का स्वरूप, उसके भेद तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। पहला खण्ड इस विशाल ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका को तरह है। इस प्रकार आदर्श की स्थापना तथा यथार्थ का विश्लेषण एक ही ग्रन्थ में कर अरस्तू ने एक नवीन राजनीति विज्ञान को जन्म दिया।

राज्य का स्वरूप

पॉलिटिक्स के प्रथम खण्ड में राज्य के स्वरूप तथा उसकी स्थापना के सम्बन्ध में इस महान् दार्शनिक ने युक्तियुक्त ढङ्ग से विवेचन किया है।

अरस्तू का मत है कि राज्य की उत्पत्ति मानव जीवन की सुख-सुविधा के लिए हुई और जीवन में सुख और सुविधा का योगक्षेम करने के लिए ही वह जीवित है। राज्य सिर्फ व्यक्तियों का समुदाय नहीं है बल्कि वह समुदायों का समुदाय है। यह समुदाय एक स्वाभाविक समुदाय है क्योंकि इससे अलग रहकर मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। राज्य ऐसे लोगों का सगठन है जो एक दूसरे से भिन्नता रखते हुए भी कुछ सामान्य आधारों में एकमत हैं। जिस प्रकार मानव-विकास के लिए परिवार एक स्वाभाविक संस्था है उसी प्रकार राज्य उससे भी अधिक मानव-विकास के लिए अवश्यक और स्वाभाविक है। व्यक्ति के विकास का जो कार्य परिवार में प्रारम्भ होता है उसकी पूर्ण परिणति राज्य में होती है।

आगे चल कर अरस्तू कहता है कि राज्य यद्यपि एक स्वाभाविक संस्था है पर मानव-आकांक्षा से वह सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। भिन्न-भिन्न काल और भिन्न-भिन्न देशों में उसके सदस्यों की मनोभावना के अनुसार उसके भिन्न-भिन्न रूप निर्धारित होते हैं।

राज्य मानव-जातिका एक सर्वोच्च समुदाय है। परिवार, ग्राम इत्यादि अन्य सभी मानव-समुदाय इसमें शामिल हैं। जिस प्रकार विभिन्न अङ्गों से परिपूर्ण मानव-शरीर एक पूर्ण समष्टि है, कोई भी अङ्ग उस समष्टि से अलग होकर जीवन धारण नहीं कर सकता। आँख तभी देख सकती है और कान तभी सुन सकते हैं जब कि वे शरीर की पूर्ण समष्टि से अभिन्न हों। इसी प्रकार राज्य भी मानव समुदाय की एक महान् समष्टि है कोई भी परिवार या कोई भी ग्राम उससे अलग रहकर अपने वास्तविक स्वत्व की रक्षा नहीं कर सकता।

यहाँ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात को ध्यान में रखना आवश्यक है वह यह कि अरस्तू की राज्य की कल्पना का क्षेत्र उस समय यूनान में स्थापित "नगर राज्य" की कल्पना तक ही सीमित है। उसी को वह मानव समाज का अन्तिम और पूर्णरूप मानता है। बड़े-बड़े साम्राज्यों की स्थापना का वह विरोधी था। उसके विचार में बड़े साम्राज्यों की स्थापना मनुष्य की उन्नति की नहीं पतन की सूचक हैं। अपने खास शिष्य सिकन्दर की जिगीषा प्रकृति और महान् साम्राज्य स्थापना की लालसा को उसने कभी पसन्द नहीं किया।

राज्य का कार्य्य-क्षेत्र

राज्य के कार्य्य क्षेत्र में मानव कल्याण की कौन-कौन सी चीजों का समावेश होता है और राज्य अपने नागरिकों से किस प्रकार का सहयोग चाहता है इसकी विवेचना करते हुए अरस्तू कहता है कि राज्य पर मानव-जीवन को सुख पहुँचाने वाले सभी कार्य्य करने की पूर्ण जिम्मेदारी है केवल अपने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा तथा न्याय प्रदान करने तक ही उसकी सीमाएँ सीमित नहीं हैं। राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण निषेधात्मक (Negative) नहीं बल्कि रचनात्मक (Poseuve) है। उसके मतानुसार राज्य का कार्य्य मानव जीवन को केवल पापों से रोकना नहीं बल्कि अपने नागरिकों को पूर्ण नैतिक और धर्मयुक्त बनाना है। इस कार्य्य में वह भारतीय राजनीति

शास्त्र के अत्यन्त सन्निकट है जिसमें राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए बतलाया है कि राजा की जिम्मेदारी प्रजा की केवल इहलौकिक सुख सम्पदा तक ही परिमित नहीं है प्रत्युत उसकी पारलौकिक सुख-सम्पदा की जिम्मेदारी भी उस पर है अर्थात् वह अपनी प्रजा के धर्म और आचरण का इस प्रकार निर्माण करे कि उसका सुपरिणाम उसे परलोक में भी प्राप्त हो।

अरस्तू का भी यही कहना है कि वह राज्य जो अपने सदस्यों की पाप वृत्तियों को दबाने तक ही सीमित रहता है और उन्हें धर्मयुक्त जीवन व्यतीत करने के लिए कोई शिक्षा नहीं देता वह एक सच्चा राज्य कदापि नहीं हो सकता। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि आगे के यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने राज्य का कर्तव्य मनुष्य की अपराध वृत्ति पर बन्दिश लगाने तक ही अर्थात् उसके निषेधात्मक स्वरूप तक ही निश्चित किया है।

सम्पत्तिका स्वरूप और उसका उपयोग

अरस्तू ने अपने ग्रन्थ पॉलिटिक्स में सम्पत्ति के स्वरूप उसकी मर्यादा और उसके उपयोग की विस्तार के साथ विवेचना की है। उसके मतानुसार सम्पत्ति का मूलभूत उद्देश्य नैतिक और धर्मपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करना है। उसकी भूख को शान्त करने के लिए अच्छा भोजन, ऋतुओं की आवश्यकता के अनुसार पहनने को वस्त्र और रहने को हवादार मकान तथा आतिथ्य, उदारता और मित्रता जैसी सद्प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिए आवश्यक साधनों की पूर्ति, ये सब चीजें सम्पत्ति के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। सम्पत्ति का संग्रह उतना ही होना चाहिए जो समाज में सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर दे; उससे अधिक संग्रह करने की प्रवृत्ति मनुष्य में पाप भावनाओं का उदय करती है और वह एक अच्छे जीवन के मार्ग में साधक न होकर बाधक हो जाती है।

जिस प्रकार सम्पत्ति का अभाव राज्य और समाज के लिए घातक होता है उसी प्रकार बल्कि उससे भी बहुत अधिक सम्पत्ति का प्रभाव समाज के लिए घातक होता है।

मुद्रा के प्रयोग और प्रचार के सम्बन्ध में आज से तेईस सौ वर्ष पूर्व प्रकट किये गये अरस्तू के विचार मनन करने के योग्य है। अरस्तू के मतानुसार मुद्रा केवल एक साधन है लक्ष्य नहीं। मुद्रा की रचना केवल विनिमय की सुविधा के लिए हुई है। इस वस्तु को तथा व्यापार को धन संचय का एक साधन बनाना इस चीज को अरस्तू अस्वाभाविक तथा समाज के लिए घातक समझता है।

अरस्तू के मतानुसार निजी सम्पत्ति की व्यवस्था अच्छे जीवन के लिए एक आवश्यक साधन है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए वह नितान्त आवश्यक है। सम्पत्ति के सम्बन्ध की इस विचारप्रणाली में वह अफलातून की पद्धति को पसन्द नहीं करता जिसमें अफलातून ने निजी सम्पत्ति की व्यवस्था का अपने रिपब्लिक में कड़ा विरोध किया है। अरस्तू के मतानुसार एक मर्यादित मात्रा में निजी सम्पति का होना मानव जीवन के लिए परम आवश्यक है इसके अभाव में मनुष्य उचित तरीके से अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सकता। जो लोग होटल तथा घरके भोजन में, निजी मकान तथा किराये के मकान में, तथा एक पत्नी और वेश्या के बीच में एक भिन्नता महसूस करते हैं वे निजी सम्पत्ति और सार्वजनिक सम्पत्ति के इस अन्तर को भली प्रकार समझ सकते हैं। निजी सम्पत्ति में एक आत्मानुभुति रहती है, वह एक ऐसा दर्पण है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपना प्रतिबिम्ब देखता है। बिना निजी पूंजी के एक पूर्ण नागरिक जीवन व्यतीत करना असम्भव है।

निजी सम्पत्ति का समर्थन करने के साथ साथ उसके वितरण में किसी हद तक विषमता का भी अरस्तू ने समर्थन किया है, पर हर स्थान पर उसने सम्पत्ति की मर्यादाएँ निश्चित की हैं। उसका मत है कि समाज में असली और भयङ्कर भूल जो समाज का विच्छेद कर डालती है तभी प्रारम्भ होती है जब मनुष्य सम्पत्ति को एक साधन न मान कर जीवन का लक्ष्य मानना प्रारम्भ कर देता है। और इस साधन को लक्ष्य समझ लेने के कारण ही समाज में वर्ग संघर्ष और शोषण की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अरस्तू का सम्पत्ति के सम्बन्ध में सारभूत मन्तव्य यह

है कि सम्पत्ति का स्वामित्व निजी हो मगर उसका उपभोग सार्वजनिक हो और इस प्रकार वह व्यक्तिवाद तथा साम्यवाद दोनों के बीच के एक मध्यवर्ती मार्ग का अवलम्बन करता है।

अरस्तू और वैधानिक शासन

राज्य के शासन को विधान की मर्यादा से मर्यादित कर उसमें कानून को प्रधान स्थान देने वाले यूरोपीय राजनीतिज्ञों में अरस्तू का स्थान सबसे पहला है। अफलातून ने अपने रिपब्लिक ग्रन्थ में आदर्श राजा की इच्छा को ही सबसे बड़ा कानून माना था, यद्यपि आगे जाकर अपने "लॉज" (Laws) नामक ग्रन्थ में मानवीय दुर्बलताओं पर विजय पाने के लिए कानून की आवश्यकता को स्वीकार की है। पर कानून के शासन को उसने आदर्श शासन के रूप में स्वीकार नहीं किया है।

मगर अरस्तू राज्य तथा सामाजिक जीवन के लिए कानून की स्थापना को अनिवार्य समझा है। कानून के समर्थन में उसका विचार है कि अधिक से अधिक बुद्धिमान मनुष्य का काम भी समाज में कानून के बिना नहीं चल सकता। मनुष्य में स्वभावतः ऐसी कमजोरिया और विकार रहते हैं कि यदि उनपर कानून का नियंत्रण नहीं तो वे समाज में अशान्ति और अराजकता का वातावरण पैदा कर सकते हैं। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि राज्य और शासन पर मानवीय विकारों का प्रभाव न पड़े तो हमें कानून को सर्वोपरि और राज्य को उसके आधीन बनाना होगा। कानून की छाया में मनुष्य की वासनाओं पर नियंत्रण होकर उसको पूर्ण विकसित होने का अवसर मिलता है। कानून से समर्थित शासन अनियंत्रित शासन की अपेक्षा इसलिए भी श्रेष्ठ है कि इसमें प्रजा के सम्मान की जो रक्षा हो सकती है वह निरंकुश शासन में नहीं हो सकती।

नागरिकता की व्याख्या

नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में अरस्तू ने जो व्याख्या की है वह आजकल के नागरिक अधिकारों की व्याख्या से बहुत भिन्न है। अरस्तू के मतानुसार एक राज्य में रहने वाला हर एक व्यक्ति वहां की नागरिकता के अधिकार को प्राप्त नहीं कर सकता। नागरिक अधिकारों की कसौटी निवास स्थान, कानूनी अधिकार और जन्म के आधार पर भी निश्चित नहीं की जा सकती। अरस्तू के मतानुसार नीति निर्धारक तथा न्याय सम्बन्धी कार्यों में भाग लेने के लिए एक ऊँचे नैतिक और बौद्धिक स्तर की आवश्यकता है और इतना ऊँचा स्तर राज्य के प्रत्येक निवासी में नहीं पाया जाता। अरस्तू के मतानुसार स्त्रियों, बच्चों, दासों, मिस्त्रियों तथा हाथ से काम करने वाले मजदूरों में यह गुण नहीं पाया जाता इसलिए वे नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने के योग्य नहीं माने जा सकते। इस प्रकार अरस्तू की व्यवस्था में समाज के एक बहुत बड़े भाग को नागरिकता के अधिकारों से वंचित रख दिया गया है।

अरस्तू का मत है कि राज्य की स्थापना एक उत्कृष्ट और सुखमय जीवन की प्राप्ति के लिए हुई है। इसलिए राज्य के पदों को राज्य के प्रति की हुई सेवाओं का पुरस्कार नहीं समझना चाहिए। राज्य के पदों और उसके संगठन में उन लोगों का अधिक भाग होना चाहिए जो नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठतर हैं न कि उनका जो अधिक धनाढ्य हैं या जो स्वतंत्र जन्म के कारण समान हैं किन्तु जो नीति की दृष्टि से हीन हैं। मतलब यह कि अरस्तू राजशक्ति के वितरण में धन और कुलीनता को सापेक्ष अधिकार देता है उनके निरपेक्ष अधिकार को वह स्वीकार नहीं करता। शासन करने का निरपेक्ष अधिकार वह केवल बुद्धि और नैतिकता को देता है।

फिर भी यह यह प्रश्न खड़ा रहता है कि राज्य की सार्वभौम शक्ति किन व्यक्ति या व्यक्ति समूह में केन्द्रीभूत रहना चाहिए। सार्वभौम शक्ति जन-साधारण के हाथ में हो, धनिकों के हाथ में हो, कुलीनों के हाथ में हो या एक सवश्रेष्ठ व्यक्ति के हाथ में हो? अरस्तू का मत है कि सभी पद्धतियों की अपनी अपनी कठिनाइयाँ हैं और यह सिद्धान्त भी कि सभी शक्तियों के ऊपर कानून की शक्ति का नियंत्रण होना चाहिए कठिनाइयों से खाली नहीं है। पर इस विषय पर अत्यधिक विचार मन्थन के पश्चात् वह इसी निर्णय पर पहुँचता है कि "सर्वोच्च शक्ति जनता के हाथ में होना चाहिए कुछ थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में नहीं" यह

सिद्धान्त भी यद्यपि अपवादों से खाली नहीं है फिर भी इसमें सत्य का अंश है।

पर इसके साथ ही अरस्तू यह भी चेतावनी देता है कि यह सिद्धान्त हर प्रकार के समाज पर लागू नहीं हो सकता, यह पिछड़ी हुई जातियों में या ऐसे राज्य में जहाँ कि सर्व-साधारण भले-बुरे का निर्णय करने में असमर्थ है सफल नहीं हो सकता। जिस राज्य में सर्वसाधारण के अन्तर्गत एक उँचे दर्जे की बुद्धि और राजनैतिक चेतना का योग क्षेम हो वहीं यह सिद्धांत लागू हो सकता है और जहाँ जनता इस योग्य हो वहाँ भी राज्य के सर्वोच्च पद तो उन्हीं कुलीन लोगों को दिये जाने चाहिए जो जीवन के प्रारंभ से ही उच्च शिक्षा, दिव्य संस्कार और उन्मुक्त वातावरण में पले तथा विकसित हुए हों। जन साधारण को तो केवल शासन की नीति निर्धारण करने, अधिकारियों और न्यायाधीशों को चुनने और उनके कार्यों की जाँच करने का अधिकार होना चाहिए।

राज्य संस्था के आदर्श और उसके भेद

उपरोक्त बुनियादी बातों का विवेचन करने के उपरान्त अरस्तू राज्य के आदर्श, इसके लिए आवश्यक भौतिक और मानसिक स्थिति तथा उसके विभिन्न भेदों का उल्लेख करता है।

उसका कथन है कि जनसंख्या तथा क्षेत्र के दृष्टिकोण से राज्य को न तो अधिक बड़ा होना चाहिए न अधिक छोटा। यदि राज्य बहुत छोटा होगा तो वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा न कर सकेगा और यदि बहुत बड़ा होगा तो उसमें एकता स्थापित न हो सकेगी। नागरिकों की जन-संख्या में बुद्धि और राष्ट्रीयता के भाव व्यापक हों। ऐसे राज्य को न तो बहुत धनाढ्य होना चाहिए न बहुत गरीब। उसे बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित होना चाहिए। अधिक धन संग्रह, व्यापार या साम्राज्य के विस्तार की आकांक्षा से उसे रहित होना चाहिए। उसका स्वरूप महान् होना चाहिए। विराट् नहीं। अधिक महत्वाकांक्षाओं से उसे ऊपर रहना चाहिए।

इसके बाद अरस्तू ने राज्य के विभिन्न स्वरूपों का दिग्दर्शन कर के उनके गुण दोषों का विवेचन किया है—जिनमें राजतंत्र (Monarchy) मध्य वर्ग तंत्र (Polity) कुलीनतंत्र (Aristocracy) जन तंत्र (Democracy) और आततायी तंत्र (Tyranny) सम्मिलित हैं।

उसके बाद शासन के विभिन्न विभागों का वर्णन किया गया है जिनमें (१) विधान निर्मात्री सभा (२) न्याय रक्षक व्यवस्था तथा (३) न्यायालय हैं।

इसके पश्चात् अरस्तू ने राज्य में होने वाली आन्तरिक क्रान्तियों तथा उनके कारण और उनके निवारण के उपाय बतलाये हैं।

इस प्रकार उसने अपने "पालिटिक्स" नामक महान् ग्रन्थ में आज से २३०० वर्ष पूर्व "राजनीति विज्ञान" के बारीक से बारीक तत्वों की, समाज-शास्त्र के सिद्धान्तों की और आचार शास्त्र के नियमों की जो पारदर्शी व्याख्या की है उस देख कर आज के इस वैज्ञानिक युग में भी इस महान् विद्वान के प्रति श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। इस महान् दार्शनिक की विचारधारा ने आगे आने वाले युग में सैकड़ों राजनीति के विद्वानों के मार्ग को अपने प्रकाश से प्रकाशित किया। यूरोप के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मैकेयाली, दाँते, माण्टेस्क्यू, स्पेन्सर, मिल इत्यादि सभी महान् विचारकों ने इसकी विचारधारा से लाभ उठाया तथा उसकी रचना आधुनिक यथार्थवाद, व्यवहारवाद तथा उपयोगितावाद की जनक रूप में ही साबित हुई है।

अर्जुन लाल सेठी

राजस्थान और मध्यप्रदेश के राजनैतिक और क्रान्तिकारी नेता!

आरा के समीप निमेज नामक स्थान पर एक महन्त के घर पर डाका डाला गया और उसे मार डाला गया। यह केस आरा षड्यन्त्र केस के नाम से प्रसिद्ध है। इस षड्यन्त्र केस में मोतीचन्द और माणकचन्द नामक दो जैन युवक गिरफ्तार हुए जिनमें एक को फांसी की सजा हुई और दूसरा सरकारी गवाह बन कर छूट गया।

इन युवकों ने राजस्थान के क्रान्तिकारी नेता अर्जुन लाल सेठी की शिक्षा समिति में शिक्षा पाई थी। इसलिये इसी सिलसिले में श्री अर्जुन लाल सेठी की भी इन्दौर में

गिरफ्तारी हुई और कोई मजबूत प्रमाण न होने पर भी केवल सन्देह में सरकार ने इन्हें पाँच बरस तक नजर-बन्द रखा।

श्री अर्जुन लाल सेठी एक ओजस्वी वक्ता और जैन दर्शन के मंजे हुए विद्वान थे। मगर इनका विश्वास सशस्त्र क्रान्ति पर था। गांधी जी के अहिंसा युग में इनकी प्रवृत्तियों का अधिक विकास नहीं हो सका और इनका उत्तर जीवन बड़े कष्ट में बीता।

अर्जुन वर्मा

धार के परमार राजा सुभटवर्मा का पुत्र। इसने सन् १२१० से १२१६ तक राज्य किया।

इसके द्वारा खुदाए हुए सन १२११, १२१३ और १२१५ के लिखे हुए दान-पत्र प्राप्त हुए हैं। जो उसने मण्डप दुर्ग, भृगु कच्छ (भड़ौच) और नर्मदा के तीर पर बसे हुए अमरेश्वर से जारी किये थे। एक दानपत्र में लिखा है कि उसने गुजरात के राजा दूसरे जयसिंह को परास्त किया।

अर्जुन वर्मा के गुरु और जैन विद्वान आशाधर के शिष्य मदन ने जो कि गौड़ ब्राह्मण था इसके सम्बन्ध में एक नाटक लिखा था जो कमाल मौला की मसजिद में लगी हुई शिलाओं पर खुदा है। इस नाटक में अर्जुन वर्मा को भोज का अवतार लिखा है।

अर्जुन वर्मा कवियों का आश्रय दाता होने के साथ स्वयं भी अच्छा कवि था। अमरु शतक की रसिक सजीवनी टीका उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कहा जाता है कि उसने भोज के ग्रन्थों पर भी टीकाएँ लिखी थीं ऐसा मालूम होता है कि वह अपने पूर्वज भोज के समान ही शूर, विद्वान और भाग्यशाली था। क्योंकि उसके बाद ही मालवा का वैभव एक प्रकार से नष्ट हो गया।

अरुणा-आसफ अली

भारत वर्ष के प्रसिद्ध कार्यकर्ता बैरिस्टर आसफअली की पत्नी जिन्होंने सन् १९४२ की जनक्रान्ति में, गोवा की क्रान्ति में तथा और भी अनेक राजनैतिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी और बहादुरी से भाग लिया।

अरुणा आसफ अली का जन्म एक हिन्दू कुल में हुआ था। प्रारम्भ से ही यह प्रगतिशील विचारों की महिला थी। जाति और धर्म के बन्धनों को तोड़कर इन्होंने बैरिस्टर आसफ अली के साथ विवाह किया था। आसफअली की राजनैतिक प्रवृत्तियों को देखकर इनमें भी राजनैतिक चेतना जाग्रत हुई।

सन् १९४२ की जनक्रान्ति के संचालन में अरुणा आसफ अली का प्रमुख स्थान था। समाजवादी दल के नेता श्री अच्युत पटवर्धन के साथ इन्होंने अण्डर ग्राउण्ड रहकर बड़ी बहादुरी से आन्दोलन का संचालन किया।

अरुणा आसफ अली के जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य गोवा के स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेकर उस आन्दोलन को चरम सीमा पर पहुँचाना था। गोवा की मुक्ति में इनका काफी अच्छा भाग था।

अराजकवाद (Anarchism)

राजनीति विज्ञान की एक विशिष्ट विचारधारा जो समाज में राज्य की स्थिति का विरोध करती है।

यह एक ऐसी राजनैतिक विचारधारा है जो देश में या समाज में प्रत्येक संगठित राज्य-शक्ति का अन्त करके ऐसे समाज का निर्माण करना चाहती है जिसमें राज्य का कोई अस्तित्व न हो।

अराजकवादी राज्य के स्थान पर मनुष्यों की ऐसी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना चाहते हैं जिसमें सेना, न्यायालय तथा कारागार का कोई स्थान न हो।

अराजकवाद कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है। चीन और ग्रीस के प्राचीन राजनीतिज्ञों की विचारधारा में इसके मूल भूत अंकुर पाये जाते हैं। मगर इसका पूर्ण विकास आधुनिक युग में १८ वीं और १९ वीं शताब्दी के बीच में हुआ। इस विचारधारा के संस्थापकों में विलियम गाडविन (William Godwin), मेक्स स्टरनर (Max-stirner), जोसेफ प्राउडोन (Joseph Proudhon) इत्यादि का नाम आता है मगर इस विचार धारा के प्रमुख आचार्य जिन्होंने अराजकवाद पर वैज्ञानिक पद्धति से विचार किया है माइकेल बाकुनिन (Michel Bakunin) और प्रिन्स क्रोपाटकिन (Prince Kroptkin) हैं।

माइकेल बाकुनिन एक रूसी क्रान्तिकारी तथा प्रचारक था। यह विकेन्द्रित समाजवाद का समर्थक था और ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता था जिसमें स्थानीय संस्थाएँ राज्य की सहायता के बिना पारस्परिक सहयोग से कार्य करें। प्रान्तीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र संघ की स्थापना उसका अन्तिम ध्येय था! वह संसदीय प्रणाली का कट्टर विरोधी था और हिंसा तथा क्रान्ति में विश्वास करता था। धर्म-संस्था पर उसका बिल्कुल विश्वास न था और जन-क्रान्ति के द्वारा समाजवाद की स्थापना पर उसका विश्वास था। प्रारम्भ में सन् १८६४ ई० में लन्दन में कार्ल मार्क्स के द्वारा बुलाये हुए सम्मेलन में बाकुनिन भी सम्मिलित हुआ था। वह कई वर्ष साइबेरिया में कैद रह कर तीन साल पहले वहाँ से भाग आया था। बाकुनिन के अनुयायी खास तौर पर दक्षिणी योरप के इटली और स्पेन इत्यादि लेटिन देशों से आये थे। इस सम्मेलन में बाकुनिन और मार्क्स के विचारों का संघर्ष हुआ किन्तु उसमें बाकुनिन की विचारधारा को सफलता न मिली! फिर भी बाकुनिन के छोटे छोटे समुदायों ने विभिन्न देशों में हत्या काण्डों का आतंक मचा दिया। उदाहरणार्थ उन्होंने रूस के जार, इटली के राजा हम्बार्ट, फ्रांस के राष्ट्रपति कार्नेट, आस्ट्रिया की सम्राज्ञी एलिजाबेथ तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति मेकिनले की हत्या की। सन् १८८३ में अमेरिका के शिकागो नगर में एक और संघर्ष हुआ जो "हे मार्केट क्लेश" (Hay Market Clash) के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय से अराजकवाद अमेरिका में इतना बदनाम हुआ कि आज अमेरिका जाने वाले प्रत्येक मनुष्य को इस घोषणा पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं कि वह अराजकवाद में विश्वास नहीं करता!

प्रिन्स कोपाटकिन

प्रिन्स कोपाटकिन बाकुनिन का शिष्य था तथा सबसे पहला व्यक्ति था जिसने अपने ग्रन्थों में अराजकवाद का पूर्ण क्रमबद्ध और वैज्ञानिक विवेचन करके यह सिद्ध कर दिया कि यह केवल एक काल्पनिक आदर्श ही नहीं है। उसने साम्यवादी अराजकवादी के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और बड़े-बड़े उद्योग धन्धों के स्थान पर छोटे-छोटे गृह-उद्योगों की उन्नति पर बल दिया। क्रोपाटकिन का मत था कि श्रम वितरण (Divison of Labour) मानव जाति का सबसे बड़ा शत्रु है। वह चाहता था कि मजदूरों से कम काम लिया जाय और उन्हें उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाय। वह राज्य के स्थान पर व्यक्तियों को स्वतन्त्र संस्थाएँ स्थापित करना चाहता था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा से सम्मिलित होगा। क्रोपाटकिन ने अराजकवाद पर कई बहुमूल्य ग्रन्थों की रचना की है जिनकी विचारधारा तर्कसंगत और गम्भीर है। इन ग्रन्थों में "रोटी का सवाल" और "संघर्ष या सहयोग" उल्लेखनीय हैं।

अराजकवाद के मूल सिद्धान्त

(१) अराजकवाद राज्य का विरोधी है और उसके अस्तित्व को अनावश्यक एवं अवांछनीय समझता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य एक ऐसी संस्था है जिसके द्वारा कुछ गिने चुने अधिकारी अपने अन्याय पूर्ण एकाधिकार को स्थिर रखने का प्रयत्न करते हैं। अराजकवादियों का विश्वास है कि जब तक राज्य का स्थान दूसरे समुदाय नहीं ले लेते तब तक समाज में बेकारी एवं आर्थिक चिन्ताओं का साम्राज्य बना रहेगा और हम अपने नवीन समाज की रचना करने के उद्देश्य में कदापि सफल न हो सकेंगे। इस विचारधारा का विश्वास है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त करने के पूर्व ही राज्य को समाप्त कर देना चाहिये क्योंकि राज्य के कारण ही व्यक्तिगत सम्पत्ति एकत्रित होती है!

(२) अराजकवादी राज्य तथा वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। अराजकवादी ऐसे राज्यहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसमें पूँजीपतियों का कोई स्थान न हो और उत्पत्ति के सब साधनों पर व्यक्तियों का सामूहिक अधिकार हो। कोकर (Coker) ने आदर्श समाज के काल्पनिक समझौते का वर्णन करते हुए लिखा है कि "हम यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अनाज, वस्त्र, यातायात इत्यादि किसी भी उद्योग में साल भर में १२०० से लेकर १५०० घण्टे काम करे और उसके बदले में

जीवन में आवश्यक विभिन्न समुदायों द्वारा उत्पादित सभी वस्तुओं को प्राप्त करे।"

(३) अराजकवाद पारस्परिक सहयोग के द्वारा एक आदर्श समाज की रचना करना चाहता है। लावेस डिकेन्सन का मत है कि हम जिस समाज की स्थापना करना चाहते हैं उसमें व्यवस्था का अभाव न होगा। परन्तु उसमें शक्ति को कोई स्थान नहीं होगा।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि शक्ति का अस्तित्व न होने पर विभिन्न समुदायों में आपस में होने वाले झगड़ों को अराजकवाद किस प्रकार से सुलझायेगा? इसका उत्तर यह है कि पहले तो अराजकवादी प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं जिससे वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। ऐसी अवस्था में पारस्परिक झगड़े उत्पन्न होने की संभावना ही नहीं रहेगी। झगड़े केवल स्वार्थपरता तथा अधिकार प्राप्ति के लिये होते हैं। दूसरे प्रतिद्वन्दिता ही शत्रुता तथा पारस्परिक झगड़ों का मूल कारण है। इसलिये व्यक्तिगत सम्पत्ति, सत्ता और प्रतिद्वन्दिता का अन्त हो जाने पर मनुष्यों के हृदयों मे स्वयं ही समाज-सेवा, भ्रातृत्व की भावना और सहयोग की भावनाएँ जाग्रत हो जायेंगी और तब पारस्परिक झगड़ों के उत्पन्न होने का कोई प्रश्न ही नहीं रहेगा।

(४) अराजकवाद का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को पूँजीवाद, राज्य एवं धर्म के नियन्त्रण से मुक्त करना है। क्रोपाटकिन के मतानुसार धर्म प्रकृति के रहस्यों को प्रकट करने का एक असफल प्रयास है अथवा यह एक ऐसी नैतिक प्रणाली है जो जनता के अज्ञान तथा अन्धविश्वास पर प्रकाश डाल कर उसमें वर्त्तमान राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था के अन्यायों को सहन करने की भावना उत्पन्न करती है। बाकुनिन का मत है कि राजनीति, सत्ता, सम्पत्ति तथा धर्म मानव इतिहास के निम्नस्तर पर मनुष्य से सम्बन्धित थे क्योंकि इनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में इच्छाओं तथा भय से है। राज्य की स्थापना निजी सम्पत्ति की रक्षा के लिये हुई तथा धर्म इन दोनों की रक्षा के लिये उत्पन्न हुआ। इस कारण यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त कर दिया जाय तो सम्पत्ति विषयक अपराधों का अन्त हो जायगा। वैयक्तिक अपराध दूषित मनोवृत्ति का फल है। ऐसे अपराध राज्य द्वारा दण्ड दिये जाने से नहीं रुकते वरन् उनका उपाय अपराधियों की मनोवृत्ति में सुधार करना है।

अराजकवाद की समालोचना

अराजकवाद की आलोचना करते हुए कहा जाता है कि अराजकवादी प्रजातन्त्र के वर्त्तमान रूप और पूँजीवादी शासन व्यवस्था के घोर विरोधी हैं। वे ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति राज्य के नियन्त्रण से मुक्त रह कर अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और स्वतन्त्रता का पूर्ण उपयोग कर सके। यद्यपि उनके ये समस्त विचार अत्यन्त आकर्षक एवं कल्याणकारी हैं किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि व्यवहारिक जगत में उनका किञ्चित् मात्र भी मूल्य नहीं है।

वास्तव में कोई भी मनुष्य न तो सम्पूर्ण रूप से अच्छा होता है न सम्पूर्ण रूप से बुरा। यह धारणा गलत है कि राज्य को समाप्त कर देने से ही मनुष्यों की स्वार्थपूर्ण भावनाएँ नष्ट हो जायँगी। सत्य बात यह है कि मनुष्य यथार्थ में मनुष्य है न कि देवता। वास्तव में मनुष्य के स्वार्थ और स्वेच्छाचार पर अंकुश रखने के लिये राज्य जैसी शक्तिशाली संस्था की परम आवश्यकता है। समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिये कानून की आवश्यकता है और कानून का होना राज्य की स्थापना का सूचक है।

अर्नेस्ट डाउसन

बीसवीं सदी के प्रारम्भ का एक अंग्रेज कवि। सन् १८६७ से १९०० तक।

अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में बीसवीं सदी का आगमन एक नवीन युग के प्रारम्भ का द्योतक था। उन्नीसवीं सदी की रोमांटिक परम्परा अब धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी और उसके स्थान पर विषाद और करुणा की भावनाओं से ओत-प्रोत नये लिरिकों की रचना होने लगी जिनमें एक आकर्षक सौन्दर्य रहता था।

अर्नेस्ट डाउसन भी इसी प्रकार का एक कवि था। काव्य के प्राचीन प्रतीकों का वह नये सिरे से प्रयोग करता था।

अरबी पाशा

मिस्र का रहने वाला ठेठ मिस्र वासी किसान, जो एक मामूली सिपाही से धीरे-धीरे बढ़ते हुए अपनी योग्यता से मिस्र का सेनापति बन गया और उसके बाद जब तौफीक-बे के समय में प्रजा-प्रतिनिधि सभा की मिस्र में स्थापना हुई तब अरबी पाशा मिस्र का युद्ध मन्त्री हुआ।

मिस्र की प्रजा-प्रतिनिधि सभा ने जब देश की आय-व्यय व्यवस्था पर विचार करना प्रारम्भ किया तो वहाँ के गोरे अधिकारी बौखला उठे और उन्होने मिस्र वासियों को समझाया कि देश की आर्थिक समस्या को अभी आप लोग नहीं समझ सकते। देश हित के लिये यह आवश्यक है कि इस चीज को आप हमारे पर छोड़ दें। मगर जब प्रजा के प्रतिनिधियो ने कहा कि देश के आय और व्यय के निरीक्षण के ऊपर हमारा पूरा अधिकार है। देश की आधी आय के साधन जो अंग्रेज सरकार के यहाँ रेहन रख दिये गये हैं उन पर हम हाथ नहीं डालेंगे मगर बचे हुए आधे साधनों पर विचार करने का हमें पूरा अधिकार है।

इससे नाराज होकर सन् १८८७ में ब्रिटेन के अधिकारी लॉर्ड क्रोमर ने यह घोषणा कर दी कि अगर हमारी बात को नहीं मानी गई तो तलवार के बल पर उसको मनाई जावेगी।

इस घोषणा से क्रुद्ध होकर राष्ट्रीय भावना वाले मिस्र के सब लोग अरबी पाशा के झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। शासक वंश के लोग भी इस आन्दोलन में शामिल हो गये। मिस्र के प्रधान मन्त्री शरीफ-बे ने भी अपना इस्तीफा दे दिया। अरबी पाशा युद्ध मन्त्री बनाया गया।

इन घटनाओं से क्रुद्ध होकर इंग्लैण्ड की सरकार ने ब्रिटिश जहाजी बेड़े को अलेग्जेण्ड्रिया के तट पर खड़ा कर दिया और मिस्र के गवर्नर को हुक्म दिया कि मन्त्रि-मण्डल को तोड़ दिया जाय और अरबी पाशा को देश से निकाल दिया जाय।

मगर इससे भी मिस्र की जनता पस्त हिम्मत नहीं हुई। मिस्र के चौदह सूबेदारों में से ग्यारह ने अरबी पाशा के नेतृत्व को मान लिया था। काहिरा में एक राष्ट्रीय संघ कायम किया गया जिसका अरबी पाशा सिपहसालार बनाया गया। अल-अजार विश्वविद्यालय के आचार्य ने मिस्र के गवर्नर को देशद्रोही का फतवा दे दिया।

इस उत्तेजनापूर्ण स्थिति को देख कर अंग्रेजों ने फिर भेद नीति की चाल चली। उन्होंने तुर्की के सुल्तान को अपनी ओर मिलाया और उससे यह घोषणा करवाई कि अरबी पाशा अंग्रेजों के खिलाफ नहीं है। मेरे और मुसलमानों के खिलाफ बगावत करना चाहता है। इस भेद नीति से अरबी पाशा के साथियों को बहुत सन्देह हुआ और उनमें से बहुत से उसके संगठन से अलग हो गये। अरबी पाशा की सैनिक शक्ति कमजोर हो गई। फिर भी उसने बची खुची शक्ति से लड़ाई शुरू कर दी। जिसका नतीजा यह हुआ कि तेलेलकबीर नामक स्थान पर उसकी भयंकर हार हुई। अरबी पाशा अंग्रेजों के हाथ में पड़ गया। सरकार ने उसे विद्रोही जाहिर करके सीलोन में नजरबन्द कर दिया। जहाँ सन् १९११ में उसकी मृत्यु हो गई।

अरबी पाशा पर टिप्पणी करते हुए एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है—

"अरबी पाशा ने मिस्र वासियों में नई जान डाल दी। मिस्र आज एक स्वतन्त्र देश है मगर स्वतन्त्रता की इस नींव को अरबी पाशा ने ही डाली है इसमें कोई सन्देह नहीं। अरबी पाशा का बड़प्पन यही था कि अपने को वह मिस्र वासी समझता था और मिस्र के लिये ही जिया और मरा था।"

अरबलीग

अरब राष्ट्रों की एकता कायम रखने के लिए बनाया हुआ अरबी राष्ट्रों का एक संगठन जिसकी स्थापना मार्च १९४५ में मिस्र की राजधानी काहिरा में हुई।

संसार की डाँवाडोल और ज्वलनशील स्थिति को देख कर संसार के सभी राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिए अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ एक सूत्र में आबद्ध होकर अपने को शक्ति-सम्पन्न करने की मनोवृत्ति से काम ले रहे हैं। इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर मिस्र, ईराक, जोर्डन, सीरिया, लेबनान, सऊदी अरब, सूडान, ट्यूनीशिया, यमन तथा मोरक्को ने एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर कर अरब लीग

नामक एक संगठन की स्थापना की। इस संगठन में सूडान सन् १६५६ में और मोरक्को सन् १६५८ में शामिल हुए।

इस संगठन का उद्देश्य, सदस्य राष्ट्रों की स्वाधीनता और प्रभु सत्ता की रक्षा करना, सदस्य राष्ट्रों के आपसी विवाद, वैमनस्य और कटुता के कारणों को मिटाना, सदस्य राष्ट्रों में आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों को बढ़ाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी स्थिति को मजबूत करना है।

इस संगठन के वर्ष में दो बार अधिवेशन होते हैं। इस संगठन की एक सामान्य परिषद, एक विशेष समिति, एक सचिवालय तथा एक राजनैतिक समिति है। राजनैतिक समिति में सभी सदस्य राष्ट्रों के परराष्ट्र मंत्री सदस्य रहते हैं। इस संगठन के जनरल सेक्रेटरी सन् १६५२ से मिस्र के भूतपूर्व परराष्ट्र मंत्री श्री अब्दुल खालिक हासाउना हैं।

अरब सुरक्षा संधि

मिस्र, इराक, सीरिया, जोर्डन, और लेबनान इन पाँच अरब देशों का संगठन जो जुलाई १६५० में स्थापित हुआ।

इस संगठन का उद्देश्य इस संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले देशों के बीच राजनैतिक, सैनिक और आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए किसी भी बाहरी सशस्त्र आक्रमण के प्रतिरोध की व्यवस्था करना है। तथा अरब लीग से सम्बन्धित देशों के उत्तरदायित्व को निर्धारित करना है।

अरजेण्टिना

दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी हिस्से में बसा हुआ देश जिसका क्षेत्रफल १०८४३५६ वर्ग मील और जनसंख्या १६ ५८०००० (१६५७) है। इसकी राजधानी बुएनास एरिज, भाषा स्पेनिश और इटालियन, धर्म रोमन कैथलिक और सिक्का-पेसो है। इस देश के मुख्य शहर रोसारियो, कारडोबा, एवेलेनेडा, सान्ता-फे, टुकुमान, मेण्डोजा, लाप्लेटा, बाहिया ब्लेन्का इत्यादि हैं।

अर्जेण्टिना दक्षिणी अमेरिका का दूसरा बड़ा रिपब्लिक है। इस की शासन व्यवस्था यूनाइटेड स्टेट्स की शासन व्यवस्था के अनुकूल है। यहाँ की पार्लियामेंट में दो हाउस होते हैं। अपर चेम्बर को सेनेडो कहते हैं जिसमें ३० सदस्य होते हैं और लोअर चेम्बर को केमेरा-डी-डिप्यूटाडोस (Camera De-Diputados) कहते हैं जिसमें १५८ मेम्बर होते है। १६४६ और १६५६ के संशोधित विधान के अनुसार पार्लियामेंट के दोनों हाउस, प्रेसिडेण्ट और वाइस प्रेसिडेण्ट बालिग मताधिकार के आधार पर चुने जाते हैं।

अरजेण्टिना मूलतः यहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियनों का देश है। सन् १५१५ में स्पेनी यात्री दान-जुआन, डाइज (Donjuan Diaz) यहाँ पर आया और उसने १५३६ में बुएनासएरिज को यहाँ की राजधानी बनाया। सन् १८१६ में यह स्पेनवालों से स्वतंत्र हो गया। इस समय यहां के निवासी स्पेनिश और इटालियन हैं।

यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था लैटिन अमेरिकन देशों में बहुत पिछड़ी हुई है। यहाँ पर साक्षर लोगों का अनुपात ७ से लेकर १० प्रतिशत तक है।

अर्जेण्टिना की राजधानी "ब्यूनोस आयर्ज" दक्षिण अमेरिका का सबसे बड़ा नगर है, यहाँ को आबादी २२॥ लाख है। ब्यूनोस आयर्ज का आबादी के हिसाब से संसार में बारहवाँ तेरहवाँ नम्बर है।

अर्जेण्टिना के पश्चिमी भाग में एण्डीज पहाड़ की श्रेणियाँ और पूर्वी भाग में विशाल मैदान हैं। यहाँ की मुख्य पैदावार गेहूं है जो बहुत बड़ी तादाद में विदेशों को भेजे जाते हैं। इस देश में पम्पास और एण्डीज के बीच में कुछ ऐसे शुष्क भाग हैं जहाँ पहाड़ी नदियों से सिंचाई कर के रम सागरो फलो के बगीचे लगाये जाते हैं। यहाँ अंगूर की शराब बनाने के कारखाने हैं।

अर्जेण्टिना में रेलों का जाल सा बिछा हुआ है।

अर्काट का घेरा

सन् १७५१ में चन्दा साहब के पुत्र रजासाहब के द्वारा लॉर्ड क्लाइव के विरुद्ध लगाया हुआ मुहासरा जो इतिहास में अर्काट का घेरा के नाम से मशहूर है।

दक्षिणी भारत में अंग्रेजों की योजनाओं को विफल करने के हेतु चन्दा साहब ने त्रिचनापल्ली के चारों

ओर घेरा डाल दिया ! मगर इसी समय अंग्रेजों के प्रतिनिधि लॉर्ड क्लाइव ने त्रिचनापल्ली से चन्दा साहब की सेनाओं को हटाने के लिये उनकी राजधानी अर्काट पर हमला किया और उस पर अधिकार कर लिया। चन्दा साहब ने जब यह सुना तो उसने अपने पुत्र रजा साहब को लगभग आधी सेना देकर अर्काट का उद्धार करने भेजा। रजा साहब ने अर्काट पर आकर घेरा डाल दिया। क्लाइव ने ५३ दिन तक इस घेरे का साहसपूर्वक सामना किया। अर्काट का घेरा भारत में अंग्रेजी राज्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण घटना है। इसमें अंग्रेजों और भारतीयों ने बहुत साहस पूर्ण वीरता का परिचय दिया पर अन्त में जीत क्लाइव की हुई।

अरशक प्रथम

ईरान में पार्थव शाम्राज्य का संस्थापक शक जाति की एक शाखा ता-हि-या का वंशज (ई०स०पू. २४६ से २४७)।

अरशक प्रथम के पूर्वज मूलतः सिरदरिया (यक्सर्त नदी) के पास के रहने वाले थे। ये शक जाति की दाहै शाखा के वंशज थे। जो बाद में जाकर कास्पिय के किनारे ईरान की सीमा तक पहुँच गये। इनके एक कबीले ने कास्पियन समुद्र के पास तक फैले हुए अखामनी साम्राज्य के प्रान्त पार्थिया पर अधिकार कर लिया तभी से ये लोग पार्थव कहलाये और इन्होंने आगे जाकर विशाल पार्थव साम्राज्य की स्थापना की जो करीब ४०० बरस तक ईरान पर शासन करता रहा।

अर्देशिर

ईरान के इतिहास प्रसिद्ध सासानी वंश का संस्थापक

सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस के वंशजो का साम्राज्य जो कि पश्चिम भारत से लेकर एशिया कोचक तक फैला हुआ था तीन सौ वर्षों तक चलता रहा। उसके बाद मध्य-एशिया के पार्थव नामक कबीले ने इस साम्राज्य का अन्त कर दिया। इन्हीं पार्थव लोगों ने गण राज्य के आखिरी दिनों में रोमन सेनाओं को भी करारी हार दी। करीब ढाई सौ वर्षों तक पार्थव जाति का शासन चलता रहा। मगर अन्त में एक घरेलू क्रान्ति से इनका अन्त हो गया। ईरानी लोगों ने एक संगठित क्रान्ति कर पार्थव वंश का शासन समाप्त कर दिया और उनके स्थान पर अपनी जाति के "अर्देशिर" को बादशाह की गद्दी पर बिठा दिया। यही "आर्देशिर" सासानी वंशका संस्थापक और उसका पहला शासक था। यह जरथोस्टी धर्म का कट्टर अनुयायी था। और दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णु था। अर्देशिर ने सासानी साम्राज्य का विस्तार किया। रोमन साम्राज्य से इसकी बराबर लड़ाइयां होती रहती थीं।

अरिस्टो फ़ेनिज

ई० स० पूर्व पाँचवी सदी में एथेन्स का प्रसिद्ध कामेडी नाटकों का रचयिता।

अर्नोबियस

रोमन साम्राज्य का एक ईसाई मतावलम्बी कवि जिसने अपने "अदवर्सस नाति ओनज" पुस्तक में ईसाई धर्म के पक्ष में रोम की पुरानी पेगन संस्कृति के देवताओं की परम्परा की कटु आलोचना की।

अर्नो-होल्भ (Arno Holz)

उन्नीसवीं सदी का प्रकृतिवादी जर्मन कवि और लेखक। समय सन् १८७५ के लगभग।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में जर्मन साहित्य और कला के क्षेत्र में एक प्रकृतिवादी आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन का मूल उद्देश्य इस सिद्धान्त का प्रचार करना था कि कला और साहित्य का मूल उद्देश्य प्राकृतिक वस्तुओं के वास्तविक निरूपण तक ही मर्यादित रहना चाहिए। अर्नो-होल्भ इस विचारधारा का नेता था। उसकी रचनाओं में "पापा हामलेत" और "डी-फामिलो-सेलिके" प्रसिद्ध हैं इनमें उसने बर्लिन की झोपड़ियों की ध्वनियों और श्रमिकों के चेहरों के भावों तक को प्रतिबिम्बित किया है।

अर्थर-शिन्फलर

(Arthur-Schnitzler)

आस्ट्रिया की राजधानी विएना का रसवादी कवि और गायक जो उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पैदा हुआ।

आर्थर शिन्फलर प्राचीन विएना की कीर्ति का एक सफल गायक था। उसने उसके गौरव की बेल को अपनी कला से सींचा। विएना का अनिवार्य पतन उसके पात्रों के चरित्र में स्वाभाविक रूप से चित्रित हुआ है। इस कवि के नायक नारी को भोग्य और काम वासना के साधन की वस्तु मात्र मानते हैं। इस नाटककार की कृतियों में "मार्शेन" "लिबेलाई" "पारासेल्सस" "डास वाइड लैंग्ड" इत्यादि प्रसिद्ध हैं। नये आचारों की खोज करता हुआ यह नाटककार इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "मानव जाति के आचार की व्यवस्था वह चाहे नवीन हो चाहे प्राचीन एकदम अपूर्ण है।"

अराई हाकूसेकी

जापान में इदो काल का सबसे महान् चीनी ज्ञान का विद्वान। समय १६५७ से १७२५ ई० तक।

जापान में इदो काल (१६०३-१८६८) में चीनी ज्ञान के प्रति जापानी लोगों का विशेष आकर्षण हुआ। इस आकर्षण ने धीरे-धीरे एक साहित्यिक आन्दोलन का रूप ले लिया। अराई हाकूसेकी इसी इदो काल का चीनी भाषा का महान पण्डित था। उसने अपनी रचना "हाँकान्पू" में जापानी सामन्ती युग का पूरा भण्डा फोड़ किया है।

अर्थरवान-शेण्डेल

(Arthur Van Schendel)

डच साहित्य का प्रसिद्ध गद्य लेखक जिसका जन्म सन १८७२ में हुआ।

आर्थरवान शेण्डेल डच साहित्य के अत्यन्त प्रभावशाली गद्य लेखकों में से थे। इसने प्रकृतिवाद और प्रभाववाद दोनों के विरुद्ध अपनी कलम उठाई। प्रारब्ध और एकान्त उसकी दो प्रधान समस्याएँ हैं। इसने प्रायः तीस से अधिक उपन्यास लिखे जिनमें एक भी साधारण कोटि का नहीं है। उसकी कृतियों में "इन-ज्वर्वर" "ड-वाटर मान" बहुत प्रसिद्ध हैं।

अड्रियान-वानडेरवीन

डच साहित्य का प्रसिद्ध गद्यकार जिसने लिरिक कविता के माधुर्य वाली अनेक कहानियाँ और कुछ उपन्यास लिखे।

अर्माण्ड

आयर्लैण्ड में सन् १६४६ में होने वाली बगावत का नेता अर्माण्ड। इंग्लैण्ड में क्रामवेल के द्वारा प्रजातन्त्र की स्थापना होनेपर आयर्लैण्ड में सन् १६४६ में अर्माण्ड नामक एक सैनिक की अध्यक्षता में बगावत प्रारम्भ हुई और इन लोगों ने राजपुत्र चार्ल्स के नाम की दुहाई फेर दी। इस बगावत का दमन करने के लिये इंग्लैण्ड ने क्रामवेल को दस हजार सैनिकों के साथ भेजा। वहाँ जाकर इसने अपने सैनिकों की सहायता से ड्रॉघेडा (Diagheda) और वेक्सफोर्ड नामक बागियों के दो किलों पर अधिकार कर लिया और जिन लोगों का झुकाव राजपुत्र चार्ल्स की तरफ था उन सब की हत्या कर दी गई। उसके बाद क्रामवेल अपने दामाद आयर्टन को वहाँ का शासन सौंप कर वापस चला आया। आयर्टन ने सन् १६५१ में वहाँ की बगावत को बिल्कुल नष्ट कर दिया।

अर्जेमस

रूसी साम्राज्य का एक शहर जहाँ पर वोल्गा नदी तट की कलमक, तातार, बाश्किर इत्यादि जातियों ने तथा वोल्गा के दाहिने तट के रूसी किसानों ने जारशाही के विरुद्ध भयंकर विद्रोह किया। जार की शक्तिशाली सेनाओं ने इस विद्रोह का दमन करके विद्रोहियों से भयंकर बदला लिया और अर्जेमस नगर में सन् १६७० में ग्यारह हजार आदमियों को फाँसी पर चढ़ा दिया।

अनंगार वर्ग

नार्वे की प्रादेशिक भाषा का महान लेखक जो नार्वे में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में हुआ। इसके लिरिक और प्रबन्ध काव्य राष्ट्रीय भावनाओं और धार्मिक प्रेरणाओं से ओत-प्रोत थे।

अर्नुल्फ-ओवरलेण्ड

नाजीशासन काल में नार्वे का एक कवि जो चारसाल तक नाजियों की जेल में रहा। उसकी सबसे प्रसिद्ध और अमर कृति "वी ओवलिवर आल्त" है। उस कठोर और क्रूर समय में कितनी साधना और तप की आवश्यकता थी यह अर्नुल्फ के जीवन में प्रमाणित हुई और वही जीवन इस कृति की पंक्तियों में साकार हो उठा है जिसमें उसने मृत्यु को खुली ललकार दी है।

अर्थर-रेम्बो

(Arthur Rimbaud)

अस्पष्ट शैली, रहस्यवाद और प्रच्छन्न भावों का श्रेष्ठ कवि। जिसने अपनी कविताओं में एक गोपनीय प्रच्छन्न और असामान्य तत्व का चित्रण और पूजा की है।

अरबून राजवंश

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिन्धप्रान्त पर शासन करने वाला अरबून राजवंश।

इस राजवंश का स्थापक शाह बेग अरबून कन्दहार का शासक था। सन् १५१६ में बाबर ने जब कन्दहार पर चढ़ाई की तब अरबून वहां से भाग कर सिन्ध की तरफ मुड़ा और सन् १५२० में सिन्ध के ठट्ठा शहर पर अधिकार कर उसे लूट लिया।

इस प्रकार सिन्ध में अरबून वंश का राज्य स्थापित हुआ। इस वंश के राज्य को शाह हुसेन ने बहुत बढ़ाया। उसने मुल्तान को अपने राज्य में मिला लिया और लंगा वंश का अन्त कर दिया।

अर्लहेग

प्रथम महायुद्ध के समय में ब्रिटिश स्थल सेना के सर्वोच्च सेनापति।

अर्ल ऑफ एसेक्स

इंग्लैण्ड में महारानी एलिजाबेथ का एक कृपा पात्र सरदार जो अपनी सुन्दरता खुशमिजाजी और बहादुरी के कारण एलिजाबेथ का प्रिय पात्र हो गया था।

जब नैदरलैण्ड के निवासियों ने अपनी स्वाधीनता के लिए स्पेन की राजशक्ति के विरुद्ध जबर्दस्त विरोध कर दिया और स्वतंत्र प्रजातंत्र स्थापित कर लिया तब रानी एलिजाबेथ ने अर्लऑफ लिसेस्टर और सर फिलिप्स सिडनी को स्पेन के विरुद्ध नेदरलैण्ड के प्रजातंत्र की मदद करने भेजा था।

उसके बाद जब आयर्लैण्ड में अर्लऑफ ओनील ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया तब उसे दबाने के लिए भी एलिजाबेथ ने अर्लऑफ एसेक्स को भेजा था। मगर ऐसा कहा जाता है कि किसी अन्तरंग प्रतिहिंसा को चरितार्थ करने के लिए ही रानी ने उसे यह कठिन काम सौंपा था।

मगर अर्ल आफ एसेक्सने बड़ी बहादुरी के साथ आयर्लण्ड के इस अभियान को सफल किया और उसने अर्लऑफ ओनील को पकड़ लिया। लेकिन रानी विजय का सेहरा अर्लऑफ एसेक्स के सिरपर नहीं बँधने देना चाहती था इसलिए उसने तुरन्त ऐसेक्स के विरोधी लार्ड मौण्टजाय को आयर्लण्ड भेजा और ऐसेक्स को हुक्म दिया कि वह तुरन्त वहां से वापस लौट आवे।

लेकिन रानी की इस भेद पूर्ण आज्ञा से एसेक्स बड़ा क्रोधित हुआ और उसने वह आज्ञा ठुकराकर अर्लऑफ ओनील को बन्दी बना कर लण्डन ले आया।

इस विजय से इंग्लैण्ड में बड़ी खुशी छा रही थी। रानी ने पहले तो एक बड़ा भारी दरबार कर अर्ल ऑफ एसेक्स का एक विजयी वीर की भाँति भारी सत्कार किया। मगर बाद में उसकी ओर कठोर दृष्टि से देखते हुए कहा कि—

"अर्ल ऑफ ऐसेक्स तुमने वीरता पूर्वक शत्रु को पराजित किया, इंग्लैण्ड की सेवा की, इसके लिए हमने तुम्हारा पूर्ण सम्मान किया परन्तु तुमने राजाज्ञा का उल्लंघन किया और तुम दरबारी अदब के खिलाफ सादे और मैले वस्त्रों में दरबार में आये, इसकी यही सजा है कि तुम्हारी तलवार छीन ली जाय।

रानी ने उसी पराजित शत्रु अर्ल ऑफ ओनील को अर्ल ऑफ एसेक्स से तलवार छीनने का आदेश दिया।

अर्ल ऑफ एसेक्स इस अपमान पूर्ण घटना से एकदम उत्तेजित हो रानी के सामने चला गया और तलवार निकाल कर घुटनों के बल से उसके दो टुकड़े कर दिये और रानी के सामने फेंक दिये।

रानी क्रोध से लाल होगई और उसने आदेश दिया कि इस विद्रोही को गिरफ्तार कर लिया जाय और कल सूर्योदय से पहले ही इसका सिर काट लिया जाय। दूसरे दिन सबेरे इस महान् प्रतापी अर्ल का सिर काट लिया गया।

ऐसा कहा जाता है कि रानी एलिजाबेथ और अर्ल-ऑफ एसेक्स के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे। मगर जब उसे पता लगा कि अर्ल ऑफ एसेक्स का प्रणय राजमहल की किसी सुन्दर दासी से है तो वह प्रतिहिंसा की आग में जल उठी और उसका बदला उसने इतनी कठोरता से लिया। इन बातों में कितना सत्य है कहा नहीं जा सकता।

अर्ल ग्रे

सन् १८३० में इंग्लैण्ड के राजा चौथे विलियम के समय में इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री जिसने सन् १८३० से १८३४ तक इस पद पर काम किया।

अर्ल ग्रे के मन्त्रिमण्डल के समय सन् १८३१ ई० के मार्च में लार्ड जॉन रसेल नामक मन्त्री ने पार्लमेण्ट के सुधार का बिल पेश किया। टोरी दल ने इस बिल का बड़े जोरों से विरोध किया फिर भी यह बिल एक वोट की अधिकता से पास हो गया। इसी समय इस बिल के ऊपर लोकमत की जानकारी प्राप्त करने के लिये राजा ने पार्लमेण्ट को भंग कर नया चुनाव करवाया। नई पार्लियामेण्ट में यह बिल बहुत अधिक मतों से पास हुआ मगर लॉर्ड-सभा में जाकर यह बिल फिर नामंजूर कर दिया गया। इसके बाद पार्लमेण्ट के सामने फिर तीसरी बार यह बिल पेश हुआ जिसमें दोनों सभाओं के सदस्य संयुक्त रूप से बैठे और दोनों सदनों की सभा ने सम्मिलित रूप से बैठ कर सन् १८३२ ई० में इस बिल को पास कर दिया।

अल-अहराम (मिस्र के पिरामिड)

मिश्र में प्राचीन काल में बने हुए विशाल पिरामिड या स्तूप जिनके नीचे मिस्र के प्राचीन सम्राटों की कब्रें हैं। सबसे बड़ा पिरामिड चौथे राजवंश के सम्राट खूफू (चिओप्स) ने ईसा से ३००० वर्ष पहले बनाया था। यह पिरामिड ४५० फुट ऊँचा और ७४६ वर्गफीट में फैला हुआ गिजेह नामक स्थान पर है इसमें पत्थर की तेईस लाख चट्टानें लगी हैं एक-एक चट्टान का वजन ढाई-ढाई टन है। जिस जमाने में मशीनों का नाम न था उस जमाने में लोगों ने कैसे ढाई-ढाई टन की तेईस लाख चट्टानें एक दूसरे पर चुनकर रक्खी होंगी सोचकर बुद्धि चकरा जाती है। मिस्र के पिरामिड दुनिया के सात आश्चर्यों में से एक माने जाते हैं।

अल-अहराम

मिस्र का सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र जिसका प्रारम्भ सन् १८७५ में हुआ। इस दैनिक पत्र के प्रतिष्ठाता सलीम-तक्ला थे। जिनका समय सन् १८४१ से १८९२ तक था।

अल-अख़तल

अरबी भाषा का एक ईसाई कवि जो दमिश्क में शाह अब्दुल मलिक का राजकवि था। सन् ६८५-७०५।

अल-उतबी

महमूद गजनवी की फौज के साथ रहने वाला एक इतिहास लेखक। यह मुहम्मद गजनवी की हरएक चढ़ाई पर युद्धों में उसके साथ रहा था। महमूद गजनवी ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं उन सबका अातिशयोक्ति पूर्ण वर्णन अल-उतबी ने किया है। इसलिए इसके वर्णनों में ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा अातिशयोक्ति और स्वामि भक्ति का पुट अधिक है और इसी कारण यह अलबेरूनी की तरह ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

महमूद गजनवी के द्वारा कन्नौज पर किये हुए अाक्रमण और मथुरा की लूट का वर्णन उसने इस प्रकार किया है :—

"जिहून (सिंध) झेलम और चन्द्र नदियों को पार-कर वह सीधे तिब्बत पहुँचा। मुहम्मद जहाँ कहीं पड़ाव डालता लोगों के प्रतिनिधि अाकर उसकी अधीनता स्वीकार कर राजनिष्ठा प्रकट करते थे। उसके कश्मीर पहुँचने पर वहाँ के सेनापति शासीन का पुत्र हवाली मुहम्मद के पास नौकरी के लिए अाया। पर जब उसे बतलाया गया कि गैर-मुसलिमों को सेना में स्थान नहीं मिलता तब हवाली बीनी के लुटेरों में शामिल हो सेना के अागे अागे चलने लगा। महमूद की सेना एक के बाद एक घाटी पार करती हुई अागे बढ़ने लगी। इस प्रकार हिजरी सन् ४०६ में रजब मास की २० तारीख (ई० स० १०१८) को यमुना पारकर महमूद की सेना राजा हरून के बरण के किले के समीप पहुँच गई। हरून बहुत बड़ा राजा था। मगर महमूद की सेना-समुद्र को देखकर उसने दस हजार साथियों के साथ किले से उतर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।"

"यहाँ से फौज कलजन्द के किले के पास पहुँची। कलचन्द के पास बहुत अधिक धन और मजबूत सेना थी। अपने हाथी, अश्वारोही और पैदल सेना लेकर वह एक घने जंगल में महमूद की राह देख रहा था। सुलतान ने अपनी बीनी सेना को जंगल में घुसने की अाज्ञा दी। शत्रु सेना कुछ समय अपने स्थान पर डटी रही। बाद में उसने हमले किये पर अन्त में यह स्पष्ट हो गया कि सब बातें अल्लाह की मरजी से हुअा करती हैं। तलवार कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसमें कितना ही जोर क्यों न हो, उसकी धार कितनी ही तेज क्यों न हो, मुसलमान के शरीर के पास पहुँचते ही वह निस्तेज हो जाती है। अन्त में निरुपाय हो शत्रु प्राण बचाने के लिए नदी में कूद पड़े। कलजंद ने पहले अपनी बीबी को खंजर से मार डाला फिर वह भी छुरा घुसेड़कर दोजख में पहुँचा।

अन्त में मथुरा की लूट और उसमें मिली अपार-सम्पत्ति का वर्णन करते हुए उतबी लिखता है—

"यहाँ मूर्तियों के एक हजार मन्दिर थे। जो किले की तरह बने थे और शहर के बीच में एक सबसे ऊँचा मन्दिर था। उसकी सुन्दरता या नक्काशी का वर्णन करना लेखक की लेखनी या चितेरे की कूँची के लिए असम्भव है।" यदि कोई ऐसी इमारत बनाने का विचार करे तो उसे एक एक हजार दिनारों की एक लाख थैलियाँ खर्च करनी पड़ेगी और अत्यन्त कुशल कारीगरों की सहायता से भी वैसी इमारत २०० वर्षों में तैयार न हो सकेगी। मूर्तियों के जो ढेर मिले उनमें शुद्ध सोने की पाँच हाथ ऊँची पाँच मूर्तियाँ थीं। इनमें से एक मूर्त्ति पर ऐसा रत्न जड़ा था जिसका मूल्य ५०००० दीनार से कम न था। एक मूर्ति के पैर में चार लाख चार सौ मिसकाल सोना निकला। चाँदी की मूर्तियाँ तो इतनी थीं कि तौलने वाले थक गये।"

अल-उतबी के उपरोक्त वर्णन को पढ़ने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि उसकी भाषा एक निष्पक्ष इतिहासकार की भाषा से नहीं प्रत्युत एक भाटों द्वारा कही जाने वाली बिरुदावली की भाषा से अधिक मिलती है।

अल-काली

खलीफा अल-हाकिम द्वितीय (९६१-९७६) के समय में कारडोबा विश्वविद्यालय का शिक्षक। प्राचीन अरबी साहित्य पर इसने "अल-अमाली" नामक ग्रन्थ की रचना की इसका जन्म सन् ९०१ में और मृत्यु ९६७ में हुई।

अल-खूरी

बैरूत के पत्र "अल-चर्क" का सम्पादक जो एक कवि के रूप में सारे अरब संसार में विख्यात हो गया।

अल-गजाली

ईराक और ईरान का ईस्लामी धर्म का प्रकाण्ड पण्डित जिसकी मृत्यु सन् ११११ में हुई।

अल-बुसीरी

तेरहीं शताब्दी का नामाङ्कित अरबी कवि जिसने "अल-बजा" नाम से पैगम्बर की जीवनी लिखी। इसका समय सन् १२१२ से १२६६ तक है।

अल्डुस हक्सले

इंग्लैण्ड का महान् विचारक, दार्शनिक और उपन्यास-कार इसका जन्म सन् १८६४ में हुआ।

अल्डुस हक्सले इंग्लैण्ड में आधुनिक युग का महान् विचारक और उपन्यासकार है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् किसी भी साहित्यकार ने इंग्लैण्ड के बौद्धिक जीवन का ऐसा सच्चा चित्रण ऐसी प्रभावशाली भाषा में नहीं किया जैसा हक्सले ने किया है। उसकी सुन्दरतम मौलिक कृतियों में "पॉइण्ट काउण्टर पॉइण्ट" "ब्रेदन्यूवर्ल्ड" "आइलेस इन गाजा" "क्रोम येलो" "एंटिक हे" "एण्ड्स एण्ड मीन्स" इत्यादि हैं। उन्नीसवीं सदी के कवियों की तरह वह यौन अनुभूति के पीछे पागल नहीं है। वह उससे दूर है। मनुष्य के बौद्धिक स्तर को हक्सले उसी प्रकार खोलकर देखता है जिस प्रकार एक इंजीनियर मशीन के पुर्जों को खोल कर देखता है। हक्सले के विचारों में पारदर्शी शक्ति है उसकी कलम में तेज है। अपनी कलम की नोक से वह समाज को जगाने का प्रयत्न करता है।

हक्सले ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में राम कृष्ण मिशन के लॉस एञ्जिलस मठ के आचार्य स्वामी प्रभवानंद से बाकायदा शिष्यत्व की दीक्षा ग्रहण की थी।

अल-जरकाली

अरब का ज्योतिषी जिसे चासर आर्सेकीलेस भी कहते हैं। इसने सन् १०८० में स्पेन के तोलेदो नामक स्थान एक ज्योतिषज्ञान का पूरक चक्र बनाया जो तोलेदो-चक्र के नाम से प्रसिद्ध है।

अल-जहावी

जन्म-सन् १८६३

ईराक का प्रसिद्ध कवि और लेखक, जिसने अपनी अनूठी गति, प्रवाह, कवित्व और हास्य से अरबी भाषा में जीवन ला दिया। उसका प्रसिद्ध काव्य सौरह फि-अल-जहीम "नरक में विद्रोह" उसके भावों की विशालता और दिमाग की आजादी को प्रकट करता है। बहिश्त का वर्णन करता हुआ वह लेबनानी बगीचों का उसके ग्रीष्मकालिक पर्वत शिखरों का, उसकी नाजनीनों का, शराबों का और यौन-कामनाओं का वर्णन करने लगता है। अल जहावी के दोजख के अन्तिम दृश्य में लैला और उसका प्रणयी सामगी आ पहुँचते हैं। फिर लेखक, कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की समूची जमात को नरक में लाकर बिठा देता है क्योंकि इन लोगों को खुदा के ऊपर विश्वास नहीं था। इसी बीच उनमें से एक वैज्ञानिक उस भीषण नरक में आग बुझाने के इंजन की ईजाद कर लेता है जब तेजी से वहाँ की आग बुझने लगती है तो नरक के शासक हैरान हो जाते हैं। दोजख की सबसे भयङ्कर सजा का जरिया जब आग ही बुझ जावेगी तो फिर क्या होगा। अन्त में दैवी शक्तियों को बीच बिचाव से मामला ठण्डा होता है।

अल्किउस

ग्रीक साहित्य में सोलो लिरिकों की रचना करने वाला कवि यह एक प्रतिष्ठित कुल में पैदा हुआ था। इसका समय ईस्वी पूर्व की सातवीं सदी का मध्यकाल है। इसकी कविताएं शब्द-लालित्य, भावुकता और माधुर्य्य से भरी हुई होती थीं।

अलक-मन

ग्रीक साहित्य में कोरस लिरिकों का रचयिता। इसकी बनाई हुई लिरिकों के कुछ अंश अभी प्राप्य हैं। यह लड़कियों के गाने योग्य कोरस-लिरिक बनाता था।

अल्कुइन
(Alcuin)

महान् सम्राट् शार्लमेन के साम्राज्य का शिक्षा अधिकारी जो अपने समय का बेजोड़ साहित्यकार था। इसका समय सन् ७३५ से ८०४ तक का है।

अलजीरिया

उत्तरी अफ्रीका का भूमध्य सागर के किनारे बसा हुआ एक देश। इसका क्षेत्रफल ८,४७,५०० वर्गमील और जनसंख्या ९५,२६,७२६ (सन् १९५४ की गणना के अनुसार) है। यहाँ का प्रधान धर्म इसलाम है। इस देश की राजधानी अल्जीयर्स है। इसके पश्चिम में मोरक्को, पूर्व में ट्यूनीशिया और दक्षिण में फ्रेन्च वेस्ट अफ्रीका है। यहाँ की प्रधान भाषा अरबी और फ्रेन्च है। इसके मुख्य नगर ओरान, कॉन्स्टेन्टाइन, बोन, फिलिपविले, सीदी-बेल-अब्बास, ब्लिडा, मसकारा इत्यादि हैं।

प्राचीन काल में इस देश का नाम नोमिडिया था। ईसवी सन् से १४६ वर्ष पूर्व यह रोम का उपनिवेश बना। जर्मनी के निकट बसने वाली वाण्डाल नामक क्रूर जाति उत्तर पूर्व जर्मनी से चलकर गॉल और स्पेन को कुचलती हुई सन् ४४० में यहाँ पहुँची थी। उस समय यह देश सभ्यता और वैभव के शिखर पर था। वाण्डाल जाति ने इसे बुरी तरह से रौंदकर खतम कर दिया। सन् ६५० के करीब इस देश पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ और उनका इसपर अधिकार हो गया। सन् १४९२ में स्पेन से निकाली हुई मूर और यहूदी जातियाँ यहाँ आकर बस गईं। सन् १५१८ में इस पर तुर्कों का अधिकार हुआ। लगभग तीन सौ वर्ष तक यह बारबरी जाति के समुद्री लुटेरों का केन्द्र बना रहा। सन् १८३० में यह फ्रान्स वालों के अधिकार में आया।

अल्जीरिया का स्वतंत्रता युद्ध

हम ऊपर बतला आये हैं कि करीब सवा सौ वर्षों से अधिक समय से अलजीरिया फ्रान्स का एक उपनिवेश रहा है। जिस प्रकार संसार के दूसरे साम्राज्यवादी देशों ने अपने उपनिवेशों की जनता का शोषण किया, फ्रान्स भी अलजीरिया के शोषण में उनसे पीछे नहीं रहा। अलजीरिया की नब्बे प्रतिशत जनता मुसलमान है।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् सारे संसार में स्वाधीनता की जो प्रबल झंझावात चली उसने सारे संसार की गुलाम और औपनिवेशिक जनता को झकझोर दिया। अलजीरिया भी उस हवा से कैसे बच सकता था। सन् १९५४ से वहाँ की जनता ने भी फ्रान्स के विरुद्ध अपना स्वातंत्र्य आन्दोलन चालू कर दिया। एक नवम्बर १९५४ के दिन वहाँ के राष्ट्र वादियों ने स्वतंत्रता का पहला बिगुल बजाया था तब से बराबर सन् १९६२ तक अलजीरिया के लोग अपने प्राणों की बाजी लगाकर फ्रान्स की सरकार से लोहा ले रहे हैं। इन आठ वर्षों में दोनों पक्षों की धन और जन की भयङ्कर हानि हुई है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस अष्ट वर्षीय युद्ध में फ्रान्स का करीब सात हजार करोड़ रुपया और २०००० सैनिकों की क्षति हुई है जब कि सामने वाली अलजीरियन जनता के साढ़े तीन लाख व्यक्तियों का बलिदान हुआ है। मगर अलजीरिया के लोगों के अनुसार इस संघर्ष में १० लाख अल्जीरियन मारे गये हैं।

राष्ट्रवादी अलजीरियन लोगों ने अपनी स्वतंत्र सरकार का दफ्तर ट्यूनीशिया में सन् १९५९ से खोल रक्खा है और संसार के ३१ देशों ने इस सरकार की वैधानिकता को अपनी मान्यता दे दी है।

अलजीरिया के इस तीव्र और दुर्दमनीय प्रतिकार के आगे अन्त में फ्रान्स की सरकार को झुकना पड़ा और १८ मार्च १९६२ को दोनों देशों के बीच एक युद्ध विराम समझौता हो गया। इस समझौते के फलस्वरूप फ्रान्स ने स्वीकार किया कि (१) अलजीरियायी राष्ट्रवादियों के प्रतिनिधि अलजीरिया की ९० लाख मुसलमान जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। (२) सहारा के तैलक्षेत्र सहित सम्पूर्ण अलजीरिया एक अखण्ड देश है (३)

गिरफ्तार किये गये ५००० अल्जीरियन सैनिकों को फ्रांस सरकार युद्ध बन्दियों की तरह रखेगी।

इसी प्रकार अल्जीरिया के प्रतिनिधियों ने भी निम्न ३ शर्तें मंजूर की। (१) फ्रान्स की सेनाएं तीन वर्षों में अल्जीरिया से धीरे-धीरे हट जावेगी। (२) मर्सअल कोचर का बन्दरगाह और सहारा का अणुबम परीक्षण स्थल अल्जीरिया सरकार फ्रान्स को पट्टे पर दे देगी। (३) तथा फ्रान्स के निवासी जो अलजीरिया के नागरिक बनना चाहेंगें उन्हें अल्जीरिया सरकार नागरिकता का अधिकार देगी।

ओ० ए० एस०

जब फ्रान्स के राष्ट्रपति डी० गाल ने अलजीरिया की स्वतंत्रता को सिद्धान्ततः स्वीकार कर ली तो अलजीरिया में रहने वाले फ्रान्स निवासी बेहद क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अलजीरिया और फ्रान्स दोनों के विरुद्ध O. A. S नामक एक गुप्त संगठन बना लिया। यह गुप्त संगठन अलजीरिया की स्वतंत्रता का कट्टर विरोधी है और आवश्यकता पड़े तो अलजीरिया के साथ डी-गाल की सरकार को भी उलट देने की इसकी तैय्यारी है। यह गुप्त संगठन इस प्रकार प्रतिदिन अलजीरिया में गुप्त खून, खराबी और हत्याकाण्ड का संचालन कर रहा है। फ्रान्स की सरकार इस संगठन को दबाने की पूरी तैय्यारी कर रही है। हालही में ओ० ए० एस० सगठन का प्रधान नेता फ्रांस की सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और उसके पश्चात् अलजीरिया की राष्ट्रीय सरकार और ओ० ए० एस० के बीच में भी समझौता हो गया।

अल्जेर्नन स्विनबर्न

प्रणय बहुल नग्न चित्रणों का अंग्रेज कवि सन् १८३७ से १९०९ तक।

अल्जेर्नन स्विनबर्न की शिक्षा ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में हुई थी। उसकी कविता उसके नग्न प्रणय निवेदनों के कारण शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गई। सन् १८६६ में वह जब अपनी "पोयम्स एण्ड बेलेड्स" नामक कृति को लेकर सामने आया तब उसके वासनापूर्ण, कामोत्तेजक, भाव विद्रोही नग्न प्रणय चित्रों ने काव्य-जगत् में हलचल मचा दी। इसके काव्यों में "इटिनस" "एटलाण्टा इन कैलीडन" और "इरेक्थियास" विशेष प्रसिद्ध हैं।

अल्तमश

गुलाम खानदान का देहली का सुलतान, जिसे कुतुबुद्दीन ने खरीद कर, उसकी योग्यता देख अपना उत्तराधिकारी बना दिया जो कुतुबुद्दीन के बाद भारत का बहुत बड़ा विजेता हुआ। सन् १२३६ में इसका देहान्त हुआ।

अल्तमश कुतुबुद्दीन का खरीदा हुआ गुलाम था। तबकात-ई-नासिरी में लिखा है कि "अल्तमश को बेचने के लिए उसका मालिक उसे गजनी में लाया। शाहबुद्दीन गोरी ने उसको खरीदना चाहा मगर उसका मालिक उसके जितने दाम मांगता था वह शाहबुद्दीन देना नहीं चाहता था तब शाहबुद्दीन ने एहलान करवा दिया कि इस गुलाम को गजनी में कोई न खरीदे" तब कुतुबुद्दीन ने बादशाह की आज्ञा को स्वीकार कर उसे देहली में खरीदा।

अल्तमश भी कुतुबद्दीन के समान ही बहादुर और तेजस्वी था। धीरे-धीरे वह भी अपनी बहादुरी और गुणों के बल पर कुतुबद्दीन का प्रिय पात्र हो गया। कुतुबद्दीन ने उसे अपनी लड़की ब्याह कर दामाद बना लिया कुतुबद्दीन की तमाम विजय यात्राओं में अल्तमश उसके दाहिने हाथ की तरह उसके साथ रहा।

लाहौर में जब कुतुबद्दीन की मृत्यु हुई उस समय अल्तमश बदायूं में सूबेदार था। कुतुबद्दीन के लड़के आराम शाह के नालायक निकल जाने के कारण सब सरदारों ने अल्तमश को अपना सुलतान बना लिया। कुछ सेनाधिकारियों ने उसका विरोध किया मगर वे दबा दिये गये। शासन सत्ता हाथ में आने पर अल्तमश ने अपनी विजय यात्रा प्रारम्भ की।

सन १२२६ में उसने रणथम्भोर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। उसके पश्चात् सन् १२२७ में शिवालिक प्रान्त में मण्डोवर पर चढ़ाई कर उसे जीता। इसके बाद अल्तमश ने ग्वालियर के सुप्रसिद्ध और अभेद्य दुर्ग पर चढ़ाई की। इस समय यह किला कछवाहों के हाथ से निकल कर प्रतिहारों के अधिकार में था। सन् १२३२ में अल्तमश

ने इस किले पर घेरा डाला। मालदेव के लड़के मंगलदेव ने लड़ाई शुरू की। ग्यारह महीने तक मुसलमानी सेना इस किले पर घेरा डाले पड़ी रही। अन्त में एक रात को मंगलदेव भाग गया और किला अल्तमश के हाथ में आ गया।

सन् १२३४ में अल्तमश ने मालवा पर चढ़ाई की और किले सहित भेलसा को ले लिया। वहाँ पर १०५ गज ऊँचा भेल स्वामी का विशाल मन्दिर था, अल्तमश ने उसे तोड़ दिया।

भलिसा से अल्तमश उज्जयिनी की ओर बढ़ा। उज्जैन में महाकाल का जो प्रसिद्ध देवालय था उसे उसने तोड़ दिया और भारत वर्ष के सुप्रसिद्ध न्यायी सम्राट् विक्रमादित्य की मूर्ति को भी उसने तोड़ डाला। वहाँ पर मिली हुई कुछ ताँबे की मूर्तियों और महाकाल की पत्थर की मूर्ति को वह दिल्ली ले गया। इस टूटे हुए महाकाल के मन्दिर को ग्वालियर के राणो जी सिंधिया ने फिर से बनवाया। महाकाल के ऊँचे शिखर वाले देवालय को राणो जी सिंधिया के शेणवी दीवान रामचन्द्र ने अपनी कमाई हुई सारी पूंजी लगा कर बनवाया।

इस विजय यात्रा के सिवाय अल्तमश का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य्य उसके मालिक कुतुबद्दीन के द्वारा प्रारम्भ की गई कुतुबमीनार को बनवा कर पूरा करना था। कुतुबद्दीन अपने जीवन काल में उसकी सिर्फ एक मंजिल बनवा सका था। अल्तमश ने उस पर तीन मंजिल और बनवा कर तथा गुम्बज छत्री लगवा कर इस महान् कलाकृति को पूरा किया।

सन् १२३६ में इस दुर्दमनीय विजेता को मौत का पैगाम मिला और यह दीन दुनिया से कूच कर गया।

अल्ताई

रूस के पश्चिमी साइबेरिया में स्थित अल्ताई पर्वत श्रेणियाँ। अल्ताई का अर्थ सुवर्ण पर्वत होता है। इस पर्वत माला में सोने और ताम्बे की कई खदानें हैं। इसके सिवाय अल्ताई की पर्वत मालाओं में खुदाई करने पर कई प्राचीन संस्कृतियों का पता लगा है। रूस का पुरातत्व विभाग इस पर्वत श्रेणी में खुदाई करके प्राचीन इतिहास का पता लगाने में बहुत क्रियाशील है।

इस पर्वतमाला और इसके पश्चिमोत्तर प्रदेश में खुदाई करने पर कई कब्रें मिली हैं जिनसे करासुक नामक एक प्राचीन संस्कृति का पता लगा है जो ई० पू० १२०० से ८०० तक मध्यएशिया के उत्तरापथ में विद्यमान थी।

अल्ताई पर्वतमाला की खुदाई से शक जाति के इतिहास पर भी बहुत प्रकाश पड़ता है।

अल्ताई पर्वतमाला की "पाज़ीरिक घाटी" पर कई बड़े-बड़े टीले बने हुए हैं जिनकी खुदाई करने के लिए प्रोफेसर रुदेन्को और उनकी पार्टी वहाँ पर पहुँची। इन टीलों के बगल में उन्होंने अपना कैम्प लगाया। पानी से बिलकुल शून्य होने के कारण इस घाटी पर कोई मानव नहीं रहता।

ये टीले वास्तव में प्राचीन युग की कब्रें हैं। इन टीलों के ऊपर छाई हुई मिट्टी की तहों को निकाल देने पर लकड़ी के बने हुए तहखाने दिखलाई देने लगते हैं। तहखानों को खोला जाता है लेकिन वहाँ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हर चीज पर बर्फ की मोटी तह जमी हुई दिखलाई पड़ती है। यह निरन्तर जमी रहनेवाली बरफ उन तहखानों और उसके अन्दर रक्खी हुई प्रत्येक चीज को हजारों बरस का समय गुजर जाने पर भी अभी तक सुरक्षित रक्खे हुए हैं।

अल्ताई पर्वत श्रेणी हमेशा बर्फ से ढकी हुई नहीं रहती फिर इन टीलों के नीचे यह अक्षय बरफ कहाँ से आती है, इसकी खोज करने पर पता लगा कि बरफ की ये तहें कृत्रिम रूप से जमाई हुई हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन टीलों का निर्माण पतझड़ ऋतु में किया गया होगा ताकि नमी और पाला टीलों में प्रवेश कर प्रत्येक चीज को बरफ से ढक दे। गर्मी के दिनों में तहखानों के ऊपर जमाई हुई चट्टानों के कारण धूप उनमें प्रवेश नहीं कर पाती और बरफ के पिघलने की नौबत नहीं आती इस प्रकार यह बरफ सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी ज्यों की त्यों बनी रहती है।

उस बरफ को हटाने के लिए उस पर खौलता हुआ पानी डाला गया तब वह बरफ पिघल-पिघल कर हट गई। बरफ हटने पर पता लगा कि पुरातत्व विदों का ज्ञान बढ़ाने वाली अनेक बहुमूल्य चीजें वहां पर संगृहीत है। कसीदा-गरी से युक्त चमड़े की चीजें, रेशम और फर से बने हुए महिलाओं के वस्त्र और प्राचीन योद्धाओं के शिरस्त्राण इत्यादि। पार्टी की कलाकार वेरा मुस्तोवा ने तुरन्त इन चीजों के चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिया ताकि चमड़े, फर, रेशम से बनी इन चीजों के सजीव रंगों का रेकार्ड रक्खा जा सके।

क० माइसोवा अपने वर्णन में लिखते हैं कि—"पुरातत्व के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जहाँ हजारों साल पुरानी चमड़े, रेशम, फर या फैल्ट की चीजें सही सलामत रूप में उपलब्ध हुई हों। मिश्र के शाही समाधि स्थलों में अनेक सुन्दर चीजें मिली थीं लेकिन वहां के महीन कपड़ों, चमड़े तथा लकड़ी की चीजों को जैसे ही बाहर निकाला गया हाथ से छूने ही वे राख का ढेर होगई उनके फोटो भी नहीं लिये जा सके मगर यहां से निकली हुई चीजें आज भी उतनी ही मजबूत और सुन्दर दिखलाई देती हैं मानों वे आज ही बनाई गई हों।

मजबूत देवदारु से बनी शव-पेटिका इतनी भारी थी कि उसे बिना तोड़े बाहर निकालना असम्भव था। उसके तोड़ने पर उसमें एक स्त्री और एक पुरुष के शव का जोड़ा मिला। ये दोनों शव इतनी अच्छी हालत में थे कि ऐसा मालूम होता था मानों हाल ही में दफनाये गये हों। ये शव एक शक सैनिक और उसकी पत्नी के थे। सैनिक का रंग सांवला था और पत्नी का रंग गोरा था। पुरुष की छाती और कंधों पर गोदना गुदाया हुआ था इनके सिवा वहाँ पर फैल्ट का एक बहुत बड़ा कालीन मिला जिसपर समृद्धि की देवी का रंगीन चित्र बना था। एक दूसरा मखमली कालीन भी मिला जो बहुत मूल्यवान था, इस कालीन के नमूने से शोधकों को उस शक योद्धा के दफनाने के समय का पता जानने में मदद मिली। इससे पता लगा कि ये शव ईसा पूर्व छठी या पाँचवी सदी के हैं।

कबर की दीवार के पीछे चौदह उत्तम जाति के घोड़ों के सुन्दर साजो सामान से कसे हुए शव मिले। लकड़ी पर नक्काशी के काम और सीने के काम से मुसज्जित ज़ीनें इनपर कसी हुई थीं। उन दिनों में मृतक स्वामी के साथ उसकी पत्नी, उसके घोड़े जीवित अवस्था में ही दफनाने का रिवाज था।

इस प्रकार अलताई की इस पर्वतमाला में टीलों के रूप में बनी हुई इन कब्रों ने आज से ढाई तीन हजार बरस पुरानी सभ्यता के सूत्र इतिहासकारों को भेंट किये हैं जिनसे उस समय की शक संस्कृति, करासुक संस्कृति, मिनूसून संस्कृति, और अन्द्रोनीय संस्कृति की विश्वस्त जानकारी प्राप्त होती है।

अलताफ हुसेन 'हाली'

उर्दू-साहित्य के एक सुप्रसिद्ध कवि, जिनका जन्म सन् १८३७ में पानीपत में हुआ।

जहाँगीराबाद के नवाब मुस्तफा खाँ के सम्पर्क में आने से अलताफ हुसेन हाली में उर्दू की कविता का प्रेम जाग्रत हुआ और कविता बना-बनाकर वे महाकवि गालिब के पास भेजने लगे। इनकी काव्य-प्रतिभा को देख कर तत्कालीन मुसलिम नेता सर सैयद अहमद ने इन्हें अपनी मित्रमण्डली में शामिल कर लिया।

इनकी कविताओं में मुसद्दस हाली बहुत मशहूर है। यह ग्रन्थ सर सैयदअहमद की कल्पनाओं को साकार रूप देने के लिये लिखा गया था। ६ पंक्तियों वाले इसके छन्दों में इतना ओज और माधुर्य भरा हुआ है कि पढ़ने और सुनने वाले दोनों ही बाग बाग हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त दीवाने हाली भी इनका एक मशहूर ग्रन्थ है जिसमें इनकी गजलों और रुबाइयों का संग्रह है। मजमूये नज्म-ए हाली में उर्दू की और मजमूये नज्म-ए फारसी में इनकी फारसी कविताओं का संग्रह है।

भाषा की सरलता, भावों की प्रौढ़ता और कविता का बहाव ये हाली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उर्दू-साहित्य के इतिहास में महाकवि हाली का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। गद्य-लेखक और आलोचक की दृष्टि से भी आधुनिक उर्दू-साहित्य में 'हाली' मार्ग प्रदर्शक माने जाते हैं। उनकी शायरी के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सजा है,
अबस झूठ बकना अगर नारवा है।
गुनहगार यों छूट जायेंगे सारे,
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे!

× × ×

कहते हैं जिसे जन्नत वह एक झलक है तेरी,
सब वाइजों की बाकी रंगी बयानियाँ हैं।

× × ×

शायरी मर चुकी अब जिन्दा न होगी यारों।
याद कर करके उसे जी न कुढ़ाना हरगिज॥

अल्तूनिया

गुलाम वंश की रजिया बेगम के शासन काल में सरहिन्द का शासक अल्तूनिया। जिसने रजिया बेगम की सल्तनत के खिलाफ सबसे पहले विद्रोह का झण्डा उठाया।

रजिया बेगम एक बुद्धिमती, प्रतिभाशाली, न्यायप्रिय और योग्य शासिका थी। राज्य की रक्षा करने के सम्बन्ध में वह बहादुर भी थी। मगर स्त्री सुलभ चंचलता, उद्दाम वासना और यौवन के आवेगों से वह बची हुई नहीं थी। उसकी यह नारी सुलभ कमजोरी उसके शासन के क्षेत्र में बड़ी बाधा बनकर खड़ी हो गई। इस कमजोरी से पराभूत होकर वह अपने अस्तबल के रक्षक एक हब्शी गुलाम जमालुद्दीन याकूत से प्रेम करने लगी। इस हीन व्यक्ति के साथ प्रेम करने के कारण उसके सरदार उसके खिलाफ हो गये।

इनमें सबसे पहले सरहिन्द के शासक अल्तूनिया ने उसके विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा किया। उस बगावत को दबाने के लिये रजिया अपनी सेना के साथ राजधानी से चल पड़ी। जब वह तबरहिन्द पहुंची तो तुर्की अमीरों ने उसके प्रेमी गुलाम याकूत को मार डाला और उसे किले में बन्दी बनाकर रख दिया।

मगर ऐसे विकट समय में बेगम रजिया ने अपना प्रेम पूर्ण कटाक्ष अल्तूनिया पर फेंक कर उसे अपने वश में कर लिया। उसने रजिया के खोये हुए साम्राज्य को वापस पाने के लिये दिल्ली पर आक्रमण किया मगर उसमें उसे सफलता नहीं मिली। उसके साथियों ने उसके साथ दगा किया। वह रजिया बेगम सहित विद्रोही हिन्दुओं के हाथ में पड़ गया जिन्होंने सन् १२४० में उन दोनों को मार डाला।

अल-नाबिगा

धुबियान का रहने वाला अरबी कवि। जो इस्लाम के उदय से पूर्व पचास वर्ष तक सीरिया के गस्सानी दरबार में रहा था। उसकी कविता पर उस दरबार की शैली का खूब असर पड़ा। वह अलहीरा के ईरान प्रभावित दरबार में भी कुछ समय तक रहा उसकी कविता में दोनों दरबारों का चित्रण है।

अलपतगीन

खुरासान का प्रसिद्ध सेनापति जिसने गजनी वंश के संस्थापक सुबुक्तगीन को एक गुलाम के रूपमें खरीदा था।

अलपतगीन को सामानी वंश के शासक इस्माइल ने एक गुलाम के रूप में खरीदा था। सामानी वंश के छठे सम्राट अबुल मलिक के समय यह प्रतिहारों का अफसर था। सामानी सम्राट नूह के जमाने में यह सिपहसालार बना दिया गया। जब नूह की मृत्यु हुई तो उसका पुत्र मन्सूर सामानी वंश का सम्राट बना। अलपतगीन और सम्राट मंसूर के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। एक बार सम्राट ने उसे धोखे से मरवा देने के लिए दरगाह में बुलाया मगर अलपतगीन को इस षड़यन्त्र का भेद मालूम हो गया। तब उसके अमीरों ने अलपतगीन को बादशाह से बदला लेने को उकसाया। मगर जवाब में अलपतगीन ने कहा कि यदि मैं बादशाह से बदला लेने का प्रयत्न करूँ तो दुनिया क्या कहेगी? जिस अलपतगीन ने ६० वर्षों तक सारे सामानी साम्राज्य को सम्हाले रक्खा उसी ने ८० वर्ष की आखिरी उम्र में उसी वंश के खिलाफ बगावत करके बादशाह बनने का प्रयत्न किया। मैंने सारी उम्र वफादारी

और नेकनामी में गुजारी है अब इस आखिरी उम्र में यह काम मुझसे नहीं होगा। गलती और गुनाह चाहे किसी का हो मगर जब तक मैं खुरासान में हूँ तब तक यह बात नहीं होगी। इसलिए मेरे लिए अब यही अच्छा है कि खुरासान से बाहर चला जाऊँ। जब तक मेरे हाथ में तलवार है मुझे रोटी की कोई कमी नहीं पड़ सकती। इसलिए मेरे अमीर, मेरी सेना और सब नुमाइन्दे बादशाह की सेवा में चले जाँय और उसकी सेवा में रहें। मैं अब हिन्दुस्तान जाऊँगा और वहाँ काफिरों के खिलाफ धर्म युद्ध और जिहाद में भाग लूँगा। अगर मारा जाऊँगा तो शहीद होऊँगा और यदि जीता रहा तो काफिरों को इसलाम के झण्डे के नीचे लाऊँगा।

निजामुल मुल्क ने अपने सियासतनामे में लिखा है कि पैंतीस वर्ष की उम्र में उसने खुरासान की सिपहसालारी पाई वह बड़ा ही इमानदार, विश्वासपात्र, बहादुर, होशियार और ईश्वर से डरने वाला था। वह कई बरसों तक खुरासान का गवर्नर भी रहा। उसके गुलामों में सुबुक्तगीन नामक एक गुलाम भी था जो आगे जाकर सुप्रसिद्ध गजनी वंश का संस्थापक हुआ।

खुरासान से निकल कर अलपतगीन बामियान, और काबुल जीतता हुआ गजनी पहुँचा। गजनी के राजा लोपक को उसने हराया और फिर वह गजनी में ही रहने लगा। गजनी से वह हिन्दुस्तान गया और वहाँ लूट मचाई वहाँ से लूट का भारी सामान लेकर जब वापस गजनी गया तो इस विजेता के झण्डे के नीचे बहुत से लड़ाकू मुसलिम एकत्र हो गये।

अलपतगीन के कोई सन्तान न होने से उसने अपने प्रिय गुलाम सुबुक्तगीन को अपने शासन का उत्तराधिकारी बनाया। अलपतगीन की मृत्यु सन् ९६३ में हुई।

अल्प अरसलन

(सन् १०६३ से १०७३)

सल्जुकी तुर्क सम्राट् जिसका साम्राज्य वक्षु नदी से फुरात नदी तक और कास्पियन समुद्र के तट से फारस की खाड़ी तक के विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था।

ईरान में सामानी साम्राज्य का अन्त होने पर उसके साम्राज्य को कराखानी और गजनवियों ने आपस में बाँट लिया। मगर थोड़े ही दिनों बाद गजनवियों की शक्ति को तुर्क मान सल्जुकी नेता तुगरल खान सल्जुकी ने १०१६ ई० में गजनी नेता मसऊद को भारी हार देकर नष्ट कर दिया और युद्ध क्षेत्र में ही सिंहासनारोहण किया था।

इसी तुगरल खान की मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा अल्प अरसलन इस विशाल साम्राज्य का स्वामी बना। इसने पुराने वजीर को हटाकर राजनीति शास्त्र के आलिम निजामुलमुल्क को अपना वजीर बनाया। निजामुलमुल्क बड़ा न्यायप्रिय, विचार सहिष्णु और साहित्यानुरागी था।

अल्प अरसलन के समय में सलजुकी तुर्कों ने पहले-पहल रोमन राज्य पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में रोम के आधीन आरमेनिया का एक भाग उजाड़ हो गया।

इस यात्रा से लौटने के बाद अल्प अरसलन ने वक्षु नदी के पारवर्ती क्षेत्रों को जीतने का विचार किया। वह दो लाख सेना लेकर सन् १०७२ में इस विजय-यात्रा पर निकला। मगर उसे रास्ते ही में बेरजेम के किलेदार ने मारडाला।

अल्फ्रेड महान्

इंग्लैण्ड का एक पराक्रमी, विद्वान और महान राजा। वेसेक्स के राजा एगबर्ट का नाती। जिसका समय सन् ८७१ के करीब है।

जिस समय अल्फ्रेड गद्दी पर बैठा उस समय इंग्लैण्ड पर लगातार डेन जाति के आक्रमण हो रहे थे और उन्होंने इंग्लैण्ड के नार्थब्रिया, मर्सिया, ईस्ट एंग्लिया इत्यादि स्थानों पर अधिकार कर लिया था। सन् ८७१ तक सिर्फ वेसेक्स को छोड़कर इंग्लैण्ड के अधिकांश भाग पर उनका अधिकार हो गया था।

अल्फ्रेड महान ने आक्रामक डेन जाति का बड़ी वीरता से करीब सात वर्षों तक मुकाबिला किया और अन्त में सन् ८७८ में उसने डेनों को हरा दिया और उनसे एक सम्मान पूर्ण संधि कर ली जिसे "वेडमोर की संधि" कहते हैं।

उस समय विदेशी शत्रुओं का मुकाबिला करने के लिए इंग्लैण्ड के पास अच्छी जल सेना नहीं थी। अल्फ्रेड ने बड़े-बड़े जहाज बनवाकर एक मजबूत जल सेना तैय्यार की। उसने एक राष्ट्रीय सेना "मिलिशिया" के नाम से तैय्यार की। स्थान-स्थान पर किले बनाकर समुद्र की तट बन्दी कर दी और वहाँ सेना रख दी।

अल्फ्रेड महान् का नाम अंग्रेजी भाषा और साहित्य के विकास में भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उसने "क्रानिकल आफ विन्चेस्टर" नामक एक राष्ट्रीय इतिहास और लैटिन इंग्लिश शब्दकोष तैय्यार करवाया था।

अल्फ्रेड इब्सन

डेनमार्क का एक साहित्यकार जिसका जन्म सन् १८५२ में हुआ। इसकी कृतियों में उसका नाटक 'मैफिस्टो फेलिक्स' तथा उसके दो तीन कविता संग्रह प्रसिद्ध हैं।

अल्फ्रेड-डी-मिसे

उन्नीसवीं सदी का फ्रेञ्च कवि। यह एक प्रयोगवादी कवि था। इसके लिरिकों में विविधता प्रचुर मात्रा में है इसकी ध्वनि व्यंगात्मक और विनोदशील है। इसका प्रसिद्ध काव्य "नाईट्स" है। इस संग्रह की कविताएँ हृदयस्पर्शी हैं। इसके चरित्र चित्रण बड़ी बारीकी और स्वाभाविकता से हुए हैं।

अल्फ्रेड-डी-विनी

उन्नीसवीं सदी का फ्रेञ्च साहित्यकार और कवि। इसकी कविताओं में चिन्तन की प्रतिभा और शालीनता के दर्शन होते हैं। इसकी कविताएँ प्रतीकवादी हैं जिनमें इस कवि की चिन्तन-शक्ति और काव्यकला उद्घोषित होती है।

अल्फोंज-दोदे
(AlPhonse-Dawdet)

फ्रेंच भाषा का मशहूर कहानीकार, जिसने फ्रेञ्च कहानी साहित्य में अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया। इसकी कहानियों में उत्कृष्ट दर्जे की सुरुचि, भावुकता का सम्मोहन और सूक्ष्म व्यङ्ग की झलक पाई जाती है। स्थान-स्थान पर हास्य रस की धाराएँ छूटती हैं। इसने कुछ उपन्यास भी लिखे हैं मगर उन्होंने इसकी कहानियों की तरह अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की। उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल में यह हुआ।

अलफ्रेड टेनिसन

अंग्रेजी साहित्य का विक्टोरिया कालीन महाकवि। जिसका समय सन् १८३२ से १८७५ तक है।

इंग्लैण्ड में विक्टोरिया काल में टैनीसन का नाम वहाँ के काव्य-जगत में सब से प्रथम आता है। उत्कृष्ट शब्द रचना, और भावों के प्रवाह और ध्वनियों के उपयोग में वह अंग्रेजी साहित्य में बेजोड़ है।

टैनीसन की छोटी-छोटी कविताएँ जैसे "दी पैलेस ऑफ आर्ट" "दी ड्रीम ऑफ फेअर वीमेन" इंग्लैण्ड में बड़े आदर से पढ़ी जाती हैं। उसके काव्य-ग्रन्थों में "इडिल्स ऑफ दी किंग" और "इन मेमोरियम" बहुत प्रसिद्ध और सफल काव्य माने जाते हैं।

"इन मेमोरियम" काव्य उसने अपने मित्र आर्थर हैलम की मृत्यु पर उसकी स्मृति में लिखा है। वास्तव में उसकी यह कृति उस युग की सर्वश्रेष्ठ कृति होगई है।

टैनीसन एक स्वप्नमयी सृष्टि का महान् कवि था, कविता करते समय उसकी दृष्टि से वास्तविक दुनिया ओझल हो जाती थी और वह स्वप्नलोक की दुनिया में विचरण करने लगता था उसकी कल्पनाएँ शत, सहस्रमुखी होकर उसकी कविता में प्रवाहित हुई हैं। वह प्रत्यक्षलोक का नहीं कल्पना लोक का कवि था।

इंग्लैण्ड के काव्य क्षेत्र में उसका अपना एक निश्चित स्थान है, वह पढ़ा भी बहुत गया है और उसका अनुकरण भी काफी हुआ है।

अलफ्रेड हॉसमेन

बीसवीं सदी का प्रसिद्ध अंग्रेज कवि, केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय में लैटिन भाषा का प्रोफेसर-सन् १८५६ से १९३६ तक।

अल्फ्रेड हॉसमेन बीसवीं सदी के प्रमुख अंग्रेज कवियों

में से एक है "श्रोपशायर लैड" और "लास्ट पोयम्स" उसके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के द्वारा साहित्य क्षेत्र में उसने काफी ख्याति उपार्जन की है। मनुष्य हृदय में उठने वाले आवेगों का उसने बड़ी सजीव शैली में वर्णन किया है। उसने पुराने शब्दों के नवीन प्रयोग किये।

अल्फ्रेडो-ओरियानी

उन्नीसवीं शताब्दी में इटली का सबसे समर्थ यथार्थवादी (Realistic) उपन्यासकार। उसका प्रसिद्ध उपन्यास "जैलेसी" सम्भवतः उस दिशाका प्रतीक होगया है।

अल्फ्रिक

लैटिन इंग्लिश कोष का सर्वप्रथम रचयिता। अल्फ्रिक एक ईसाई धर्म गुरु था। इसके बाइबिल सम्बन्धी प्रवचन बड़े सुन्दर होते थे।

अल-फाराबी

इस्लामी जगत् का महान् दार्शनिक, विद्वान और संगीत शास्त्री।

सामानी-राजवंश के काल में बगदाद ने कई साहित्यकार और दार्शनिक पैदा किये थे। उनमें अल-फराबी का नाम बहुत ऊँचे स्थान पर है। कहा जाता है कि अल-फराबी सत्तर भाषाओं का पण्डित था। तुर्की, फारसी, अरबी, सुरियानी, इब्रानी, और यूनानी तो उसकी मातृभाषा की तरह थी। शिक्षा समाप्त करने के बाद फराबी बहुत समय तक बगदाद में रहा। वह शान्त और एकान्त जीवन को बहुत पसन्द करता था। उसके ऊपर यूनानी सोफिस्टों और बौद्ध भिक्षुओं के जीवन का बहुत प्रभाव पड़ा था। वह स्वयं सूफियों की पोशाक में रहता था।

यह बात स्पष्ट है कि यूरोप ने यूनान के महान् दार्शनिक सुकरात, प्लेटो और अरस्तू के साथ सम्बन्ध स्थापित करने और प्रेरणा लेने में अरबी विद्वानों के उपकार को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। यदि अरबी विद्वानों और विचारकों ने अपनी कलम न उठाई होती तो शायद हम यूनान के गम्भीर दर्शन को आज पा भी नहीं सकते थे। यूरोप के पुनर्जागरण में यूनान के प्राचीन दार्शनिकों का बहुत बड़ा हाथ है। अल-फाराबी अरस्तू के ग्रन्थों का महान् भाष्यकार था उसके भाष्य और ग्रन्थ इतने महत्वपूर्ण समझे गये कि विद्वानों ने उसे "द्वितीय अरस्तू" का नाम दिया। अरस्तू को पुनर्जीवित करने में अल-फराबी की सेवाएं अमूल्य हैं। फराबी ने अपनी खोजों से अरस्तू के ग्रन्थों का जो संख्या क्रम निश्चित किया था उसे आज भी वैसा ही माना जाता है।

अलबानिया

बालकन प्रदेश का युगोस्लाविया, ग्रीस और एड्रियाटिक समुद्र से घिरा हुआ एक छोटा देश। जिसका क्षेत्रफल १०,६२६ वर्गमील है। वहां की जनसंख्या १९५७ में ११,५०००० थी। इसकी राजधानी तिराना है। यहाँ का प्रधान धर्म इसलाम और उससे कम रोमन केथोलिक है। इसका राष्ट्रीय झण्डा लाल रंग का है जिस पर दो काली पट्टियाँ और पाँच सितारों के निशान रहते हैं।

अलबानिया इतिहास में सबसे पहले ईसा की चौथी और पाँचवीं शताब्दी में गाथ जाति—जो कि बाद में जर्मन जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई—के अधिकार में था। छठी सदी में यह रोमन साम्राज्य का एक अङ्ग था। सातवीं सदी से चौदहवीं सदी तक सर्बियन लोगों ने इस छोटे देश पर शासन किया। पन्द्रहवीं सदी से बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक यह टर्की के आधीन रहा। प्रथम महायुद्ध के समय इसमें शासन के खिलाफ विद्रोह भड़क उठा और सन् १९२० में यह आजाद हो गया। सन् १९२८ में यहाँ पर किंग जोग का शासन हुआ। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी और इटाली ने इस पर आक्रमण करके अपने अधिकार में ले लिया उसके बाद सन् १९४६ में यहाँ पर गणतंत्र की घोषणा की गई। जनरल एनवर होदजा यहाँ की प्रेसिडियम ऑफ पीपल्स एसेम्बली के चेअरमेन और कमाण्डर इनचीफ है और मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष कर्नल जनरल मेहमत शेहू हैं।

अलबानिया योरप का एक पिछड़ा हुआ देश है यह कृषक और पशु पालक लोगों का देश है। यह देश सोवियट गुट के अन्दर है। यहाँ की मुख्य पैदावार तम्बाकू, इमारती लकड़ी, ऊन, फर, जैतून का तैल, मछली इत्यादि है। यहाँ के जंगलों में इमारती लकड़ी बहुत अच्छी होती है। दूध देने वाले और ऊन पैदा करने वाले पशु यहाँ काफीतादाद में है।

अलबर्ट आइन्स्टीन

विश्व का एक महान् वैज्ञानिक, परमाणु शक्ति का आविष्कारक, अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार नोवल प्राइज के विजेता, जन्म सन् १८७६ मृत्यु सन् १६५५।

विश्व के महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन का जन्म जर्मनी के उल्म नामक स्थान पर एक यहूदी परिवार में सन् १८७६ में हुआ था। बचपन से ही आइन्स्टीन को विज्ञान तथा संगीत में बड़ी रुचि थी।

आइन्स्टीन के पिता इनको इलेक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग के व्यवसाय में लगाना चाहते थे मगर आइन्स्टीन को व्यवसायिक क्षेत्र में दिलचस्पी नहीं थी तब इनके पिता ने इन्हें गणित का विशेष अध्ययन करने की अनुमति प्रदान की। ज्यूरिच पोलिटेकनीक एकेडेमी से उन्होंने गणित में एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की।

मगर यहूदी परिवार में जन्म लेने के कारण उन्हें जर्मनी में कहीं भी नौकरी नहीं मिली। कुछ समय पश्चात् उन्हें बर्न में स्वीस पेटेण्ट आफिस में क्लर्क की नौकरी मिल गई। वहाँ पर वे अवकाश के समय में स्थान और समय सम्बन्धी प्रश्नों का हल निकाला करते थे। एक दिन जब उन्होंने अपने प्रश्नों का सही-सही हल निकाल लिया तो तो वे उस हल को लेकर एक पत्र सम्पादक के यहां पहुँचे। सम्पादक ने उस हल को अपने पत्र में प्रकाशित कर दिया और उसी दिन से आइन्स्टीन की गणना वैज्ञानिकों में होने लगी। उस समय उनकी आयु २६ साल की थी।

आइन्स्टीन ने सबसे पहले इस बात का प्रतिपादन किया कि विश्व का कोई भी भाग प्रत्येक व्यक्ति को एक समान नहीं दिखलाई पड़ता। पैदल चलने वाला, मोटर में चलने वाला और वायुयान में उड़ने वाला इन तीनों के अनुभव विश्व के विशिष्ट भूभाग के प्रति एक समान नहीं होते प्रत्येक अनुभव उस अनुभवकर्त्ता की परिस्थिति के अनुसार सापेक्ष होता है।

आइजकन्यूटन के इस सिद्धान्त का कि "दुनिया की प्रत्येक वस्तु स्वाभाविक रूप से स्थिर होने की ओर प्रवृत्त है" आइन्स्टीन ने खण्डन किया। उन्होंने सिद्ध किया कि वास्तव में प्रत्येक वस्तु गतिमय अवस्था में (State of motion) में रहती है। परन्तु समस्त गतिमय वस्तुओं के वेग (Velocities) परस्पर सापेक्ष्य होते हैं। चल वस्तुओं में केवल प्रकाश की गति ही अपरिवर्त्तनशील अर्थात् १,८६००० मील प्रति सेकण्ड रहती है। अन्य चल वस्तुओं की गति, दिशा और आकार सभी सापेक्ष्य रहते हैं।

सन् १६०५ में उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया सापेक्ष्य वाद का सिद्धान्त (Theory of Relativity) विश्व के वैज्ञानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।

अलबर्ट आइन्स्टीन के जीवन की प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) सन् १६०५-६ में उन्होने क्वाण्टम थिओरी को विकसित किया।

(२) सन् १६१३ में वे बर्लिन में केसर विलियम फिजिकल इन्स्टीट्यूट के संचालक हुए और प्रशियन साइन्स एकेडेमी के सदस्य निर्वाचित किये गये।

(३) सन् १६२१ में ब्रिटिश रॉयल सोसायटी के सदस्य निर्वाचित हुए।

(४) सन् १६२२ में उन्हें भौतिक शास्त्र पर अन्तर्राष्ट्रीय नोबेल प्राइज प्राप्त हुआ।

(५) सन् १६३३ में यहूदी होने के कारण जर्मनी से निर्वासित होकर प्रिस्टन विश्वविद्यालय न्यूजर्सी में पहुँचे।

(६) सन् १६३६ में इन्होंने प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट को परमाणु शक्ति का सैनिक-शस्त्र के रूप में प्रयोग न करने की चेतावनी दी।

(७) सन् १६४० में ये अमेरिका के नागरिक और सन् १६४५ में वर्ल्ड गवर्नमेण्ट के एडवोकेट बने।

(८) अपने अन्तिम दिनों का उपयोग इन्होंने यूनिफाइड फील्ड थिओरी (Unified Field Theory)

के विकास में लगाये। सन् १६५५ में इनका देहान्त हो गया।

डॉ० आइन्स्टीन द्वारा अनुसन्धान की गई बातें संक्षेप में इस प्रकार हैं।

(१) वस्तुओं की निरपेक्ष गति नहीं नापी जा सकती।

(२) गति के परिणाम स्वरूप वस्तुओं के भार में वृद्धि हो जाती है। गर्म करने पर वस्तुओं का भार बढ़ जाता है। इससे यह मालूम होता है कि शक्ति में भार रहता है।

(३) वस्तु को शक्ति के रूप में और शक्ति को वस्तु के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

(४) हमें जो कुछ दृष्टिगोचर होता है या हमें जो कुछ ज्ञात है। वह हमारी स्थिति के कारण है यदि विश्व को बाहर से देखें तो हमें कुछ और ही दिखाई देगा।

अलबर्ट अब्राहम माइकलसन

(Albert Abraham Michelson)

जर्मनी का एक वैज्ञानिक जिसने इण्टर फेरो मीटर (Inter Ferometer) नामक प्रकाश की तरंग लम्बाई नापने के यंत्र का आविष्कार किया जो इसी के नाम पर मशहूर हुआ।

ईथर के अनुसार पृथ्वी की गति को निकालने की कोशिश इसका एक महत्वपूर्ण प्रयोग है। यह प्रयोग इसने सन् १८८० में बर्लिन में किया मगर परिणाम कुछ नहीं निकला। इसके द्वारा आविष्कृत इण्टर फेरो मीटर से जिसका नाम इसी के नाम पर रखा गया है प्रकाश तरंग की लम्बाई बहुत यथार्थता के साथ निकाली जा सकती है। सन् १८६३ में इसने एक प्रमाणित मीटर की एक लम्बाई पर लाल केडमियम (Cadmium) प्रकाश की तरंग लम्बाई का मान निकाला। प्रकाश के वेग को निकालने की विधियों का सुधार करने में यह अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक लगा रहा। एशलान स्पेक्ट्रस्कोप (Echelon Spectroscope) विश्रेणी वर्ण दर्शक नामक एक उच्च सूक्ष्मदर्शितावाला स्पेक्ट्रस्कोप भी इसी की वजह से प्रकाश में आया। इसने भौतिक विज्ञान पर संसार का अन्तर्राष्ट्रीय नोबल प्राइज प्राप्त किया। लन्दन की रॉयल सोसायटी का कोपल मेडल भी इसे प्राप्त हुआ।

अल्फोञ्जो मर्सीनेज तोलेदो

स्पेन के तालावेरा नामक चर्च का प्रधान पादरी जो साहित्यकार भी था। पादरी होते हुए भी इसकी कृतियों में यौन-शृंगार का खुला वर्णन हुआ है। सुन्दर शब्द योजना के अन्दर उसने वेश्याओं की चपलता और धूर्तता का वर्णन किया है। इसका समय सन् १३६८ से १४७० तक है।

अल-बलाधुरी

एक ईरानी इतिहास लेखक जो अरबी भाषा में लिखता था। इसका ग्रन्थ फुतूह-अल-बुल्दान मुस्लिम राज्य के मूल का निरूपण करनेवाला ग्रन्थ है।

अल-बदी

अब्बासी खलीफा "इब्न-अल-मुहताज" द्वारा लिखित काव्य और अलंकारों का निरूपण करनेवाला अरबी ग्रन्थ जिसमें अरबी-आदर्शों के आधार पर अलंकार के सिद्धान्त बनाये गये हैं। इस ग्रन्थ का लेखक सुलतान केवल एक दिन के लिए सुलतान बना था। दूसरे ही दिन उसकी हत्या कर दी गई। इसकी हत्या सन् ६०८ में हुई।

अल्बर्ट

जर्मनी की एक रियासत सेक्सकोवर्ग का राजकुमार अल्बर्ट जिसके साथ सन् १८४० में इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने अपना विवाह किया।

अल्बर्ट चतुर, दूरदर्शी और मिलनसार व्यक्ति था। इसलिये उसके प्रति सब लोगों के हृदयों में प्रेम-भाव था। विवाह के इक्कीस वर्ष बाद सन् १८६१ में उसकी मृत्यु हो गई। इसकी मृत्यु से सब लोगों को बड़ा दुःख हुआ।

अल्मक्विस्त
(Alm Qwist)

स्वीडन का एक प्रसिद्ध उपन्यासकार जिसने फ्रेञ्च उदार दलवादी आन्दोलन से प्रभावित हो श्रमिक आन्दोलन के पक्ष में कई निबन्ध और कहानियाँ लिखीं। यह अपने समय का सर्वोत्तम उपन्यासकार होने के साथ-साथ नाटककार भी था। यथार्थवादी साहित्य का यह प्रसिद्ध लेखक था।

अल्बि

फ्रान्स का एक नगर जहाँ पर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में ईसाई पादरियों के वैभव, विलास और दुराचार-पूर्ण जीवन के विरुद्ध विद्रोह की भावना का जन्म हुआ उन दिनों इसको नास्तिकता की भावना कहते थे। इस प्रकार की भावनाओं के प्रतिनिधि अपने आपको कथारि (श्रेष्ठ) कहते थे। सर्व साधारण में ये अल्बिजियन्स के नाम से प्रसिद्ध थे। ऐसे लोगों को दबाने के लिए उस समय के धर्माधिकारियों और शासकों ने बड़े क्रूर उपायों से काम लिया था।

अल्बर्ट्स मेगनस

तेरहवीं सदी में अरस्तू के ग्रन्थों का प्रसिद्ध टीकाकार। महात्मा डोमिनिस का अनुयायी होने के कारण यह डोमिनिकन कहलाता था।

इस काल में अरस्तू के साहित्य पर लोगों की बहुत श्रद्धा हो गई थी। सब लोग उसे दार्शनिक तत्ववेत्ता कहा करते थे। उस समय के विद्वानों का मत था परमेश्वर ने अरस्तू को इस योग्य बनाया कि वह प्रत्येक विषय और शास्त्र पर अन्तिम सिद्धान्त लिख सकता था। अल्बर्ट्स मैगनस, तथा टामस आक्विनस ने बिना किसी संकोच के इसके सम्पूर्ण ग्रन्थों पर टीका की थी।

अल-बुस्तानी

अरबी साहित्य के इतिहास का लेखक जिसने "अल-मराहिल" के नाम से अरबी साहित्य के इतिहास को तीन खण्डों में प्रकाशित किया।

अलमिडा (Almeide)

सन् १५०५ ई० में भारतीय समुद्रतट पर पुर्तगाली सरकार का पहला गवर्नर जिसने पुर्तगालियों की सुरक्षा के लिये कई किले बनवाये।

अलबुकर्क (Albuquerque)

सन् १५०६ में पुर्तगाली गवर्नर अलमिडा के वापस जाने के बाद पुर्तगाल सरकार का नवीन गवर्नर अलबुकर्क।

अलबुकर्क एक कुशल सैनिक और निपुण शासक था। उसके समय में भारतवर्ष में पुर्तगाल की शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। भारत के अन्दर पुर्तगाली शक्ति को मजबूत बनाने और भारत के विदेशी व्यापार पर पुर्तगाल का एकाधिपत्य स्थापित करने के सम्बन्ध में उसने बहुत प्रयत्न किये। सन् १५१० में उसने गोवा पर अधिकार कर लिया और एक वर्ष के बाद ओर्मुज को भी जीत लिया। उसने अदन के बन्दरगाह पर भी अपना प्रभाव कायम कर लिया और कुछ समय के पश्चात् सकोत्रा पर भी अपना अधिकार कर लिया। जिसके परिणाम स्वरूप पूर्व और पश्चिम के अनेक व्यापारिक केन्द्रों पर पुर्तगालियों का अधिकार हो गया। लंका में मनार, कोलम्बो और अफ्रीका में सोफाला तथा मोजाम्बिक और पूर्व में अम्बोयना पुर्तगालियों के मुख्य व्यापारिक केन्द्र थे।

अलबुकर्क ने भारत वर्ष में ईसाई धर्म के प्रचार का भी प्रयत्न किया। उसने पुर्तगाल और भारत के व्यक्तियों के बीच में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की भी कोशिश की। मगर इन प्रयत्नों में उसे सफलता नहीं मिली और भारतीय जनता उससे रुष्ट हो गई।

अल-मुहासिबी

सूफी सम्प्रदाय का रहस्यवादी सूफी विद्वान जिसने "रिआयह-लि-हकूक इलाह" नामक ग्रन्थ लिखा। यह दर्शक शास्त्र का विद्वान था इसकी मृत्यु सन् ८५७ में हुई।

अलबेरूनी

इतिहास प्रसिद्ध अरबी यात्री और इतिहास लेखक
(सन् १०३०)

प्रसिद्ध इतिहास लेखक अलबेरूनी ख्वारेजम का रहने वाला मुसलमान था। ख्वारेजम को जीतने के बाद महमूद गजनी दूसरे कैदियों के साथ अलबेरूनी को भी गजनी ले आया। अलबेरूनी गणित और ज्योतिषशास्त्र का बड़ा विद्वान था। अरबी लोगों को गणित और फलित ज्योतिष का जो ज्ञान ग्रीक लोगों से प्राप्त हुआ था उसका भी अलबेरूनी ने पूर्ण अध्ययन किया था। भारत वर्ष में आने पर हिन्दू ज्योतिष भी उसने शौकिया सीख लिया। मध्यकाल की भारतवर्ष की सामान्य व्यवस्था के विवेचन में अलबेरूनी का विवेचन बड़ा प्रमाणिक है। क्योंकि उसने हिन्दुओं के शास्त्र, दर्शन, इतिहास इत्यादि अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उसे लेखबद्ध किया है।

भारत के मध्यकाल अर्थात् सन् १००० से १२०० ई० तक का इतिहास जानने के लिए अलबेरूनी की "इण्डिया" (हिन्दुस्तान) नामक पुस्तक बहुत उपयोगी है। जिस प्रकार हिन्दूकाल के पहले विभाग अर्थात् सन् ६०० से ८०० तक का इतिहास जानने के लिए चीनी यात्री हुएन सांग का वर्णन बहुत उपयोगी है उसी प्रकार सन् १००० से १२०० ई० तक के लिए अलबेरूनी का भारत वृत्तान्त भी उतना ही उपयोगी है।

दोनों ही लेखक विदेशी थे। दोनों ने हिन्दुस्तान में रह कर संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। दोनों ने जो कुछ लिखा ऐतिहासिक और आलोचनात्मक दृष्टि से लिखा। मुसलमान होते हुए भी अलबेरूनी की दृष्टि निष्पक्ष और स्पष्ट दिखाई देती है। हिन्दू लोगों के विषय में तथा उनके धर्म, संस्कृति या दर्शन के प्रति उसने कहीं भी निरादर का भाव प्रकट नहीं किया।

अलबेरूनी ने अपने ग्रन्थ में सारे भारत की भौगोलिक स्थिति का बड़ा रोचक वर्णन किया है जिससे उस समय की स्थिति पर बड़ा प्रकाश पड़ता है—

इस भौगोलिक वर्णन में उसने कन्नौज को केन्द्र माना है। क्योंकि उसके आने के समय यद्यपि यह नगर महमूद गजनवी के आक्रमण से उजड़ चुका था मगर उसके कुछ पहले ही यह करीब सारे भारत की सभ्यता का केन्द्र था। सम्राट् हर्ष के समय से ही यह साम्राज्य की राजधानी थी। परिणामतः चार सौ बरसों के लगातार वैभव से यह नगर हिन्दू संस्कृति, विद्वता और कला का केन्द्र बन गया था। चारों ओर से वहाँ विद्वान, धनवान और बहादुर लोग आकर इकट्ठे हो गये थे। भारतीय लेखक राजशेखर ने भी भारत का भौगोलिक वर्णन करते हुए कन्नौज को ही केन्द्र माना है। ऐसी स्थिति में अगर अलबेरूनी ने कन्नौज को केन्द्र मानते हुए भारत का भौगोलिक वर्णन किया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अलबेरूनी लिखता है कि—"कन्नौज गंगा के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ है मगर इस समय उजड़ा हुआ है। आजकल राजधानी गंगा के पूर्व में एक मंजिल पर "बारी" में है। इसके बाद अलबेरूनी ने प्रयाग के गंगा-यमुना संगम तथा वहां के "अक्षय वट" का उल्लेख किया है। प्रयाग से दक्षिण की ओर समुद्र के किनारे तक के मुख्य नगरों का वर्णन अलबेरूनी ने दिया है और लिखा है कि 'अन्त में दारूर देश के जोर राजा का राज्य है।" इसका मतलब द्राविड़ देश के चोल साम्राज्य से है जिसके अधिकार में उस समय कांची, मलय, कोकण और मंद्रास प्रान्त का अधिकांश भाग था।

इसके बाद अलबेरूनी "बारी" से पूर्व दिशा के प्रदेशों का वर्णन करते हुए, अयोध्या, बनारस, पाटलिपुत्र और मुग्द गिरि या मुंगेर का उल्लेख करता है। यहाँ उस समय पाल राजाओं की राजधानी थी; इन नगरों के पश्चात् चम्पा, दुगमपुर का वर्णन करके उसने गंगा सागर के प्रसिद्ध तीर्थ का वर्णन किया है जहाँ गंगा समुद्र में मिलती है।

फिर "बारी" से उत्तर पूर्व जाने पर भूतान और तिब्बत मिलते हैं यहाँ के लोग काले और तुर्कों के समान चपटी नाक वाले होते हैं। भूतान से पूर्व दिशा में कामरूप और पश्चिम दिशा में नेपाल के उस पार भूतेश्वर नामक सबसे ऊंचा पर्वत है।

"कन्नौज से दक्षिण पश्चिम की ओर जाते हुए जज-

ह्रुति" मिलता है इसकी राजधानी "खजुराहो" है। कालंजर और ग्वालियर के दो दुर्भेद्य किले इसी राज्य में हैं।"

"फिर कन्नौज से दक्षिण जाते हुए मार्ग में असी, सहन, जेन्द्र और गुजरात की राजधानी बजान मिलती हैं।" बजान को कई इतिहासकार भीनमाल समझते हैं मगर बहुत से लोग जयपूर के समीपवर्त्ती "नरेना" को बजान समझते हैं।

"बजान के दक्षिण में मेवाड़ का राज्य है उसकी राजधानी जित्तौर (चित्तौड़) है मेवाड़ के दक्षिण में मालवा की राजधानी धार है। मालवा से पूर्व सात फरसाख (दूरी का उस समय का नाप) पर उज्जयिनी तथा उज्जयिनी से दस फरसाख पर भेलसा है।

"धार के दक्षिण में नर्मदा के किनारे नेमार और नेमार के बाद मराटा देश तथा उसके बाद कोकण है।"

"बजान के दक्षिण पश्चिम अनहिलवाड़ और समुद्र किनारे पर सोमनाथ है। अनहिलवाड़ के दक्षिण लाट देश है। उसकी राजधानी भड़ोच तथा समुद्र किनारे पर रिहंजूर नगर है।

इसके पश्चात् अलबेरूनी "काश्मीर" का वर्णन करते हुए लिखता है कि "काश्मीर" में घोड़ों या हाथियों का अभाव है श्रीमान् लोग सवारी के लिए "पालकी" का उपयोग करते हैं। झेलम नदी के किनारे पर वारामूला है। इस नदी का और गंगा का उद्गम स्थान एक ही है। सिंधु नदी के उद्गम कुलर्जक तक पहुँचने के लिए गिलगिट से मार्ग है। उस स्थान में भट्ट तुर्क रहते हैं और उनके राजा को भट्टशाह कहते हैं।

हिन्दुस्तान की दक्षिणी सीमा समुद्र है। सिंधु के छोटे बड़े अनेक मुहाने पार करने पर समुद्र के किनारे से जाते हुए पहले कच्छ मिलता है कच्छ के बाद सोमनाथ है इन दोनों स्थानों पर समुद्री डाकू बहुत ज्यादा हैं। अन्त में अलबेरूनीने पश्चिम और पूर्व समुद्र के संगम पर रामेश्वर और सेतु का वर्णन किया है।

इस प्रकार अपनी पुस्तक में अलबेरूनी ने भारतवर्ष का भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सभी तरह का सुन्दर वर्णन किया है। भारतीय इतिहास का अन्वेषण करने में इसका विवेचन एक आधार शिला का काम देता है।

आलवा का ड्यूक

नीदरलैंड के शहर एण्टवर्प का गवर्नर जनरल जिसे स्पेन के शासक फिलिप्स ने नीदरलैंड के विद्रोह को दबाने के लिए पूर्ण अधिकार के साथ भेजा था। सन् १५६८ ई० में इस आलवा के ड्यूक ने इन्क्वीजिशन (धार्मिक) अदालत के द्वारा नीदरलैंड के सारे निवासियों को एक ही फैसले में काफिर करार देकर मौत की सजा दे डाली। यह आश्चर्यजनक फैसला इतिहास में बेमिसाल है जिसने तीन-चार लाइनों के फैसले में ही ३० लाख आदमियों को मौत के घाट उतार दिया।

स्पेन एक बहुत बड़ा राज्य था और नीदरलैंड केवल व्यापारियों की और साधारण जनता की आबादी थी। दोनों में कोई बराबरी नहीं थी लेकिन फिर भी नीदरलैंड को दबाना स्पेन के लिये मुश्किल हो गया। बार-बार हत्या कांड होते रहते थे। पूरी-की-पूरी आबादियाँ मौत के घाट उतार दी जाती थीं। मनुष्यों का कत्लेआम करने में आलवा और उसके सेनापति, चंगेज खाँ और तैमूर लंग को मात दे रहे थे! आलवा एक के बाद दूसरे शहर पर घेरा डालता था। असैनिक स्त्री-पुरुषों की हत्या करता था मगर फिर भी नीदरलैंड की जनता की आजादी की माँग के सामने उसे पराजित होना पड़ा।

अल्लसानी पद्दैन

विजय नगर के महान शासक कृष्णदेव राय के दरबार का प्रसिद्ध तैलगू भाषा का कवि! कृष्णदेव राय की सभा में बहुत ऊँचे दर्जे के साहित्यकार और कवि रहा करते थे। इन कवियों में तेलगू कवि अल्लसानी पद्दैन बहुत प्रसिद्ध रहा। वह आन्ध्र कविता का पितामह कहलाता था।

अल रूसाफी

इराक के कुर्दिश खानदान में पैदा हुआ, अरबी भाषा का कवि (सन् १८७५-१९४५)

अलरूसाफी अरबी भाषा का ऐसा कवि है जिसकी

भाषा में मादकता, सम्मोहन और उच्चश्रेणी की भावुकता है धार्मिक मामलों में उसके विचार बहुत स्वतन्त्र है। अरब और तुर्की जीवन के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग का वह पारदर्शी ज्ञाता है। अंग्रेजी, फ्रेञ्च इत्यादि विदेशी भाषाओं का जानकार न होने पर भी अरबी भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार है।

अल शहरस्तानी

अरबी साहित्य का लेखक जिसने अपने ग्रंथ "अल-मिलाल व-वा-निहाल के अन्दर संसार के सब धर्मों की इस्लाम के प्रकाश में आलोचना की है।

अल-समव अलइब्न आदिया

प्राचीन समय का यहूदी कवि जो मदीना के पास तैमा के दुर्ग में रहता था। ईसा की छठी शताब्दी में यह अपनी काव्य प्रतिभा के लिए काफी प्रसिद्ध था। उस समय के काव्य "कसीदों" के रूप में प्रख्यात थे।

अल-सिन्द-हिन्द

हिन्दू ज्योतिष और गणित की एक संस्कृत पुस्तक का अरबी अनुवाद। यह अनुवाद इब्राहीम अल-फजारी नामक एक अरबी विद्वान ने जिसकी मृत्यु सन् ७७७ में हुई, किया था। इसी ग्रन्थ से पहले पहल भारतीय अङ्क प्रणाली का उल्लेख हुआ। इसी से अरबी में अंकों को "हिन्द सा" कहते है। यहीं से यह अंक माला-अल ख्वारिज्मी के ग्रंथों द्वारा यूरोप के देशों में प्रचलित हुई। "अल सिन्द-हिन्द" का प्रकाशन संसार के इतिहास में युग प्रवर्तक मानने योग्य था। अल ख्वारिज्मी की मृत्यु सन् ८५० के लगभग हुई।

अलस्टर

उत्तरी आयर्लैंड का एक प्रान्त। जहाँ पर इंग्लैण्ड का प्रभुत्व स्थायी रूप से जमाने के लिए इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम ने अलस्टर प्रान्त के छः जिलों की जमीन वहाँ के मूल निवासियों से छीन कर वहाँ पर इंग्लैण्ड वालों को बसा दिया। यहाँ पर जमीनें मुफ्त में मिलती देख कर इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के सैकड़ों परिवार वहाँ आकर बसने लगा।

इस तरह अलस्टर आयर्लैण्ड में इंग्लैण्ड की एक छावनी सी बन गया। आयर्लैण्ड वालों ने इसका प्रबल विरोध किया। इधर अलस्टर के प्रवासी आयर्लैण्ड वालों से तीव्र घृणा करने लगे। आयर्लैण्ड को इस प्रकार दो दलों में विभक्त कर इंग्लैण्ड ने अपनी राजनैतिक धूर्तता की उस पर मुहर लगा दी। अलस्टर की यह समस्या करीब तीन सौ वर्ष तक दोनों देशों के लिए सिर दर्द बनी रही।

असोशियेटेड प्रेस

भारतीय समाचार एजेन्सी। जिसकी स्थापना सन् १९१० में स्वर्गीय किरणचन्द्र राय और ऊषानाथ ने सी कोट्स नामक अंग्रेज के सहयोग से की थी।

भारतवर्ष में सबसे पहली समाचार एजेन्सी शिमला में सी० कोट्स नामक अंग्रेज ने कोट्स न्यू सर्विस के नाम से की थी। मगर इस सर्विस का काम सिर्फ सरकारी विभागों को ही समाचार देने का था।

बंगाल के श्री ऊषानाथ सेन ने १९०३ में कोट्स से भेंट की थी। जब सन् १९१० में के०सी० राय और ऊषानाथ सेन ने असोशियेटेड प्रेस की स्थापना की तब उन्होंने मि० कोट्स का सहयोग भी प्राप्त किया और कोट्स की न्यू सर्विस को भी असोशियेटेड प्रेस एजेन्सी में मिला ली।

असोशियेटेड प्रेस की एजेन्सी व्यापक रूप से भारत वर्ष में समाचारों के आदान-प्रदान का काम करने लगी। सन् १९१० से सन् १९४३ तक 'असोशियेटेड प्रेस इण्डिया' के नाम से ही इस सर्विस का काम चलता रहा। यद्यपि सन् १९१२ के लगभग लन्दन की रायटर कम्पनी ने असोशियेटेड प्रेस एजेन्सी को खरीद लिया था।

अलाउल मुल्क

मुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का प्रधान मौलवी।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने जब बहुत सा मुल्क जीत लिया तो अकबर की तरह एक नये धर्म की स्थापना करने का उसने भी विचार किया। उसने अपने भावों को प्रकट करते हुए अपने प्रधान मौलवी से कहा--

"अल्लाह ताला ने पवित्र नबी को चार मित्र दिये जिनकी योग्यता और सामर्थ्य पर इस्लाम की स्थापना हुई। इस इस्लाम को स्थापना के द्वारा नबी का नाम कयामत के दिन तक जिन्दा रहेगा। अल्लाह ताला ने मुझे भी चार मित्र दिये हैं उलूग खां, जफर खां, नुसरत खां और अलब खाँ। यदि मैं चाहूँ तो अपने इन चारो दोस्तो की ताकत से एक नये मजहब की स्थापना कर सकता हूँ। मेरी तलवार और मेरे दोस्तों की ताकत आम खलक को मेरा मजहब मंजूर करने के लिये मजबूर कर देगी इस मजहब के द्वारा मेरा तथा मेरे दोस्तों का नाम नबी के नाम की तरह कयामत के दिन तक जिन्दा रह सकता है।"

जब उसने काजी अला उल मुल्क से इस बारे में राय पूछी तो काजी ने बतलाया कि मजहब और कानून खुदा ताला के बस की चीजें हैं। इन्सान की तमन्ना से वे कभी पैदा नहीं हो सकते। आदिम काल से उनकी व्यवस्था नबियों और पैगम्बरों के द्वारा होती चली आ रही है। जैसे राजकीय शासन और व्यवस्था का आयोजन राजाओं के द्वारा प्रतिपादित होता है, उस तरह मजहब और ईमान की व्यवस्था पैगम्बरों के द्वारा होती है। जब तक यह दुनिया मौजूद है तब तक मजहब और ईमान की स्थापना का काम राजाओं और विजेताओं से न कभी हुआ है और न होगा।

काजी अला उल मुल्क की यह सलाह अलाउद्दीन को पसन्द आई और उसने मजहब की स्थापना का विचार छोड़ दिया।

अलाइड कौन्सिल ऑफ जापान

द्वितीय महायुद्ध में जापान के बिना शर्त आत्म समर्पण के बाद वहाँ पर मित्र राष्ट्रों के डिक्टेटर जनरल मैक आर्थर के लिए बनाई गई मित्र राष्ट्रों की परामर्श दात्री समिति (१९४५)

अगस्त १९४५ में जब जापान ने बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया तब विजयी मित्रराष्ट्रों ने जापान के सम्राट की व्यवस्थित सरकार को तो वैसे ही कायम रहने दिया मगर उसकी सैनिक शक्ति पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने के सारे अधिकार अपने प्रधान सेनापति जनरल मैकआर्थर को दे दिये।

जनरल मैक आर्थर को अपने कार्य्य में परामर्श देने के लिए मित्र राज्यों की एक कौन्सिल नियुक्त की गई। जिसे अलाइड कौन्सिल ऑफ जापान कहते हैं। इस कौन्सिल में अमरीका, ब्रिटेन, चीन और रूस के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। अमरिका का प्रतिनिधि कौन्सिल का अध्यक्ष भी था। इस कौन्सिल का पहला अधिवेशन ५ अप्रेल १९४६ को हुआ था।

अलाई मीनार

कुतुब मीनार के ठीक उत्तर में चार सौ पचास फीट की दूरी पर अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा प्रारम्भ की गई एक मीनार जो केवल अस्सी फुट ऊँची उठ पाई थी कि अलाउद्दीन का देहान्त हो गया और यह मीनार अधूरी रह कर खण्डहर हो गई। बड़े-बड़े दिग्विजयी बादशाहों के मनसूबे भी समय के फेर में पड़ कर किस प्रकार अधूरे रह जाते हैं यह मीनार इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

अल्लाफ अबुलहुजैल

इस्लाम के "मोतजला" सम्प्रदाय का आचार्य्य। सन ७८८ से ८२० ई० तक।

अरबी साहित्य में जब यूनानी और भारतीय दर्शन ग्रंथों के अनुवाद होने लगे और प्लेटो तथा अरस्तू की विचारधाराओं का ज्ञान वहाँ के लोगों को होने लगा तो उसका प्रभाव अरबी विद्वानों और साक्षर लोगों पर पड़ना स्वाभाविक था। इसी प्रभाव का परिणाम इस्लाम में मोतजला सम्प्रदाय की उत्पत्ति थी। मोतजला सम्प्रदाय का सबसे बड़ा और सबसे पहला आचार्य्य अल्लाफ अबुलहुजैल था। इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बसरा था। अल्लाफ का मत था कि अल्लाह में कोई विशेषण या गुण नहीं होता, जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, अल्लाह केवल भलाइयों का

स्रोत है। अल्लाह निर्गुण है, ईश्वर की सर्वशक्ति सत्ता मर्यादित है, चमत्कार झूठे हैं, जगत् अनादि नहीं है इत्यादि।

कितने आश्चर्य की बात है कि जिस समय अल्लाफ इस्लाम के अन्दर अद्वैत ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म का प्रचार कर रहा था ठीक उसी समय भारत वर्ष में जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य "एकोब्रह्म द्वितीय नास्ति" के रूप में अद्वैतवाद का प्रचार कर रहे थे। कभी-कभी भिन्न-भिन्न देशों के महापुरुषों की विचारधारा में कितनी एकरूपता होती है इसका यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

अल्लाफ के पश्चात् मोतजला सम्प्रदाय का दूसरा आचार्य नज्जाम था जिसकी मृत्यु सन् ८४५ में हुई।

अल्लाई

शेख अल्लाई। मुसलमानों में मेंहदी सम्प्रदाय के तीसरे गुरु।

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जौनपुर में सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी नामक एक महान् विद्वान् और सन्तपुरुष आविर्भूत हुए। ऐसा कहा जाता है कि एक बार जब ये ध्यानावस्थित थे तब इन्हें एक खुदाई इलहाम हुआ कि "तू मेहदी है।"

हिन्दू धर्म वाले जिस प्रकार आने वाले युग के अवतार "कल्की" को मानते हैं उसी प्रकार मुसलमान आने वाले युग के पैगम्बर "मेंहदी" को मानते हैं।

सैय्यद मुहम्मद के प्रचार का ढंग और उनके उपदेश का तरीका ऐसा अच्छा था कि लोग उनकी ओर आकृष्ट होने लगे और धीरे-धीरे मेंहदी सम्प्रदाय के नाम से मुसलानों में एक सम्प्रदाय कायम हो गया।

इन्हीं सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी के शिष्य अब्दुल्ला नियाजी मेंहदी सम्प्रदाय के दूसरे गुरु हुए और उनके शिष्य शेख अल्लाई मेंहदी सम्प्रदाय के तीसरे गुरु थे।

शेख अल्लाई ने मनुष्य मात्र और उसमें भी गरीब लोगों की भलाई को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। उन्होंने अपना सब माल-असबाब गरीबों में बाँट दिया। उनकी वाणी में जादू का असर था। लोग उनकी बातों पर मुग्ध थे। उन्होंने अपने पंथ के लिए नियम बनाया कि उनका सम्प्रदाय के सब लोग आठों पहर हथियार बन्द रहें। तीर, धनुष, ढाल, तलवार हमेशा साथ रखना उनके अनुयायियों के लिए अनिवार्य था जिससे उस अव्यवस्था के युग में वे अपनी आत्मरक्षा कर सकें। कैसे आश्चर्य की बात है कि उनके दो सदी बाद सिक्खों के धर्म गुरु गोविन्द सिंह ने भी सिक्ख सम्प्रदाय में यही नियम चला कर सिक्खों को हथियार बन्द कर दिया।

मेंहदी पंथ के धर्म गुरु शेख अल्लाई को इस प्रकार सिर उठाते तथा अपने अनुयायियों को सशस्त्र करते देख कट्टरपंथी मुसलमान मौलवियों की नींद हराम हो गई। उस समय देहली के तख्त पर शेरशाह के पुत्र सलीमशाह आसीन थे और उनके दरबार के सबसे बड़े मौलवी और धर्माचार्य मुल्ला मुलतानपुरी थे। शेख अल्लाई की सफलता को देख कर मौलवी साहब बहुत घबराये और उन्होंने बादशाह से कहा कि—"शेख अल्लाई इन गरीब लोगों को हथियार बन्द कर सल्तनत के भीतर बगावत की आग सुलगा रहा है और कुफ्र को भड़का रहा है।"

तब बादशाह ने अल्लाई को दरबार में बुलाया। वे अपने सशस्त्र सैनिकों के साथ दरबार में गये और कुरान की आयतों पर ऐसा सारगर्भित भाषण दिया कि सुननेवालों की आँखों में आँसू बहने लगे और स्वयं सुलतान भी द्रवीभूत हो गया। मुल्ला मुलतानपुरी को उन्होंने कहा कि "तू दुनिया का पण्डित है मगर दीन का चोर है एक नहीं अनेक धर्म विरोधी कार्य खुल्लमखुल्ला कर रहा है।" अल्लाई की सभाएँ दरबार में कई दिन तक होती रहीं। आगरे में भी अल्लाई के सम्प्रदाय का बड़ा जोर था। कितने ही अधिकारी लोग अपनी नौकरियाँ छोड़ कर उनके साथ हो गये। सारी खबरें मुल्ला मुलतानपुरी बढ़ा-बढ़ा कर बादशाह को सुनाते थे अन्त में तंग आकर बादशाह ने उन्हें दक्षिण में निर्वासित कर दिया।

निर्वासित होकर शेख अल्लाई दक्षिण के सीमान्त नगर हंडिया में पहुँचे। वहाँ का हाकिम शिरवानी उनका उपदेश सुनते ही उनका अनुयायी हो गया। उसकी सेना का भी बहुत सा भाग इनके सम्प्रदाय में आ गया।

इंडिया में शेख अल्लाई की सफलता को मुल्ला सुलतानपुरी ने बादशाह को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बतलाया जिससे वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने सन् १५४६ में अपने दरबार में उनको खुलेआम कोड़ों से पीट कर मरवा डाला।

शेख अल्लाई धार्मिक प्रवचनों के साथ लोगों की आर्थिक स्थिति को समानता पर लाने के लिए भी प्रवचन देते थे। संसार के गरीब लोगों की स्थिति पर उन्हें बड़ी दया और तरस आता था। एक तरह से वे उस युग के समाजवादी नेता थे।

अलास्का

यूनाइटेड स्टेट् अमेरिका द्वारा अधिकृत कनाडा के उत्तर पूर्व का प्रान्त। इस प्रान्त पर पहले रूस का अधिकार था। सन् १८८० के करीब यूनाइटेड स्टेट्स की सरकार ने इसे रूस से खरीद लिया।

अलास्का में पाषाण युग के बहुत पुराने जमाने में एशिया और अमेरिका को जोड़ने के लिए एक खुश्की रास्ता था। मनुष्यों के घुमक्कड़ कबीले इसी मार्ग से होकर एशिया से अमेरिका जाया करते थे। बाद में किसी कारण वश यातायात का यह मार्ग कट गया उसके बाद पन्द्रहवी सदी तक एशिया और अमेरिका को जोड़ने का कोई साधन नहीं रहा। उसके बाद समुद्री रास्तों द्वारा ही संसार से अमेरीका का पुनः सम्बन्ध स्थापित हुआ।

सन् १७२८ में कप्तान वाइट्स बेरिंग नामक डेनमार्क निवासी ने एशिया और अमेरिका को अलग करने वाले जलडमरूमध्य को खोज निकाला। जो आज भी उसीके नाम पर बेरिंग डमरूमध्य के नाम से प्रसिद्ध है। बेरिंग समुद्र पार करके अलास्का जा पहुँचा।

अलास्का समूर नामक जानवरों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। समूर उत्तरीय ध्रुव प्रदेश की एक प्रकार लोमड़ी होती है जिसके बाल बहुत मुलायम होते हैं। इसकी खाल से गुलबन्द बनाये जाते हैं जो बहुत कीमती होते हैं। इसकी खाल को अंग्रेजी में "फर" कहते हैं।

अलास्का में सोने और ताम्बे की खानें भी हैं।

अलिफ लैला

अरबी भाषा का प्रसिद्ध कहानी ग्रन्थ। जिसमें विशेष कर खलीफा हारूं-अल-रशीद को दरबार की रंगरेलियों का वर्णन है।

मगर जिसकी मनोरंजन शक्ति इतनी अधिक है कि प्रायः संसार की सब भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक कहानी में से दूसरी कहानी निकलती है जिस प्रकार भारतीय साहित्य के हितोपदेश-पंचतंत्र में निकलती है। इसकी कहानियों में कई स्थानों पर रोमान्स, कामुकता और स्त्री-पुरुषों की रंगरेलियों का वर्णन होने से अरबी के कई विद्वानों ने अश्लीलता का दोष लगाकर इसकी तीव्र निन्दा की है और इसे अरबी साहित्य का कलंक बताया है। मगर इन आलोचनाओं या निन्दाओं से इसके प्रचार में कोई कमी नहीं आई उलटे उसके प्रचार में वृद्धि ही हुई! मनुष्य की वासनाओं और उसकी कामलिप्सा को भड़काने वाले साहित्य की निन्दा भी उसके प्रचार का एक साधन बन जाती है।

अलिफ लैला की कहानी संक्षिप्त में इस प्रकार है।

यह कहानी बादशाह शहरयार और उसके छोटे भाई शाह जमान की है। ये दोनों भाई अपनी अपनी बीबियों की चरित्रहीनता से विरक्त हो देश विदेश में घूमते रहे। अन्त में उन्हें एक जिन्न मिला जिसने उन्हें बतलाया कि औरत का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। इसके बाद शहरयार लौट कर अपने राज्य में आता है और अपने राज्य में से सर्वश्रेष्ठ सुन्दर तरुणी को हर एक रात में बुलाता है और रात भर उससे अपनी काम लिप्सा शान्त कर सवेरे उसे मरवा डालता है।

शहरयार के इस अन्याय पूर्ण काम को देखकर उसके वजीर की कन्याएं जिनका नाम शहजाद और दीनजाद है चिन्तित हो उठती हैं और इस अत्याचार को रोकने के लिए शहजाद अपने पिता से कह कर स्वयं शहरयार के शयन कक्ष में पहुँचती है और उसे एक कहानी सुनाने लगती है। कहानी जब उत्कंठा की बीच मञ्जिल पर पहुँचती है तब सवेरा हो जाता है और शाह की उत्कंठा

इतनी तीव्र हो जाती है कि वह उस कहानी का अंत देखने के लिए आकुल होकर वजीरजादी की जान को एक दिन के लिए और बख्श देता है। दूसरे दिन फिर वही हालत होती है, एक कहानी में से दूसरी कहानी निकल कर वह फिर अधूरी छूट जाती है। इस प्रकार लगातार एक हजार रातें वजीरजादी कहानियों की शृंखला में पूरी कर देती है फिर भी कहानी का अन्त नहीं आता। इसी बीच वजीरजादी को शाह से तीन पुत्र भी हो जाते हैं। अन्त में वजीरजादी और राज्य की दूसरी युवतियां शाह के क्रोध से छुट्टी पा जाती है और आराम से रहने लगती है।

अलादीन का चिराग, अलीबाबा चालीस चोर, सिन्दबाद जहाजी की कहानियां सब इसी आलिफलैला की कहानियों की लड़ी में से उद्भूत हुई हैं। इस ग्रन्थ के अंग्रेजी और फ्रेञ्च भाषाओं में पूरे अनुवाद भी हुए और इसके संक्षिप्त रूप "अरेबियन नाइट्स" के रूप में बालकों के लिए भी प्रकाशित किये गये।

अली

इस्लाम के चौथे खलीफा। पैगम्बर की पुत्री फातिमा के पति। सन् ६५२ से ६६१ तक।

पैगम्बर के देहान्त के बाद खलीफा पदवी के लिए आपस में झगड़े होने लगे। हाशिम खानदान के लोग जिनमें पैगम्बर के दामाद अली आदि लोग थे खलीफा पद पर अपना अधिकार समझते थे। मगर इनके विरोधियों की संख्या भी काफी थी, इसलिए पैगम्बर के बाद खलीफा का पद अबू-बकर को मिला।

चौबीस बरस के बाद हजरत अली को खलीफा बनने का अवसर प्राप्त हुआ। खलीफा उस्मान के बाद अली को सन ६५२ में खिलाफत की गद्दी मिली।

यद्यपि अली को इतने समय के बाद खलीफा का पद प्राप्त हुआ फिर भी दमिश्क का गवर्नर म्वाविया उनसे भयङ्कर द्वेष रखता था। अली भी म्वाविया को उखाड़ने का पूरा प्रयत्न करते रहे मगर म्वाविया का बनी उमैया वंश उस समय एक अत्यन्त शक्तिशाली वंश था। उमैया वंश के साथ संघर्ष में अली को शहीद होना पड़ा। वे किस जगह लड़ते हुए मारे गये। इसका निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। खुरासान का तुर्बत-हैदरी स्थान, अफगानिस्तान का मजार-शरीफ शहर, दोनों ही स्थानों में से किसी एक जगह उनके शहीद होने का अनुमान किया जाता है। अली के बड़े लड़के हसन को म्वाविया के षड्यंत्र से उन्हीं की बीबी ने जहर देकर मार डाला और अली के दूसरे पुत्र हुसैन को, म्वाविया के पुत्र यजीद ने, करबला के मैदान में उनके ६६ साथियों सहित प्यास से तड़फा-तड़फा कर अत्यन्त बेरहमी से मार डाला। इन्हीं की यादगार में आज दुनिया भर के सुन्नी मुसलमान मोहर्रम मना कर उस अत्यन्त करुणाजनक दुर्घटना की स्मृति ताजी करते हैं।

अल सफदी

अरबी साहित्य का एक विश्व कोष रचयिता। जिसने २६ खण्डों में एक विशाल विश्व कोष की रचना की। इसकी मृत्यु सन १३६३ में हुई।

अलहसन-अलबसरी

इस्लाम मजहब के सिद्धान्तों का निष्णात विद्वान। जिसकी मृत्यु सन ७२८ ई० में हुई।

अलहसन अलबसरी के प्रवचन इस्लामी सिद्धान्तों के ही प्रतीक नहीं, अरबी गद्य के भी उत्तम नमूने हैं। इसी कारण इसलाम के अनेक फिरके उसे अपना धर्म नेता मानने लग गये थे। इस्लाम के सम्बन्ध में उसकी व्याख्याएँ बहुत आदर से देखी जाती थीं। फिर भी उस युग में लेखन शक्ति का विकास न होने से सारा कार्य्य मौखिक ही होता था।

अली इमाम

सन १६३१ में होने वाली लण्डन गोलमेज कान्फरेन्स के मुस्लिम प्रतिनिधि।

अली इमाम जिस समय लण्डन की गोलमेज कान्फरेन्स में जाने की तैय्यारी कर रहे थे उस समय अफ्रीका के प्रसिद्ध सत्याग्रही, भवानीदयाल सन्यासी उनसे मिलने गये। उस भेंट का हाल लिखते हुए भवानीदयाल ने एक स्थान पर लिखा है—

"जब मैंने सर अलीइमाम से पूछा कि आप कब विलायत के लिये रवाना हो रहे हैं तो उन्होंने जवाब दिया—"मुझसे मुल्क और कौम के साथ भूल से एक

गुनाह हो गया है उसी के प्रायश्चित के लिये मैं लण्डन राउण्टेबल कान्फरेन्स में शरीक होने जा रहा हूँ।"

"गुनाह कैसा गुनाह? भवानी दयाल ने आश्चर्य से पूछा।

उत्तर में सर अली इमाम ने जो जवाब दिया वह इस प्रकार है—

"अंग्रेज वाइसराय लार्ड मिण्टो ने सर आगा खां वगैरह के साथ मुझे भी तार देकर कलकत्ता बुलाया था और उन्होंने मुल्क की मौजूदा हालत की तस्वीर खींच कर हमें यह समझाया कि हिन्दुओं की राष्ट्रीयता और उनका शासन अंग्रेजों के लिये उतना खतरनाक नहीं है जितना कि मुसलमानों के लिये। यदि हिन्दुओं की राष्ट्रीय तमन्नाएँ पूरी हो गईं तो अंग्रेज तो अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर इंगलैण्ड चले जायेंगे पर मुसलमान कहाँ जायेंगे। उनको तो हर हालत में यहीं रहना होगा। इसलिये अंग्रेज सरकार को मुसलमानों के लिये बड़ी चिन्ता हो रही है। अगर जल्दी ही कोई उपाय नहीं हुआ तो मुसलमानों की खैर नहीं है ब्रिटिश हुकूमत के बाद इस देश पर लोकतन्त्र के अनुसार हिन्दुओं के बहुमत की सरकार बनेगी। मुसलमानों को पुश्त-दरपुश्त के लिये हिन्दुओं की गुलामी करनी पड़ेगी और उनकी ठोकरें खानी पड़ेगी। इस मुसीबत से बचने का सिर्फ एक ही उपाय है कि मुसलमान हिन्दुओं से अलग एक राष्ट्र की माँग पेश करें। मुसलमान नेता यदि एक डेप्युटेशन लेकर मेरे पास आवें और मेरे कथनानुसार माँगे पेश करें तो शेष सब काम मैं बना दूँगा।"

सर अली इमाम के साथ हुई बात चीत से यह स्पष्ट पता चलता है कि देश-विभाजन की भावना पैदा करने में अंग्रेज राजनीतिज्ञों का कितना बड़ा हाथ था।

अली शेर नवाई

तुर्की भाषा का एक महान कवि जिसको तुर्की साहित्य का कालिदास भी कहा जाता है। इसका जन्म सन् १४४१ में हिरात में हुआ।

अली शेर नवाई का नाम तुर्की साहित्य में उसी प्रकार अमर है जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में कालिदास का और अंग्रेजी में शेक्सपियर का है! अली शेरनवाई की शिक्षा समरकन्द में हुई। मशहूर सूफी सन्त खोजाउबेदुल्ला और फारसी के मशहूर कवि जामी से नवाई को बहुत प्रेरणा मिली है! यद्यपि नवाईने "फानी" के नाम से फारसी में भी कविताएँ की हैं लेकिन उसका नाम उसकी तुर्की कविताओं के कारण अमर है। आजकल मध्य-एशिया की सबसे प्रगति प्राप्त उजबक जाति का वह परम श्रद्धा भाजन कवि है। उजबक राजधानी ताशकन्द में नवाई के नाम से एक बड़ी सुन्दर और विशाल नाट्य शाला स्थापित की गई है। नवाई की जीवनी को लेकर उजबक लेखक ऐबक ने एक उपन्यास नवाई के नाम से लिखा है जिस पर उसे स्टालिन पुरस्कार प्राप्त हुआ है। नवाई ने ७० से अधिक पुस्तकें लिखी हैं लेकिन उनमें से ५ काव्य सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं जिनके नाम—(१) खैरतुल अबरार (२) फरहाद शीरी (३) सद्देसिकन्दरी (४) लैला-मजनू और (५) हस-किशवर हैं।

नवाई कवि होने के साथ-साथ एक बड़ा जमींदार भी था और उसको बड़ी बड़ी इमारतें तथा जन साधारण के लिए धर्मशालाएँ, अस्पताल और स्कूल बनाने का भी बहुत शौक था। उसकी बनाई हुई सबसे बड़ी इमारत "इखलास" हिरात नगर के बाहर यंजील नहर के किनारे पर बनी थी जो २० साल में तैयार हुई थी! कितने ही ही हजार आदमी इसके बनाने के लिये रोज काम करते थे। इखलास के भीतर सुन्दर स्कूल, अस्पताल और मस्जिद बनी हुई थी। इस अस्पताल में उस समय के प्रसिद्ध चिकित्सक हकीम गयासुद्दीन चिकित्सा करते थे। इसके सिवाय भी नवाई ने बहुत से स्कूल, धर्मशालाएँ और हम्माम बनवाये थे।

विद्वानों और कलाकारों के लिये भी नवाई का दरबार हमेशा खुला रहता था। एशिया का प्रसिद्ध चित्रकार कमालुउद्दीन बेहजाद नवाई के ही संरक्षण में आगे बढ़ा जो कि "नजाकते कलम बेनजीर" "सूरते हालता मुसव्विर" इत्यादि नामों से पुकारा जाता था। बेहजाद के बनाये हुए चित्र अब भी दुनिया के चित्र संग्रहालयों में मिलते हैं।

अलीशकर बेग

तुर्कमान जाति का तैमूर का एक प्रभावशाली सरदार जिसे तैमूर ने हमदान, दीनवर, खुजिस्तान इत्यादि स्थानों का शासक नियुक्त किया था। अलीशकर के पोते यार अली को बाबर ने गजनी का शासक नियुक्त किया था। इसी वंश में बैरम खाँ हुआ जो कई बरसों तक हुमायूँ के साथ रहा और बाद में नाबालिग अकबर का गार्जियन हुआ।

अलीकुली खाँ

खानेजमा अलीकुली खाँ जौनपुर का शासक जिसने सन् १५६५ में अकबर की सल्तनत के खिलाफ विद्रोह किया।

अलीकुली खाँ मध्यएशिया में उजबेकिस्तान में रहने वाली उजबक जाति का एक सरदार था। इसके पूर्वजों ने उजबेकिस्तान से तैमूर का शासन खतम कर बाबर को वहाँ से मार भगाया था। बाद में अलीकुली खाँ किसी तरह हुमायूँ की नौकरी में आ गया और हुमायूँ ने उसे जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया था। मगर जौनपुर में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लोभ में इसने सन् १५६५ में बगावत कर दी। इसका भाई बहादुर खाँ और चाचा इब्राहीम भी इसके साथ थे। बादशाह ने इस विद्रोह को दबाने के लिए स्वयं सेना लेकर प्रस्थान किया। प्रयाग से थोड़ी दूर मानिकपुर में बादशाह की सेना का पड़ाव पड़ा। मगर अलीकुली खाँ ने पटना के पास गण्डक के तीर हाजीपुर में जाकर अपनी मोर्चेबन्दी की। दिसम्बर १५६५ में गंगा के बीच नाव पर दोनों पक्षों में सुलह हुई। अलीकुली खाँ ने दरबार में आकर सम्राट् से क्षमा माँगी। सम्राट् ने उसे क्षमा कर दिया।

अली-हजी

इस्पहान का रहने वाला फारसी भाषा का एक कवि, जिसे किसी षड्यन्त्र के सिलसिले में ईरान से भागकर भारत आना पड़ा। इसने चार दीवान और सात मस्नवी की रचना की। इसकी रचनाओं में "तज्किएतुल मुआसिरी" और "तज्किएतुल अहवाल" उल्लेखनीय हैं। दूसरा ग्रन्थ उसका आत्मचरित है जिसमें उस ने अपना और अपने समकालीन कवियों का वर्णन किया है। अली-हजी की मृत्यु सन् १७६६ में बनारस में हुई।

अली मुहम्मद मिरजा

(सन् १८४४)

ईरान में उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध धार्मिक आन्दोलन "बाबीवाद" का आचार्य, जिसने अपने आपको "मेंहदी" घोषित किया। मिर्जा अली मुहम्मद द्वारा संचालित "बाबीवाद" का यह आन्दोलन सूफी आधारों पर तथा कम्यूनिज्म की प्रारम्भिक विचारधारा के आधार पर खड़ा किया गया था। इस्लाम की शरह के खिलाफ होने के कारण इस आन्दोलन को कुचल दिया गया, इसके बहुत से अनुयायी मार डाले गये और बहुतों को काफी यन्त्रणाएँ उठानी पड़ीं। कुछ समय के बाद इस आन्दोलन की एक शाखा ने "बहाबी" आन्दोलन का रूप ग्रहण किया।

अली-मावर्दी

इस्लाम का सुप्रसिद्ध राजनीति शास्त्र और कानून का निर्माता, जो बगदाद के कॉलेज का प्रोफेसर था। इसका बनाया हुआ प्रधान ग्रन्थ "अल अहकाम अलमुलतानिया" था। सुन्नी इस्लाम के राजनैतिक सिद्धान्तों का इसमें बड़ा प्रामाणिक विवेचन किया गया है। इसकी मृत्यु सन् १०५८ में हुई।

अलीवर्दी खाँ

बङ्गाल का मुसलमान नवाब। सिराजुद्दौला का नाना।

अलीवर्दी खाँ ने सन् १७४१ से १७५६ तक बङ्गाल की गद्दी पर रह कर शासन किया। उसने बङ्गाल के चोर-डाकुओं का दमन किया, जमींदारों के विद्रोह को दबाया। यद्यपि वह कोई बड़ा दबंग शासक न था फिर भी उसका पन्द्रह वर्ष का शासन बंगाल में सुव्यवस्था और शान्ति के साथ बीता।

अलीवर्दी खाँ अंग्रेजों की कूटनीति, जालसाजी और धोखेबाजी से पूरी तरह वाकिफ था। उसने इनका दमन

करने का भी प्रयत्न किया मगर वह इतना शक्तिशाली और बुद्धिमान नहीं था कि अंग्रेजों का मुकाबला कर पाता। मरते समय उसने सिराजुद्दौला से कहा था कि इन फिरङ्गियों पर सख्त नजर रखना। मैं जिन्दा रहता तो तुम्हें इस डर से मुक्त कर देता पर अब तुम्हें ही यह काम करना होगा। इन फिरङ्गियों में ये अंग्रेज सबसे ज्यादा जोरावर हैं। उन्हें किले या फौज में आगे मत बढ़ने देना वर्ना मुल्क खो बैठोगे।

परिणाम वही हुआ जो अलीवर्दी खाँ ने कहा था। सिराजुद्दौला को अपने ही विश्वासघाती सेनापतियों के कारण अपनी जान देनी पड़ी और मुल्क भी चला गया।

अलीपुर षड्यन्त्र

३० अप्रैल सन् १९०८ को मुजफ्फरपुर के समीप एक बग्गी पर बम फेंका गया जिससे दो निर्दोष यूरोपियन महिलाओं की हत्या हो गई। जाँच करने पर मालूम पड़ा कि बम फेंकने वालों का इरादा इन महिलाओं को मारने का नहीं था बल्कि वे कलकत्ते के तत्कालीन डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर किंग्ज फोर्ड की हत्या करना चाहते थे।

इस घटना से चारों ओर कुहराम मच गया। पोलिस ने मानिक टोला बाग की तलाशी लेकर बम, डिनोमाइट आदि कुछ विस्फोटक चीजें प्राप्त कीं और चौंतीस मनुष्यों को गिरफ्तार किया जिनमें सुप्रसिद्ध बंगाली नेता अरविन्द घोष भी शामिल थे। यह केस अलीपुर षड्यन्त्र केस के नाम से प्रसिद्ध है। इस केस में भारत के सुप्रसिद्ध नेता देश बन्धु चितरंजनदास ने बड़ी योग्यता के साथ अभियुक्तों की पैरवी की थी।

इस मुकदमें में नरेन्द्रनाथ गोस्वामी नामक एक नव युवक सरकारी गवाह बन गया था। मगर उसको जेल ही में अभियुक्त कनाईलाल दत्त और सत्येन्द्रनाथ ने मार डाला। कनाईलाल बड़ी निर्भीकता से फाँसी पर चढ़ गया। उसकी शव-यात्रा के साथ हजारों मनुष्य और महिलायें थीं और उसकी राख को लेने के लिये हजारों मनुष्य उत्सुक हो रहे थे। सुप्रसिद्ध एंग्लो-इण्डियन पत्र स्टेट्समेन ने उसकी तारीफ में एक लेख लिखा था!

इस केस के चौंतीस अभियुक्तों में से हाई कोर्ट द्वा केवल पन्द्रह अपराधी सिद्ध हुए। उन्नीस व्यक्ति छूट गये इन छूटने वालों में बंगाल के महान नेता अरविन्द घो भी थे।

अलीनगर की सन्धि

सिराजुद्दौला के द्वारा अंग्रेजों से की गई सन्धि।

जिस समय सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच झड़प चल रही थी और अंग्रेज लोग उसके कई साथि को विश्वासघात के लिये तैय्यार कर रहे थे उस सम सिराजुद्दौला ने सारी परिस्थितियों से तंग आकर अंग्रेजों एक सन्धि की थी वह अलीनगर की सन्धि के नाम प्रसिद्ध है।

इस सन्धि के द्वारा सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों की बतल हुई सारी शर्तें ज्यों की त्यों मंजूर कर ली थी और किसी तरह से यह चाहता था कि अंग्रेजों से युद्ध न लड़ पड़े।

मगर अंग्रेजों ने इस नौजवान नवाब की कमजोरि को अच्छी तरह समझ लिया था और वे उसका सर्वना करने पर उतारू हो गये थे। जिसके परिणामस्वरू प्लासी का युद्ध हुआ और सिराजुद्दौला का सर्वना हुआ।

अल-अजार

मिस्र का एक बड़ा विश्वविद्यालय जिसने मिस्र राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार करने में बहुत सहयोग दिया

अल अजार का विश्वविद्यालय इस्लामी संस्कृति केन्द्र स्थल है। इस विद्यालय ने मिस्र के राष्ट्रीय जागर में बड़ा महत्वपूर्ण हाथ बँटाया और इसका प्रधान अ जलालुद्दीन-अल-अफगानी नामक एक विद्वान व्यक्ति को जो इस्लामी धर्म का बड़ा विद्वान होने के साथ-साथ मि की राष्ट्रीयता का भी उपासक था। अलअफगानी कारण ही अल-अजार विश्वविद्यालय राष्ट्रीय भावना का क बन गया और उसके प्रयत्न से ही विद्यालय की शिक्ष

प्रणाली में प्राण और चेतना जाग्रत हो गई। सन् १८७१ में उसने अल-अजार विद्यालय में प्रवेश किया और उसका काया पलट कर दिया।

अल-अफगानी

उन्नीसवीं सदी में मिस्र के अन्दर नवीन राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह बहाने वाला एक प्रसिद्ध नेता।

जलालुद्दीन अल-अफगानी का जन्म सन् १८३८ में अफगानिस्तान में हुआ था। उसकी शिक्षा बुखारा में हुई थी। सन् १८६६ में वह मिस्र की राजधानी काहिरा नगर में आया। यहाँ से फिर वह तुर्की के प्रधान नगर कुस्तुन्तुनिया में गया। यहाँ पर अल-अफगानी के व्याख्यानों से इस्लामी दुनिया में बड़ी हलचल मच गई। जलालुद्दीन इस्लामी धर्म का पूर्ण ज्ञाता होते हुए भी स्वतन्त्र विचार का था। इस्लाम धर्म के सम्बन्ध में उसकी नवीन विचार धारा से तुर्की की जनता ने उसे अंगीकार नहीं किया। तब वह वहाँ से १८७१ में काहिरा आया और अल-अजार विद्यालय में शिक्षक हो गया।

जिस समय जलालुद्दीन अफगानी मिस्र में आया उस समय मिस्र के ऊपर अंग्रेजों का फौलादी पंजा धीरे-धीरे मजबूत हो रहा था। जलालुद्दीन की राष्ट्रीय विचारधारा ने अंग्रेजों को चौकन्ना कर दिया और उन्होंने पूरी शक्ति लगा कर मिस्र के शासक तोफीक-बे के द्वारा जलालुद्दीन को मिस्र से बाहर निकलवा दिया।

जलालुद्दीन अफगानी मिस्र से निकल गया मगर फिर भी मिस्र की राष्ट्रीय भावना का दमन नहीं हुआ वह और भी जोरों के साथ आगे आई।

अलीमर्दान खाँ

कन्धार के ऊपर ईरानी शासन का गवर्नर अली मर्दान खाँ।

सन् १६२२ ई० में जब कि भारत पर सम्राट् जहाँगीर का शासन चल रहा था उसी समय ईरान के शासक ने कन्धार पर कब्जा कर लिया। अलीमर्दान खाँ ईरान की ओर से कन्धार का शासक बना हुआ था।

इसके बाद सम्राट् शाहजहाँ ने काबुल के सूबेदार सईद खाँ के द्वारा अलीमर्दान खाँ को कन्धार का किला मुगलों के हवाले कर देने के लिए एक खासी रकम का प्रलोभन दिया मगर अलीमर्दान खाँ ने ईरानी शासन से विश्वासघात करने से इन्कार कर दिया और उसने ईरान के शासक को किले की रक्षा के लिये सेना भेजने को लिखा किन्तु ईराक का शाह अलीमर्दानखाँ को सन्देह की दृष्टि से देखता था इसलिये उसने सेना नहीं भेजी। तब मजबूर होकर उसने सईद खाँ को किला सौंप दिया। अलीमर्दान को सईद खाँ से एक लाख रुपये मिले और वह साम्राज्य का एक सरदार बना लिया गया।

अलीमर्दान खाँ का मुगल दरबार में बहुत सम्मान हुआ। सम्राट् ने उसे बहुत धन दिया और स्वयं उसके घर जाकर उसे सम्मानित किया। वह कश्मीर और पंजाब का गवर्नर बना दिया गया और उसे सातहजारी मनसब का पद प्राप्त हुआ।

अलीबन्धु

मौलाना मोहम्मद अली और शौकत अली जो सन् १९२१ के कांग्रेस की ओर से चलाये गये खिलाफत के आन्दोलन में महात्मा गान्धी के साथ थे, मगर खिलाफत का अन्त होने के पश्चात् मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गये।

महात्मा गान्धी ने सन् १९२०-२१ में जब अपना असहयोग-आन्दोलन चलाया उस समय मुस्लिम देशों में खिलाफत की रक्षा का प्रश्न बड़ा जोर पकड़ रहा था। महात्मा गान्धी ने भी इस प्रश्न को अपने आन्दोलन में सम्मिलित कर लिया। इसके परिणामस्वरूप कई ऐसे मुस्लिम नेता जो साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के थे, वे भी इस आन्दोलन में राष्ट्रीय बाना पहन कर सम्मिलित हो गये। अली-बन्धु भी इसी प्रकार के लोगों में थे।

शुरू-शुरू में गान्धीजी के तत्वावधान में इन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ उस आन्दोलन में भाग लिया। अंग्रेजी सल्तनत से कड़ा मुकाबला किया। जेल जाने का कष्ट उठाया और उस समय के आन्दोलन के प्रधान सञ्चालकों में इनकी गणना होने लगी।

इनकी माता जो बीअम्मा के नाम से प्रसिद्ध थीं, बड़ी साहसी और दृढ़-निश्चय वाली महिला थीं। वह हमेशा खादी पहनती थीं, और खादी का ही एक कफन अपने साथ रखती थीं और अपने दोनों लड़कों में हमेशा जाँ-निसारी की भावना भरती रहती थीं।

उसी समय किसी शायर ने इन अली-बन्धुओं के लिये एक निम्नलिखित शेर कहा था :—

शौकत अली भी देख लो, गाँधी के साथ हैं।
एक मुस्त खाक हैं मगर, आँधी के साथ हैं ॥

मगर जब टर्की में खिलाफत का अन्त हो गया और अंग्रेज राज-नीतिज्ञों ने असहयोग आन्दोलन को असफल करने के लिये मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावनाओं को उभाड़ने का सफल प्रयत्न किया, तब अली बन्धुओं ने भी राष्ट्रीय बाने को छोड़ कर साम्प्रदायिक बाने को धारण कर लिया और मिस्टर जिन्ना के सहयोगी बन गये। उसके बाद इनका सारा जीवन इसी प्रकार के साम्प्रदायिक वातावरण को उभाड़ने में बीता।

अलेमानी

प्राचीन गाल प्रदेश या आधुनिक फ्रांस से पूर्व दिशा में बसने वाली एक जर्मन जाति, जिसे फ्रांस जाति के राजा क्लोविस ने सन् ४६६ में हराया। जिस समय क्लोविस अलेमानी जाति से युद्ध कर रहा था उस समय अपनी स्थिति कमजोर देख उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि "हे प्रभु यदि इस युद्ध में विजयी हो जाऊँ तो मैं तेरी शरण में आ जाऊँगा अर्थात् क्रिस्तान हो जाऊँगा।" जीत जाने पर वह रोमन पंथ का क्रिस्तान हो गया। पोप की और उसकी मैत्री का यूरोप के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

अलेक्झेंडर महान्

यूनान का संसार प्रसिद्ध महाविजेता जिसे "सिकन्दर" या "अलिक सुन्दर" भी कहते हैं। जिसका समय ई० सन् पूर्व ३३६ से ३२३ तक है।

सिकन्दर पितृ-परंपरा से हरक्युलीज का एवं मातृ-परंपरा से इयेकस का वंशज था। इसके पिता का नाम फिलिप था। जिस दिन सिकन्दर का जन्म हुआ था, उसी दिन एफेसस में डायना का मन्दिर जल कर खाक हो गया। इससे एथेंस में जितने ज्योतिषी थे, उन्होंने उस घटना को अत्यन्त अपशकुन मूलक समझा।

पर सिकन्दर के जन्म के साथ ही उसके पिता को कई बड़ी-बड़ी सफलताएँ मिली, इससे वह बड़ा प्रसन्न हुआ और समझा कि जिस पुत्र का जन्म ऐसी सफलताओं के बीच हुआ है, वह अवश्य ही महान् विजेता होगा।

सिकन्दर बचपन से ही बड़ा सभ्य, बहादुर और साहसी स्वभाव का था। एक बार एक व्यक्ति फिलिप के पास ब्यूसी फेलस नामक एक घोड़ा बेचने के लिए लाया। जब फिलिप का कोई आदमी उस पर बैठने का प्रयत्न करता, तब वह उछल कूद कर ऐसी दुलत्तियाँ फेंकने लगता कि किसी को उस पर बैठने की हिम्मत नहीं होती थी। इसी से फिलिप ने उसको अदमनीय और व्यर्थ समझकर वापस लौटाने की आज्ञा दे दी। यह देखकर पास ही खड़े हुए १६ वर्ष के सिकन्दर ने पिता से उस घोड़े पर चढ़ने की आज्ञा माँगी।

इस पर फिलिप ने सिकन्दर को घोड़े पर चढ़ने की अनुमति दी। सिकन्दर घोड़े के पास दौड़ कर चला गया और उसकी लगाम पकड़ कर उसे तुरन्त सूर्य की तरफ घुमा दिया। वह समझ गया था कि यह घोड़ा अपनी परछाईं देखकर भड़कता है। फिर उसकी लगाम थामे हुए उसने उसे कुछ दूर आगे बढ़ाया और हल्के हाथ से उसकी पीठ ठोकी। ज्योंही उसने उसे आगे बढ़ने के लिए उत्सुक और तेजी पर आते हुए देखा त्योंही एक छलांग मार कर उसकी पीठ पर बैठ गया और उसे पूरे वेग के साथ छोड़ दिया। जब घोड़ा पसीने पसीने हो गया तब सिकन्दर उसे लेकर वापस चला आया। उसको इस तरह सफलतापूर्वक आते हुए देख कर सब 'वाह, वाह!' करने लग गये। उसके पिता फिलिप की आँखों में तो खुशी के आँसू आ गये। उसने हर्षातिरेक में कहा कि "ए मेरे बेटे! तू अपनी बराबरी का, अपनी योग्यता के अनुरूप कोई दूसरा राज्य ढूँढ़ ले, क्योंकि मकदूनियाँ का राज्य तेरे लिए बहुत छोटा है।"

यही ब्यूसी फेलस घोडा जब तक जीवित रहा, तबतक

बड़ी-से-बड़ी लड़ाइयों में अलेक्जेण्डर के साथ रहा और कई बार इसने उसको कई बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं से बचाया जिस प्रकार चेतक ने महाराणा प्रताप को बचाया था।

सिकन्दर की शिक्षा उस समय के महान राजनीतिज्ञ और विद्वान अरस्तू के तत्वावधान में हुई थी। अरस्तू ने उसे नीतिशास्त्र और राजनीति-विज्ञान की शिक्षा पूर्ण रूप से दी। साथ ही कुछ ऐसे गुप्त और दुर्बोध सिद्धान्तों का भी उसे परिचय कराया जिन्हें दार्शनिक लोग अपने अत्यन्त मेधावी शिष्यों को ही मौखिक रूप से बतलाया करते थे।

जिस समय सिकन्दर की उम्र २० वर्ष की थी, उसी समय पौसेनियस नामक एक व्यक्ति ने उसके पिता फिलिप की हत्या कर डाली। उस समय मकदूनियाँ का राज्य प्रबल शत्रुओं से घिरा हुआ था। आस-पास की असभ्य जातियाँ चारों तरफ विद्रोह मचा रही थीं और कुछ ही दूर थीबन लोगों ने विद्रोह मचा रखा था। उस विद्रोह को दबाने के लिए सिकन्दर चल पड़ा। थीबन लोग बड़ी वीरता से लड़े मगर सिकन्दर की बड़ी सेना से वे अपने नगर की रक्षा न कर सके। सिकन्दर ने उन्हें बुरी तरह से पराजित कर ६ हजार लोगों को तलवार के घाट उतार दिया और २० हजार को गुलाम बनाकर बेंच दिया।

इसके कुछ दिनों के पश्चात् अलेक्झेंडर ने ग्रीस वालों को साथ मिलाकर ईरान के विशाल साम्राज्य पर अभियान करने का विचार किया। ग्रीस वालों ने उसको अपना सेनापति मान लिया।

ईरान पर अभियान

अलेक्झेंडर ने जिस समय ईरान पर अभियान करने का विचार किया, उस समय उसकी सेना में ३० हजार पैदल और ४ हजार घुड़सवार थे। सिकन्दर ने इन सब सैनिकों को मकदूनियाँ की जागीरें, छोटे कस्बे, गाव और अच्छे-अच्छे खेत सब बाँट दिये और उनकी पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर एक दृढ़ संकल्प शक्ति के साथ उसने अपने अभियान को प्रारंभ किया।

ईरान का सम्राट् दारा तृतीय एक प्रतापशाली सम्राट् था। उसके पास लाखों की तादाद में सेना थी और उसके साम्राज्य का विस्तार भी बहुत बढ़ा हुआ था, मगर उसकी सेना में अनुशासन और युद्ध कला की पूरी जानकारी नहीं थी। सिकन्दर की सेना संख्या में कम होते हुए भी अनुशासनबद्ध और युद्धकला में पारंगत थी।

सम्राट् दारा तृतीय से सीधी लड़ाई के पूर्व सिकन्दर को ग्रेनिकस नदी के किनारे पर दारा के सेनानायकों से संघर्ष करने का अवसर आया।

इस लड़ाई में सिकन्दर को भयंकर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और ऐसा अवसर भी आ गया था कि जब उसके प्राण संकट में पड़ गये होते, मगर इसी समय क्लाइटस नामक एक वीर सैनिक ने आकर उसके प्राणों की रक्षा की। अन्त में सिकन्दर की पैदल सेना ने शत्रु के पैर उखाड़ दिये और उसे भगा दिया।

इस युद्ध से ईरान की सेनाओं में सिकन्दर का बड़ा आतंक छा गया। इसी समय ईरान का सम्राट् दारा तृतीय भी अपनी ६ लाख सेना के साथ सूसा से चल पड़ा था और सिकन्दर ज्योंही सीलीसिया से आगे बढ़ा त्योंही दारा आ पहुँचा। दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर लड़ाई हुई। सिकन्दर की जाँघ पर तलवार चलाकर दारा ने उसे जख्मी कर दिया, पर अन्त में सिकन्दर की सेनाओं ने दारा की सेना को गहरी पराजय दी और दारा को रण-क्षेत्र से भाग कर अपने प्राणों की रक्षा करनी पड़ी। दारा के शिविर की लूट में सोने चाँदी की बहुमूल्य वस्तुओं के साथ दारा की माँ, उसकी सम्राज्ञी और उसकी दो अविवाहित लड़कियाँ भी पकड़ी गई। जब उन लोगों ने दारा के रथ और धनुष को देखा तो उसे मरा हुआ समझकर वे रोने लगीं। अलेक्झेंडर उस समय भोजन करने के लिए जा रहा था। उसने एक आदमी भेजकर उन्हें कहलवाया कि दारा अभी जीवित हैं, उनके लिये आप अफसोस न करें। मुझसे भी आप को किसी प्रकार के कष्ट पाने की आशंका न करनी चाहिये। आप यहाँ भी उसी सम्मान और इज्जत के साथ रहेंगी, जिस इज्जत से अपने राज्य में रहती थीं।

उसने उनके लिए दास-दासियों की और खर्च की भी पूरी व्यवस्था कर दी और उनके सदाचार तथा निर्मल

चरित्र की रक्षा करने के लिए पूर्ण व्यवस्था कर दी। सम्राट् दारा की रानी अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी समझी जाती थी। इसी प्रकार दारा भी अपने समय का सबसे ऊँचा और सबसे अधिक रूपवान सम्राट् समझा जाता था। दोनों कन्याएँ भी अपने माता-पिता के अनुरूप थीं, किन्तु सिकन्दर ने—जो शत्रु पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा अपनी आत्मा पर संयम रखना ज्यादा राजोचित समझता था—कभी उनके साथ घनिष्टता प्राप्त करने की चेष्टा न की। उसने मानो उनके शारीरिक सौन्दर्य के जवाब में अपने आत्म संयम और चरित्र की महत्ता को अधिक महत्व दिया।

इसके कुछ दिनों के पश्चात् दारा की महारानी का सिकन्दर के पड़ाव में देहान्त हो गया, तब सिकन्दर ने धूम-धाम और बड़ी इज्जत के साथ उसके शव का अन्त्येष्टि संस्कार कराया।

इसी समय ईरान की रानी की सेवा में जो खोजे नियुक्त थे, उनमें से टाइरियस नाम का खोजा किसी प्रकार घोड़े पर चढ़ कर भाग निकला और रानी की मृत्यु का समाचार देने के लिए दारा के पास जा पहुँचा। रानी की मृत्यु का समाचार सुन कर दारा को बहुत दुःख हुआ मगर जब खोजा ने सिकन्दर के द्वारा राज परिवार के सम्मान का पूरा बयान किया तो उसे सन्तोष हुआ।

सम्राट् दारा के साथ दूसरा युद्ध

अलेक्झेंडर की दारा के साथ जो लड़ाइयाँ हुई, उनमें सबसे बड़ी और अन्तिम लड़ाई गागमेला की थी। उस समय चन्द्र ग्रहण पड़ा हुआ था, जिसके ११ दिन बाद सिकन्दर तथा दारा की सेनाएं इतनी पास आ गईं कि एक सेना दूसरी सेना को भली भाँति देख सकती थी। दारा की सेना में १० लाख सैनिक थे, जिससे घबराकर सिकन्दर के सेनापतियों ने सलाह दी कि दारा की सेना पर रात में आक्रमण करना अधिक अच्छा होगा, पर सिकन्दर ने जवाब दिया कि मैं चोरों की तरह लड़कर विजय नहीं प्राप्त करना चाहता और अपने तम्बू में जाकर रात भर गाढ़ी नींद में सोया।

सबेरा होते ही उसने ब्रूसीफेलस घोड़े को बुलाया और उस पर सवार होकर अपनी सेना को उत्साहित कर अपने शत्रु पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में भी दारा की विशाल सेना को हारकर भागना पड़ा और दारा को भी एक घोड़ी पर सवार होकर रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा।

इसी लड़ाई के पश्चात् एक तरह से ईरान के सुप्रसिद्ध अखामनी साम्राज्य की समाप्ति हो गई और सिकन्दर एशिया का राजा घोषित हुआ। यहाँ से जो खजाना लूटा गया, वह २० हजार खच्चरों और ५ हजार ऊँटों पर लाद कर भेजा गया।

उसके पश्चात् सिकन्दर दारा का पता लगाने चल पड़ा। ११ दिन में उसने ४१२ मील की यात्रा अपने सैनिकों के साथ तै कर ली। रास्ते में प्यास लगने और पानी न मिलने के कारण उसके बहुत से सैनिक मर गये। उसे मालूम हो गया था कि दारा को बेसस नामक व्यक्ति ने पकड़ रखा है। सिर्फ ६० सैनिक सिकन्दर के साथ सैनिक-शिविर तक पहुँच सके। यहीं पर उसके अग्र-गामी सैनिकों को दारा बहुत ही घायल और मरणासन्न अवस्था में एक रथ पर पड़ा हुआ मिला। उसने उनसे पीने का पानी माँगा। पोलिस्ट्रेटस नामक सैनिक ने उसे पीने को ठंडा पानी दिया। पानी पीकर दारा ने कहा कि "यह मेरे दुर्भाग्य की पराकाष्ठा है कि आज तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाने में भी मैं असमर्थ हूँ, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि तुमने मेरे साथ जो इन्सानियत का बर्ताव किया, उसके लिये सिकन्दर तुम्हें अवश्य धन्यवाद देगा। मुझे आशा है कि सिकन्दर ने मेरी माता, पत्नी तथा बच्चों के साथ जो सद्व्यवहार किया है, उसका बदला उसे देवता लोग देंगे। तुम सिकन्दर से कह देना कि मैं उसके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करते हुए अपना यह दाहिना हाथ उसे समर्पित करता हूँ।" इतना कहकर उसने अपने नेत्र हमेशा के लिए बन्द कर लिए।

इस प्रकार महान ईरानी साम्राज्य के एक प्रतापी सम्राट् का इतिहास ने ऐसा करुणाजनक अन्त देखा।

थोड़ी देर के पश्चात् जब सिकन्दर वहाँ पहुँचा तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने अपना चोंगा उतार कर उसके मृत शरीर पर ओढ़ा दिया। दारा के शव को राजकीय शान-शौकत के साथ उसकी माता के पास भिजवा दिया।

ईरान को विजय करने के बाद अलेक्झेंडर ने हिरके-नियाँ में प्रवेश किया। वहाँ से चलकर वह पार्थिया पहुँचा। वहाँ पर उसने अपनी वेश-भूषा को बदल कर ईरान और मकदूनियाँ दोनों की वेश-भूषा को मिलाकर ऐसी पोशाक धारण की, जो बहुत बनावटी और चमकीली न होते हुए भी रोबीली थी।

आगे जाकर भी सिकन्दर वहाँ के निवासियों की चाल ढाल के अनुकूल अपने रहन-सहन में बराबर परिवर्तन करता रहा और वहाँ के लोगों को भी यूनानी रहन-सहन के तरीकों में ढालने की चेष्टा करता रहा। इस कार्य के लिये उसने वहाँ के ३० हजार लड़कों को चुन लिया और उन्हें ग्रीक भाषा सिखाने तथा मकदूनियन प्रणाली से शस्त्र-विद्या की शिक्षा देने के लिए अनेक शिक्षक नियुक्त कर दिये।

मिस्र-विजय

ईरान के पश्चात् सिकन्दर ने मिस्र देश को जीत कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया और वहाँ उसने अपने नाम पर समुद्र के तट पर 'अलेक्झेंड्रिया' नामक एक विशाल नगर की केवल २७ दिनों में रचना की। अलेक्झेंड्रिया का नगर आज भी मिस्र देश का सबसे सुन्दर नगर है।

सिकन्दर की हत्या का प्रयत्न

एक बार लिमनस नामक मकदूनिया के एक सिपाही ने सेनापति पारमेनियों के पुत्र फिलोटस की मंत्रणा से सिकन्दर की हत्या करने का षड्यंत्र रचा। यह बात लिमनस के एक मित्र को मालूम हुई और उसने इस खबर को सिकन्दर के पास पहुँचा दिया। सिकन्दर को यह हाल सुनकर बड़ा क्रोध आया। उसने लिमनस को तुरन्त पकड़ लाने के लिए एक सैनिक भेजा, लिमनस ने उस पर आक्रमण किया, पर अन्त में उस सैनिक के हाथ से मारा गया। तब सिकन्दर को इस षड्यंत्र के सम्बन्ध में फिलोटस पर सन्देह हुआ, उसने फिलोटस को पकड़वा मँगाया और उसे प्राण-दण्ड की सजा दी।

क्लाइडस की हत्या

क्लाइडस सिकन्दर का बहुत विश्वास पात्र व्यक्ति था। मगर एक दिन सिकन्दर के साथ भोजन करने के उपरान्त जब इन लोगों ने खूब मदिरा पान कर लिया तब वहाँ पर एकत्रित लोगों में से एक ने ऐसी कविताओं का पाठ करना शुरू किया, जिनमें मकदूनियों के उन सेना-नायकों की हँसी उड़ाई गई थी, जो ईरानी लोगों से युद्ध करने में पराजित हो गये थे। इस पर क्लाइडस को बहुत बुरा लगा उसने कहा —

"असभ्य जाति के लोगों और शत्रुओं के बीच में मकदूनियाँ के सेनापतियों की हँसी उड़ाना उचित नहीं है। यद्यपि वे दुर्भाग्यवश हार गये थे, फिर भी वे उन लोगों से ज्यादा काबिल थे, जो इस समय उनकी दिल्लगी उड़ा रहे है!"

इस पर सिकन्दर ने कहा कि "तुम अपनी पैरवी आप कर रहे हो और अपनी कायरता को दुर्भाग्य कह कर छिपाना चाहते हो!"

क्लाइडस ने कहा कि "जिसे आप मेरी कायरता कहते हैं, उसी ने एक बार स्पिथ्रीडेटीज की तलवार से भागते समय आपकी रक्षा की थी। मकदूनियां के लोगों ने आपके लिए जो जोखिम उठाई है, उसी के कारण आज आप इतने ऊँचे स्थान पर पहुँच गये हैं कि फिलिप को अपना पिता अस्वीकार कर अपने को एमन देवता (बृहस्पति) का पुत्र कहने की हिम्मत करते हैं।"

इस प्रकार के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में सिकन्दर ने उत्तेजित होकर एक सैनिक के हाथ से बरछी छीन कर क्लाइडस के शरीर में घुसेड़ दी। वह चीख मार कर तुरन्त गिर पड़ा।

उसके पृथ्वी पर गिरते ही सिकन्दर के होश ठिकाने आ गये। उसने क्लाइडस के मृत शरीर से बरछी खींचकर अपने शरीर में भोंकना चाहा, मगर शरीर रक्षकों ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे जबरदस्ती उसके निजी कमरे में ले गये। सारी रात सिकन्दर उसके लिए खूब रोता रहा। फिर लोगों के समझाने से उसको कुछ शान्ति हुई।

भारत विजय की यात्रा

अब सिकन्दर ने भारत की ओर यात्रा करने का निश्चय किया। इस यात्रा में उसने जो लड़ाइयाँ लड़ीं, उनमें उसे अनेक जोखिमें उठानी पड़ीं और उसका शरीर

भी बहुत क्षत-विक्षत हो गया। जल-वायु की प्रतिकूलता तथा आवश्यक भोजन-सामग्री की कमी से भी उसकी सेना को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। वह दृढ़ता के साथ विघ्न-बाधाओं एवं दैव की प्रतिकूलता पर विजय पाने के प्रयत्न में जुट गया। उसका विचार था कि साहसी मनुष्य के लिए किसी भी कठिनाई पर विजय पाना असंभव नहीं है और कायरों के लिए कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं है।

कठिनाइयों का सामना करने तथा जोखिम उठाने में सिकन्दर का साहस अजेय था। एक बार वह एक सिंह से भिड़ गया और द्वन्द-युद्ध में उसे पछाड़ कर ही छोड़ा।

भारत के मार्ग में चलते हुए वह तक्ष-शिला पहुँचा। तक्ष-शिला के राजा का भारतीय राज्य मिस्र देश के बराबर था। वह अनेक हरे-भरे क्षेत्रों और फूलों एवं फलों से भरा हुआ था। वहाँ का राजा बड़ा बुद्धिमान था। सिकन्दर से भेंट होने पर उसने कहा —

"यदि आपका उद्देश्य हम लोगों को भोजन और जल से वञ्चित रखने का नहीं है तो हम लोगो को परस्पर युद्ध करने से क्या लाभ! यदि आप सोना-चाँदी इत्यादि अन्य वस्तुओं के विषय में कहते हो और आप की अपेक्षा मेरे पास ये अधिक मात्रा में हो तो इनका कुछ भाग मैं आप को देने को तैयार हूँ। किन्तु यदि आप के पास इनकी प्रचुरता हो तो मुझे आप से भी इन चीजों के लेने में एतराज न होगा।"

यह सुनकर सिकन्दर इतना प्रसन्न हुआ कि राजा को उसने गले से लगा लिया। उसने राजा की भेंट स्वीकार करली और बदले में उससे अधिक मूल्य की भेंट भेजवा दी और एक हजार टेलेंट (यूनानी सिक्का) नगद भी उसके पास भेजवा दिया।

पुरू राजा से युद्ध

इसके बाद सिकन्दर का हिन्दुस्तान के सीमावर्ती राज्य के राजा पुरू से इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध का वर्णन करते हुए वह स्वयं लिखता है—

"दोनों सेनाएँ झेलम नदी (हाइडेस्पीज) के दोनों किनारों पर पड़ी हुई थीं। सामने के किनारे पर पुरू ने युद्ध क्रम से अपने हाथी खड़े कर रखे थे। मैंने शत्रु को भुलावा देने के इरादे से शिविर में रात-दिन शोर-गुल करते-रहने की आज्ञा दे रखी थी। एक अँधेरी रात को जब खूब बरसात हो रही थी। उस समय कुछ आगे बढ़ कर मैंने नदी पार करने की चेष्टा की और कुछ चुने हुए सवारों के साथ नदी के बीच में एक छोटे से टिब्बे पर जा पहुँचा। वहाँ जोरों की आँधी और बिजली की कड़क के साथ घोर वृष्टि होने लगी। बिजली के गिरने से मेरे कुछ आदमी मर भी गये। उसी स्थिति में उस टापू को छोड़ कर हम लोग किनारे की ओर बढ़े।

जब पुरू को मेरे नदी पार करने की बात मालूम हो गई तो वह अपनी बहुत सी सेना के साथ हमारी ओर झपटा। मैंने शत्रु की विशाल सेना का ख्याल कर और हाथियों की मुठभेड़ से बचने के लिए अपनी सेना को दो भागों में बाँट दिया। एक का सेनापति मैं खुद बना, दूसरी का कोनस हुआ। मैंने शत्रु के बाएँ पक्ष पर और कोनस ने दाहिने पक्ष पर आक्रमण किया। हम लोग दोनों पक्षों के सैनिकों को तितर-बितर करने में सफल हुए। अब ये लोग भाग कर मध्य भाग में पहुँचे, जिससे हाथियों के सामने काफी भीड़ हो गई। वहाँ एकत्र होकर वे हमारे सैनिकों के साथ गुत्थम-गुत्था होकर लड़ने लगे। उन्हें पूर्णतया पराजित करने में हमें दिन के आठ घंटे लग गये।"

राजा पुरू गिरफ्तार हो गया और वह सिकन्दर के सामने लाया गया। जब सिकन्दर ने उससे पूछा कि तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय?

पुरू ने उत्तर दिया कि जैसा एक विजयी राजा एक पराजित राजा के साथ करता है।

सिकन्दर ने यह सुनकर पुरू का राज्य उसे लौटा दिया और अपनी ओर से भी कुछ प्रान्त उसके राज्य में मिलाकर पुरू को वहाँ का अपनी ओर से गवर्नर बना दिया।

पुरू राजा के साथ जो युद्ध हुआ, उसमें सिकन्दर विजयी तो हुआ, मगर उससे मकदूनियाँ के सैनिकों की हिम्मत टूट गयी। लगातार की लड़ाइयों से वे लोग काफी परेशान हो चुके थे। सिकन्दर गंगा नदी को पार कर आगे का प्रदेश भी जीतना चाहता था, मगर सैनिकों ने बड़ी

दृढ़ता से. उसका विरोध किया। लाचार होकर सिकन्दर को वापस लौटने का निर्णय करना पड़ा।

वापस लौटते समय उसने समुद्र के रास्ते से लौटना निश्चय किया। इस वापसी यात्रा में भी उसे छोटी-बड़ी कई लड़ाइयाँ करनी पड़ीं। एक बार मलियन लोगों की लड़ाई में उसके प्राणों पर संकट आ गया। केवल दो शरीर-रक्षकों के साथ वह किले की दीवार पर चढ़कर भीतर शत्रु के बीच में कूद पड़ा। शत्रु पक्ष के लोगों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। सिकन्दर बड़ी वीरता से आत्मरक्षा कर रहा था। इतने में दूर खड़े एक सैनिक ने निशाना ठीक करके ऐसा बाण छोड़ा जो उसके कवच को छेद कर छाती के नीचे पँसली में घुस गया। सिकन्दर उस प्रहार को सह न सका, और पीछे हटकर एक घुटना टेककर उसने अपने को गिरने से बचाया। यह देखकर उसे मार डालने की इच्छा से वह सैनिक अपनी तलवार लेकर उस पर झपटा, मगर सिकन्दर के दोनों शरीररक्षक उस प्रहार के बीच में आ गये। एक तो वहीं खतम हो गया, किन्तु दूसरा आहत होकर भी उसकी रक्षा कर रहा था। इसी बीच में सिकन्दर की गर्दन पर एक सैनिक ने इतने जोर से गदा का प्रहार किया कि उसको दीवार का सहारा लेना पड़ा और बेहोश हो गया।

इसी भयंकर समय में मकदूनियाँ की सेना भीतर घुस आई और उसने चारों ओर से सिकन्दर को घेर लिया और उसे उठाकर अपने शिविर में ले आई। बात की बात में उसके मरने की खबर सारी सेना में फैल गई।

किन्तु जब बाण का ऊपरी भाग काट कर उसका कवच उतार लिया गया और वह फिर होश में आ गया तब लोगों को तसल्ली हुई।

नदियों के मार्ग से समुद्र तक पहुँचने में उसे सात महीने लग गये। सिलसटिस नामक टापू में पहुँचकर उसने देवताओं को बलि चढ़ाई। इसके बाद उसने अपने समुद्री बेड़े को किनारे-किनारे यात्रा करने का आदेश दिया और स्वयं स्थल मार्ग से लौट पड़ा। खाद्य-सामग्री की कमी के कारण पोरोइट देश में उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। यहाँ उसकी सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। १ लाख २० हजार पैदल तथा १५ हजार घुड़सवारों में से केवल एक चौथाई सेना उसकी भारत से लौट सकी।

उसके जीते हुए प्रदेशों में जब इस बात की खबर पहुँची कि सिकन्दर की बहुत सी सेना भारत के रास्ते में खतम हो चुकी है तो सब दूर विद्रोह की भावनाएँ फैलने लगीं। उसके देश मकदूनिया में उसके प्रतिनिधि एंटीपेटर के विरुद्ध ओलिंपियस और क्लियोपेट्रा ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर उसके देश पर दखल जमा लिया।

जब सिकन्दर फारस देश में पहुँचा तब वहाँ साइरस की समाधि को खुला हुआ पाया। इस अपराध के अपराधी पोलीमेकस नामक मकदूनियन को उसने प्राण दण्ड दिया, और उस समाधि पर जो इबारत खुदी हुई थी, उसे उसने फिर से ग्रीक अक्षरों में खुदवा दिया। उसमें लिखा था।

"महाशय, चाहे तुम कोई हो और चाहे किसी देश से आये हो, यह जान लो कि मैं फारस साम्राज्य का संस्थापक साइरस हूँ। मेरे शरीर के ऊपर जो जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा है, कृपाकर मुझे उसी के नीचे पड़ा रहने दो।"

इस इबारत को पढ़कर सिकन्दर बड़ा प्रभावित हुआ। उसे ख्याल हुआ कि संसार में मनुष्य की सभी बातें कितनी अनिश्चित और परिवर्तनशील हैं।

वहाँ से वह सूसा पहुँचा और उसने सम्राट दारा की लड़की स्टेटिरा से विवाह कर लिया और अपने बहुत से मित्रों का विवाह भी चुनी हुई फारस की कुमारियों के साथ करा दिया। जिन ३० हजार लड़कों को वह सुयोग्य शिक्षकों की देख-रेख में छोड़ गया था, उन्होंने अब तक बड़ी उन्नति कर ली थी। उनका विलक्षण कौशल और हस्त-लाघव देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

अब वह बेबीलोनिया जाने की तैयारी करने लगा। उसके ज्योतिषियों ने वहाँ जाने से उसे मना किया मगर उसने नहीं माना।

रास्ते में उसे कई प्रकार के अपशकुन हुए जिससे उसकी तबीयत और भी घबरा उठी और उसने समझा कि उस पर से देवताओं की कृपा कम हो गई। उसे

अपने मित्रों पर भी आशंका होने लगी। अन्त में १८ जून को उसे ज्वर ने आ कर घेरा और ३० जून को ३३ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई।

कई दिनों के बाद इस बात का पता लगा कि उसको आमोलियस नामक व्यक्ति ने जहर दिया था। इस अपराध में ६ वर्ष बाद राजा ओलम्पियस ने कई लोगों को मृत्यु दण्ड दिया।

सिकन्दर के मरते ही उसका विशाल साम्राज्य उसके सेनापतियों ने बाँट लिया और वे भी आपस में लड़ते-भिड़ते रहे।

अलेक्भेण्डर मुडीमेन

सन् १६२४ में भारत सरकार के गृह सदस्य जिनकी अध्यक्षता में एक रिफार्म कमेटी की स्थापना हुई।

फरवरी १६२४ में भारतीय धारासभा में भारत की वैधानिक प्रगति पर एक प्रस्ताव पेश हुआ। स्वराज्य दल के नेता पं० मोतीलाल नेहरू ने इस प्रस्ताव में एक संशोधन रखा और सपरिषद् गवर्नर जनरल पर इस बात का जोर दिया कि भारत में शीघ्र ही पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाय, सन् १६१६ के एक्ट में आवश्यक सुधार किया जाय और इस उद्देश्य के लिये एक राउण्डटेबिल कॉन्फरेंस की आयोजना की जाय। इस प्रस्ताव और संशोधन के परिणामस्वरूप सन् १६२४ में भारत सरकार के गृह-सदस्य सर अलेक्भेण्डर मुडीमेन की अध्यक्षता में एक रिफार्म कमेटी की स्थापना हुई। जिसमें श्री तेज बहादुर सप्रू, श्री मोहम्मदअली जिन्ना इत्यादि भारतीय सदस्य भी सम्मिलित थे।

अलेक्भेण्ड्रिया

ग्रीस के विजेता अलेक्भेण्डर महान् के द्वारा मिस्र में बनाया हुआ एक प्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह जिसका निर्माण ई० सन् से ३२३ वर्ष पूर्व हुआ।

अलेक्भेण्ड्रिया मिस्र का एक बहुत सुन्दर विशाल और रमणीक शहर तथा बन्दरगाह है। अलेक्भेण्ड्रिया की सुप्रसिद्ध इमारतें, फव्वारे, बाग-बगीचे और शिल्प कारीगरी को प्रदर्शित करने वाली अन्य चीजें दर्शनीय हैं।

अलेक्भेण्ड्रिया का पुस्तकालय संसार भर में सबसे विशाल था। जिस समय छपाई की कला का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय इस पुस्तकालय में कई हजार हस्त लिखित पुस्तकों का संग्रह था। एक समय अलेक्भेण्ड्रिया सारे संसार में शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। मिस्र के सम्राट पोलइमो प्रथम ने अलेक्भेण्ड्रिया में एक ऐसे विश्व विद्यालय की स्थापना की थी जो संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता था। अलेक्भेण्ड्रिया का पुस्तकालय और अजायब घर दोनों संसार के शिक्षित और विचारवान लोगों के लिये एकत्रित होने के केन्द्र थे।

अलेक्भेण्ड्रिया के बीच में एक सौ फीट लम्बा पोम्पियाई का स्तूप खड़ा हुआ है। यह स्तूप विद्रोही प्रजा का दमन करने के उपलक्ष्य में डेक्लीटेन नामक राज्याधिकारी के सम्मान में खड़ा किया गया है।

रोम का साम्राज्य खतम होने पर मिस्र में अरब के खलीफाओं का अधिकार हो गया। खलीफा की सेना का नेता अमोर नामक व्यक्ति था। ऐसा कहा जाता है कि अलेक्भेण्ड्रिया की विजय के पश्चात् खलीफा ऊमर की आज्ञा से उसने सिकन्दरिया के सारे पुस्तकालय को जला दिया। कई इतिहासकार इस घटना में सन्देह करते हैं।

अलेक्भेन्डर ग्रेहम बेल

टेलिफोन के सुप्रसिद्ध आविष्कर्ता अलेक्भेण्डर ग्रेहम बेल जिसका जन्म सन् १८४७ ई० में स्कॉटलैण्ड की राजधानी एडिनबरा में हुआ। इसकी शिक्षा इंग्लैंण्ड में हुई। कुछ समय के पश्चात् यह कैनेडा गया और एक गूँगे-बहरों के स्कूल में अध्यापक हो गया।

गूँगे बहरे लोगों को पढ़ाते हुए बेल को इस बात का ज्ञान हो गया था कि शब्द मनुष्य के कानों तक हवा के कम्पनों (Vibrations) द्वारा पहुँचता है। इससे उसको यह विचार हुआ कि जिस प्रकार शब्द के कम्पन कान की झिल्ली पर प्रभाव डालते हैं उसी प्रकार वे चमड़े की या लोहे के पतले पत्तर की डिस्कस (Discs) पर भी प्रभाव डाल सकते हैं। उसने एक शीशे को धुएँ से काला करके उस पर शब्द के कम्पनों के अंक बनाये। इसी से उसको यह ख्याल हुआ कि ये कम्पन बिजली के तार द्वारा दूसरे सिरे पर भी पहुँचाये जा सकते हैं।

बेल को शब्द के सिद्धान्तों का तो पर्याप्त ज्ञान था मगर विद्युत शास्त्र से वह अनभिज्ञ था। एक समय उसे वाशिंगटन जाना पड़ा। वहाँ पर विद्युत् शास्त्र के विशेषज्ञ जोसेफ हेनरी से उसकी मुलाकात हुई। हेनरी से उसने विद्युत् शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया और अपने सहकारी वाट्सन के साथ ध्वनि सम्बन्धी तार के प्रयोग करने लगा।

एक दिन बेल और उसका सहकारी वाट्सन ध्वनि सम्बन्धी तार पर कुछ काम कर रहे थे। जिस सिरे पर वाट्सन यन्त्र के ऊपर काम कर रहा था उसकी एक स्प्रिङ्ग खराब हो गई थी। वाट्सन स्प्रिंग को निकाल कर हथौड़े से ठोकने लगा। उस ठोकने का शब्द दूसरे सिरे पर बैठे हुए बेल को सुनाई दिया। इससे बेल को विश्वास हो गया कि जब हथौड़ा ठोकने की आवाज सुनाई पड़ती है तो आदमी की आवाज भी अवश्य सुनाई देना चाहिये।

इसके पश्चात् ४० सप्ताह अदम्य उत्साह के साथ काम करने के पश्चात् १० मार्च सन् १८७६ को इनका बनाया हुआ यन्त्र बोलने लगा। उसके बाद फिलाडेलफिया की शतवर्षीय प्रदर्शनी में बेल का यह यन्त्र रखा गया। वहाँ पर ब्राजील के बादशाह और इंगलैण्ड के विज्ञान-वेत्ता लार्ड कैल्विन ने उस यन्त्र को देखा और उसकी प्रशंसा की। सन् १८८१ में ६० लाख डालर की पूँजी से बेल टेलिफोन कम्पनी का संगठन हुआ और तब से इस यन्त्र का प्रचार सारी दुनिया में बड़ी तेजी से हो रहा है। और इसकी गिनती मनुष्य के दैनिक जीवन की, सरकारी कामों की और व्यवसायिक प्रतिष्ठानों की अनिवार्य आवश्यकताओं में की जाती है।

अलीसेण्ड्रो ह्वोल्टा (Alless.ndro volta)

इटली का एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जिसका जन्म सन् १७४५ और मृत्यु सन् १८२७ में हुई और जिसने विद्युत-शक्ति के सम्बन्ध में कई नवीन अनुसन्धान किये।

अलीसण्ड्रो वोल्टा का जन्म इटाली के कोमो नगर में हुआ। सन् १७७६ में यह पेविया यूनिवर्सिटी में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर बनाया गया। विद्युतीय राशि के परिमाणिक नाप पर अपने अनुसन्धानों के कारण इसकी तुलना प्रसिद्ध वैज्ञानिक कुलाम्ब के साथ की जाती है। बहुत समय तक यह अपने दो तिनकों के द्वारा बनाये हुए विद्युतमापक यन्त्र (Electrometer) से काम लेता रहा जब तक कि एल्यूमीनियम इलेक्ट्रोस्कोप का निर्माण नहीं हो गया। इलेक्ट्रो स्कोप को और सुग्राहक बनाने के लिए इन्होंने उसके बटन में एक संचक जोड़ दिया। इस प्रकार का इलेक्ट्रोस्कोप ह्वोल्टा का कण्डेन्सिंग इलेक्ट्रोस्कोप कहलाता है।

अपने दूसरे आविष्कार में—जिन्होंने वैज्ञानिक जगत् में इन्हें अमर कर दिया—इन्होंने सबसे पहले यह सिद्ध किया कि विद्युत केवल रगड़ खाने की क्रिया से ही उत्पन्न नहीं होती बल्कि रासायनिक विधि से भी पैदा की जा सकती है। इसके पहले सारे वैज्ञानिक जगत् का यही विश्वास था कि विद्युत शक्ति केवल रगड़ या संघर्ष की क्रिया से ही उत्पन्न हो सकती है। इसके पश्चात् विद्युत् शक्ति के सम्बन्ध में इन्होंने और भी कुछ महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये।

सन् १८०४ में इन्होंने पेविया युनिवर्सिटी से अपना इस्तीफा पेश किया। उस समय नैपोलियन बोनापार्ट का इनके देश पर शासन था। उसने इनका इस्तीफा नामंजूर करते हुए लिखा कि—

"मैं ह्वोल्टा के त्यागपत्र को स्वीकार नहीं कर सकता। अगर प्रोफेसर की हैसियत से उनका काम बहुत भारी हो गया हो तो वे सालभर में केवल एक लेक्चर देकर ही अपने पद पर रह सकते हैं पर मैं उसके सदस्यों की श्रेणी में से एक महत्त्वपूर्ण नाम को हटाने की इजाजत देता हूँ तो समस्त युनिवर्सिटी को आघात लगेगा। फिर एक अच्छे वैज्ञानिक को अपने सम्मान क्षेत्र में ही प्राण छोड़ना चाहिए।'

इन्हीं के सम्मान में विद्युत शक्ति के नाप की एक व्यवहारिक इकाई का नाम वोल्ट (Volt) रक्खा गया।

अलेक्झेण्डर जार प्रथम

रूस का इतिहास प्रसिद्ध जार, जार पावल का पुत्र रानी एकतारिना सेकण्ड का पोता (सन् १८०१–१८२५)

रूस के जार पॉवल की हत्या को बाद उसका पुत्र अलेक्झेण्डर प्रथम रूस के जार की गद्दी पर बैठा। रूस के प्रसिद्ध जार पीटर का वंश समाप्त होने पर अलेक्झेण्डर के पूर्वजों को जर्मनी से लाकर जार की गद्दी पर बिठाया गया था। इसलिए इस वंश में रूसी खून की अपेक्षा जर्मन-खून की प्रधानता थी।

अलेक्झेण्डर प्रथम के शासन के समय यूरोप के अन्दर औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ हो चुका था और उसकी लहरें धीरे-धीरे रूसमें भी पहुँच रही थी। इसलिए जार अलेक्झेण्डर प्रथम ने रूस के यातायात और व्यापारिक विकास के लिए कई जलपथों का निर्माण किया। सन् १८०१ में उसने एकातेरिना नामक नहर बनाकर कामा और द्वीना नदियों को आपस में जोड़ दिया। सन् १८०४ में ओगिन्स की नहर बनाई गई जिसने काला सागर और बाल्टक सागर को मिला दिया। कुछ समय पश्चात् मारीइन्स्क और तिखविन की नहर प्रणाली बनकर तैय्यार हो गई। जिसके द्वारा बाल्टक समुद्र का सम्बन्ध रूस के भीतरी भागों से हो गया।

अलेक्झेण्डर प्रथम के शासन में आने से पूर्व ही फ्रान्स में राज्य क्रान्ति हो चुकी थी और उसका एक व्यापक प्रभाव सारे संसार पर पड़ रहा था रूस पर भी उसकी छाया पड़ रही थी। इसलिए ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए अलेक्झेण्डर रूस के शासन में सुधार करना चाहता था। उसने एक पत्र में लिखा था कि "मैं देश को स्वतंत्रता दूँगा और उसे पागलों के हाथ का खिलौना न बनाने दूँगा।" उसने शासन में दृढ़ता लाने के लिए शासन में आठ मंत्रालयों की स्थापना की। शिक्षा का विकास करने के लिए खरकोफ और कजान में नये विश्वविद्यालयों की स्थापना की और सेण्टपीटर्स बर्ग के विश्वविद्यालय को फिर से संगठित किया।

अलेक्झेण्डर के शासन काल के समय में ही यूरोप में नैपोलियन के आक्रमणों का बवण्डर उठ रहा था। जार अलेक्झेण्डर ने नैपोलियन को दबाने के लिए सेनापति कुतुजोफ की अधीनता में एक बड़ी सेना भेजी, उस समय नैपोलियन अपनी डेढ़ लाख सेना के साथ इंग्लैण्ड पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था। कुतुजोफ ने नैपोलियन की विराट् शक्ति से उस समय टक्कर लेना उचित नहीं समझा और वहाँ से वापस लौट आया।

उधर नैपोलियन रूस को विश्राम नहीं लेने देना चाहता था सन् १८१२ के जून मास में वह अपनी सेना के साथ रूस पर चढ़ आया। रूसी सेना का सेनापति कुतुजोफ एक कुशल सेनापति था उसने नैपोलियन की विशाल सेना से टक्कर लेकर नष्ट होना पसन्द नहीं किया। छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ करके चतुराई के साथ उसने पीछे हटने की नीति को पसन्द किया। पीछे हटते हुए ये लोग स्वयं अपने ही नगरों और खाद्य सामग्री को नष्ट कर देते थे। यह एक आश्चर्य की बात थी कि इस युद्ध में रूस की जनता भी पूरी शक्ति से शासन की सेनाओं का साथ दे रही थी। खाली रूसी ही नहीं बल्कि कल्मक, तातार इत्यादि दूसरी जातियों के सैनिक भी नैपोलियन की सेना से लड़ रहे थे। नैपोलियन की सेना को भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था क्योंकि पीछे हटते हुए रूसी सैनिक काम में आने वाली किसी भी वस्तु को नहीं छोड़ते थे खड़ी फसलों को भी वे नष्ट करते जाते थे। नैपोलियन चाहता था कि रूसी सेना से आमने-सामने की भिड़न्त हो जाय जिससे लड़ाई का फैसला हो। मगर रूसी सेनापति सामने की लड़ाई में आना नहीं चाहता था वह नैपोलियन की सेना को ऐसी चूहेदानी में फँसा देना चाहता था जहाँ वह शीत और भूख से तड़फ कर अपनी मौत मर जाय।

अन्त में रूसी सेनापति नैपोलियन को बढ़ाता हुआ मास्को तक ले गया। इस स्थान पर सब सेनापतियों ने अन्तिम और बड़ी लड़ाई लड़ने की सलाह दी, मगर सेनापति कुतुजोफ ने कहा कि मास्को का चला जाना रूस का चला जाना नहीं है। उसने नागरिकों को मास्को खाली करने का आदेश दिया और रात को स्वयं रूसी सैनिकों ने ने ही मास्को में आग लगा दी। छः दिन तक वह आग मास्को में जलती रही। नैपोलियन को मास्को मिला लेकिन जले-भुने एक खण्डहर के रूप में।

सितम्बर में जाड़ा भयंकर रूप से प्रारम्भ हो गया, मास्को का जाड़ा सारे संसार में प्रसिद्ध है। नैपोलियन की सेनाएँ उसी जाड़े में ठिठुर-ठिठुर कर मरने लगीं। नैपोलियन ने रूस के सामने संधि का प्रस्ताव रक्खा मगर किसी ने उस पर कान नहीं दिया।

अक्टूबर की ६ तारीख को नैपोलियन ने अपनी फौजों को मास्को छोड़ने का हुक्म दिया। सैनिक एक तरफ जाड़े से अकड़ रहे थे दूसरी तरफ भूख से। घोड़ों को मार कर खाने के सिवाय उनके पास कोई खाद्य सामग्री नहीं थी। रास्ते के गाँव और नगर बिलकुल उजाड़ थे। भूखमरी के साथ बीमारी ने भी आक्रमण किया। वापस लौटते-लौटते नैपोलियन की सेना के केवल तीस हजार सैनिक बच गये थे। इसी समय से नैपोलियन का जो पतन होना शुरु हुआ वह कहीं भी नहीं रुका।

नैपोलियन की इस पराजय के बाद जार की शक्ति बहुत बढ़ गई। अब वह सारे यूरोप के भाग्य और व्यवस्था की जिम्मेदारी को अपने कन्धों पर समझने लगा। अरक्चेयेफ नामक सरदार का जार पर बड़ा प्रभाव था लेकिन जनता इस व्यक्ति से बड़ी घृणा करती थी। क्योंकि यह अत्यन्त निरंकुश और किसानों की दासता का समर्थक था। इसने रूस में किसानों की मरजी के खिलाफ हजारों सैनिक बस्तियाँ बसाईं इन बस्तियों में किसानों को जबर्दस्ती रक्खा जाकर उनसे सिपाहियों का काम लिया जाता था। किसानों ने ऐसी बस्तियों के खिलाफ विद्रोह करना प्रारम्भ किये जिन्हें अरक्येवाफ ने बड़ी निष्ठुरता से दबा दिया।

इसके बाद अलेक्जेण्डर ने काकेशस प्रान्त की विजय कर साम्राज्य में मिला लिया।

सन् १८२६ तक रूस के अन्दर मशीन युग भी काफी विकास कर चुका था। सन् १८०४ में रूस में जहाँ २४२३ कारखाने थे वहाँ १८२६ में ५२६१ कारखाने और २११००० मजदूर हो गये। मशीन युग का स्वाभाविक प्रभाव क्रान्ति की लहर को उत्पन्न करना है। सारे यूरोप की तरह रूस में भी इस युग ने अपना प्रभाव बतलाया और राज्य सत्ता को नष्ट करके उसके स्थान पर स्वाधीन रूसी गणतन्त्र कायम करने के लिए रूस में कई गुप्त और क्रान्तिकारी संस्थाएँ स्थापित हुईं। कर्नल अलेक्जेण्डर मुराव्योफ, कर्नल पावन इवाल, कर्नल पेस्टल इत्यादि व्यक्ति इन संस्थाओं के नेता थे। ये लोग एक संगठित विद्रोह की तैयारी कर रहे थे जो १४ दिसम्बर १८२५ को फूटने वाला था मगर उसके पहले ही जार अलेक्जेण्डर प्रथम का नवम्बर १८२५ में देहान्त हो गया।

अलेक्जेण्डर जार द्वितीय

रूस का जार, जार निकोलाई प्रथम का पुत्र अलेक्जेण्डर जार द्वितीय-सन् १८५५ से १८८१ तक।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में रूस में औद्योगिक पूँजीवाद का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ रहा था। इसलिए अलेक्जेण्डर द्वितीय इच्छा होने पर भी किसानों की दासता को कायम नहीं रख सकता था। इसलिए सन् १८६१ में एक कानून बना कर उसने किसानों की अर्द्ध-दासता को खतम कर दिया। लेकिन इसके साथ ही उसने जमींदारों के स्वार्थों का भी बहुत ध्यान रक्खा और जमीदारों से किसानों को जो जमीन मिली उसके मुआवजे के रूप में ९० करोड़ रूबल किसानों से जमीदारों को दिलाये। यह रकम सरकारी खजाने से दी गई जिसे ४९ वर्ष की किश्तों में सरकार ने किसानों से वसूल करने की व्यवस्था की।

इतनी बड़ी रकम किसानों से जमीदारों को दिलाने से किसानों में असन्तोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था और यह असन्तोष कई राजनैतिक दलों और आन्दोलनों के पैदा होने की पृष्ठभूमि बन गया।

इन विद्रोही नेताओं में सबसे उल्लेखनीय नाम चेर्नीशेवस्की का आता है। इसकी कलम और वाणी में बड़ी ताकत थी। जारशाही ने उसे पकड़ कर साइबेरिया में चौदह बरस के लिए निर्वासित कर दिया। चौदह बरस पूरे होने पर उसे फिर बन्दी बना कर रख दिया! अन्त में २७ वर्ष के बाद यह छोड़ा गया और इसी वर्ष उसका देहान्त हो गया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय के टाइम में दूसरा प्रसिद्ध राजनैतिक आन्दोलन नरोद्निक आन्दोलन था। जो कारखाने के मजदूरों के सहयोग बिना केवल किसानों के संगठन

द्वारा ही समाज में समाजवाद की स्थापना पर विश्वास करता था। इस संस्था के सदस्य बड़ी त्याग की भावना को रखते हुए गाँवों में किसानों के बीच में जा बसते थे और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। उन्होंने किसानों को जमीदारों के खिलाफ भड़काने की बहुत कोशिश की मगर उसमें वे सफल नहीं हुए और सन् १८७६ में वे भारी संख्या में गिरफ्तार कर लिये गये।

बचे हुए नरोद्निक लोगों ने "जेम्ला-इ-वोल्या" नामक एक राज्य संगठन किया। इसका नेता प्लेखानोफ नामक एक क्रान्तिकारी था। एक संगठन "नरोदनिक वोल्या" था जो गुप्त रीति से जार और उसके बड़े अधिकारियों की हत्या करना चाहता था। इस कार्य्य में कई बार असफल होने के बावजूद उन्होंने अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ा और अन्त में एक मार्च १८८१ को उन्होंने जार अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या कर डाली।

अलेक्जेण्डर जार तृतीय

जार अलेक्जेण्डर द्वितीय का पुत्र, रूस का जार। सन् १८८१ से १८६४ तक।

अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या हो जाने पर उसका पुत्र अलेक्जेण्डर तृतीय जार की गद्दी पर बैठा। यह व्यक्ति अत्यन्त भीरु, स्वार्थी और प्रतिगामी विचारों का था। इसका विचार था कि विद्रोह की जितनी चिनगारियाँ समाज में फैलती हैं वे सब शिक्षित लोगों के द्वारा फैलती हैं। इसलिए यह शिक्षा प्रचार का विरोधी था। इसका मत था कि छोटे तबके के लोगों जैसे गाड़ीवान, कोचवान, नाई, धोबी, छोटे दुकानदार इनको ऊँची शिक्षा के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। सन् १८८४ में एक कानून बना कर उसने यूनिवर्सिटियों से अपने कुलपति और प्रोफेसरों को निर्वाचित करने के अधिकार छीन लिए और स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा ग्रहण करने पर कई प्रतिबन्ध लगा दिये।

रूसी जाति के अतिरिक्त जो दूसरी जातियाँ रूस में रहती थीं उनके लिए कई कठोर कानूनों का निर्माण हुआ। यहूदियों के लिए भूमि खरीदने और गाँवों में बसने की मनाई कर दी गई।

इन सब प्रतिगामी प्रवृत्तियों के खिलाफ रूसी जनता में क्रान्ति की भावनाओं का बीजारोपण होने लगा। कार्ल-मार्क्स की विचारधारा का भी इन दिनों संसार में तेजी से प्रचार हो रहा था और इस विचारधारा के फलने-फूलने के लिए रूस में सबसे अधिक अनुकूल भूमि तैय्यार हो रही थी।

सबसे प्रथम क्रान्तिकारी मजदूर संगठन रूस के दक्षिणी भाग में ओदेस्सा के अन्तर्गत "युगेनी जास्लवस्की" के नेतृत्व में स्थापित हुआ मगर जारशाही सरकार ने इसको बुरी तरह से कुचल कर "युगैनी जास्लवास्की" को जेल में बन्द कर दिया, जेल में ही उसका देहान्त हो गया। इसी प्रकार विक्टर ओबनोर्स्की ने पीटरवर्ग में रूसी मजदूरों का उत्तरी संघ कायम किया मगर इसको भी सरकार ने उतनी ही बुरी तरह से कुचल दिया।

यद्यपि अलेक्जेण्डर तृतीय स्वयं उच्च शिक्षा के अधिक प्रसार के खिलाफ था मगर संसार में उस समय ज्ञान विज्ञान की जो हवा चल रही थी उससे न वह स्वयं बच सकता था और न अपने देश को बचा सकता था। जारशाही के इसी युग में रूस के अन्दर बड़े-बड़े वैज्ञानिक, लेखक और साहित्यकार पैदा हुए।

उस समय के वैज्ञानिकों में जगत्प्रसिद्ध रसायन शास्त्री मेन्देलीयफ (१८३४-१६०७) अपनी खोजों के द्वारा ससार के वैज्ञानिक क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा कर रहा था उसके द्वारा आविष्कृत की हुई "रासायनिक तत्वों की युग क्रमिक पद्धति" को सारे संसार ने स्वीकार किया। मगर जारशाही ने उसको इन स्वतंत्र विचारों के कारण पीटर वर्ग के विश्वविद्यालय से निकाल दिया।

इस काल के दूसरे विज्ञान वेत्ताओं में प्रसिद्ध शरीर शास्त्री सेचेनोफ, और वनस्पति शास्त्री तिमिरिया जोफ थे। ये दोनों विज्ञान वेत्ता भी जार के कोप भाजन हुए। मगर तिमिरिया जोफ का यह सौभाग्य था कि उसने बोलशेविक क्रान्ति को अपनी आँखों के सामने देखा और कम्युनिस्ट सरकार और रूसी जनता के द्वारा प्रदत्त महान् सम्मान को प्राप्त किया।

इसी समय रूसी साहित्य, पत्रकार कला और समालोचना में अच्छे-अच्छे व्यक्तित्व प्रकट हुए। समालोचकों

और पत्रकारों में पिसरोफ का नाम उल्लेखनीय है जो सिर्फ २८ साल की उम्र में मर गया और १८६२ से १८६६ तक जेल में बन्द रहा फिर भी इतिहास में अपनी अमर कीर्ति छोड़ गया।

इसी काल ने तुर्गनेव के समान महान् लेखक (१८१८-१८८३) पैदा किया। जिसने अपने उपन्यासों में सन् १८४० से १८६० तक के रूसी जन जीवन का बोलता हुआ चित्र अङ्कित किया।

चित्रकला, नाट्यकला और संगीतकला में भी इस युग में अनेकानेक ऐसी प्रतिभाएँ सामने आईं जिनके लिए किसी भी युग को गर्व हो सकता है।

इसी युग में ज़ारशाही ने समरकन्द को रेल के द्वारा कास्पियन समुद्रतट से मिला दिया। इस रेलवे के फलस्वरूप रूसी कारखानों के लिए जो कपास की गाँठें ऊँटों पर लद-लद कर आती थीं अब आसानी से आने लगीं। कास्पियन सागर के दूसरे तट को रेल के द्वारा रूस से पहले ही मिला दिया गया था। जिसके कारण अफगानिस्तान तक रूस की पहुँच आसानी से हो गई थी। अंग्रेज लोग मध्यएशिया में रूस की इस बढ़ती को बड़ी चिंता की दृष्टि से देखते थे। कई बार तो रूस की इस प्रगति को रोकने के लिए रूस और इंग्लैण्ड के बीच लड़ाई होते-होते बची।

अलेक्भेएडर पोप तृतीय

रोमन चर्च के पोप।

जर्मनी के बादशाह फ्रेडरिक प्रथम सन् (११५२) के समय में रोमन-चर्च और सम्राट् के बीच में वैमनस्य की वृद्धि होती गई। फ्रेडरिक इटली का सम्राट् बनना चाहता था मगर लम्बार्ड नगर वाले हमेशा उसका विरोध और पोप का अनुमोदन करते रहे। मिलन नगर वाले भी सम्राट् से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने एक बार राजकीय आदेश को पैरों तले कुचल डाला तब क्रोधित हो फ्रेडरिक ने सन् ११५४ में मिलन नगर पर चढ़ाई कर दी। कई बार चढ़ाइयाँ करके सन् ११६२ में उसने मिलन और क्रेमों पर अधिकार कर लिया। उस समय इटली के इन छोटे-छोटे गण राज्यों में बड़ी फूट थी और ये आपस में हमेशा लड़ते रहते थे।

इस सारी स्थिति को देखकर लम्बार्ड वालों ने सम्राट् के खिलाफ गुप्त रूप से एक संघ बनाया इस संघ में क्रिमोना, ब्रेसिया, माण्टुआ और बर्गामो सम्राट् के प्रतिकूल संगठित हुए। कुछ पोप के उत्तेजित करने से और कुछ संघ की सहायता से मिलन नगर फिर से खड़ा हो गया। इस समय फ्रेडरिक रोम-विजय करने में लगा था। उसकी आन्तरिक अभिलाषा सेण्ट पीटर के पद पर एक प्रतिवादी पोप को बिठाने की थी। कुछ समय बाद वेरोना, पियासेंजा, पार्मा भी सम्राट् विरोधी संघ में शामिल हो गये। अब यह निश्चय हुआ कि एक नवीन नगर बसाया जाय जिसमें सम्राट के विरुद्ध लड़ने के लिए एक सेना संगठित की जाय। इसी प्रेरणा पर संघ ने पोप अलेक्भेएडर तृतीय के नाम पर अलेक्भेण्ड्रिया नगर बसाया। जो अब भी वर्तमान है। पोप अलेक्भेएडर संघवालों का परम मित्र और सम्राट् का विकट शत्रु था। सन् ११७६ में सम्राट् की सेना और संघ की सेना के बीच लेनानों में भयङ्कर युद्ध हुआ। ऐसे युद्ध मध्य युग के यूरोप में बहुत कम देखने में आये। इस युद्ध में विरोधी सेना ने मिलन नगर के नेतृत्व में सम्राट् की सेना को करारी हार दी।

इसके बाद वेनिस में एक महती सभा हुई। इस सभा में पोप अलेक्भेएडर तृतीय भी उपस्थित था। उस सभा में संघ और सम्राट् के बीच में संधि हुई। जिसे सन् ११८३ में स्थायी रूप दे दिया गया। नगर वालों को करीब-करीब सब अधिकार मिल गये। बादशाह के अधिकार नाम मात्र के रह गये। फ्रेडरिक को मजबूर होकर उस पोप को अङ्गीकार करना पड़ा जिसकी आज्ञा न मानने की उसने शपथ खाई थी। इसी समय से इस विरोधी दल का नाम "गेल्फ" पड़ गया।

अलेक्भेएडर हैमिल्टन

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का पहला वित्त मंत्री, बैंक ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स का संस्थापक, अमेरिका के सर्वप्रथम लिखित विधान को निर्माण करने वाली विधान परिषद् का प्रभावशाली सदस्य।

जिस प्रकार अमेरिकन क्रान्ति ने संसारव्यापी ख्याति के दो प्रभावशाली व्यक्ति वाशिंगटन और बेंजामिन फ्रेंकलिन को उत्पन्न किया उसी प्रकार वहाँ के नवजात लोकतंत्र ने भी अद्‌भुत योग्यता वाले दो व्यक्तियों को पैदा किया। इन दोनों का नाम टामस जैफर्सन और अलेक्भेण्टर हैमिल्टन था। इन दोनों व्यक्तियों को शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो गई। ये दोनों व्यक्ति अमेरिकन जीवन की परस्पर विरोधी दो बलवान और अनिवार्य विचारधाराओं के प्रतिनिधि थे। हैमिल्टन अधिक सुदृढ़ यूनियन और मजबूत राष्ट्रीय शासन का पक्षपाती था और टामस जैफर्सन अधिक व्यापक और स्वतन्त्र लोकतन्त्र का हामी था।

हैमिल्टन के सार्वजनिक जीवन का आदर्श कुशलता, व्यवस्था और संगठन प्रियता थी। उसने सन् १७७५ से १७८६ तक जो न्यूनताएँ राष्ट्र के जीवन में देखीं उसको दूर करने में ही अपनी सेवाएँ अर्पित करने की प्रेरणा मिली। जिन मामलों में दूसरे लोग बहुत सम्भल कर और प्राचीन सिद्धान्तों पर चलाना पसन्द करते थे ऐसे मामलों में हैमिल्टन अपनी साहसपूर्ण और सुनिश्चित योजनाएँ उपस्थित करता था। हाउस ऑफ रिप्रेजेण्टेटिव्स ने जब उसे सरकार की आर्थिक साख को पूर्णतया बनाए रखने की योजना बनाने को कहा तो हैमिल्टन ने सरकार की मितव्ययिता और प्रभावशाली शासन के सिद्धान्तों का प्रातिपादन किया। उसने बतलाया कि औद्योगिक उन्नति, व्यापारिक विस्तार और शासन की सफलता के लिए अमेरिका की साख का ऊँचा रहना नितान्त आवश्यक है। उस समय बहुत से लोग अमेरिका पर चढ़े हुए ऋण की अदायगी न करने, या उसकी अदायगी आंशिक रूप में करने के पक्षपाती थे पर हैमिल्टन ने न केवल केन्द्रीय सरकार पर चढ़े हुए ऋण को पूरा अदा किया जाने पर बल दिया बल्कि उसने एक ऐसी भी योजना बनाई जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों के द्वारा लिये हुए युद्ध सम्बन्धी ऋण का भी उत्तरदायित्व अपने पर ले ले। उसने एक बैंक ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स की योजना बनाई और देश के विभिन्न भागों में उसे अपनी शाखाएँ खोलने का अधिकार दिया। उसने राष्ट्रीय टकसाल की स्थापना करने का भी समर्थन किया। उसने राष्ट्रीय व्यवसाय को विकसित करने के लिए उद्योग संरक्षण के सिद्धान्त की नीति पर तट कर लगाने का समर्थन किया। इन उपायों का परिणाम भी तुरन्त हुआ। इनसे अमेरिका के केन्द्रीय शासन की साख बहुत मजबूत हो गई और उसे जितनी आय की आवश्यकता थी वह उत्पन्न होने लगी। उसके उद्योग और व्यवसाय की उन्नति होने लगी जिससे कि व्यापारियों का एक वर्ग दृढ़ता पूर्वक राष्ट्रीय शासन का समर्थन करने लगा।

अलेक्भेण्डर हेर्जेन
(Aleksander Herzen)

रूसी साहित्य का एक प्रसिद्ध गद्य-लेखक, जिसका समय सन् १८१२ से १८७० तक है।

हेर्जेन रूसी साहित्य का एक नामाङ्कित गद्य लेखक और उपन्यासकार है। अध्ययन काल में वह गणित का विद्यार्थी था मगर व्यावहारिक जीवन में उसने साहित्य के क्षेत्र को अपनाया। वह कार्ल-मार्क्स का समकालीन और समाजवादी विचारधारा का समर्थक था। उसकी कलम की नोक में सोये हुए को जगा देने की अद्‌भुत क्षमता थी। अपने सजीव उपन्यासों की सजीव तर्कना-शक्ति के कारण प्रतिगामी राज्य शक्ति ने उसे देश से निर्वासित कर दिया। रूस से लन्दन जाकर वहाँ उसने "दी बेल" पत्र का सम्पादन किया, उसकी लिखी हुई आत्मकथा शैली और भाषा की दृष्टि से बेजोड़ है। इस प्रकार रूसी साहित्य और इतिहास में अमर होकर सन् १८७० में उसने अपना शरीर त्याग किया।

अलेक्भेण्डर ओस्ट्रोव्स्की
(Aleksander Ostrovsky)

रूसी नाट्य रंग-मंच का एक सफल साहित्यकार। जिसने रूसी रंगमंच पर मध्य वर्ग के जीवन, निम्न वर्गीय नागरिक, सौदागर और अधिकारियों के जीवन को अभिव्यक्त किया। रूसी रंगमंच को उसकी पुरानी मान्यताओं से मुक्त कर आधुनिक नवीन रूप में ढाल दिया। वह यथार्थवादी कॉमेडीज़ और नाटकों का रचयिता था इसका समय १८२३ से १८८६ तक है।

अलेक्जेण्डर सर्जीविच पुश्किन
(Aleksander Sergeyeych Pushkin)

रूस का महान् कवि और लेखक "पुश्किन" जिसने रूसी साहित्य के अन्तर्गत एक नवीन युग की स्थापना की। रूसी साहित्य का यह युग "पुश्किन युग" के नाम से प्रसिद्ध है।

महान् कवि और साहित्यकार "पुश्किन" का जन्म सन् १७६६ में रूस के मास्को नगर में हुआ था। बाल्यावस्था से ही इस विचक्षण व्यक्ति के अन्दर उत्कृष्ट साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन होने लग गये थे। सोलह वर्ष की आयु पूर्ण होने के पहले ही जब यह स्कूल में पढ़ता था—इसने अपने स्कूली जीवन के संस्मरण में कुछ कविताएँ लिख कर सुनाईं। इन कविताओं के अन्तराल में उसका भविष्य चमक उठा। सन् १८२० में उसने अपनी कविताओं का संग्रह "रुस्लान एण्ड दमिला" नाम से प्रकाशित किया। ये कविताएं इतनी लोकप्रिय हुईं कि सारा रूसी समाज उसपर मुग्ध हो गया। रूसी कवि जुकोव्स्की जो कि अपने को पुश्किन का गुरु मानता था उस कविता संग्रह को देखकर नाच उठा और उसने उसे अपना ऐसा शिष्य माना जिसने गुरु को पराजित कर दिया।

पुश्किन की अनेक रचनाओं में "जिप्सी" और 'बोरिस गोदनोव" नामक कृतियां बहुत प्रसिद्ध हुईं; मगर उसकी चरम सफलता उसके "ओनेगिन" नामक उपन्यास में हुई। इस उपन्यास की जोड़ का कोई दूसरा उपन्यास रूसी साहित्य में प्रकाशित नहीं हुआ ऐसा कई आलोचकों का मन्तव्य है। इस उपन्यास में कुमारी तातियाना के द्वारा "ओनोगिन" के प्रति प्रेम प्रदर्शन की भावना को प्रकट करने में लेखक अपनी कलम तोड़ देता है। आलोचकों का कथन है कि संसार के उपन्यास साहित्य में ऐसी हृदय ग्राही आत्माभिव्यक्ति और कहीं भी नहीं है। अगर पुश्किन और कुछ भी न लिखकर केवल यही चीज लिख जाता तो भी वह संसार में अमर हो जाता।

पुश्किन ने अपने छोटे से अल्पकालिक जीवन में और भी कई कहानियाँ, उपन्यास और कविताएँ लिखीं जिन्होंने न केवल रूसी साहित्य में बल्कि सारे संसार के साहित्य में उसे अमर कर दिया। केवल ३७ वर्ष की अल्पायु में सन् १८३६ में उसका देहान्त हो गया।

अलेक्जेण्डर पोप

अंग्रेजी साहित्य का सबसे बड़ा व्यंग कवि। इसका समय सन् १७०२ से १७७० तक है।

व्यङ्ग को अपनी कला से प्रकाशित कर उसे एक विशिष्ट रस के रूप में प्रस्तुत करने में अलेक्जेण्डर पोप को अच्छी सफलता मिली है। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ "दी रेप ऑफ दी लॉक" और "डन्सियाड" है। "दी रेप ऑफ दी लॉक" में उसने अठारहवीं सदी के समाज का जो व्यंग पूर्ण सजीव चित्र खींचा है वह बड़े महत्व का है। "डन्सियाड" में उसने तत्कालीन मूर्खों का जो रूप चित्रित किया है वह समूचा हास्यरस से भरपूर है।

अलेक्जेण्डर पोप ने होमर की कृतियों का अनुवाद भी किया है। अलेक्जेण्डर पोप की कृतियों का उसके परवर्ती साहित्य पर भी काफी प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि "ऑलिवर गोल्डस्मिथ" और "सेम्यूएल जान्सन" पर उसकी शैली की छाप है हालांकि काल की दृष्टि से दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

अलेक्सीजार

रोमनोफ वंश का दूसरा रूसी जार जिसने सन् १६४५ से १६७६ तक रूस का शासन किया और जिसके शासन काल में रूसी साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ।

जिस समय अलेक्सी रूस की गद्दी पर बैठा उस समय उसकी उम्र केवल सोलह साल की थी और राज्य की सारी शक्ति वहाँ के एक सरदार मोरोजोफ के हाथ में थी। मोरोजोफ और मास्को का नगर कोतवाल प्लेशचेफ बहुत ही क्रूर और पाशविक अत्याचारी थे। इनके अत्याचारों के कारण मास्को तथा दूसरे शहरों में बड़े-बड़े विद्रोह खड़े

हुए। इन विद्रोहों में प्लेशचेफ मारा गया और मोरोजोफ को मास्को छोड़कर भागना पड़ा।

जार अलेक्सी के समय में रूसी साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ। पोलैण्ड का यूक्रेन नामक धन-धान्य से पूर्ण विशाल प्रान्त सन् १६५३ में पाँच वर्ष के भीषण संघर्ष के पश्चात् रूस के अधिकार में आ गया। इस संघर्ष का नेता बगदान नामक एक व्यक्ति था।

वोल्गा नदी के दोनों तटों के घने जंगल और मैदानों में सत्रहवीं सदी में यूराल और अल्ताई वंशीय अ–रूसी जातियाँ रहती थीं। इन जंगलों में समूरी खाल वाली लोमड़ियों की संख्या बहुत अधिक थी। इन समूरी जानवरों की खाल उस समय बहुत महँगे भावों में बिकती थी। वोल्गा प्रदेश की ये जातियाँ रूसी सरकार को टैक्स देती थीं फिर भी रूसी शासकों के अत्याचार के कारण यहाँ के लोग जब तब विद्रोह कर बैठते थे। सन् १६६२ में इस विद्रोह ने भयंकर रूप धारण किया। इस विद्रोह का नेता सैय्यद सादिर नामक व्यक्ति था मगर यह विद्रोह दबा दिया गया।

दूसरा भयंकर विद्रोह जार अलेक्सी के समय में स्टेपन राजिन के नेतृत्व में हुआ। राजिन ने कजाकों की एक बड़ी सेना का संगठन कर कई बार जार शाही को सेना से सफल मुकाबला किया।

जारित्सिन (आधुनिक स्टेलिन ग्रेड) के निवासियों ने उसे शहर पर अधिकार करने में मदद की। सन् १६७० के वसन्त में राजिन दूसरी बार वोल्गा नदी के किनारे पर पहुँचा। वह कई हजार अनुशासन सम्पन्न सैनिकों का कमाण्डर था। गरीबों के प्रति उसका प्रेम, उसकी दान-शीलता और उदारता ने उसे चारों तरफ मशहूर कर दिया था। स्टेलिनग्रेड पर अधिकार कर लेने के बाद उसने अस्त्राखान के ऊपर अधिकार कर लिया। प्रत्येक स्थान के नगरों की जनता जारशाही के विरुद्ध उसकी मदद को तैय्यार रहती थी। इसी से राजिन को एक के बाद दूसरी सफलता मिलती हुई चली गई। मगर अन्त में सिम्बिर्स्क नामक स्थान पर जार की नई सेना आ जाने से राजिन को हार खानी पड़ी। जार की सेना ने राजिन के पक्षपाती किसानों से भयंकर बदला लिया। बन्दी किसानों को पकड़ कर अर्जमस नगर में ले जाया गया और वहाँ बड़ी यन्त्रणा देकर उन्हें मारा गया। कहा जाता है कि करीब तीन महीने में अर्जमस नगर में ग्यारह हजार आदमियों को फाँसी पर चढ़ाया गया। राजिन के पहले दोनों हाथ और पैर काट डाले गये और फिर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

रूसी भाषा के महाकवि पुश्किन ने स्टेपन राजिन को रूसी इतिहास का अत्यन्त काव्यमय पुरुष कहा है।

जार अलेक्सी के समय में रूसी साम्राज्य का साइबेरिया के विशाल प्रान्त पर भी अधिकार हुआ। इस अधिकार के समय रूसियों को मंगोलों से जबरदस्त संघर्ष करना पड़ा।

जार अलेक्सी के समय में ही रूस और चीन के बीच में ७ सितम्बर १६८६ को एक समझौता हुआ जिसमें दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने खड़े होकर संधि पत्र की प्रति को हाथ में लेकर अपने अपने सम्राटों के नाम से, सारे संसार के भगवान की शपथ लेकर अपने मन की ईमानदारी का प्रदर्शन किया। इसके बाद दोनों ओर से भेंटें दी गईं। योरप के किसी भी राज्य से बिल्कुल समानता के स्तर पर चीन की यह पहली सन्धि थी।

साइबेरिया के ऊपर रूसी अधिकार हो जाने के पश्चात् उस क्षेत्र में रूसी सरकार ने अपनी बस्तियाँ बसाना प्रारम्भ किया। साइबेरिया इतना ठण्डा मुल्क है कि रूस की सर्दी भी उसके आगे कोई हस्ती नहीं रखती। ऐसी सर्दी में जगह-जगह किलेबन्दी करके सैनिकों को रखना पड़ता था। उन सैनिकों के लिये अन्न की भी एक बड़ी समस्या थी। तब रूसी सरकार ने साइबेरिया में खेती करने वाले किसानों को मुफ्त में जमीनें देना प्रारम्भ किया और रुपया तथा बीज भी आसान शर्तों पर उधार देना प्रारम्भ किया जिसके परिणामस्वरूप सत्रहवीं सदी के अन्त तक साइबेरिया में जगह-जगह रूसी बस्तियाँ और गाँव बस गये थे। सत्रहवीं सदी के अन्त तक पश्चिमी साइबेरिया के दक्षिणी जिले कृषि-प्रधान हो गये। रूसी प्रवासियों ने एशिया के उत्तरी भाग की खोज-पड़ताल में बहुत काम किया। उन्होंने यहाँ

लोहे और नमक की खानों का पता लगाकर काम शुरू किया। रूसी यात्रियों ने अपने यात्रा विवरण तथा साइबेरिया के नक्शे प्रकाशित किये। इस प्रकार साइबेरिया रूसी सरकार के लिये धन प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया। वहाँ की बहुमूल्य समूरी खालों की पश्चिमी योरप, चीन और ईरान में बड़ी माँग थी। इस आमदनी से सरकार अपने सैनिक खर्च और नौकरों के वेतन को चुका देती थी।

जार अलेक्सी के समय में रूस के उच्च वर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग पर भी पश्चिमी योरप की सभ्यता का प्रभाव तेजी से पड़ता जा रहा था। पश्चिमी योरप उस समय संस्कृति के साथ-साथ विलासिता में भी बहुत आगे बढ़ा हुआ था। उसकी नकल रूस का उच्च वर्ग भी कर रहा था।

इस युग में साहित्य, इतिहास, युद्ध-विज्ञान, चिकित्सा, गणित, भूगोल, चित्रकारी इत्यादि समस्त विषयों पर रूसी साहित्य में तेजी से प्रगति हो रही थी। बहुत-सी विदेशी किताबों का रूसी में अनुवाद भी इस युग में हुआ। प्रसिद्ध कलाकार "सिमओन उषाकोफ" भी उसी समय में हुआ, जिसकी कला रूस के तत्कालीन जीवन की झाँकी दिखाने में दर्पण का काम करती थी। इसी युग में पहले पहल मास्को के राज-दरबारियों को नाट्य कला का परिचय मिला। जबकि मइखस्ती के एक पुरोहित गडाफ्रेड ग्रेगोरी ने जार अलेक्सी के शासनकाल में रूसी विद्यार्थियों और जर्मन अभिनेताओं से एक नाटक मण्डली बनवाई और ऐतिहासिक कहानियों को लेकर रंगमंच पर नाटक खेले। पीछे एक नाटक-गृह बनाया गया जिसके अन्दर रूसी भाषा में लिखे नाटकों का भी अभिनय होने लगा। अभिनय के समय एक विशेष आसन पर बैठकर जार अलेक्सी भी नाटक देखता था और जारीना अलग एक पर्दे में बैठकर नाटक देखती थी। नवीनता की ओर लोगों की अभिरुचि इतनी बढ़ गई थी कि उससे नाराज होकर गिर्जे के अधिकारी निकोन ने रूस के सभी वाद्य-यन्त्रों की होली जला डालने की आज्ञा दी।

अलेक्सी टालस्टाय

(Alcksyey Tolstoy)

पारनेसियन परम्परा का एक रूसी कवि जिसका समय सन् १८१७ से १८७५ तक है। महात्मा टॉलस्टाय से यह भिन्न है।

यूरोप की पारनेसियन परम्परा में से अलेक्सी टॉलस्टाय भी एक सफल कवि हैं। यह परम्परा राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं से बिलकुल अलग है। अलेक्सी टॉलस्टाय की कविताएँ भी नैतिक काव्य-शैली से भिन्न है, यद्यपि उसके कुजुमा पुत्कोव के नाम से लिखे गये व्यङ्ग, रूस के घर-घर में प्रचलित हैं। "प्रिन्स-सेरेब्रियानी" नामक उसका एक ऐतिहासिक उपन्यास भी प्रसिद्ध है। मगर इस कलाकार की वास्तविक ख्याति इसके द्वारा रची हुई लिरिकों मे है। उसकी लिरिक सौन्दर्य और माधुर्य की प्रतीक है। बसन्तकाल की सुगन्ध, ताजगी, प्रेम वेग इत्यादि पर उसकी कविताएँ यूरोपीय साहित्य में अनुपम है।

अलैन

फ्रान्स के समीप ब्रिटनी प्रदेश का एक वीर पुरुष जिसने ब्रिटनी प्रदेश से नारमन लोगों को निकाल कर सन् ९३८ में बाहर कर दिया। नारमन लोग ब्रिटनी को नारमण्डी राज्य में मिलाना चाहते थे।

अलोम्प्रा

बर्मा के इतिहास प्रसिद्ध राजवंश आवा का एक प्रतापी राजा (सन् १७८४)

बरमा में तुंगू राजवंश सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में समाप्त हो गया। उसके बाद प्रसिद्ध आवा-राजवंश वहाँ की राजसत्ता पर प्रतिष्ठित हुआ। अलोम्प्रा इसी राजवंश का एक प्रतापी शासक था। अलोम्प्रा ने बरमा के दूसरे राज्यों को अपने शासन के अधीन करने में काफी सफलता प्राप्त की। उसने पेगू, तेनासरीम आदि राज्यों को जीत कर सन् १७८४ में अराकान को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। सन् १७९३ तक सम्पूर्ण बरमा आवा राजवंश के अधीन हो

गया था। मगर उसके बाद ब्रिटिश राजनीति और सैनिक शक्ति के सामने आवा राजवंश ने घुटने टेक दिये।

अलेक्सिस कीवी

(Alexis Kivi)

आधुनिक फिनलैण्ड की भाषा का मौलिक कवि, जिसका समय सन् १८३४-१८७२ तक है। कीवी रोमाण्टिक परम्परा का बड़ा भावुक और यशस्वी कवि था। उसने विश्व साहित्य का काफी अध्ययन किया था। फिनलैण्ड के रंगमंच का सूत्रपात उसके नाटक "लिया" से हुआ। फिनलैण्ड की जनता के जीवन का अपनी रचनाओं में सजीव चित्रण करके उसने वहाँ के साहित्य में यथार्थवादी परम्परा का सूत्रपात किया। उसकी रचनाओं में कुछ एकाँकी कॉमेडी और उपन्यास भी हैं।

अलेक्सेवारास्किो

रूसी साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक और विद्वान जिन्होंने हिन्दी तथा अन्य विदेशी भाषाओं का भी गहन अध्ययन किया था।

अलेकजान्द्रिनो

फिलीपाइन द्वीप के "हुक बली हप" नामक कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित दल का नेता। सन् १६४५

द्वितीय महायुद्ध के अन्तिम दिनों में जब फिलिपाइन द्वीप का शासन सूत्र राष्ट्रपति ओसमेना ने अपने हाथ में लिया उस समय फिलिपाइन में साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित "हुक बली हप" दल का बहुत प्राबल्य था। इसका नेता अलेकजान्द्रिनो था। शुरू-शुरू में फिलिपाइन सरकार ने इस दल को शक्ति के बल पर कुचल देना चाहा पर इसमें सफलता न मिलने पर उसने इससे समझौता करना चाहा, कुछ समय के लिए समझौता हो भी गया। मगर उद्देश्यों में समानता न होने से सन् १६४६ में आन्दोलन फिर भड़क उठा। परिणामस्वरूप दक्षिण-पूर्वी एशिया के और देशों की तरह १६४६ में फिलीपाइन में भी हुक बली हप दल की समाप्ति हो गई।

अलोइस जिरासेक

जेकोस्लाविया के राष्ट्रीय दल का लेखक और उपन्यासकार। समय १८५१-१६३०

उन्नीसवीं सदी के चौथे चरण में जेकोस्लाविया के साहित्यिक क्षेत्र में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाओं वाले दो दल हो गए थे। राष्ट्रीय दल वालों की सहानुभूति स्लाव देशों के साथ खास कर रूस के साथ थी। अलोइस जिरासेक साहित्य के इस राष्ट्रीय दल का नेता था। इसकी रचनाओं ने सारे जेक इतिहास को स्पर्श किया। प्रथम महायुद्ध के समय उसके उपन्यासों ने जेक राष्ट्रीय भावना को बहुत जागृत किया। जिससे वे बहुत लोकप्रिय हुए।

अवध

उत्तर प्रदेश का मुगल काल और ब्रिटिश काल में एक प्रसिद्ध प्रान्त। मुगल-साम्राज्य के पतन और अंग्रेजी-साम्राज्य की स्थापना के मध्यवर्ती संक्रमण-काल में भारतवर्ष के राजनैतिक रंग मञ्च पर कुछ समय तक अवध के नवाबों ने भी अपनी कलाबाजियाँ बतलाई थीं और इस प्रकार भारत के राजनैतिक इतिहास में उन्होंने भी अपना एक स्थान बना लिया है।

नवाब सआदत खाँ

अवध के नवाबी राजवंश का संस्थापक सआदत खाँ (बुरहानुल मुल्क) नामक एक ईरानी मुसलमान था जिसका जन्म ईरान के खुरासान प्रान्त के नीशापुर नामक नगर में एक प्रतिष्ठित कुल में हुआ था।

सआदत खाँ एक महत्वाकांक्षी, साहसी और षड्यंत्री व्यक्ति था। अपनी महत्वाकांक्षाओं को ईरान में चरितार्थ होते न देख कर वह भारतवर्ष चला आया। उस समय देहली के सिंहासन पर बहादुरशाह प्रथम आसीन था। सआदत खाँ की प्रतिभा और राजनैतिक बुद्धि को देख कर उसने उसे ३ हजारी मनसब देकर अपने दरबार में रख लिया। उसके बाद उसके लड़के मुहम्मद शाह ने सआदत खाँ को ७ हजारी मनसब देकर अवध का सूबेदार बना दिया।

ऐसा कहा जाता है कि दिल्ली के बादशाह के इस एहसान का बदला विश्वासघाती सआदत खाँ ने नादिरशाह

को दिल्ली के ऊपर आक्रमण करने की प्रेरणा देकर चुकाया। इसी की प्रेरणा से नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला कर के भयंकर कत्लेआम किया।

नवाब सफदर जंग

सआदत खाँ को कोई पुत्र न होने से उसने अपने दामाद अब्दुल मंसूर को अपना उत्तराधिकारी बनाया, जो नवाब सफदर जंग के नाम से अवध का नवाब नियुक्त किया। सन् १७५६ में सफदर जंग की मृत्यु हो गई।

नवाब शुजाउद्दौला

सफदर जंग का पुत्र शुजाउद्दौला एक कुशल शासक था और अंग्रेजों के साम्राज्य विस्तार की भावना देखकर वह उनसे घृणा करता था। बंगाल के नवाब मीर कासिम को जो कि क्लाइव और मीर जाफर के षड्यंत्र से नवाबी से पदच्युत होकर बंगाल से भागा था, इसने उसे अपने यहाँ शरण दी थी मगर जब इस सम्बन्ध में अंग्रेजों से उसका सामना हुआ तब उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। इसके परिणामस्वरूप उसने अंग्रेजों से एक सन्धि की और अपने राज्य की रक्षा का सम्पूर्ण भार ईस्ट इंडिया कंपनी, को सौंप कर स्वयं निश्चिन्त हो गया।

आसफ-उद्दौला

शुजा-उद्दौला के पश्चात् उसका पुत्र आसफ उ-द्दौला अवध का सूबेदार बना वह अपनी राजधानी को फैजाबाद से उठाकर लखनऊ ले आया, क्योंकि उसका स्वभाव, उसकी माँ नवाब बेगम से मेल नहीं खाता था और वह उससे दूर ही रहना चाहता था।

लखनऊ उस समय एक बहुत छोटा सा कस्बा था आसफ-उ-द्दौला ने इस कस्बे को सुन्दर शहर के रूप में परिवर्तित कर दिया। उसने यहाँ अनेक सुन्दर इमारतें और मनोहर बगीचों का निर्माण किया जिनमें बड़ा इमाम बाड़ा, रूमी दरवाजा और ब्रिटिश रेजीडेंसी का भवन उल्लेखनीय है।

आसफ-उ-द्दौला वास्तव में एक शानदार नवाब था। उसका दरबार भारत के तत्कालीन सभी दरबारों में अधिक भव्य, सज्जित और आलीशान था। दिल्ली का शाही-दरबार भी उसके नवाबी दरबार के आगे पानी भरता था।

आसफ-उ-द्दौला की ख्याति इतनी बढ़ी कि बहुत से गोरे व्यापारी भी दिल्ली को छोड़कर लखनऊ में आकर बसने लगे।

आसफ-उ-द्दौला की इस उदारता तथा उसकी शौकीन मिजाजी ने राजकीय खजाने का दिवाला निकाल दिया साथ ही ईस्टइण्डिया कम्पनी का १॥ करोड रुपये का कर्ज उसे अदा करना था। आसफ-उ-द्दौला किसी प्रकार बेगमों से यह रुपया वसूल करना चाहता था।

सन् १७८१ में इसके लिये चुनार में वह लार्ड हेस्टिंग्स से मिला और उससे कहा कि ये बेगमें अंग्रेजों के विरुद्ध चेतसिंह की सहायता कर रही हैं, अगर उनकी सम्पत्ति उसे दिला दी जाय तो वह कम्पनी का सारा ऋण अदा कर सकता है।

लार्ड हेस्टिंग्स तो ऐसे मौके की तलाश में था ही, उसने जाँच का नाटक करने के लिये उस समय के प्रधान जज सर एलीजा एम्पी की सहायता ली, बेगमों का अपराध सिद्ध कर दिया गया और उनके महलों पर घेरा डाल दिया गया उनका भोजन बन्द कर दिया गया। उन्हे तरह-तरह की यन्त्रणाएँ कर दी गई जिसके फलस्वरूप परेशान होकर इन निस्सहाय बेगमों को अपना सुरक्षित सारा धन दे देना पड़ा। फिर भी सन् १७९८ में जब आसफुद्दौला मृत्यु हुई तब उसके खजाने में एक फूटी कौड़ी भी बाकी न थी और राजकर्मचारियों का कई मास का वेतन चढ़ा हुआ था।

सआदत खाँ द्वितीय

आसफ-उ-द्दौला की मृत्यु के पश्चात् उसका सौतेला भाई सआदत खाँ द्वितीय अवध का सूबेदार हुआ। आसफ-उ-द्दौला का कर्ज चुकाते-चुकाते उसकी नाक में दम आ गया, तब उसने राज्य की भीतरी और बाहरी सुरक्षा का भार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को देकर उसके बदले में अपना आधा राज्य कम्पनी को दे डाला।

इस प्रकार सन् १८०१ में कम्पनी को ये जिले मिल गये, जिन पर आगे जाकर आगरा प्रान्त का निर्माण हुआ।

इसके पश्चात् अपने शासन के शेष १४ वर्ष उसने बहुत योग्यता के साथ बिताये। लखनऊ नगर को सुन्दर

और आकर्षक बनाने के लिये उसने भी कई भव्य इमारतों और बगीचों का निर्माण करवाया। दिल-कुशा तथा फरहत बक्श कोठी उसी की बनवाई हुई है। उसने अपने खजाने को बढ़ाने की ओर भी ध्यान दिया और सन् १८१४ में जब उसकी मृत्यु हुई तो उसके खजाने में १४ करोड़ रुपया नकद था।

गाजी-उद्दीन हैदर

नवाब सआदत खाँ द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र गाजी-उद्दीन हैदर सन् १८१४ में अवध की गद्दी पर बैठा। लार्ड हेस्टिंग्स ने इसको दिल्ली की पराधीनता से मुक्त करके स्वतन्त्र बादशाह घोषित किया।

गाजी-उद्दीन हैदर ने भी लखनऊ को अनेक सुन्दर इमारतों और बागों से अलंकृत किया जिनमें शाह-मंजिल, मुबारिक मंजिल, छतर मंजिल और गोमती के किनारे मोती महल नामक इमारतें बहुत मशहूर हैं।

गाजी-उद्दीन हैदर के विषय में अंग्रेज पादरी विशप हेबर ने—जो सन् १८२४ में लखनऊ आया था लिखा है:- बादशाह ऊँचे कद तथा सुन्दर व्यक्तित्व सम्पन्न एक हँसमुख पुरुष है। उसकी गर्दन पर घुघराली लटें बल खाती रहती हैं और शानदार मूँछें उसके चेहरे की रौनक को बढ़ाती रहती हैं। वार्तालाप में वह बहुत सभ्य है और उसका प्रत्येक शौक सुरुचिपूर्ण तथा सुसंस्कृत है। किन्तु यूरोपियन रमणियों को शिकायत है कि उनकी ओर वह अधिक ध्यान नहीं देता।

सन् १८२७ में गाजीउद्दीन की मृत्यु हो गई।

नासिर उद्दीन हैदर

गाजी-उद्दीन हैदर के पश्चात् उसका लड़का नासिर-उद्दीन हैदर गद्दी पर बैठा। यह अत्यन्त ऐय्याश, मूर्ख और शराबी था। इसने मुकद्दरा आली नामक एक वर्णसंकर स्त्री से ब्याह किया था, परन्तु विवाह के पीछे बादशाह को ज्ञात हुआ कि मुकद्दरा बेगम के और भी अनेक प्रेमी हैं। यहाँ तक कि उसका सगा पिता वाल्टर्स भी उसका प्रेमी है, तब बादशाह ने मुकद्दरा को वहाँ से निकाल दिया। वह अपनी सारी दौलत लेकर कलकत्ता चली गई।

नासिर-उद्दीन ने लखनऊ में एक वेधशाला का निर्माण कराया था और उसका अध्यक्ष कर्नल विल्कास नामक एक अंग्रेज ज्योतिषी को बनाया था।

सन् १८३७ में नासिर-उद्दीन की मृत्यु हो गई।

नवाब मुहम्मद अली शाह

नासिर-उद्दीन के पश्चात् उसका चचा मुहम्मद अली शाह अवध की गद्दी पर बैठा, नासिरउद्दीन की विधवा बेगम ने इसका विरोध किया और अपने दत्तक पुत्र मान-जान को गद्दी पर बैठा दिया! इस पर रेजिडेंट कर्नल लो और उसके सहकारी कैप्टन शेक्स पियर नवाब बेगम को समझाने के लिए उसकी ड्योढ़ी पर गये, पर ड्योढ़ी दारों ने उन्हें कैद कर लिया, तब रेजीडेंसी की सेना ने अपने हाथियों की सहायता से ड्योढ़ी का फाटक तोड़ डाला। नवाब बेगम और उसका बेटा मान-जान गिरफ्तार कर लिये गये और रेजीडेंट की प्रेरणा से दी हुई नवाब की आज्ञा से दोनों माँ-बेटे को चौक के बाजार से होकर हुसेनाबाद तक नंगा करके पैदल ले जाया गया। रास्ते में अंग्रेजों के पिट्ठुओं तथा नवाब के चापलूसों ने उन पर थूका। इस प्रकार का घृणित आचरण उच्चवंश की महिला के प्रति किसी इतिहास में नहीं देखा गया। इसके लिये अंग्रेज इतिहासकारों ने कर्नल लोको बहुत धिक्कारा है।

सन् १८४१ में प्रिंस फ्रेड्रिकिसस साल्टीहोफ ने अपनी लखनऊ की यात्रा के वर्णन में कर्नल लो का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसकी सारी शान शौकत और उसका सारा प्रदर्शन किसी भी यूरोपियन बादशाह की शान-शौकत को लज्जित करने वाली है। वह हाथी पर बैठ कर बाहर निकलता है, उसके हाथी के हौदे का मूल्य इतना है कि उसके बदले में कोई "डची" या 'ड्यूक' की रियासत खरीदी जा सकती है। उसका यह हौदा सोने का है और उस पर अनेक हीरे, मोती, लाल, और नीलम तथा अन्य अलभ्य रत्न जड़े हुए हैं।"

प्रिंस साल्टी होफ के कलकत्ता पहुँचते ही कर्नल लो को मजबूर होकर इस्तीफा देना पड़ा। उसने अपनी सारी सम्पत्ति तथा अवध की लूट का सारा माल कलकत्ते की पामर कम्पनी में जमा करा रखा था, परन्तु कलकत्ता

पहुँचते ही उसे मालूम हुआ कि पामर कम्पनी ने अपना दिवाला निकाल दिया है और वह फिर से दरिद्र हो गया है।

सन् १८४२ में मुहम्मदअली शाह की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र अमजदअली शाह नवाब हुआ। सन् १८४७ में इसकी मृत्यु हो गई।

वाजिद अलीशाह

अमजद अली शाह के बाद उसका पुत्र इतिहास-प्रसिद्ध वाजिद अली शाह गद्दी पर बैठा, जिसके ऐशो इशरत, राग-रंग और रईसी की कहानियाँ आज भी लखऊ और उत्तर प्रदेश में प्रचलित हैं। इनके पिता खजाने में करीब डेढ़ करोड़ रुपया नकद छोड़ गये थे। वाजिद अली शाह शौकीन मिजाज के आदमी थे ही, धन और सत्ता की कमी थी ही नहीं, दिन रात सुरा और सुन्दरियों के बीच में ऐशो-इशरत में उनका समय बीतने लगा।

वाजिदअली शाह ने दो करोड़ रुपया खर्च कर के लखनऊ में सुप्रसिद्ध कैसर बाग लगवाया और उसके भीतर की इमारतें तैयार करवाईं। राज्य का प्रबन्ध कुमंत्रियों के हाथ में पड़कर नष्ट हो गया। अंग्रेजी सरकार ने इन्हें कई बार चेतावनी दी, पर कोई नतीजा नहीं निकला। अन्त में यहाँ तक अशान्ति फैली की कम्पनी ने राज्य को जप्त कर लिया और २० लाख रुपये साल की पेंशन देकर इनको कलकत्ते की मटिया बुर्ज में भेज दिया। कुछ समय के बाद मटिया बुर्ज में भी वही लखनऊ जैसी रंगरेलियाँ मचने लगीं। वहाँ पर भी उन्होंने एक ऐसा चिड़िया घर बनवाया, जिसे देखने के लिए दूर दूर के देशी और विदेशी यात्री आया करते थे। सन् १८८७ ई० में नवाब वाजिद अली शाह की मृत्यु हो गई।

अवध के नवाबों का इतिहास देखने से पता चलता है कि इनमें प्रायः सभी ऐयाश, विषयानुरक्त और रागरंग के शौकीन थे। शासन की योग्यता इनमें शायद ही किसी में रही हो। अंग्रेजी शासन भी ऐसे ही लोगों को गद्दी पर बिठाना पसन्द करता था जो उसके हाथ की कठपुतली बने रहें।

नवाबी समय में साहित्य का विकास

फिर भी एक बात यह देखने को मिलती है कि नवाबों की भोग-लालसा और राग-रंग की प्रवृत्तियों में से उर्दू-कविता के विकास को बड़ी सहायता मिली। दिल्ली की बादशाहत के कमजोर हो जाने से वहाँ के बहुत से अच्छे-अच्छे कवि अवध के नवाबों के दरबार में आ-आकर आश्रय पाने लगे। अवध के ये नवाब लोग कवियों को बड़ी इज्जत के साथ आश्रय देते थे और स्वयं भी कविता करते थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि आरजू, सौदा, मीर, इंशा, जुरत, नुसहिफी आदि बहुत से कवियों ने अवध के वैभव पूर्ण दरबार में आकर अपने अन्तिम दिन व्यतीत किये थे।

कवियों को आश्रय देने के साथ-साथ कविता करने में भी नवाब वंश बहुत अग्रगण्य था।

नवाब आसफ-उ-दौला 'आसफ' के उपनाम से अच्छी कविता करते थे। इनका बनाया हुआ एक दीवान है, जिसमें तीन सौ पृष्ठों में गजलें, डेढ़ सौ पृष्ठों में रूबाइयाँ और सौ पृष्ठों में मंसनवियाँ हैं।

नवाब वाजिद अली शाह भी बहुत अच्छे कवि और संगीत विद्या के ज्ञाता थे। ये हमेशा सुन्दर स्त्रियों, कवियों और गवैयों से घिरे रहते थे। कविता में ये अपना नाम "अख्तर" और ठुमरी में "जाने आलम-पिया" रखते थे। इनकी रचनाएँ इतनी अधिक हैं कि इनमे करीब ४० जिल्दें बनती हैं। गजलों के इन्होंने ६ दीवान लिखे हैं तथा मर्सिये, कसीदे और मसनवियाँ भी कई जिल्दों में संगृहीत हुई हैं।

अवध पञ्च

लखनऊ मे निकलने वाला उर्दू का एक प्रसिद्ध, साप्ताहिक पत्र, जो सन् १८७७ से निकलना प्रारम्भ हुआ।

मुंशी मुहम्मद सज्जाद ने इस पत्र को निकालना प्रारम्भ किया था। इस पत्र का उर्दू भाषा और साहित्य पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। हास्य-रस प्रधान पत्रों में हिन्दुस्तान में शायद यह पहला पत्र था। इसके व्यंग्य, चुटकले अत्यन्त तीखे एवं हास्यपूर्ण होते थे। इसकी भाषा टकसाली समझी जाती थी।

अवन्ती पुरी

भारत की सात प्राचीन महापुरियों में से एक प्रसिद्ध नगर। इसका पूर्ण परिचय "उज्जयिनी" के प्रकरणमें देखें।

अवदान

जिस प्रकार बौद्ध सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए "जातक" साहित्य की पाली भाषा में रचना हुई उसी प्रकार संस्कृत भाषा में बौद्ध दर्शन को प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ "अवदान" कहलाये। इन अवदानों में सबसे प्राचीन 'अवदान-शतक" है। इस ग्रन्थ का चीनी अनुवाद ईसा को तीसरी सदी में हुआ। दिव्यावदान में गद्य और काव्य दोनों का सुन्दर संग्रह है, यह सन् ४०० के पहले लिखा जा चुका था। आगे चलकर "अवदान कल्प-लता" काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने सन् १०५२ में लिखी। "कल्पद्रुमावदान माला" "रानावदानमाला" भद्र कल्पनावदान" आदि ग्रन्थ भी इसी अवदान परम्परायें हैं।

अवन्ति-वर्मन

काश्मीर के उत्पल वंश का प्रथम राजा जिसने सन ८५५ से ८८३ तक राज्य किया।

जिस समय अवन्ति वर्मन ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली उस समय कश्मीर की हालत अत्यन्त अव्यवस्थित और अराजकता पूर्ण हो रही थी। अवन्ति वर्मन ने इस सारी अव्यवस्था को मिटाकर देश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। इसने कश्मीर में कई नहरों को बनवाकर सिंचाई का प्रबन्ध किया। अवन्ति वर्मन ने कश्मीर में कई मन्दिरों का निर्माण करवाया।

अवन्ति वर्मन का मन्त्री सूर्य्य भी कश्मीर के इतिहास में एक प्रभावशाली व्यक्ति हुआ उसके नाम पर बसा हुआ सूर्यपुर नगर अभी भी कश्मीर में विद्यमान है अवन्ति वर्मन के दरबार में कई साहित्यिक भी रहते थे। इनमें आनन्द वर्मन का नाम उल्लेखनीय है जिसने "ध्वन्यालोक" नाम ग्रन्थ की रचना की।

अवार-साम्राज्य (ज्वान ज्वान)

हूण जाति के विध्वंस के पश्चात् मध्यएशिया में स्थापित एक नवीन साम्राज्य जिसने सन् ४०० से ५८२ ई० तक शासन किया।

मध्य एशिया से हूणों का विध्वंस होने के पश्चात् और तुर्क जाति के इतिहास में पदार्पण करने के पूर्व मध्यवर्त्ती काल में करीब पौने दो सौ वर्षो तक आवारों का शासन रहा। हूणों का नाश होने के पश्चात् स्यान-पी या तुङ्ग-हू नामक कबीले ने मंचूरिया, मंगोलिया और चीन के कुछ भागों पर अपना शासन स्थापित किया। इन्हीं का एक शक्ति सम्पन्न राजवंश तोबा था जिसकी स्थापना सन् ३१५ के करीब और समाप्ति पाँचवी सदी में हुई! अवार-जाति का सम्बन्ध इसी तोबा वंश से था जिन्हें मुकरू तोबा भी कहते हैं। इसा हूणजन का निवास स्थान बैकाल सरोवर के नजदीक तथा गोबी रेगिस्तान के उत्तर में था। तोबा के एक राजकुमार "इलू" का दास मुकरू था! किसी कारण वश मुकरू इस राजकुमार की सेवा से भागकर जंगल में चला गया और वहाँ लुटेरों के एक दल का सरदार बन गया। मुकरू का पुत्र शरुक हुआ। शरुक ने अपने पिता की जमात को और बढ़ाकर एक बड़ा कबीला कायम करा लिया और उस कबीले का नाम "अवार" रक्खा। पहले चीन में अवार कबीले का नाम 'जू-जून" था जिसे तोबा सम्राट् ताई-हू तोने बदलकर "ज्वान-ज्वान" कर दिया।

इसी मुकरू के वंश में आगे चल कर एक शक्तिशाली सरदार शे-लुन हुआ। इसने कुछ और कबीलों को जीतकर अपनी सैनिक शक्ति को मजबूत कर "खान" की उपाधि धारण की। कोरिया से अल्ताई तक फैले हुए इसके साम्राज्य में चीन का भी कुछ भाग था। शे-लुन मध्य एशिया के वणिक पथ के भी कुछ भाग का स्वामी था। ये लोग भी हूणों की तरह कभी चीन को लूटते थे और कभी उसकी मदद करते थे।

अवारों पर चीनी सभ्यता और बौद्ध धर्म का बड़ा प्रभाव था। तो-बा सम्राट् भी बौद्ध थे। इतिहास की परम्परा के अनुसार अन्त में अवारों के अन्दर भी घर की फूट फैली

जिसके परिणाम स्वरूप इन लोगों के सहारे तुर्क लोगों ने लाभ उठाया और तुर्कों के सरदार तू-मिन ने विद्रोह करके अवार-साम्राज्य को समाप्त कर विशाल तुर्क साम्राज्य की नींव डाली।

अवारी

सन् १६२५ में जब कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में चारों तरफ गतिरोध और जड़ता फैल गयी। उस समय सारे भारतवर्ष के नवयुवकों में जागृति की एक नवीन लहर फैली। उस समय मध्य प्रान्त के नागपुर नगर में नवयुवकों ने अपनी जिम्मेदारी पर शस्त्र-सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू किया। इसका उद्देश्य उस शस्त्र कानून का भंग करना था जिसके अनुसार भारतवासियों के लिये सरकार ने शस्त्रों के रखने की मनाही कर रखी थी। इस आन्दोलन के नेता जनरल अवारी थे जो कांग्रेस के एक लोक-प्रिय कार्यकर्त्ता थे।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर

बंगाल के सुप्रसिद्ध चित्रकला के आचार्य जिनका आर्ट 'टैगोर आर्ट' के नाम से मशहूर है।

डा० अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय चित्रकला में नवीन जीवन का सञ्चार किया और उनकी कला न केवल भारतवर्ष में अपितु संसार में आदर की वस्तु हो गई। संसार के कलाकारों को उन्होंने एक नवीन मार्ग बतलाया। मनुष्य के आन्तरिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रकट कर सौन्दर्य और ललित कला का वातावरण उपस्थित करने में इनकी कला ने बड़ी सहायता दी।

अविलार्ड

न्याय और दर्शनशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए देश-विदेश में भ्रमण करने वाला ब्रिटनी (फ्रान्स) का एक नवयुवक जिसका जन्म सन् ११०० में हुआ।

अविलार्ड एक जिज्ञासु प्रवृत्ति का नवयुवक था। उसने न्याय और दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कई स्थानों का भ्रमण किया, कई विद्यापीठों से सम्पर्क स्थापित किया। उसने लिखा है कि पेरिस में बहुत से ऐसे विद्वान् रहते हैं जिनके पास न्याय तथा ब्रह्मविद्या की शिक्षा पाने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते हैं।

अविलार्ड ने स्वयं भी न्याय, दर्शन और धर्म की शिक्षा देना प्रारम्भ किया और उसमें उसे बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। देश विदेश से हजारों छात्र उसके पास शिक्षा ग्रहण करने को आने लगे।

कई लोगों का ख्याल है कि अविलार्ड ने ही सबसे पहले पेरिस यूनिवर्सिटी की स्थापना की। मगर ऐतिहासिक प्रमाणों से इस विचार का अनुमोदन नहीं होता। पर यह सत्य है कि उसने धर्म सम्बन्धी मतभेदों को सर्व-साधारण में प्रचार करने का बड़ा यत्न किया। उसकी शिक्षा देने की पद्धति बहुत उत्तम कोटि की थी। उस समय के ईसाई सन्त बर्नर्ड अविलार्ड भी इस स्वतंत्र विचारधारा के बहुत विरुद्ध थे और उनके कारण अविलार्ड को बहुत कष्ट भी उठाना पड़ा।

अविग्नान

फ्रान्स राज्य की सीमा के नजदीक एक शहर जहाँ पर रोमन चर्च के पोप की गद्दी स्थापित की गई। यहाँ पर एक विशाल प्रासाद का निर्माण कराया गया। इस प्रासाद में सन् १३१४ से १३७५ तक कई पोप बड़े ठाठ और वैभव से रहे।

इससे पहले रोमन चर्च के पोप की प्रधान गद्दी रोम के चर्च में ही रहती थी। मगर फ्रान्स के बादशाह फिलिप रोमन चर्च के पोप बोनीफेस अष्टम के बीच में जब झगड़ा होगया तब फिलिप ने बोर्डो में आर्क विशप को इस शर्त्त पर पोप बनने में मदद दी कि वह अपनी राजधानी फ्रान्स में रक्खे। इस नवीन पोप ने समस्त कार्डिनलों (धर्म संस्था के उच्च अधिकारी) को लियन में निमंत्रित किया और क्लेमेण्ट पंचम के नाम से पोप पद पर आरूढ़ हुआ। जब तक वह धर्माध्यक्ष रहा, उसने अपनी गद्दी फ्रान्स में ही रक्खी। उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों ने अविग्नान को अपना प्रधान केन्द्र बनाया। जहाँ पर ६० बरसों तक कई पोप बड़े ठाठ से रहे।

अवेस्तां (झेन्द अवेस्तां)

पारसियों का पूजनीय धर्मग्रन्थ। जिस प्रकार आर्य्य लोग वेदों को, मुसलमान कुरान को और ईसाई बाइबिल को अपने धर्म के सबसे पूज्य और पवित्र ग्रन्थ मानते हैं उसी प्रकार "अवेस्तां" पारसी समाज का पवित्र धर्म-ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ की रचना पारसी धर्म के संस्थापक इरान के सुप्रसिद्ध धर्म संस्थापक "जरथोस्ट" ने की, ऐसा बतलाया जाता है। कम से कम उसका गाथाभाग जरथोस्ट द्वारा निर्मित बताया जाता है। जरथोस्ट के समय निर्णय के सम्बन्ध में अभी तक कोई मजबूत प्रमाण उपलब्ध नहीं है। फिर भी जहाँ तक अनुमान किया जाता है ईसा के पूर्व की सातवीं सदी में जरथोस्ट का होना माना जाता है। जबकि भारत वर्ष में बुद्ध और महावीर, चीन में कन्फ्यूशस, यूरोप में पाइथा गोरस विशिष्ट धर्म-क्रान्तियों का संचालन कर रहे थे उसी समय ईरान में भी जरथोस्ट ने एक धार्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव किया था। वह शताब्दी सारे विश्व में धार्मिक क्रान्तियों की शताब्दी थी।

अवेस्तां प्राचीन ईरानियों का धर्मग्रन्थ है। इसी के नाम पर वहाँ की भाषा का नाम भी "अवेस्तां" पड़ गया है। इस ग्रन्थ की भाषा कई अंशों में संस्कृत से मिलती-जुलती है। उच्चारण भेद के अन्तर पर ध्यान न दिया जाय तो उसके मन्त्र ऋग्वेद की ऋचाओं से मिलते-जुलते मालूम होते हैं। इस समय अवेस्तां के कुछ खण्ड ही उपलब्ध हैं। ईरान के सासानी साम्राज्य के समय में यह ग्रंथ इक्कीस खण्डों में पाया जाता था, ऐसा पारसी लोगों का विश्वास है।

अवेस्तां तीन भागों में विभक्त है (१) "वेन्दीदाद" जिसमें गाथाओं का संग्रह है (२) "विस्पेरद" जिसमें यज्ञ मंत्रों का संग्रह है और (३) "यस्न" जो प्रणाली से सम्बन्ध रखता है।

अवेस्तां में पारसियों के मूल देवता "आहुर मज्द" की स्तुति भी की गई है। अवेस्तां में स्थान-स्थान पर सुन्दर कविताओं का परिचय भी मिलता है। अवेस्तां के ऊपर आगे जाकर जो टीका हुई उसे "झेन्द" कहते हैं। टीका और मूल मिलाकर सारे ग्रन्थ को "झेन्द-अवेस्तां" कहते हैं। झेन्द की भाषा पहलवी या पार्थियन है। अवेस्तां के सम्बन्ध में कुछ दूसरी धार्मिक रचनाएँ भी हुई हैं जिनके नाम "बुन्दहिश" "दीन्कर्त" तथा "मैन्यो इ खिरद" है।

अविचेन्ना

ईरान का मशहूर चिकित्साशास्त्री और दार्शनिक जो अब्बासी खिलाफत के समय में हुआ। इसको महमूद गजनवी अपने दरबार में जबर्दस्ती रखना चाहता था तब डर के मारे यह भाग कर ईरान के जियारी राजा काबूस इब्न वश्मगीर की शरण में चला गया। अविचेन्ना ने अरबी और फारसी—दोनों भाषाओं में कई कसीदे लिखे। इसके लिखे हुए फारसी के बहुत से कसीदे और गजलें गलती से उमर खैय्याम की मान ली गई हैं। अविचेन्ना ने "दानिशनाम-ए-अलाई" के नाम से विज्ञान का एक विश्वकोष तैय्यार किया। अरबी गद्य में लिखे हुए दर्शन और चिकित्सा ग्रन्थों के कारण उसका यश चारों ओर फैल गया। इसने अपने ग्रन्थों में यूनानी दार्शनिक अरस्तू के ज्ञान का भी संग्रह किया है। इसकी पुस्तकों ने यूरोपीय सभ्यता को भी प्रभावित किया। यूरोप में प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार होते ही अविचेन्ना के साहित्य की धूम मच गई थी। सन् १०३७ में हमदान में उसकी मृत्यु हुई। उसकी कब्र ज्वर-पीड़ितों के लिए एक तीर्थ बन गई।

अवेल्ल देवी

चेदी के कल्चुरी हैहय-वंश के राजा कर्ण की पत्नी, हूण-वंश की राजकन्या, यशकर्ण की माता।

ग्यारहवीं शताब्दी में जबलपुर के नजदीक चेदी प्रान्त में कल्चुरी हैहयवंश राज्य करता था। इस राज्य के संस्थापक राजा गांगेय का पुत्र राजा कर्ण बहुत प्रतापी हुआ। अवेल्ल देवी इसी राजा कर्ण की पत्नी थी। यह राजा कर्ण सन् १०३८ में राजगद्दी पर बैठा। इसने बहुत बड़े-बड़े प्रान्तों को विजय करके अपने राज्य में मिलाया। इसकी सत्ता बनारस के आगे बिहार तक फैली हुई थी। बनारस में इसने कर्ण मेरू नामक एक मन्दिर बनवाया था। इसने

कर्णावती नामक एक नगर बसा कर विद्वान ब्राह्मणों को ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति के रूप में दान दे दिया। चोल राजाओं से इसने तैलंगाणी का भी बहुत-सा हिस्सा जीत लिया था। इसके अतिरिक्त दक्षिण में चोल और पांड्य, पूर्व में हूण और गौड़, उत्तर में गुर्जर और कीर देशों के जीतने का उल्लेख भी इसके शिलालेखों में पाया जाता है। इससे पता चलता है कि उत्तर में उसकी विजय हिमालय तक पहुँच गई थी। यह भी सम्भव मालूम होता है कि उत्तर में मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करके रहने वाले गुर्जर या प्रतिहार सम्राट को जीत कर मुसलमानों को देश के बाहर मार भगाया। राजा कर्ण की सेवा में १३६ राजा रहते थे। राजा कर्ण विद्वानो का आश्रयदाता था। उसकी राज्यसभा में कई कवि लोग रहते थे। कर्ण का राज्यकाल १०४० से १०८० तक माना जाता है।

राजा कर्ण के पुत्र का नाम यशःकर्ण था। कर्ण की मृत्यु के समय उसकी उम्र छोटी होने से राज्य का कार्य-भार उसकी माता अंल्ल देवी ने कुछ समय तक सम्हाला था।

अशुर-साम्राज्य

एशिया का एक प्राचीन साम्राज्य जो अपने उत्कर्ष के समय में मिस्र से ईरान तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य की राजधानी निनीवे या नाइनस थी। निनीवे पुराने जमाने का एक मशहूर नगर था। सम्राट् सेन केरिब के जमाने में इस शहर का वैभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। करीब दो सौ साल तक यह बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र बना रहा। यहाँ का पुस्तकालय अपने जमाने में सारे संसार में मशहूर था। ईस्वी सन् से ६१२ वर्ष पूर्व अग्नामनी शासकों ने मिलकर इस फूलते-फलते शहर को तहस नहस कर डाला।

अशुर-बनिपाल

असीरियन साम्राज्य का सम्राट् जिसने अपनी राजधानी निनवे में पुरानी वस्तुओं का एक महान् संग्रहालय बनवाया था। इस संग्रहालय में ईसा पूर्व ३००० वर्ष से लेकर ६०० वर्ष तक की ईंटे जिन पर पुराने इतिहास और महा काव्य खुदे हुए हैं संगृहीत की गई थीं। इन ईंटो पर उस काल के खुदे हुए एक महाकाव्य "गिल्गमेष" का पता लगा है। यह काव्य बारह ईंटो पर खुदा हुआ है जिसमें सृष्टि के प्रलय और उसके पुनर्निर्माण की कहानी बड़े रोचक ढंग से लिखी हुई है।

एक भावुक सम्राट् की निष्ठा से यदि ये सब ईंट-पत्थर संगृहीत न किये गये होते तो अति प्राचीन सुमेरियन और बेबीलोनियन संस्कृति का पता हमें न लग पाता इस सम्राट् का समय ईसा पूर्व ६६८ से ६६१ वर्ष तक है।

अश्व-घोष

बौद्ध साहित्य का उद्भट विद्वान जो ईसा की पहली शताब्दी में हुआ।

अश्वघोष साकेत का रहने वाला ब्राह्मण था। यह कुशान वंशीय सम्राट् महाराज कनिष्क के समय में हुआ था। इसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था और कश्मीर में होने वाली तीसरी बौद्ध संगति का इसी ने संचालन किया था।

अश्वघोष ने काव्य और नाटक दोनो लिखे उसके काव्यों में 'बुद्ध चरित्र' और "सौन्दरनन्द" नाम का दो महाकाव्य बहुत प्रसिद्ध है। "सूत्रालंकार" भी अश्वघोष की ही रचना थी। उसकी रचनाओं पर वाल्मीकि का प्रभाव था और अश्वघोष का प्रभाव कालिदास के रघुवंश और कुमारसम्भव पर दिखलाई पड़ता है। अश्वघोष के नाटकों के कुछ छिन्न भिन्न अंश तुरफाना में मिले हैं, इनमें से एक का नाम "शारि पुत्र प्रकरण है"

अमर सिंह

अमरकोश के रचयिता अमरसिंह जो सम्भवतः चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य का समकालीन था।

अश्व कर्ण

अलेक्झेण्डर महान् के आक्रमण के समय भारत और काबुल के बीच में स्थित अश्नक नामक एक जाति का सरदार।

अफगानिस्तान पर विजय प्राप्त करने के बाद जब सिकन्दर भारत की सीमाओं के समीप आया तब उसे सीमावर्ती कई दुर्द्धर्ष जातियों से कड़ा संघर्ष करना पड़ा। इनमें से एक जाति अश्वक (Assakenoi) थी। इसका सरदार अश्वकर्ण ने २०००० घुड़सवार ३०००० पैदल सेना के साथ सिकन्दर को रोकने का प्रयत्न किया। मालकन्द के समीप मस्सक नामक उनका एक सुदृढ़ किला बना हुआ था। सिकन्दर को अश्वकर्ण के साथ अत्यन्त कड़े मुकाबिले का सामना करना पड़ा मगर उसके सौभाग्य से अचानक एक तीर अश्वकर्ण को जा लगा और उसके गिरते ही भारतीय युद्ध नीति के अनुसार अश्वक की सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। अश्वकर्ण की सुन्दर पत्नी को सिकन्दर ने अपने हरम में डाल लिया।

अशाई-शिम्बून

जापान के प्रसिद्ध व्यवसायिक नगर ओसाका से प्रकाशित होने वाला प्रसिद्ध दैनिकपत्र। जिसकी दस लाख से अधिक प्रतियाँ सन् १६३१ तक छपना प्रारम्भ हो गई थीं।

साक्षरता और शिक्षा प्रचार के साथ-साथ जापान में पत्र-पत्रिकाओं ने असाधारण रूप से उन्नति की। जापान का पहला दैनिक पत्र सन् १८७२ में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था मगर सन् १९३० तक तो वहाँ पत्र पत्रिकाओं की जैसे बाढ़ सी आ गई।

ओसाका से प्रकाशित होने वाले अशाई-शिम्बून और मैनिशि शिम्बून की दस-दस लाख से अधिक प्रतियाँ छपती थीं। राजधानी टोकियो से प्रकाशित होने वाले दो दैनिक पत्रों की साढ़े छः-छः लाख प्रतियाँ छपती थीं। इन चार बड़े दैनिक पत्रों के अतिरिक्त एक हजार से अधिक दैनिक पत्र जापान के भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित होने लगे थे। जिस देश की जनसंख्या कुल साढ़े छः करोड़ हो उस देश में इतने दैनिक पत्रों का प्रकाशित होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जापानी जनता को विदेशों में घटने वाली घटनाओं के प्रति कितनी अधिक दिलचस्पी थी।

अशीदा हितोशी

द्वितीय महायुद्ध में जापान के आत्मसमर्पण के पश्चात् जापान के मिन्सेइतो दल के नेता जिन्होंने सन् १६४८ में सोशल डेमाक्रेटिक दल के नेता काटायामा के द्वारा त्यागपत्र देने पर जापान में नवीन मंत्रिमण्डल का निर्माण किया। मगर थोड़े ही दिनों में इस मंत्रिमण्डल पर रिश्वत और भ्रष्टाचार का आरोप लगाया गया और उसे अक्टूबर १६४८ में इस्तीफा देना पड़ा।

अशेना निशि

सातवीं सदी में मध्य एशिया के अन्तर्गत पूर्वी तुर्क राजवंश की एक शाखा जिसने तुर्क साम्राज्य के समाप्त होने के पश्चात् अपना साम्राज्य स्थापित किया।

जिस समय अशेना-निशि के खाकान सत्ता में आये उस समय पूर्वीय तुर्कों का राज्य अपनी आपसी फूट के कारण अन्तिम साँसें ले रहा था। उस समय के एक शिला लेख में तुर्की साम्राज्य की हालत का चित्र खींचते हुए लिखा है कि—

"तुर्की वंश के स्थापक तू-मिन के बाद उसके छोटे भाई और उनके बाद उसके पुत्र कगान (खान) हुए। हालत यह थी कि हरेक छोटा भाई बड़े को पसन्द नहीं था, पुत्र पिता के विरुद्ध था सभी कगान मूर्ख और डरपोक थे। परिणाम यह हुआ कि चीनी लोगों ने इनके बीच में फूट डालकर आपस में लड़वा दिया जिससे उनके पुत्र और पुत्रियाँ चीनियों के दास हो गये।"

"ओ तुर्क लोगों! किसने तुम्हारे कानून और शासन को नष्ट किया, तुमने खुद अपना नाश किया। कहाँ से आये वे शस्त्रधारी जिन्होंने तुम्हें छिन्न-भिन्न किया। हे तुर्क जनता! तू पूर्व गई, पश्चिम गई, तेरा खून पानी की तरह बहा, तेरी हड्डियों का ढेर पहाड़ की तरह हो गया, तेरे कुलीन पुरुष दास और कुलीन स्त्रियाँ दासियाँ बन गईं।"

ऐसी विपन्न अवस्था में अशेना वंशी राज-कुमार इलतेरेस कई तुर्क कबीलों को मिलाकर उनका कगान गू-इ-लू के नाम से बना। इसने सन् ६८२ से ६६३ तक अपना

संगठन कर शासन किया। सन् ६६३ में एक लड़ाई में यह मारा गया।

इसके बाद इसका भाई मो-चो कगान बना। मो-चोके शासन में अशेना-तुर्क साम्राज्य एक बार फिर उन्नति की चरम शिखर पर पहुँच गया। इसने कई बार चीन की तत्कालीन साम्राज्ञी वू की सेनाओं से डटकर लोहा लिया और उसे पराजित किया और अपनी माँगे उससे मनवाकर शान्त हुआ। इसने अपने साम्राज्य का काफी विस्तार किया। सन् ७१६ में मो चो की हत्या कर दी गई।

मो-चो के बाद गु-इ-लू का पुत्र मोगालियान कगान बना। जिसने सन् ७१६ से ७३५ तक राज्य किया।

अंशुवर्मन

नैपाल में ठाकुरी राजवंश का संस्थापक और उसका पहला राजा। इसका समय छठी सदी के अन्त या सातवीं सदी के प्रारम्भ में माना जाता है।

अंशुवर्मन पहले लिच्छवी वंश के नरेश शिवदेव का मन्त्री था। उस समय सम्भवतः नैपाल लिच्छवी वंश की सत्ता में रहा होगा और अंशुवर्मन को वहाँ का शासक बनाकर भेजा होगा। मगर शीघ्र ही अंशुवर्मन ने वहाँ के पुराने राजकुल का अन्त करके राजदण्ड को धारण कर लिया और ठाकुरी राजवंश की प्रतिष्ठा की। उसने नेपाल में एक संवत् भी चलाया जिसका आरम्भ सन् ५९५ ई० से माना जाता है। अंशुवर्मन ने करीब चालीस बरस तक राज्य किया। तिब्बत के तत्कालीन सम्राट स्रांग-त्सान-गम्पो के साथ उसने अपनी कन्या का विवाह किया। वह एक अन्तर्जातीय और अन्तर्देशीय विवाह था।

अशोक महान्

भारतवर्ष में मौर्य्य कुल का महान बौद्ध सम्राट जिसने भारतवर्ष के इतिहास को अपने धर्म पूर्ण शासन से अमर आलोक प्रदान किया। इसका समय ई० सन् पूर्व २६६ से लेकर २३२ तक है।

इंग्लैण्ड के अमर इतिहास लेखक एच० जी० वेलस ने एक स्थान पर लिखा है कि—

"संसार के इतिहास में अनेक बड़े-बड़े सम्राटों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने अपने न्याय और उदारता से इतिहास में कीर्ति प्राप्त की मगर समग्र संसार के इतिहास में महान अशोक का चरित्र इतना उज्ज्वल है जिसका मुकाबला कोई भी दूसरा सम्राट नहीं कर सकता जो सारे आकाश में चन्द्रमा की तरह इतिहास में प्रकाशमान है।

मौर्य्य साम्राज्य के सम्राट बिन्दुसार की मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र अशोक वर्धन मगध की राजगद्दी पर आसीन हुआ। जिस समय अशोक सम्राट् की गद्दी पर आसीन हुआ उस समय उसका साम्राज्य पश्चिम में हिन्दु-कुश पर्वत से पूर्व में बङ्गाल की खाड़ी तक, उत्तर में हिमालय, कश्मीर और नेपाल तक और दक्षिण में मैसूर तक फैला हुआ था। दक्षिण के कुछ हिस्से और दक्षिण पूर्व का कलिङ्ग देश उसकी सीमाओं से बाहर था। इसी हिस्से को अपने साम्राज्य में मिलाने की इच्छा से अशोक ने एक विशाल सेना के साथ अपने राज्यारोहण के नवें वर्ष में कलिङ्ग देश पर आक्रमण किया। कलिङ्ग के राजा ने बड़ी बहादुरी के साथ इस आक्रमण का मुकाबला किया मगर अन्त में कुछ कूटनीतिक चालों से और कुछ मार काट के द्वारा कलिङ्ग की पराजय हुई। इस युद्ध में भयंकर रक्तपात हुआ। एक शिलालेख के अनुसार इस युद्ध में दोनों ओर के एक लाख आदमी मारे गये।

इस लड़ाई और मारकाट ने उसके दिल पर इतना गहरा असर डाला कि उसने आगे कभी भी कोई लड़ाई न लड़ने का संकल्प किया। इस विजय के बाद अशोक ने अपनी तलवार को म्यान में रख लिया। उसका हृदय जन-कल्याण में लग गया। इस बात का वर्णन करते हुए उसने अपने एक धर्म लेख में लिखा है—

"देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष में कलिङ्ग को जीता। डेढ़ लाख आदमी वहाँ से कैद करके लाये गये, एक लाख वहीं मारे गये और इससे बहुत अधिक स्वयमेव रोग से मर गये।"

कलिङ्ग विजय के बाद से ही देवताओं के प्रियदर्शी बड़े उत्साह से धर्म की रक्षा और प्रचार में जुट गये। उनके हृदय में कलिङ्ग विजय के लिये पश्चाताप शुरू

हुआ क्योंकि किसी अपराजित देश पर विजय प्राप्त करने में लोगों की हत्या, मृत्यु और कैदी बनाकर लेजाया जाना जरूरी होता है। प्रियदर्शी सम्राट को इस बात पर गहरा दुःख और पश्चाताप होता है।

सम्राट अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था उसने कभी अपना व्यक्तिगत् धर्म अपनी प्रजा पर जबर्दस्ती लादना नहीं चाहा। प्रचार के द्वारा और साहित्य के द्वारा प्रेम के साथ उसने जनता में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उसका मत था कि सभी धर्मों में जो कि चित्तशुद्धि और संयम का सम्मान करते हैं, पारस्परिक सहिष्णुता होना चाहिये।

अशोक की धर्म लिपियाँ

भारतीय इतिहास में अशोक की धर्म लिपियों का स्थान अनूठा और असाधारण है। यद्यपि ये धर्म लिपियाँ किसी ऐतिहासिक शोध में अधिक मदद नहीं करतीं और न ये किसी व्यक्ति की प्रशंसा के रूप में लिखी गई हैं, फिर भी इनका महत्व सारे संसार के साहित्य में सबसे अधिक इस लिये है कि इनमें एक भावुक और धर्मपरायण सम्राट ने अपना हृदय खोल कर सारी मानव जाति के सन्मुख रख दिया है। जिन सिद्धान्तों के ऊपर उसने अपने जीवन में अमल किया, जिन सिद्धान्तों को अपने मत से उसने मानव जाति के लिये कल्याणप्रद समझा उन्हीं का दिग्दर्शन उसने इन धर्म लिपियों में कर दिया है। उसके एक धर्म लेख में लिखा है—

"सारे धर्म किसी न किसी अच्छाई के कारण आदरणीय हैं। दूसरे धर्मों का आदर करके मनुष्य अपने धर्म को ऊँचा उठाता है और साथ ही दूसरे लोगों के धर्मों की भी सेवा करता है।"

अशोक के धर्म लेख पत्थर के खम्भों और पर्वत की शिलाओं पर हिमालय से मैसूर तक और उड़ीसा से काठियावाड़ तक खुदे हुए मिलते हैं। अशोक के शिलालेखों में चौदह धर्म लेख तो बहुत प्रसिद्ध हैं। जिनमें से एक पेशावर जिले के शहबाज गढ़ी में, एक हजारा जिले के मन्सेहरा नामक स्थान पर, एक जूनागढ के पास गिरनार पर्वत पर, एक थाना जिले के सोपारा नामक स्थान पर, एक देहरादून जिले के कालसी नामक स्थान पर, एक पुरी जिले के धौली नामक स्थान पर, एक गन्जाम जिले के जौगड़ नामक स्थान पर और एक निजाम जिले के इरागुडी नामक स्थान पर उपलब्ध हैं। ये लेख पहाड़ की चट्टानों पर खुदे हुए पाये गये हैं।

इनके अतिरिक्त सात लेख स्तम्भों पर खुदे हुए। इन स्तम्भों में से टोपरा और मेरठ के स्तम्भ तो दिल्ली लाये गये हैं। कौशाम्बी का स्तम्भ इलाहाबाद के किले में खड़ा किया गया है और रामपुरवा के तीन स्तम्भ चम्पारन जिले में खड़े हैं। ये सारे अभिलेख उस समय के साहित्य में अपना अमर स्थान रखते हैं।

तीसरी बौद्ध संगीति

बौद्ध धर्म का देश विदेशों में प्रचार करने के कार्य में प्रियदर्शी अशोक ने बहुत महत्वपूर्ण हाथ बँटाया। चीन, जापान, बरमा, सीलोन, तिब्बत इत्यादि संसार के दूरवर्ती भागों में बौद्ध धर्म के महान वृक्ष की जो टहनियाँ फैलीं उनमें अशोक का सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान था। बौद्ध धर्म का देश विदेश में प्रचार करने के लिये उसने आश्चर्यजनक संगठन किया। इस विषय में उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य पाटलिपुत्र में बौद्ध संगीतिका तीसरा महान अधिवेशन बुलाना था। अशोक के समय में बौद्ध धर्म के आचार्यों में कुछ महत्वपूर्ण मतभेद पैदा हो गये थे। इन मतभेदों को दूर करके प्रचार कार्य को संगठित करने के लिये अशोक ने अपने अभिषेक के सत्रहवें वर्ष में यह संगीति बुलवाई थी। इस संगीति के प्रधान सुप्रसिद्ध बौद्ध धर्माचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्य थे। नौ मास के निरन्तर वाद-विवाद के पश्चात् स्थविरों के पक्ष में संगीति ने अपना निर्णय दिया। इस संगीति के निर्णय के अनुसार बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये बौद्ध धर्माचार्य मध्यन्तिक काश्मीर और गांधार को, आचार्य मज्झिम हिमालय को, आचार्य महारक्षित यवन देश को, आचार्य सोण और उत्तर, सुवर्ण भूमि या ब्रह्म देश को, आचार्य महाधर्म रक्षित महाराष्ट्र को, आचार्य महादेव महिष्मण्डल को और सम्राट के पुत्र महेन्द्र लङ्का को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये गये। इसके पश्चात् सम्राट की पुत्री और महेन्द्र की बहन संघमित्रा ने पवित्र बोधि वृक्ष की शाखा सीलोन में ले जाकर लगाई।

इस प्रकार अशोक ने अपने साम्राज्य के समस्त साधन और अपने परिवार तक को अत्यन्त निष्ठा के साथ धर्म प्रचार और लोकनिष्ठा के लिये उत्सर्ग कर दिया।

इसके अतिरिक्त सम्राट अशोक ने जनसाधारण की सुविधाओं के लिए अपने साम्राज्य में और साम्राज्य से बाहर विदेशों में स्थान-स्थान पर धर्मशालाएँ, कुँए जलाशय और चिकित्सा के लिये अस्पतालों का निर्माण करवाया था। ओषधियों में काम आने वाली वनस्पतियाँ और जड़ी बूटियाँ जो इस देश में नहीं पैदा होती थीं, उन्हें दूसरे देशों से यहाँ लाकर लगाया गया।

शिल्प और स्थापत्य कला

प्रियदर्शी सम्राट को भवन निर्माण कला और नगर निर्माण कला का बहुत शौक था। कहा जाता है कि नैपाल में ललित पाटन और काश्मीर में श्रीनगर नामक शहर इन्होंने ही बसाये! सम्राट अशोक ने आजीवक सन्यासियों के लिये गया में बराबर नाम की पहाड़ी में जो दरी गृह बनवाये थे उनकी छतें, दीवारें आदि वज्रलेप के कारण शीशे की भाँति चमकती हैं। आजकल ये लोमष ऋषि की गुफाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

अशोक के बनाये हुए स्तम्भ वास्तुकला की प्रतिमूर्ति हैं। ये नीचे से मोटे और ऊपर से पतले चूड़ी उतार आकार के बने हुए हैं हरएक स्तम्भ चालीस से पचास फुट ऊँचा और वजन में लगभग पचास टन का है। शुरू में इन स्तम्भों में सिंह, बैल, हाथी इत्यादि की मूर्तियाँ बनी हुई हैं और इनके शिखर घण्टे के आकार के बने हुए हैं। इन पशुओं की आकृति में इतनी स्वाभाविकता है कि उनके सच्चे होने का भ्रम होता है। इनकी पालिश, सजीवता आदि देखकर पाश्चात्य कला विशारदों ने फारसी माडलों से इनकी अनुरूपता बतलाई है। ये स्तम्भ इतने चमकदार और चिकने हैं कि अनेक बार इन्जिनियरों को उनके धातु से बने होने का भ्रम हुआ है। इसके अतिरिक्त इन स्तम्भों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का काम भी अत्यन्त कठिन रहा होगा।

इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ ने एक उदाहरण देते हुए बतलाया है कि फीरोज़ शाह तुगलक ने जो एक उच्चकोटि का वास्तु कला निर्माता था और जिसके दरबार में दूर-दूर के इन्जिनियर रहते थे—दिल्ली से बारह मील दूर टोपरा नामक स्थान में जो अशोक का स्तम्भ खड़ा हुआ था उसे अपनी राजधानी की शोभा बढ़ाने के लिये दिल्ली लाना चाहा। मगर उस स्तम्भ को टोपरा से दिल्ली किस प्रकार लाया जाय इसके लिये बड़े-बड़े इन्जिनियरों की बुद्धि चकरा गई। अन्त में स्तम्भ के नीचे रूई का एक अम्बार खड़ा किया गया। पास ही बिना बैलों की बयालीस गाड़ियाँ खड़ी की गईं। फिर स्तम्भ को रूई के जरिये गाड़ियों पर लादा गया। प्रत्येक गाड़ी पर दो सौ आदमी लगे। इस प्रकार बारह मील की दूरी तय करने के लिये आठ हजार से अधिक आदमियों की जरूरत पड़ी। ऐसी स्थिति में ये स्तम्भ चुनार से लेकर निजाम राज्य तक कैसे पहुँचे होंगे यह भी एक प्रश्न वाचक चिन्ह है।

साम्राज्य की सीमाएँ

अशोक के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर पश्चिम में हिन्दू कुश पर्वत तक थी। हिरात, कन्दहार, काबुल, बालूचिस्तान, जो चन्द्रगुप्त ने सैल्यूकस से जीते थे, अशोक के साम्राज्य में थे। कपिशा, जलालाबाद और कश्मीर भी अशोक के शासन में थे। बौद्ध परम्परा के अनुसार नैपाल भी उसके राज्य में था। पूर्व में बंगाल अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत था और कलिंग को स्वयं अशोक ने जीता था। पश्चिम में अशोक के साम्राज्य की सीमा पश्चिमी समुद्र तक पहुँच गई थी। सौराष्ट्र, जूनागढ़, बम्बई का थाना जिला उसके साम्राज्य में था। दक्षिण में अशोक के साम्राज्य की सीमाएँ मैसूर तक पहुँच गई थीं।

अशोक का शासन

अशोक इस विशाल साम्राज्य का एकछत्र शासक था। उसका साम्राज्य, तक्ष शिला, उज्जयिनी, तीसली और सोनागिरि के चार केन्द्रों द्वारा शासित होता था। इन चारों केन्द्रों में तथा मुख्य-मुख्य प्रान्तों में राजकुल के या किसी सम्भ्रान्त कुल के विश्वसनीय व्यक्ति शासक के रूप में नियुक्त किये जाते थे। जिले के शासकों को प्रादेशिक कहते थे। विभागों के स्वामी को महामात्र कहते थे। अन्तःपुर का महामात्र "स्त्रियध्यक्ष महामात्र", नगर का महा-

मात्र "नगर महामात्र" और सीमान्त का महामात्र "अन्त महामात्र" कहलाते थे। महामात्रों के अधिकार मन्त्रियों के समान होते थे और इनका पद कौटिल्य के समय से चला आता था।

सम्राट अशोक ने धर्म महामात्र के नाम से प्रजा के इहलौकिक और पारलौकिक हित के लिये नये धर्माधिकारियों की नियुक्ति की थी। ये धर्माधिकारी धार्मिक प्रवृत्तियों की रक्षा और दण्डनीति की कठोरता को कम करते थे। प्रतिवेदक के नाम से सम्राट ने ऐसे रिपोर्टरों का एक दल बनाया था जो प्रजा की आवश्यकताओं की जाँच करके उसकी रिपोर्ट सरकार को देते रहें। उसने अपने शासन की मूलनीति अहिंसा को रखा था।

प्रियदर्शी अशोक भारतीय इतिहास में सबसे बड़े साम्राज्य का स्वामी होता हुआ भी एक तपस्वी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करता था वह अत्यन्त उदारचेत्ता था। सारा प्राणिजगत उसके आदर का पात्र था।

दुनिया के महान सम्राट मारकस आरेलियस, अकबर, कान्स्टेण्टाइन इत्यादि के साथ इतिहास उसकी तुलना करता है। मगर उदारता, दिव्य मानवता और उच्च आदर्शों की दृष्टि से वह सबसे अलग और सबसे ऊँचा था। मगर साथ ही मानव जगत की यह सचाई कि राजनीति में अत्यन्त उच्च आदर्शवादिता सफलता नहीं देती, अशोक के जीवन में चाहे सत्य साबित न हुई हो मगर उसकी मृत्यु के बाद उस सिद्धान्त ने अपनी सत्यता जाहिर कर दी और अशोक के मरते ही उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

अशोक के धर्म लेख

सम्राट अशोक ने अपने राज्यकाल के विभिन्न वर्षों में जनता को प्रबोध देने के हेतु अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में कई धर्म लेख खुदवाए थे।

उन लेखों का हिन्दी अनुवाद नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

(१)

यह धर्मलिपि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की आज्ञा से खुदवाई गई है। इस पृथ्वी पर कोई किसी जीवधारी जन्तु को बलिदान अथवा भोजन के लिए न मारे अथवा किसी प्रकार का समाज न करे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ऐसे समाजों में अनेक प्रकार के दोष देखते हैं। यद्यपि कुछ समाज ऐसे भी हैं जो देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् को अच्छे मालूम होते हैं। पहले देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् की पाकशाला में व्यञ्जन बनाने के निमित्त हजारों पशुओं का बध हुआ करता था। पर आज से उनकी पाकशाला में केवल दो मोर और एक हिरण का वध होगा। जिसमें भी हिरण का वध नियमित नहीं है। भविष्य में ये तीन प्राणी भी नहीं मारे जाएँगे।

(२)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् के साम्राज्य में सर्वत्र और उनके सीमा प्रदेश में रहनेवाली जातियों (जैसे चोल, पाण्ड्य, सतिय पुत्र, केरल पुत्र आदि) के राज्य में ताम्रपर्णी (लङ्का) तक तथा यूनानियों के राजा एण्टी ओकस के राज्य में और उसके पार्श्ववर्त्ती दूसरे राज्यों में सर्वत्र देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने दो प्रकार की चिकित्साओं का प्रबन्ध किया है—मनुष्य-चिकित्सा और पशु-चिकित्सा। जिन-जिन स्थानों पर मनुष्यों और पशुओं के उपयोग में आनेवाली औषधियों के पौधे नहीं हैं, उन-उन स्थानों पर वे बाहर से लाये और लगाये गये हैं। प्रत्येक पथ पर मनुष्यों और पशुओं के लिए कुएँ खुदवाये गये हैं और वृक्ष लगवाये गये हैं।

(३)

देव प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं:—राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में मैं इस प्रकार के आदेश किये हैं मेरे राज्य में सर्वत्र धम्मयुत, राजुक और नगरों के राज्याधिकारी पाँच वर्ष में एक बार सभा में एकत्रित हों और इस प्रकार की धर्म शिक्षाओं का प्रचार करें:—

"अपने माता, पिता, मित्रों, संगियों और सम्बन्धियों की धर्मयुत सेवा करना अच्छा और उचित है। ब्राह्मणों और श्रमणों को भिक्षा देना, प्राणियों के जीवन का सत्कार करना और अपव्यय तथा कटु वचन से बचना, अच्छा और उचित है। बौद्ध संघ इस प्रकार के धर्मयुतों को नियुक्त करेगा और उन पर निगाह रक्खेगा।

सुदूर अतीत काल से यहाँ पर प्राणियों का नाश—जीवों के प्रति निष्ठुर व्यवहार—सम्बन्धियों, श्रमणों तथा ब्राह्मणों

के प्रति अनादर भाव चले आ रहे हैं। आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने - जोकि, देवताओं के प्रिय और धर्मकार्य के बड़े भक्त हैं।—ढिंढोरा पिटवा कर लाव, लशकर, हाथी, मशाल और स्वर्गीय वस्तुओं को प्रजा को दिखला कर धर्म को प्रकट किया है। जैसा सैकड़ों वर्षों पहले कभी नहीं हुआ था वैसा देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन में होता है। आज जीवधारी पशुओं का सत्कार, उनके लिए दया, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों के लिए सत्कार, माता-पिता की आज्ञा का भक्ति के साथ पालन और वृद्धों का यथोचित आदर होता है। अन्य विषयों की तरह इस विषय में भी धर्म का विचार किया गया है और देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी इसको बराबर प्रचलित रक्खेगा। देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र इस धर्म के प्रचार को सृष्टि के अन्त तक कायम रक्खेंगे। धर्म और भलाई में दृढ़ रह कर वे लोग धर्म की शिक्षा देंगे। क्योंकि धर्म की शिक्षा देना सब कार्यों से उत्कृष्ट है और भलाई के बिना कोई धर्म का कार्य नहीं होगा। धार्मिक प्रेम का दृढ़ होना और उसकी वृद्धि होना वाँछनीय है। इस शिलालेख को खुदवाने का प्रधान उद्देश्य यह है कि वे लोग अपने को इस सर्वोच्च भलाई के कामों में लगावें और इसकी अवनति न होने दें। राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् ने इसे खुदवाया है।

(४)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं कि, पुण्य करना बहुत कठिन है। जो पुण्य करते हैं वे कठिन कार्य्य करते हैं। अभी तक मैंने स्वयं बहुत से पुण्य कार्य्य किये हैं। मेरे पुत्र, पौत्र और कल्पान्त तक के सब वंशधर मेरी ही तरह पुण्य कार्य्य करेंगे और जो सुकृत कार्य्य के करने में किंचित् मात्र भी प्रमाद करेगा, वह पाप का भागी होगा। क्योंकि पाप करना बहुत आसान है। देखो अतीत काल में धर्म्म का प्रबन्ध करने-वाले कर्म्मचारी न थे, परन्तु मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष में धर्म का प्रबन्ध करने वाले कर्म्मचारी नियुक्त किये हैं। ये लोग सब सम्प्रदाय के लोगों से धर्म का स्थापन और उत्कर्ष करने के लिए और धर्मबन्धुओं की भलाई करने के लिए मिलते हैं। वे यवन, कम्बोज, गान्धार, सौराष्ट्र, पेतेनिक और सीमा प्रदेश की अन्य जातियों के साथ मिलते हैं, वे योद्धाओं और ब्राह्मणों के साथ, गरीब अमीर और वृद्धों के साथ, उनकी भलाई और सुख के लिये, और सत्य धर्म के अनुयायियों के मार्ग को सब विघ्नों से रहित करने के लिए मिलते हैं। जो लोग बन्धनों में हैं उन्हें वे सुख देते हैं। और उनकी बाधाओं को दूर करके उन्हें मुक्त करते हैं। क्योंकि उन्हें अपने कुटुम्ब का पालन करना पड़ता है। पाटलिपुत्र तथा अन्य नगरों में, वे मेरे भाई बहनों तथा अन्य सम्बन्धियों के घर में यत्न करते हैं। सब स्थानों पर धर्म महामात्र लोग सच्चे धर्मानुयायियों, दान करने वालों और धर्म में दृढ़ लोगों से मिलते हैं। इसी उद्देश्य से यह लिपि खुदवाई गई है।

(५)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं:—प्राचीन काल में हर समय में राजकार्य, मनोनिवेश और गुप्तचरों के समाचारों को सुनने की प्रथा न थी। मैंने इस प्रकार का नियम कर दिया है कि, चाहे जिस समय में—खाने के समय, विश्राम के समय, शयनागार में, एकान्त में, अथवा वाटिका में—वे कर्मचारी लोग जिनके ऊपर प्रजा विषयक कार्यों का भार है मुझ से मिल सकते हैं। मैं अपनी प्रजा के सम्बन्ध की सब बातें उनसे जान लेता हूँ। मेरी कही हुई शिक्षाओं को मेरे धर्म महामात्र लोग प्रजा से कहते हैं। इस प्रकार मैंने यह आज्ञा दी है कि, जहाँ कहीं धर्मोपदेशकों की सभाओं में मतभेद अथवा झगड़ा हो, उसकी सूचना मुझे सदा मिल जाना चाहिए। क्योंकि, न्याय के प्रबन्ध में जितना उद्योग किया जाय कम है। मेरा यह कर्त्तव्य है कि शिक्षा द्वारा लोगों का उपकार करूँ! निरन्तर उद्योग और न्याय का उचित प्रबन्ध सर्वसाधारण के हित की जड़ है। और इससे अधिक फलदायक कुछ नहीं है। मेरे सब यत्नों का मुख्य उद्देश्य है कि, मैं सर्वसाधारण के ऋण से मुक्त हो जाऊँ। जहाँ तक मुझ से हो सकता है मैं उन्हें सुखी रखने का प्रयत्न करता हूँ। और इस बात का भी प्रयत्न करता हूं कि, भविष्य में भी स्वर्गसुख प्राप्त करें। भविष्य में मेरे पुत्र और पौत्र भी सर्व साधारण के हित में रत रहें। इसी उद्देश्य से मैंने यह लिपि खुदवाई है।

(६)

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी की यह बड़ी इच्छा है कि, सब स्थानों में सब जातियाँ सुखी रहें। सब लोग समान रीति से इन्द्रियों का दमन करें। और आत्मा को पवित्र बनावें। मनुष्य संसार की बातों में अधीर है। संसार-चक्र के कारण वह जितनी बातें कहता है उतनी कर नहीं सकता। फिर भी आंशिक रूप से उसे कर्तव्य पालन में रत रहना चाहिए। दान एक श्रेष्ठ धर्म है। लेकिन जो लोग आर्थिक हीनता के कारण दान नहीं कर सकते उन्हें संयम, चित्त शुद्धि, कृतज्ञता, दृढ़-चिन्तना आदि गुणों का एकान्त पालन करना चाहिए।

(७)

प्राचीन समय के राजा लोग अहेरिया के लिए जाया करते थे। अपना जी बहलाने के लिए वे जानवरों का शिकार तथा अन्य इसी प्रकार के खेल किया करते थे। मैं देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् अपने राज्य के दशवें वर्ष से इस प्रकार मनोरंजन को बन्द करता हूँ। अब मुझे सत्यज्ञान प्राप्त हो गया है। आज से ब्राह्मणों की भेंट करना उनको दान देना, वृद्धों से परामर्श करना, द्रव्य बांटना, राज्य में प्रजा से भेंट करना, प्रजाजनों को धार्मिक शिक्षा देना आदि कार्य ही मेरे मनोरंजन की सामग्री होगी। इस प्रकार देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अपने भले कामों से उत्पन्न हुए सुखों को भोगता है।

(८)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं :—लोग बीमारी में, पुत्र, कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म पर, और यात्रा में जाने के समय अथवा इसी प्रकार के अन्यान्य अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के विधान करते हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के ये असंख्य विधान जिन्हें कि लोग करते हैं, व्यर्थ और निरर्थक हैं। इन विधानों का कोई फल नहीं होता, जो लोग इन विधानों को छोड़ कर इनके विपरीत धर्म कार्य करते हैं, वे बहुत ही श्रेष्ठ हैं। गुलामों और नौकरों पर यथोचित ध्यान रखना और सम्बन्धियों तथा शिक्षकों का सत्कार करना प्रशंसनीय है। इन कामों को तथा इसी प्रकार के अन्य भलाई के कामों को ही मैं धर्म कार्य कहता हूँ। पिता, पुत्र, भाई अथवा स्वामी को कहना चाहिए कि, ये ही कार्य प्रशंसनीय हैं। जहाँ तक अभीष्ट सिद्धि न हो जाय तब तक इन सब कार्यों को करना उचित है। यह कहा जाता है कि, दान देना प्रशंसनीय कार्य है, पर और दान इतने प्रशंसनीय नहीं है जितना कि, धर्मदान। इस लिये मित्र, सम्बन्धी, और संगी को यह सम्मति देना चाहिए कि, अमुक-अमुक अवस्थाओं में अमुक-अमुक कार्य प्रशंसनीय है। यश में विश्वास रखना चाहिए कि इस प्रकार के आचरण से स्वर्ग मिलता है।

(९)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् इस के अतिरिक्त और किसी प्रकार की कीर्त्ति अथवा यश को पूर्ण नहीं समझता कि उसकी प्रजा वर्त्तमान में अथवा भविष्य में उसके धर्म को माने और उसके अनुसार कार्य करे। इसी एक मात्र यश को देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् चाहता है। प्रियदर्शी सम्राट् के सब उद्योग आगामी जीवन में मिलनेवाले सुखों तथा जीवन मरण के बन्धनों से मुक्त होने के लिए हैं। क्योंकि जीवन-मरण का दुख ही सब से बड़ा दुःख है। लेकिन इस दुःख से छुटकारा पाना छोटे और बड़े दोनो ही के लिए कठिन है। तब तक कठिन है जब तक कि, वे अपने को सब वस्तुओं से अलग करने का दृढ़ उद्योग न करेंगे। खास कर बड़े लोगों के लिए इसका उद्योग करना बड़ा ही कठिन है।

(१०)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं :—धर्म की मित्रता के समान मित्रता, धर्म की भिक्षा के समान भिक्षा, धर्म्म के सम्बन्ध के समान सम्बन्ध और धर्म के दान के बराबर दान दुनिया में कोई नहीं है। इसलिए क्रीत दास और साधारण भृत्यों के प्रति सदय व्यवहार, माता पिता की शुश्रूषा, मित्र, परिचित और जाति का सम्मान, ब्राह्मण और श्रमण लोगों को दान, प्राणियों के प्रति अहिंसाभाव, आदि सत्कार्यों को सम्पन्न करते रहना चाहिए। सुतरां पिता, पुत्र, भ्राता, मित्र, परिचित और जाति के लोगों को यह उपदेश देते रहना चाहिए कि, ये कार्य्य सत्कार्य्य हैं—

ये मनुष्य के कर्तव्य हैं। जो लोग हमेशा इस प्रकार का आचरण अथवा धर्मदान किया करते हैं वे इस लोक में पूजित एवं परलोक में अनन्य सुख भोगी होते हैं।

(११)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् सब धर्म के लोगों का—क्या संन्यासी और क्या गृहस्थ—उचित सत्कार करता है। वह उन्हें भिक्षा और दूसरे प्रकार के दान देकर सन्तुष्ट करता है। लेकिन प्रियदर्शी सम्राट् इस प्रकार के दानों को उनके धर्म चरणों की उन्नति के सम्मुख कुछ भी नहीं समझता। यद्यपि यह सत्य है कि, भिन्न-भिन्न धर्मों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पुण्य समझे जाते हैं तथापि उन सबका आधार एक ही है। वह आधार सुशीलता और सम्भाषण में शान्ति होना है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह कभी अपने धर्म की व्यर्थ प्रशंसा और दूसरों के धर्म की निन्दा न करे। किसी भी व्यक्ति का यह कर्तव्य नहीं है कि वह दूसरों के धर्म को बिना कारण हलका समझे। इसके विपरीत सब लोगों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि दूसरे धर्मों का भी सब अवसरों पर उचित सत्कार करें। इस प्रकार का यत्न करने से मनुष्य दूसरों की सेवा करते हुए भी अपने धर्म की उन्नति कर सकता है। इसके विरुद्ध कार्य करने से मनुष्य न तो अपनी ही भलाई कर सकता है न दूसरों की ही। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अपने धर्म की वृद्धि करने के लिए दूसरे धर्मों की निन्दा करता है वह अपने ही हाथों अपने धर्म पर कुठाराघात करता है। सहयोग ही सबसे उत्तम वस्तु है। इसी के कारण सब लोग एक दूसरे के मतो को सहन करते हुए प्रेम-पूर्वक समाज में रह सकते हैं। देवताओं के प्रियदर्शी की यह इच्छा है कि सब लोगों को इस ढङ्ग की शिक्षा दी जाय जिससे कि, उनके सिद्धान्त शुद्ध हों। सब धर्म के लोगों को यह बतला देना चाहिए कि देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् दान और बाहरी विधानों की अपेक्षा वास्तविक धर्माचरण को उन्नति और सब धर्मो के पारस्परिक प्रेम को अधिक महत्व देता है। इसी उद्देश्य से धर्म का प्रबंध करने वाले कर्मचारी, निरीक्षक और अन्यान्य कर्मचारी लोग

काम करते हैं। इसी का फल मेरे धर्म की उन्नति और धार्मिक दृष्टि से उसका प्रचार है।

(१२)

कलिंग देश जिसे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक ने अभिषेक के आठवें वर्ष में जीता है, बहुत विशाल है। इस विजय में डेढ़ लाख व्यक्ति बन्दी बनाए गये हैं, एक लाख आहत हुए हैं तथा इसमे कितने ही अधिक मारे गये हैं। इतनी हत्याओं के उपरान्त कलिङ्ग देश विजय हुआ है। इसी क्षण से देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् का धर्मपालन, धर्मानुराग और उसके धर्मानुशास्ति बहुत वृद्धिगत हुई है। कलिंग विजय करने पर देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट को बहुत पश्चाताप हुआ है। क्योंकि, अविजित देश का विजय करते समय हत्या, मृत्यु और बन्दी बनाना अवश्यम्भावी होता है। देवप्रिय प्रियदर्शी सम्राट को ये हत्याएँ अतिशय गुरुतर और कष्टकर मालूम होती हैं। सभी देशों में ब्राह्मण, श्रमण, संन्यासी और गृहस्थ लोग रहते हे। देश विजय करते समय इन लोगों पर भी कठोरता होती है। उनसे उनके प्रियजनों का वियोग हो जाता है यहाँ तक कि उनको मृत्यु भी हो जाता है। इसलिए उन्हें घोर क्लेश उठाना पड़ता है। मैं, जो कि, देवताओं का प्रिय हूँ, इस प्रकार को कठोरताओं का अनुभव करता और उन पर पश्चाताप करता हूँ। कोई ऐसा देश नहीं जहाँ पर ब्राह्मण और श्रमण न बसते हो और कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ वे लोग किसी न किसी धर्म को न मानते हों। और कलिंग देश के अन्तर्गत जितने लोग आहत हुए हैं, बन्दी हुए हैं, अथवा जितने लोगों ने प्राण-त्याग किया है, उनके लिए देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् को बहुत अनुताप हो रहा है।

देवताओं का प्रियदर्शी सब प्राणियों की रक्षा, जीवन के सत्कार, शान्ति और दया का उत्सुक हृदय से अभिलाषी है। इसी को देवताओं का प्रियदर्शी वास्तविक धर्म-विजय समझता है। अपने साम्राज्य तथा उसके सीमावर्ती प्रदेशों में इसी प्रकार को धर्म-विजय सम्राट् देखना चाहता है। उसके पड़ोसियो में यवनों का राजा एण्टीओकस, एण्टीओकस के उपरान्त चार राजा लोग—टोलेमी, एण्टीगोनस,

मेगेसी और सिकन्दर, दक्षिण में ताम्रपर्णी नदी तक चोल और पाण्डव लोग और विस्मवसी यूनानियों और कम्बोजों में नाभक और नाभपन्ति लोग, भोज और पेतेनिक लोग, आंध्र और पुलिन्द लोग—सर्वत्र देवताओं के प्रियदर्शी की धार्मिक शिक्षाओं के अनुकूल है। जहाँ-जहाँ देवताओं के प्रियदर्शी के दूत भेजे गये, वहाँ वहाँ के लोगों ने उन धार्मिक शिक्षाओं को बड़े ही चाव से सुना जो प्रियदर्शी सम्राट् की ओर से भेजी गई थीं। वे सानन्द उन धार्मिक शिक्षाओं से सहमत हो गये।

इस प्रकार यह विजय चारों ओर फैलाई गई है। मुझे इससे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है। वास्तव में धार्मिक विजय में इसी प्रकार का सुख होता है। यह आनन्द यद्यपि अलभ्य है तथापि देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् उस आनन्द को बहुत अधिक समझता है जो कि अगले जन्म में मिलने वाला है। इसी उद्देश्य से यह धार्मिक शिलालेख खुदवाया गया है कि हमारे पुत्र और पौत्र यह न सोचें कि किसी नवीन विजय की आवश्यकता है। वे यह न विचारें कि तलवार से विजय करना "विजय" कहलाने के योग्य है। वे उसमें नाश और कठोरता के अतिरिक्त कुछ भी न देखें। वे धर्म की विजय को छोड़ कर और किसी प्रकार की विजय को सच्ची न समझें। ऐसी विजय का फल इस लोक और परलोक दोनों जगह मिलता है।

(१३)

ये गिरिलिपियाँ देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने खुदवाई हैं। ये कुछ तो संक्षेप में, कुछ साधारण विस्तार में और कुछ अधिक विस्तार में हैं। अभी तक ये एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं। क्योंकि मेरा राज्य बहुत विशाल है। मैंने बहुत-सी बातें खुदवाई हैं और बहुत सी अभी और खुदवाऊँगा। कुछ बातों में पुनरावृत्ति भी आगई है, क्योंकि मैं उन बातों पर विशेष जोर देना चाहता हूँ। प्रतिलिपि में दोष भी हो सकते हैं कि कोई कोई वाक्य कट गया हो, पर यह सब खोदनेवाले कारीगर का काम है।

उपरोक्त चौदह सूचनाएं अशोक की प्रसिद्ध धर्मलिपियाँ हैं, जिनके द्वारा उसने अपने साम्राज्य में उपरोक्त महत्व-पूर्ण बातों का प्रचार किया।

उपरोक्त चौदह गिरिलिपियों के अतिरिक्त अशोक ने समय-समय पर अन्य सूचनाएँ भी खुदवाई थीं। उनमें से एक सूचना 'धौली" में दो "जोगड़" में एक खण्ड शिलालिपि सिद्धपुर में, एक सूचना सहसराम में, एक रूपनाथ में, एक बैराट् (दिल्ली के दक्षिण पश्चिम) में और तीन शिलालेख मैसूर में मिले हैं। इनके सिवा गुफाओं के शिलालेख अलग हैं। यद्यपि इन सब शिलालेखों का अनुवाद देना यहाँ पर आवश्यक है, पर इससे ग्रन्थ का कलेवर बहुत बढ़ जाने का डर है, इन सब शिलालेखों की दिया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन सकता है। उपरोक्त चौदह धर्मलिपियाँ बहुत आवश्यक थीं, इसलिए उनका अनुवाद ऊपर दे दिया गया है। शेष आठ स्तम्भ लिपियां भी बहुत आवश्यक समझी जाती हैं अतः उनका अनुवाद नीचे दे दिया जाता है।

पहली स्तम्भ लिपि

(१)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है :—एकान्त धर्मानुराग, विशेष आत्म-परीक्षा, पूर्ण आज्ञापालन, प्रगाढ़ अध्यवसाय, और धर्मभय के बिना मेरे कर्मचारियों को ऐहिक, और पारलौकिक सुख मिलना कठिन है। मेरे उपदेश के कारण उन लोगों में स्वतः धर्म के प्रति आदर और अनुराग बढ़ रहा है। मेरे कर्मचारी गण क्या उच्च श्रेणी के, क्या मध्यम श्रेणी के और क्या निम्न श्रेणी के सभी मेरे उपदेश के अनुसार कार्य करते हैं, और भविष्य में करेंगे। चञ्चल मति लोगों में धर्मानुराग बढ़ाने की व्यवस्था भी वे लोग करते हैं।

उसी प्रकार सीमाप्रान्त के मन्त्रिगण (अन्त महामात्र) भी धर्म-प्रचार करते हैं। इस उपाय के द्वारा मेरे उद्देश्य-धर्मानुसार पालन, धर्मानुसार शासन, धर्मानुसार उन्नति और धर्मानुसार रक्षा—अनायास ही सिद्ध होते हैं।

(२)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं :—धर्म उत्तम है पर यह पूछा जा सकता है कि धर्म है क्या पदार्थ? धर्म थोड़ी से थोड़ी बुराई और अधिक से अधिक

भलाई करने में है। धर्म दया, दान, सत्य और पवित्र जीवन में है। इसलिए मैंने मनुष्यों, चौपायों, पक्षियों और जल जन्तुओं के निमित्त सब प्रकार के दान दिये हैं। मैंने उनके हित के लिए बहुत से कार्य किये हैं। यहां तक कि उनके पीने के लिए जल का भी प्रबन्ध किया है। मैंने इस उद्देश्य से इस सूचना को खुदवाई है कि जिससे लोग उसके अनुसार चलें और सत्य पथ को ग्रहण करें। यह कार्य बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है।

(३)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—मनुष्य केवल अपने अच्छे कामों को देखता है और कहता है कि मैंने अमुक उत्तम कार्य किया। पर वह कभी अपने बुरे कामों को नहीं देखता, वह कभी यह नहीं कहता कि मैंने अमुक पाप किया। यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकार की जाँच दुःखप्रद है तथापि यह आवश्यक है कि अपने मन में यह प्रश्न किया जाय और यह निश्चय कर लिया जाय कि दुष्टता, निर्दयता, क्रोध, अभिमान तथा इसी प्रकार के दूसरे दुष्कृत्य पाप हैं। सावधानी के साथ अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना आवश्यक है। हृदय के अन्दर हमेशा इस प्रकार की भावनाएँ रखना चाहिए कि मैं कभी दूसरों से ईर्षा न करूँगा अथवा उनकी निन्दा न करूँगा। इस प्रकार का कार्य मेरे लिए इहलोक और परलोक दोनों स्थानों में लाभ-प्रद होगा।

(४)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के सोलहवें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है। मैंने अपने लाखों प्रजा-गणों के लिए रजुकों को नियुक्त किया है। रजुकों को दण्ड देने का अधिकर मैंने स्वयं अपने हाथ में रक्खा है जिससे कि वे पूरी दृढ़ता के साथ मेरे राज्य के लोगों की भलाई और उन्नति करें। प्रजा के सुखों और दुखों की वे बराबर जाँच करते रहते हैं और धर्मयुतों के साथ रह कर वे मेरे राज्य के लोगों को शिक्षा देते हैं। जिससे कि, लोग इहलोक में सुख और भविष्यत् में मुक्ति प्राप्त कर सकें। रजुक लोग मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। पुरुष लोग भी मेरी इच्छा और आज्ञाओं का पालन करते हैं और मेरे उपदेशों का प्रचार करते हैं जिसमें रजुक लोग सन्तोषजनक कार्य करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को किसी सचेत दाई के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त रहता है और सोचता है कि मेरा बच्चा सचेत दाई के पास है, उसी भाँति मैंने भी अपनी प्रजा के लिए रजुकों को नियुक्त किया है और जिसमें वे दृढ़ता और रक्षा के साथ बिना किसी चिन्ता के अपना कार्य करें, मैंने उनको अभियुक्त करने और दण्ड देने का अधिकार स्वयं अपने हाथ में रक्खा है। अभियुक्त बनाने और दण्ड देने में समान दृष्टि से काम लेना आवश्यक है। इसलिए आज की तिथि से यह नियम किया जाता है कि जिन कैदियों का न्याय हो जाय और जिन्हें फाँसी की सजा का दण्ड मिले, उन्हें तीन दिन की अवधि दी जाय और उनको सूचना दे दी जाय कि वे तीन दिन तक जीवित रहेंगे न इससे अधिक और न इससे कम। इस बीच में वे परलोक साधन के लिए जितना दान-पुण्य करना चाहे कर लें। मेरी इच्छा है कि कारागार में भी उन्हें भविष्यत् का निश्चय दिलाया जाय और उसके साथ मेरी यह भी दृढ़ इच्छा है कि मैं प्रजा के अन्तर्गत इन्द्रिय दमन और दानशीलता के भाव देखूँ।

(५)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष के उपरान्त मैंने निम्नलिखित जानवरों के मारे जाने का निषेध किया है—तोता, मैना, अरुण, चक्रवाक, हंस, नन्दिमुख, गैरन, चमगीदड़, अम्बक, पिल्लिक, दद्दि, अनर्स्थिक मछली, वेदवेयक, गङ्गा नदी के पुपुत, संकुज, कफतसयक, पमनसस, सिमल, संदक ओकपिण्ड, पलसत, श्वेत कपोत, ग्राम कपोत और सब चौपाये जो किसी काम नहीं आते और खाये भी नहीं जाते। बकरी, भेड़ और शूकरी जब गर्भवती हों, अथवा दूध देती हों. या उनका बच्चा छः मास का न हो गया हो, तब तक न मारी जाँय। लोगों के खाने के लिए मुर्गी को खिला पिला कर मोटी न बनाई जाय। जीते हुए जानवरों को न जलाया जाय। निरर्थक ढङ्ग से अथवा हिंसा के प्रयोजन से जङ्गल न जलाए जाँय। एक जानवर को दूसरा जीवित प्राणी न खिलाया जाय। चातुर्मास की प्रत्येक

पूर्णिमा को, पौष मास की पुष्य नक्षत्र युक्त पूर्णिमा को, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा को, और वर्ष के उपोसथ दिन में मछलियाँ मारी और बेची न जाँय। प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या अथवा पूर्णिमा को पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों से युक्त दिनों में, अथवा चातुर्मास के प्रत्येक उपोसथ दिन में कहीं भी साँड़, भैंसा, बकरा, सुअर अथवा किसी भी वध किये जाने वाले जानवर का वध न किया जाय। पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र में चातुर्मास की प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या को और चातुर्मास के शुक्ल पक्ष में, घोड़े और बैल को दागना न चाहिए। अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में पचीसवीं बार मैंने बन्दियों को कारागार से मुक्त किया है।

(६)

देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं:—अपने राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में प्रजा के लाभ और सुख के लिए मैंने सर्वप्रथम सूचनाएँ खुदवाईं। मैं यह समझ कर प्रसन्न हूँ कि लोग इससे लाभ उठावेंगे एवं धर्म में अनेक प्रकार से उन्नति करेंगे। इस प्रकार ये सूचनाएँ लोगों के लाभ और सुख का कारण होंगी। मैंने ऐसे उपाय किये हैं कि जिनसे मेरी दूरवर्त्ती और समीपवर्त्ती प्रजा के एवं मेरे सम्बन्धियों के सुख की वृद्धि होगी। इसी कारण मैं स्वयं अपने सब कर्मचारियों पर देखभाल रखता हूँ। सब पन्थ के लोग मुझसे अनेक प्रकार के दान पाते हैं, परन्तु मैं उनके धर्म परिवर्तन को बहुत अधिक आवश्यक समझता हूँ। यह रचना मैंने अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में खुदवाई है।

(७)

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी कहते हैं—प्राचीन काल में जो राजा लोग राज्य करते थे वे चाहते थे कि मनुष्य धर्म में उन्नति करें, परन्तु उनकी इच्छानुसार मनुष्यों ने धर्म में उन्नति नहीं की।

तब देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—मैंने सोचा कि प्राचीन समय के राजा लोग यह सोचा करते थे कि किस प्रकार प्रजा-गण आशानुरूप धर्म-वृद्धि कर सकते हैं, पर उनकी इच्छानुसार वे धर्मोन्नति लाभ न कर सके।

तब किन उपायों से प्रजा-गण को धर्मोन्नति में प्रवृत्त करवाया जाय? किन उपायों से उन्हें धर्म पालन में प्रवृत्त किया जाय? किन उपायों से उनके हृदय में धर्म वृद्धि कर सकता है?

इस विषय में देवप्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं—मैंने धर्म-सम्बन्धी उपदेशों को प्रकाशित करने और धार्मिक शिक्षा देने का निश्चय किया है। जिसमें मनुष्य इनको सुन कर सत्य पथ को ग्रहण करें और अपनी उन्नति करें।

मैंने धार्मिक शिक्षाओं को प्रकाशित किया है और धर्मके विषय में अनेक उपदेश दिये हैं जिसमें धर्म की बहुत शीघ्र उन्नति हो। मैंने प्रजा को धर्म शिक्षा देने के लिए बहुत से कर्मचारी नियुक्त किये हैं, वे सब कर्मचारी अपने-अपने कर्त्तव्य पालन में दत्तचित्त हैं। हजारों मनुष्यों पर मैंने रज्जुकों को नियुक्त किया है और आज्ञा दी है कि धर्मयुतों को सहायता दें।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—बड़ी-बड़ी सडकों पर मैंने न्यग्रोध के वृक्ष लगवाएँ हैं जिसमें कि वे मनुष्यों और पशुओं को छाया दें मैंने आम के बगीचे लगवाए हैं मैंने आधे-आधे कोस पर कुएँ खुदवाए हैं और अनेक स्थानों पर मनुष्यों और पशुओं के लिए धर्मशालाएँ बनवाई हैं। परन्तु मेरे लिए यथार्थ प्रसन्नता की बात यह है कि पहले के राजा लोगों ने अनेक अच्छे कार्यों से लोगों के सुख का प्रबन्ध किया है परन्तु लोगों को धर्म पथ पर चलाने के एक मात्र उद्देश्य से मैं सब कार्य करता हूँ।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट ने कहा—मैंने धर्म महामात्रों को नियत किया है जिसमें कि वे सब प्रकार के धर्म प्रचार के कार्य में यत्न करें। सब धर्म के लोगों में, सन्यासियों में और गृहस्थों में वे धर्म प्रचार करें। पुजारियों ब्राह्मणों, सन्यासियों और निर्ग्रन्थ लोगों का ध्यान भी मेरे हृदय में रहा है। और उन सब लोगों में मेरे कर्मचारी कार्य कर रहे हैं। महामात्र लोग अपने समाज में कार्य करते हैं और धर्म के प्रबन्धकर्ता लोग प्रायः सब धर्मों में कार्य करते हैं।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट ने कहा कि ये कर्मचारी तथा दूसरे कार्यकर्त्ता मेरे हथियार हैं। वे मेरे तथा

रानियों के दिये हुए दान का वितरण करते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि वे यहाँ तथा दूसरे प्रान्तों में मेरे लड़कों के दिये हुए दान को धर्म-कार्यों के साधन तथा धर्म-वृद्धि के कार्यों में बाँटते हैं। इस प्रकार संसार में धर्म-कार्य अधिक होते हैं और धर्म के साधन जैसे दया और दान, सत्य और पवित्रता, उपकार और भलाई की वृद्धि होती है।

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी कहते हैं :—मेरे किये हुए भलाई के अनेक कार्यों को उदाहरण स्वरूप समझकर लोगों ने सम्बन्धियों और गुरू की आज्ञा-पालन में, वृद्धों पर दयाभाव रखने में, ब्राह्मणों और श्रमणों का सत्कार करने में, गरीब, दुखियों, नौकरों तथा गुलामों का आदर करने में उन्नति की है।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं :—मनुष्यों में धर्म की उन्नति दो प्रकार से हो सकती है। (१) स्थिर नियमों के द्वारा (२) उन लोगों के हृदयों में धार्मिक नियमों को उत्तेजित करने के द्वारा। दोनों प्रकार के मार्गों में कठोर नियमों का रखना उचित नहीं है। केवल हृदय को धर्म की ओर प्रवाहित करने से ही लोगों में धार्मिक भावों का विकास होता है। यद्यपि दृढ़ नियमों के द्वारा पशुवधनिषेध आदि उत्तम कार्यों के प्रचारित करने से भी धर्मवृद्धि हो सकती है, पर धर्म की वास्तविक उन्नति तो जनता के हृदयों के धार्मिक भावनाओं का सञ्चार करने से ही हो सकती है। इसी उद्देश्य से मैंने यह लेख प्रकाशित किया है कि वह मेरे पुत्रों और पौत्रों के समय तक स्थिर रहे और तब तक स्थिर रहे जब तक कि गगन-मण्डल में सूर्य और चन्द्रमा उदय और अस्त होते रहें। क्योंकि मेरी इन शिक्षाओं पर चलने से मनुष्य दोनों लोकों में सुख प्राप्त करता है। मैंने यह सूचना अपने राज्याभिषेक के सत्ताइसवें वर्ष में खुदवाई है। देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं जहाँ कहीं यह सूचना स्तम्भों पर है, वहाँ पर चिरकाल तक स्थिर रहे।

अशफाउल्ला

भारतीय क्रान्तिकारी दल के काकोरी षड्यन्त्र केस के एक अभियुक्त जिन्हें १६ दिसम्बर १६२७ को फैजाबाद जेल में फांसी की सजा दी गई।

अशोक मेहता

कांग्रेस में समाजवादी विचारधारा के एक प्रसिद्ध प्रवर्त्तक और वर्त्तमान में प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष। सन् १६३४ में कांग्रेस संगठन के अन्तर्गत भी अशोक मेहता, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री अच्युत् पटवर्धन इत्यादि लोगों के प्रयत्नों से कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई थी। यह दल कांग्रेस के अन्तर्गत होते हुए भी गाँधीवादी नहीं था और अवसर पड़ने पर हिंसात्मक उपायों का अवलंबन करने का विरोधी भी नहीं था। सन् १६४२ की जन क्रान्ति में इस दल के लोगों ने बहुत कुछ काम किया।

अशोक मेहता एक उच्च श्रेणी के विचारक, राजनीतिज्ञ और अर्थ शास्त्री हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस की समाजवादी नीति का यथोचित विकास होते न देखकर इन्होंने आचार्य कृपालानी की अध्यक्षता में एक प्रजासमाजवादी दल का संगठन किया। जब आचार्य कृपलानी कुछ विशेष कारणों से इस दल से अलग हो गए तब इस दल की बागडोर अशोक मेहता ने सँभाली और अब भी वे उसका संचालन कर रहे हैं।

अस्त्राखानी राजवंश

मध्यएशिया के जिस प्रदेश को आजकल उजबेकिस्तान कहा जाता है उसमें और उसके आसपास के विशाल क्षेत्र पर तथा आधुनिक रूस के बहुत बड़े भाग पर सुनहरी कबीले का विशाल साम्राज्य तेरहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक बहुत वैभव पूर्ण स्थिति में रहा। इस सुनहले कबीले में "उजबेक" नामक एक अत्यन्त प्रतापी खान हुआ। उसी के नाम पर उसके साम्राज्य का एक बड़ा भाग उजबेकिस्तान कहलाता है।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक सुनहरी कबीले का यह विशाल साम्राज्य क्षीण होते-होते एकदम समाप्त हो गया और इसकी राजधानी सरायबरका भी ध्वस्त हो गई।

इन्हीं दिनों सुनहरी कबीले की एक शाखा की राजधानी वोल्गा नदी और करिपयन सागर के संगम के नजदीक "अस्त्राखान" नामक शहर में थी। इस राजवंश में

"बाकी मुहम्मद" नामक एक बहादुर प्रतापी सरदार हुआ। इसने सन् १५६६ से १६०५ तक शासन किया इसी सरदार ने "अस्त्राखानी" राजवंश की नींव डाली। बाकी मुहम्मद ने हिसार के पहाड़ी इलाके को जीत कर अपने राज्य को बलख तक बढ़ाकर भारतीय मुगल साम्राज्य की सीमा से अपनी सीमा को मिला दी। खुरासान और अन्तर्वेद पहले ही इसके राज्य में थे।

अस्त्राखानी राजवंश में सैय्यद इमामकुली बड़ा न्याय प्रिय, कलाप्रिय और साहित्य-प्रेमी शासक हुआ। इसने सन् १६०८ से १६४२ तक शासन किया। इमामकुली का दीर्घकालीन शासन अन्तर्वेद प्रान्त की उन्नति और समृद्धि का समय था। उसकी राजधानी बुखारा इस समय धन, जन और कला के सौन्दर्य्य से फल-फूल रही थी इमाम कुली का पड़ोसी ईरान का सुप्रसिद्ध सम्राट् उस समय शाह अब्बास था जो अत्यन्त प्रतापी शासक होने पर भी अस्त्राखानियों से हार चुका था।

इमामकुली ने अपने इकलौते पुत्र इस्कन्दर को ताशकन्द का गवर्नर बनाकर भेजा मगर ताशकन्द वालों ने बगावत करके उसको मार डाला। अपने इकलौते पुत्र की हत्या से इमाम कुली को महान् दुःख और क्रोध हुआ उसने अपने भाई बलख के गवर्नर नादिर को बुलाकर भारी सेना के साथ ताशकन्द पर हमला कर दिया और क्रोध में आग बबूला होकर प्रतिज्ञा की कि जब तक ताशकन्दियों का खून मेरे घोड़े की रिकाब को न छूलेगा तबतक कत्लेआम बन्द न करूँगा। अत्यन्त निर्दयतापूर्वक ताश कन्द वालों का कत्ले आम किया गया अन्त में एक हौज में मानव रक्त भरवाकर इमाम कुली अपने घोड़े समेत उस हौज में उतरा और जब वह रक्त उसके रिकाब तक पहुँचा तब कत्ले आम बन्द किया गया। इमाम कुली साहित्य और कविता का बड़ा प्रेमी था उसके दरबार में नरबली और "तुराबी" नामक दो प्रसिद्ध कवि थे।

इमाम कुली के बाद उसका भाई नादिर अस्त्राखानी राज्य का शासक हुआ। यह मुगल सम्राट् शाहजहाँ का समकालीन था। इसने सन् १६४२ से १६४७ तक शासन किया। इसके समय में शाहजहाँ की फौज ने इसके राज्य के बलख तथा वख्नु नदी और हिन्दू कोट के बीच के सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

नादिर मुहम्मद के पश्चात् अस्त्राखानी राजवंश में सैय्यद अब्दुल अजीज (१६४७-१६८०) सैय्यद सुभान कुली (१६८०-१७०२) उबैदुल्ला अबुल फैज (१७१७-१७४७) और सैय्यद उबैदुल्ला द्वितीय शासक हुए।

सैय्यद अबुल फैज ने दिल्ली के प्रसिद्ध लुटेरे नादिर-शाह के साथ अपनी लड़की की शादी की थी।

इसके बाद अफगान सरदारों ने शक्तिशाली होकर अस्त्राखानी राजवंश का खातमा कर दिया। अफगानी राजवंश में अहमदशाह दुर्रानी का नाम भारतवर्ष में बहुत मशहूर है जिसने पानीपत में मराठों की विशाल फौज को हराया था।

अब्दुल अजीज सैय्यद

अस्त्राखानी राजवंश का एक शासक जिसने सन् १६४७ से १६८० तक ख्वारेज्म अन्तर्वेद इत्यादि प्रान्तों पर शासन किया।

असीरियन संस्कृति (असुर-संस्कृति)

एशिया की एक प्राचीनतम संस्कृति जिसका विकास आर्य संस्कृति के साथ-साथ हुआ था और अनुमानतः जिसे भारत के पौराणिक साहित्य में "असुर संस्कृति" के नाम से सम्बोधित किया गया है।

मध्यएशिया के अन्तर्गत अत्यन्त प्राचीनकाल में अशरया असीरिया का साम्राज्य बहुत विशाल क्षेत्र में अर्थात् मिस्र से ईरान तक फैला हुआ था और एक विशेष और सुसंगठित संस्कृति का यहाँ पर उदय हुआ था।

ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन असीरियन संस्कृति का प्राचीन आर्यसंस्कृति के साथ काफी संघर्ष हुआ था। भारतीय पुराणों के अन्तर्गत जो देवासुर संग्राम का प्रसिद्ध विवेचन आता है उसके लिये कई विद्वानों का यह मत है कि यह युद्ध आर्यों और असीरियनों के मध्य में होना चाहिये।

असीरियन संस्कृति को भारतीय पौराणिक परम्परा में असुर संस्कृति के नाम से उद्घोषित किया गया है। इस असुर संस्कृति का मुख्य आचार्य शुक्राचार्य को माना गया

है। ऐसा मालूम होता है कि वैज्ञानिक शोध-खोज की परम्परा में असुर लोग आर्य लोगों से बहुत आगे बढ़े हुए थे और इन्हीं वैज्ञानिक अनुसन्धानों के बल पर उन्होंने कई बार आर्य लोगों को पराजित किया था। शुक्राचार्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे मृतसंजीवनी विद्या के जानकार थे। इसलिये संग्राम में जितने असुर मारे जाते थे उन्हें वे अपनी विद्या के प्रभाव से पुनर्जीवित कर लेते थे। इस प्रकार असुरों की शक्ति का ह्रास नहीं होने पाता था। मृत संजीवनी विद्या आर्यों के पास न होने के कारण आर्य लोग हमेशा घाटे में रहते थे।

तब आर्य लोगों ने मन्त्रणा करके बृहस्पति के पुत्र कच को, जो कि एक तेजस्वी और प्रतिभाशाली युवक था। मृत संजीवनी विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिये शुक्राचार्य की सेवा में भेजा। कच ने शुक्राचार्य की सेवा में पहुँच कर उनका शिष्य बनने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य ने उस युवक को तेजस्वी और होनहार समझ कर अपना शिष्य बना लिया।

यह बात असुरों के राजा वृष पर्वा को बहुत बुरी लगी। उसको अनुभव हुआ कि अगर शुक्राचार्य ने मृत संजीवनी विद्या आर्य युवक कच को प्रदान कर दी तो असुर लोगों की स्थिति बहुत कमजोर हो जायगी। उसने शुक्राचार्य से प्रार्थना की कि यह युवक आर्य लोगों का भेजा हुआ आपके पास मृत संजीवनी विद्या को ग्रहण करने आया है। आप इसे यह विद्या कदापि न दें नहीं तो असुर जाति का बड़ा अहित होगा।

शुक्राचार्य ने जवाब में कहा कि विद्या पर देश, काल और जाति का कोई बन्धन नहीं है। जो योग्य और पात्र होता है उसको विद्या दी जाती है। कच एक योग्य और पात्र है। इसीलिये मैंने उसको अपना शिष्य बनाया है।

इस पर वृषपर्वा ने दूसरे कौशल से काम लिया। उसने चाहा कि शुक्राचार्य की कन्या देवयानी, जो उस समय अत्यन्त सुन्दरी और तरुण थी, के प्रेम में यदि कच फँस जाय और वह असुर संस्कृति को ग्रहण कर ले तो यह विपत्ति दूर हो सकती है और उसने चतुराई पूर्वक ऐसी व्यवस्था की कि कच और देवयानी को अधिक से अधिक एकान्त में रहने का मौका मिले। इस प्रयोग से देवयानी कच पर आसक्त भी हो गई। मगर कच हमेशा उसे गुरु-पुत्री समझ कर उसके साथ बहन की तरह व्यवहार करता रहा।

इस घटना से यह अनुमान भी किया जा सकता है कि उस समय असुर संस्कृति में यौनसदाचार या सेक्स की मर्यादाएँ उतनी कठोर नहीं थी जितनी आर्य-संस्कृति में थीं।

जब वृषपर्वा को अपनी इस चाल में सफलता नहीं हुई तो उसने अपने गुप्तचरों के द्वारा कच को मरवा डाला और उसकी राख को मदिरा में मिला कर शुक्राचार्य को पिला दिया। जब देवयानी को यह पता चला तो कच के लिये वह रुदन करने लगी। जब शुक्राचार्य ने अपनी लड़की का यह हाल देखा और अपने दिव्य ज्ञान से यह देखा कि कच का शरीर वृषपर्वा के षड़यन्त्र से उन्हीं के पेट में पहुँच गया है तो वे बड़े चिन्तित हुए। तब उन्होंने अपने पेट में कच के शरीर को जीवित करके वहीं पर उसे संजीवनी विद्या दी और कहा कि अब तू मेरा पेट फाड़ कर बाहर निकल। पेट फाड़ने से मेरी मृत्यु हो जावेगी। तब तू अपनी संजीवनी विद्या से मुझे जीवित कर लेना। वैसा ही हुआ। कच ने शुक्राचार्य के पेट से निकल कर फिर उनको जीवित कर लिया। शुक्राचार्य क्रुद्ध होकर वृषपर्वा के राज्य को छोड कर काम्भोज में आ गये जो आर्य देश और असुर देश की सीमा पर बसा हुआ था। उस समय वहाँ पर ययाति नामक राजा राज्य करता था। उसी के साथ देवयानी का विवाह हुआ।

उपरोक्त पौराणिक कथाएँ कई प्रकार की अतिशयोक्तियों और अलंकारों से भरी होने के कारण इनमें से वास्तविक तथ्यों को एकत्रित करना कठिन है। फिर भी इतना तथ्य जरूर निकाला जा सकता है कि भारतीय पुराणों में जिसे असुर संस्कृति कहा गया है वह अशर संस्कृति का ही अपभ्रंश था! अशर लोग विज्ञान और चिकित्सा सम्बन्धी विद्या में आर्य लोगों से आगे बढ़े हुए थे। मगर भेदनीति में आर्य लोग उनसे आगे थे और उन लोगों पर आर्यों ने जो भी विजय प्राप्त की वह भेद नीति के बल पर ही की।

फिर इन दोनों संस्कृतियों का समन्वय हुआ जिसमें बहुत से तत्व आर्यों ने असुरों से प्राप्त किये और बहुत से असुरों आर्यों ने से प्राप्त किये।

राजनीति के क्षेत्र में भी असुर लोग बहुत आगे बढ़े हुए थे। उनके प्रधान पुरुष शुक्राचार्य राजनीति के महान पण्डित थे। हजारों बरस बीत जाने पर भी उनको लिखी हुई "शुक्र राजनीति" नामक पुस्तक आज भी प्रमाण रूप मानी जाती है और राजनीति के विद्यार्थियों के लिये भारतीय राजनीति का दर्शन कराने के लिये वह प्रकाश का काम देती है।

अश्क

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क!

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क उर्दू और हिन्दी के कथाकारों और नाटककारों में पहली पंक्ति के कलाकार हैं। कहानी, नाटक, उपन्यास, कविता, आलोचना, संस्मरण, हास्य, व्यंग अर्थात् साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने सफलता पूर्वक लिखा है और पूरी लगन, परिश्रम और योग्यता से अपनी कृतियों को बनाया और संवारा है। उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने "गिरती दीवार" नामक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन मार्ग का निर्देश किया है!

अश्क ने मध्यम वर्ग के और निचले दर्जे के लोगों की समस्याओं को समझने, परखने और उनका हमदर्दी के साथ चित्रण करने में काफी दक्षता प्राप्त की है। पेंचदार लेखन शैली में वे विश्वास नहीं करते बल्कि सीधी, सरल और बहती हुई भाषा ही उनकी कलम से प्रवाहित होती है।

असंगाचार्य

बौद्ध धर्म की महायान शाखा का धुरन्धर विद्वान असंगाचार्य जिसका समय ३९५ ई० से ४५६ ई० के बीच किसी समय है! आचार्य असंग का जन्म पुरुषपुर (पेशावर) में एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। इसका गोत्र कोशिक था। बौद्ध साहित्य में इसका बहुत ऊँचा स्थान है। आचार्य असंग और इसके भाई वसुबन्धु पहिले बौद्ध धर्म की सर्वास्तिवाद शाखा के अनुयायी थे किन्तु उनका विशेष झुकाव सौत्रान्तिक मतवाद की ओर था। पीछे से आचार्य असंग ने महायान धर्म को स्वीकार कर लिया। आचार्य असंग आचार्य मैत्रेय नाथ का शिष्य था मैत्रेय नाथ योगाचार मत के प्रणेता था।

आचार्य असंग महायान सम्प्रदाय में विज्ञानवाद का प्रथम आचार्य हैं। उसके गुरु मैत्रेय नाथ इस सिद्धान्त के प्रतिष्ठाता थे। "महायान सूत्रालंकार" इन गुरु-शिष्यों की सम्मिलित कृति है। मूल भाग मैत्रेय नाथ का और टीका भाग आर्य असंग का कहा जाता है। इसलिये इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञानवाद का सबसे प्रधान ग्रन्थ महायान सूत्रालंकार है। असंग का दर्शन समन्वयात्मक है। इसमें सौत्रान्तिकों के क्षणिक वाद और सर्वास्तिवादियों के पुद्गल नैरात्म्य और नागार्जुन की शून्यता का प्रतिपादन है किन्तु असंग इस समन्वय को पारमार्थिक विज्ञानवाद की परिधि में सम्पादित करना चाहता है। वस्तुतः असंग का दर्शन विज्ञान वादी अद्वयवाद है जिसमें द्रव्य का अभाव है। कहना न होगा कि यह उसका एक नवीन सिद्धान्त है!

अर्ल आफ मार (Eral of Mar)

स्कॉटलैण्ड के उत्तरी भाग का शासक अर्ल आफ मार। जिसने इंगलैण्ड की रानी एन की मृत्यु के पश्चात् इङ्गलैण्ड की गद्दी के उत्तराधिकारी हनोवर के जार्ज के विरुद्ध जेम्स एडवर्ड के पक्ष में जेकोबाइट लोगों की बगावत का नेतृत्व किया।

सन् १७१४ में जब इंग्लैण्ड की रानी का देहान्त हो गया तब पार्लमेण्ट के व्हिग दल ने हनोवर के जार्ज को इंग्लैण्ड की राजगद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

मगर स्काटलैण्ड के लोग इंग्लैण्ड की राजगद्दी के लिए स्टुअर्ट घराने के अधिकार को मानते थे। इसलिये इन लोगों ने स्टुअर्ट घराने के जेम्स एडवर्ड को गद्दी पर बिठाने के लिये षडयन्त्र करना प्रारम्भ किया। फ्रान्स के राजा चौदहवें लुई ने उनकी सहायता की। इंग्लैण्ड के

टोरी दल का मन्त्री बोलिंग ब्रुक भी फ्रान्स में जाकर इस षड्यन्त्र में शामिल हो गया।

अन्त में स्कॉटलैण्ड के उत्तरीभाग में अर्ल आफ मार के नेतृत्व में और इंग्लैण्ड के उत्तरी भाग में लॉर्ड डरवेन्ट वाटर और फार्स्टर के नेतृत्व में जेकोबाइट लोगों ने बगावत कर दी। जेकोबाइट लोगों को यह आशा थी कि फ्रान्स से इस मामले में सहायता मिलेगी मगर उन्हीं दिनों चौदहवें लुई का देहान्त हो जाने से फ्रान्स से सहायता न मिल सकी। जेकोबाइट लोगों की बगावत दबा दी गई। अर्ल आफ मार जेम्स एडवर्ड के साथ वापस फ्रान्स चला गया और जिन लोगों ने बगावत में भाग लिया था उन्हें फाँसी दे दी गई।

अर्शक (Arsakes)

मध्य एशिया में पार्थव साम्राज्य का संस्थापक।

खुरासान और कैस्पियन सागर का दक्षिण पूर्ववर्ती प्रदेश पार्थव कहलाता है। यह एक सूखा और बन्जर प्रदेश है। ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी में इस पर सेल्यूकस के उत्तराधिकारी ग्रीक लोगों का शासन था। मगर ई० सन से २४८ वर्ष पूर्व में इस प्रदेश के लोगों ने अपने नेता अर्शक के नेतृत्व में ग्रीक शासन के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया और पार्थव प्रदेश को उस साम्राज्य से अलग कर एक नये पार्थव साम्राज्य की नींव डाली।

अस्किलस

ग्रीक साहित्य में ट्रेजिडी नाटकों का प्रथम प्रवर्त्तक। इस नाटककार ने अपनी सूझ बूझ और लेखन सामर्थ्य से तत्कालीन ग्रीक साहित्य को ट्रेजिडी की अद्भुत देन दी। उसने प्राचीन पौराणिक कथाओं और वीरगाथाओं को नया रूप देकर नाटकों की रचना की। अस्किलस ने अपने नाटकों में कोरस के प्राधान्य को कम कर नाटकीय प्रसंगों का विशेष विकास किया। उस समय के नाटकों को ट्रिलोजी कहते थे जिनमें तीन-तीन प्लाटों का एक साथ उपयोग किया जाता था। बाद में "ट्रिलोजी" एक ही प्लॉट का उपयोग करने लगे। अस्किलस ने अपने पात्रों को वीर काव्यों की सरलता दी। उनके कार्य्य अधिकतर एक ही भावावेग से संचालित होते हैं। इसका समय ईस्वी पूर्व ५२५ से ४५५।

असहयोग-क्रान्ति

समग्र मानवीय इतिहास में, राजनैतिक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए अहिंसा के मूलभूत आदर्श पर सञ्चालित की जाने वाली सर्वप्रथम क्रान्ति, जिसका प्रारंभ सन् १६१६ में हुआ और जिसका सफल अन्त सन् १६४७ में हो गया। इसके पूर्व दक्षिण अफ्रीका में एक छोटी सत्याग्रह की लड़ाई महात्मा गांधी लड़ चुके थे।

मानवीय इतिहास में शोषित और प्रताड़ित मानव-समाज के द्वारा अत्याचारी और निरंकुश शासकों के विरुद्ध अनेक क्रान्तियाँ हुई हैं, मगर ये सब क्रान्तियाँ तलवार और हिंसा के बल पर हुई हैं।

एक निरंकुश और अपरिमित सत्ताधारी साम्राज्य के खिलाफ बिना शस्त्र और बिना हिंसा के क्रान्ति को उत्पन्न करने का पहला उदाहरण भारतवर्ष ने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में असहयोग-क्रान्ति के द्वारा मानवीय इतिहास में पेश किया है। अहिंसा का उपयोग और उसकी उपयोगिता भारत के इतिहास में कोई नई चीज नहीं है। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के समान शान्ति के महान साधकों ने आज से २५ सौ वर्ष पहले समग्र मानव-जाति को अहिंसा और सत्य का व्यापक सन्देश दिया था। मगर उनकी अहिंसा का यह सन्देश मनुष्य की साधना और उसकी आत्मशुद्धि के लिये दिया गया था। किसी भी राजनैतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अहिंसा के प्रयोग करने का न तो उन्होंने विचार किया था और न उनका कोई इस प्रकार का उद्देश्य था।

उनकी अहिंसा व्यक्तिगत रूप से प्राणिमात्र का विकास और आत्मशुद्धि के मकसद को प्राप्त करने के लिए उद्घोषित की गई थी। लेकिन महात्मा गान्धी ने इस अहिंसा को सामूहिक रूप से संगठित करके संसार की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताकत के खिलाफ क्रान्ति का बिगुल बजा कर सारे संसार को चकित कर दिया।

स्वयं भारतवर्ष के बड़े-बड़े नेता भी इस नवीन प्रयोग को देखकर आश्चर्यचकित रहे। जो बात दुनियाँ में आज तक कहीं नहीं हुई थी, उसकी सफलता के सम्बन्ध में सन्देह का होना स्वाभाविक ही था। वे आँखें मल-मल कर बार-बार देखते थे कि क्या हो रहा है? मगर जिस प्रकार एक जादूगर अपने अनुयायियों पर मोहिनी डाल कर उन्हें बरबस अपनी ओर खींचे लिये जाता है, उसी प्रकार महात्मा गान्धी की दृढ़ संकल्प शक्ति के पीछे-पीछे यहाँ के समस्त नेतागण और सारी जनता मंत्रमुग्ध की तरह मौत का कफन अपने सर पर लपेट कर चली जा रही थी।

संसार के महान् राजनीतिज्ञ चकित थे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद चकित था, भारत के नेता चकित थे, मानव-जाति का इतिहास चकित था, मगर इन सबकी कोई चिन्ता न करके साबरमती का वह पतला दुबला सन्त अपने पूर्ण आत्मविश्वास और अपनी महान् संकल्प शक्ति के साथ आगे बढ़ रहा था। अहिंसा के ऊपर उसका अटल विश्वास था। अहिंसा को वह राजनीतिक साधन के रूप में नहीं, मगर मानवीय धर्म की तरह उपयोग करना चाहता था।

मगर हिन्दुस्तान की जनता और अधिकांश नेताओं ने इस अहिंसा को मानवीय धर्म के रूप में नहीं, प्रत्युत एक राजनैतिक साधन के रूप में अपनाया जिसके परिणाम-स्वरूप समय-समय पर जो विस्फोट हुए उनसे इस सन्त को बड़ा कष्ट पहुँचा और ऐसे अवसर पर बिना किसी हीले-हवाले के अपनी पराजय स्वीकार कर आन्दोलन को वापस खींच लिया अथवा लंबे-लंबे अनशन करके सामूहिक रूप से की गई गलतियों का प्रायश्चित किया।

इस अहिंसात्मक क्रान्ति के बीच, इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने अनशन के सिद्धान्तों का नवीनीकरण किया! अपनी आत्मशुद्धि के लिए अनशन करने की प्रथा भारत वर्ष में नवीन नहीं है मगर महात्मा गान्धी ने जिस रूप से इसका प्रयोग किया, वह प्रयोग बिल्कुल नवीन था। और इस प्रयोग के द्वारा उन्होंने कई बार अनशन करके बड़े-बड़े मसलों पर विजय पाई पर साथ ही उन्होंने बार-बार इस बात की चेतावनी दी कि हर व्यक्ति की हर मसले के लिये अनशन का प्रयोग करना बड़ी ही खतरनाक चीज है। अनशन का प्रयोग केवल आत्मशुद्धि के लिए ही होना चाहिये।

क्रान्ति का प्रारम्भ

प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ। प्रथम महायुद्ध में भारतीय सेनाओं ने अपना जो बहादुरी पूर्ण भाग अदा किया था, उसकी अंग्रेज सेना-नायकों ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इस युद्ध के समय में महात्मा गान्धी ने खुले रूप में हिन्दुस्तान की जनता को ब्रिटिश साम्राज्य की मदद करने के लिये प्रेरित किया था। ब्रिटिश साम्राज्य ने भी विजय के उपरान्त भारतीय जनता को स्वशासन देने के सम्बन्ध में बड़े-बड़े वादे किये थे।

ऐसी हालत में यह स्वाभाविक था कि भारतीय जनता और नेता विजय के उपरांत ब्रिटिश सरकार के द्वारा किसी मनोवांछित तोहफे की प्रतीक्षा करें, मगर सन् १९१९ में वह तोहफा ब्रिटिश साम्राज्य ने 'रौलेट एक्ट' के रूप में भेजा। यह बिल भारतीय स्वाधीनता के ऊपर एक बहुत बड़ा कुठाराघात था।

इस बिल में जो धाराएँ थीं, उनके अनुसार पुलिस और सरकार को राजकीय अपराधियों के विरुद्ध अपरिमित अधिकार दिये गये थे जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को, सन्देह होने पर वह गिरफ्तार कर सकती थी। बिना मुकद्दमा चलाये सीधे जेल में डाल सकती थी या उस पर गुप्त अदालत में मुकद्दमा चला सकती थी।

इस बिल के विरोध में भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक दल और प्रत्येक समुदाय अपनी आवाजों को बुलन्द करने लगा। महात्मा गान्धी उस समय बीमार थे, लेकिन उस हालत में भी इस बिल के काले स्वरूप को देखकर वे विचलित हो गये।

अपने नियम के अनुसार उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को एक बड़ी शिष्टतापूर्ण अपील और चेतावनी भेजी, पर जब उन्होंने देखा कि सारे भारत के द्वारा एक स्वर से इस बिल का विरोध होने पर भी ब्रिटिश सरकार उसे कानून का रूप देने को तुली हुई है तो उन्होंने एक सत्याग्रह-सभा का संगठन किया और उसमें कुछ चुने

हुए लोगों को उसमें भरती किया जो कानून को भंग करके जेल जाने के लिये तैयार थे। इसके बाद उन्होंने आदेश दिया कि जिस दिन यह 'रौलेट बिल' कानून बन जाय उससे आगे के पहले रविवार को सारे भारत में शोक-दिवस मनाया जाय, हड़तालें की जायँ और सर्वत्र सार्वजनिक सभाएँ की जायँ।

६ अप्रैल सन् १९१९ के दिन सारे देश में हर नगर और गाँव में सत्याग्रह दिवस मनाया गया।

इस दिन की सफलता के सम्बन्ध में पं० जवाहरलाल लिखते हैं :—

"अपने ढंग का यह पहला ही अखिल भारतीय प्रदर्शन था जो अद्भुत रूप से प्रभावशाली रहा और जिसमें हर तरह के लोगों और जातियों ने भाग लिया। सारा भारत वर्ष और संसार इसकी सफलता पर आश्चर्य-चकित हो गया। हम शहरों के कुछ गिने-चुने लोगों के पास पहुच पाते थे, पर हवा में एक नया उत्साह भरा हुआ था और किसी तरह यह सन्देश हमारे देश के दूर-से-दूर तक के गावों में जा पहुँचा। पहली बार देहात के लोगों और शहरी मजदूरों ने सार्वजनिक पैमाने पर इस प्रदर्शन में भाग लिया।"

पंजाब का हत्याकाण्ड

छः अप्रैल के पश्चात् सारे देश में घटनाओं का क्रम तेजी से बढ़ने लगा। १० अप्रैल को अमृतसर में डा० किचलू और डा० सत्यपाल की गिरफ्तारी पर लोगों ने भारी प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन पर पुलिस ने गोली चला दी जिसमें कई व्यक्ति हताहत हुए, इससे उत्तेजित हो भीड़ ने बैंकों में बैठे हुए पाँच छः निर्दोष अंग्रेजों को मारकर बैंको में आग लगा दी। इस पर पंजाब में फौजी शासन लागू कर दिया गया। जिसके परिणाम स्वरूप पंजाब का शेष भारत से एक तरह सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

१३ अप्रैल को अमृतसर के जलियान वाला बाग में एक सभा हो रही थी। हजारों आदमी उसमें जमा थे। उसमें से निकलने का एक ही रास्ता था। अंग्रेज सेनाधिकारी जनरल डायर ने बिना किसी प्रकार की सूचना दिये उसे घेर लिया और घिरी हुई भीड़ पर लगातार गोली वर्षा करने का आदेश दिया। इस निहत्थी भीड़ पर सेना ने तब तक गोलियाँ चलाई जब तक उनकी गोलियाँ समाप्त नहीं हो गई। हजारों व्यक्ति, स्त्री-पुरुष और बच्चे इस गोली वर्षा में मारे गये, घायल हुए। इसके सिवाय पंजाब में अनेक स्थानों पर और भी अनेक शर्मनाक घटनाएँ अंग्रेजी शासन के द्वारा हुई।

इसी समय से अमृतसर, जलियान वाला और पंजाब यहाँ के राष्ट्रीय इतिहास के प्रतीक बन गये और ६ अप्रैल से १३ अप्रैल तक का सप्ताह राष्ट्रीय सप्ताह बन गया। इसके अगले साल कांग्रेस ने अपनी लड़ाई प्रारम्भ कर दी, गांधी जी का अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया गया। इस संघर्ष की मूलभूत बुनियाद अहिंसा पर रक्खी गई तथा विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, स्कूल, कालेज और विधान सभाओं का बहिष्कार इत्यादि प्रोग्राम इसमें रक्खे गये।

इस सारे कार्य्यक्रम के पीछे गाँधी जी का विशिष्ट व्यक्तित्व ही आधार शिला का काम दे रहा था, उनका आत्म-विश्वास अडिग और दुर्दमनीय था। इस महान् आत्म-विश्वास ने अगर देश की कल्पना शक्ति को जगा दिया और उसके अन्तःकरण में आशा का प्रकाश भर दिया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इसी समय दिसम्बर १९२१ में प्रिन्स ऑफ वेल्स का भारत में आगमन हुआ और कांग्रेस ने उनका बहिष्कार किया। इस पर देश में हजारों गिरफ्तारियाँ हुई, गांधीजी को छोड़कर देश के सभी बड़े-बड़े नेता पकड़ कर जेलों में ठूस दिये गये। अहमदाबाद कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष सी० आर० दास भी जेल भेज दिये गये और अत्यन्त उत्तेजनात्मक स्थिति के बीच (अहमदाबाद की कांग्रेस) हुई।

अहमदाबाद कांग्रेस

कांग्रेस के अब तक के सारे इतिहास में अहमदाबाद कांग्रेस पहली कांग्रेस थी जिसका दृश्य अद्भुत, निराला और जनता के जोश से सराबोर था। जनता के सभी नेता जेलों में बन्द थे, पंजाब के हत्याकाण्ड की भीषण दुर्घटना हो चुकी थी, सरकार का दमन-चक्र तेजी से चल रहा था

मगर ये सब घटनाएँ जनता के जोश और उत्साह को घटाने के बजाय तेजी से बढ़ा रही थीं। अहमदाबाद कांग्रेस में जन-समाज के अन्तर्गत भावनापूर्ण उत्साह और एकनिष्ठ लगन का जो दृश्य देखने को मिला वह अभूतपूर्व था। सी० आर० दास के बदले हकीम अजमल खां अध्यक्ष बनाए गये।

चौरी-चौरा कांड

अहमदाबाद कांग्रेस के पश्चात् तुरन्त ही गोरखपुर जिले के चौरी चौरा नामक स्थान पर एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई। किसानों की एक भीड़ और पुलिस के बीच में संघर्ष हो गया जिसमें वहाँ के किसानों ने वहाँ की पुलिस चौकी को पुलिसमैनों सहित जला दिया।

इस घटना से महात्मा गांधी के हृदय को गहरी चोट पहुँची, इसी प्रकार की कुछ और भी घटनाएँ हो चुकी थीं इससे उन्हें विश्वास हो गया कि आन्दोलन अव्यवस्थित और हिंसा पूर्ण होता जा रहा है। इसलिए उन्होंने तुरन्त आन्दोलन को वापस खींच लेने का सुझाव दिया और उनके सुझाव पर कांग्रेस ने आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

इस स्थगन आदेश से सभी कांग्रेस नेताओं और जनता में एक भयङ्कर निराशा और असन्तोष व्याप्त हो गया मगर महात्मा गांधी अपनी धुन के पक्के थे, वे सभी जगह समझौता पसन्द करने वाले व्यक्ति थे मगर हिंसा और अहिंसा इन दोनों के बीच किसी भी प्रकार का समझौता उन्हें पसन्द नहीं था, ऐसे अवसर पर अंगद का पैर रोप देने की महान् शक्ति उनमें थी। ऐसे समय में नफे और नुकसान या राजनीति और कूटनीति की वे कभी परवा नहीं करते थे। उनका दृष्टिकोण आईने की तरह साफ था, किसी तरह की लुकी-छुपी राजनीति उनके पास नहीं थी।

इस प्रकार चौरी-चौरा काण्ड के साथ ही असहयोग आन्दोलन का पहला दौर समाप्त हो गया और देश में करीब आठ वर्ष तक छोटे-बड़े आन्दोलन, वैधानिक लड़ाइयाँ और साम्प्रदायिक समस्याएँ चलती रहीं।

नमक सत्याग्रह

इसके पश्चात् असहयोग क्रान्ति का दूसरा जबर्दस्त दौर सन् १९३० में नमक सत्याग्रह के रूप में चला। समुद्र तट पर नमक कानून को तोड़ने के लिए महात्मा गांधी की सुप्रसिद्ध दाण्डी यात्रा हुई। गांधीजी की यह पैदल यात्रा ऐतिहासिक थी। इस यात्रा ने भी सारे देश में फिर से एक नया जीवन फूँक दिया। यह गांधीजी के ही व्यक्तित्व का प्रभाव था कि नमक कानून के समान नगण्य कानून को इतना महत्व दे दिया गया कि सारा देश एक ही साँस में बावला हो गया। चारो ओर नमक कानून तोड़े जाने लगे। हजारों गिरफ्तारियाँ होने लगीं, जितने आदमी पकड़े जाते थे उससे अधिक फिर मैदान में आकर खड़े हो जाते थे। दुनिया के सारे देश-विदेश और ब्रिटिश सरकार हैरानी के साथ विश्व के इस महान् जादूगर का तमाशा देख रही थी।

अन्त में सन् १९३१ में हैरान होकर लार्ड अरविन ने गांधी जी के साथ एक विराम समझौता किया और उसी वर्ष स्थायी समझौते के लिए एक गोलमेज कांफ्रेंस का लन्दन में आयोजन किया। गांधी जी लन्दन में इस सभा में सम्मिलित हुए मगर वहाँ से असफल होकर वापस आ गये।

उसके बाद असहयोग क्रान्ति का तीसरा और सबसे अन्तिम दौर सन १९४२ में आया जबकि बम्बई की बैठक में महात्मा गांधी ने Quit India भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा की।

सन् ४२ के आन्दोलन का इतिहास एक पूरा इतिहास है जिसे इस जगह अंकित करना असम्भव है। मगर इस आन्दोलन में जनता की महान् कुरबानी और सत्ता के द्वारा भयङ्कर दमन के जो नजारे आये वे इतिहास में अमर रहेंगे। नेता सब जेल में थे। नेतृत्वविहीन जनता से भूलें भी हुईं, हिंसा काण्ड भी हुए और भयङ्कर दमन भी हुए मगर एक बात जरूर थी कि अपनी आजादी के लिए हर प्रकार की कुरबानी देने को जनता तैयार थी।

इस आन्दोलन की समाप्ति के बाद युद्ध में विजय प्राप्त करने पर इंग्लैण्ड की मजबूर सरकार ने देश को आजादी देने की घोषणा की। यह असहयोग क्रान्ति की शानदार विजय थी। उसके बाद जो भी देशविभाजन की या दूसरी दुर्घटनाएँ हुईं वे हमारी आन्तरिक कमजोरी या

साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का परिणाम थीं, असहयोग या अहिंसात्मक क्रान्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

कई लोग यह कहते हैं कि देश को आजादी का मिलना असहयोग क्रान्ति का फल नहीं है। उस समय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ही ऐसी हो गयी थी कि अंग्रेज सरकार को मजबूरन सब उपनिवेशों को स्वतन्त्र करना पड़ा। अन्यथा बर्मा, लंका, इण्डोनेसिया, दक्षिण अफ्रीका के कई देश जिन्होंने कोई अहिंसात्मक क्रान्ति नहीं की थी वे किस प्रकार स्वाधीन हो गये।

इस प्रकार के तर्कों का जवाब देने में कोई सार नहीं है। जिन लोगों ने भारत के सन् १६२० से १६४५ तक के इतिहास का मनन किया है वे भली प्रकार जानते हैं कि इस देश के जन-जागरण और स्वाधीनता प्राप्ति के इतिहास में अहिंसात्मक क्रान्ति का कितना महत्व है।

अहमद मिधात

उन्नीसवीं सदी का तुर्की साहित्य का एक प्रभावशाली कवि। अहमद मिधात तुर्की के क्रान्तिकारी कवियों में से एक था। मगर इसने सुलतान से समझौता कर लिया था जिससे इसकी कृतियाँ जप्त नहीं की गईं और उसकी बीसियों कृतियाँ आम जनता में चलती रहीं और उदीयमान लेखक उनसे प्रेरणा पाते रहे।

अहमद शाह बहमनी

हिन्दुस्तान के दक्षिण प्रदेश में बहमनी राज्य का एक प्रसिद्ध शासक। निजाम हैदराबाद के आसपास के क्षेत्र में सन् १३४७ ई० में बहमनी राज्य की स्थापना हसन नाम के वीर योद्धा के द्वारा हुई थी। उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। इसी राजवंश में सन् १४२२ में फिरोज शाह का पुत्र अहमद शाह गद्दी पर बैठा। अहमद शाह ने विजय नगर के साथ की लड़ाई में करीब बीस हजार पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्या कर डाली। सन् १४२४ में उसने वारंगल के राजा को पराजित किया और उसके प्रदेश का बहुत बड़ा भाग अपने राज्य में मिला लिया। उसने मालवा के मुस्लिम शासक को भी हराया और आस-पास के राज्यों पर विजय करके भयंकर रक्तपात किया और बहुत सा लूट का माल प्राप्त किया। उसने वली की उपाधि धारण की तथा विजय-यात्रा से वापस आकर बीदर नामक शहर की स्थापना की जो आगे चल कर बहमनी राज्य की राजधानी हो गया।

अहमद शाह

सन् १८५७ की सैनिक क्रान्ति में दिन रात अलख जगाने वाले मौलवी अहमद शाह।

मौलवी अहमद शाह उत्तर प्रदेश के उन ताल्लुकेदारों में से एक थे जिनका सब कुछ अंग्रेजों ने छीन लिया था। १८५७ की सैनिक क्रान्ति के इतिहास में उनका नाम सदैव अमर रहेगा। अवध का राज्य जब से अंग्रेजों ने हड़प लिया तब से अहमदशाह ने देश और धर्म की सेवा में अपना सब कुछ लगा दिया था। वे मौलवी बने और क्रान्ति-धर्म का प्रचार करने को हिन्दुस्तान भर में घूमने को निकले। जहाँ जहाँ यह राष्ट्रीय सन्त पहुँचा जनता में जबरदस्त जागरण जाग उठा। उन्होंने आगरे में भी एक गुप्त क्रान्तिकारी संस्था की स्थापना की और लखनऊ में भी ब्रिटिश राज्य को उलट देने का खुला प्रचार किया।

अवध की जनता इस व्यक्ति को क्रान्ति का पैगम्बर समझती थी और इसका बड़ा मान करती थी। यह देख कर अंग्रेजों ने इस जनप्रिय नेता को पकड़ कर राजद्रोह के अपराध में फाँसी की सजा दी।

जिस समय इस फकीर को फैजाबाद में फाँसी की टिकटी पर ले जाया जा रहा था उसी समय फैजाबाद में क्रान्ति का उभार भड़क उठा और विद्रोही सैनिकों के एक जत्थे ने आकर मौलवी अहमद शाह को छुड़ा लिया और उनको पकड़नेवाले अंग्रेजों को गिरफ्तार कर लिया। मौलवी अहमद शाह तब फैजाबाद के क्रान्तिदल के नेता बने और इन्होंने सब अंग्रेजों को फैजाबाद से सही सलामत निकल जाने का आदेश दिया। मगर जब ये अंग्रेज नदी पार हो रहे थे तब सत्रहवां पल्टन के सिपाहियों ने इनकी किश्तियों पर हमला कर दिया और बहुत से अंग्रेजों को मार डाला। कमिश्नर गोल्डने, लेफ्टिनेंट थामस रिची, एडवर्डस इत्यादि

अंग्रेज इसमें मारे गये। इसके बाद जब लखनऊ का पतन हो गया और रुहेलखण्ड तथा अवध में क्रान्तिकारियों का एक भी संगठन केन्द्र नहीं बचा तब मौलवी अहमद शाह ने अंग्रेजों के खिलाफ छापामार युद्ध की योजना बनाई और लखनऊ से उनतीस मील दूर बारी में अपना पड़ाव डाला। मौलवी के मुकाबले में अंग्रेजों का प्रसिद्ध सेनापति होप ग्रेण्ट अपने तीन हजार सैनिक और भारी तोपखाने को लेकर आया। होपग्रेण्ट से मुकाबला करने के लिये मौलवी ने जो योजना बनाई थी वह उसके सैनिकों की अनुशासनहीनता से भङ्ग हो गई।

इसके बाद शाहजहाँ पुर में मौलवी अहमद शाह ने एक बड़ी साहसी योजना अंग्रेजों के सेनापति जनरल कैम्पबेल को धोखा देने के लिये बनाई और कैम्पबेल शाहजहाँ पुर को छोड़कर बरेली की तरफ आगे निकल गया। मगर भाग्य ने वहाँ भी उसका साथ नहीं दिया और देश द्रोही खुफियों ने उसकी सारी योजना कर्नल हेल को बता दी। उसके बाद मौलवी अहमदशाह फिर वापस अवध में आये और वे अपना संगठन करना चाहते थे मगर पोवेन के राजा जगन्नाथ सिंह के विश्वासघात से मौलवी अहमदशाह मारे गये। राजा जगन्नाथ सिंह मौलवी के सिर को काटकर उसे एक कपड़े में लपेट कर वहाँ से तेरह मील दूर शाहजहाँ पुर की ब्रिटिश छावनी में ले गया और वहाँ के ब्रिटिश सेनापति को यह तोहफा भेंट किया। ब्रिटिश सेनापति ने राजा जगन्नाथ सिंह को इस करतूत पर पचास हजार रुपये का पारितोषिक दिया।

१८५७ की सैनिक क्रान्ति का इतिहास लेखक इण्डियन म्यूटिनी खण्ड ४ पृष्ठ ३८१ पर मौलवी अहमदशाह के लिये लिखता है --

"मौलवी अहमदशाह एक असाधारण व्यक्ति था। विद्रोह के काल में उसके सैनिक नेतृत्व की योग्यता का परिचय कई अवसरों में मिला। इस व्यक्ति ने सर कैम्प बेल को रण के मैदान में दो बार शिकस्त दी। अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये योजना पूर्वक लड़ने वाला मौलवी अहमदशाह निःसन्देह सच्चा देशभक्त था। उसने अपनी तलवारकशी किसी की अकारण हत्या से नहीं रंगी। वह वीरता सभ्यता और साहस के साथ लड़ाई के मैदान में उन विदेशियों से लड़ा जिन्होंने उसके देश की स्वाधीनता का हरण कर लिया था। संसार के सभी राष्ट्रों के सच्चे वीर उसकी स्मृति का सम्मान करें ऐसी उसकी योग्यता थी।"

अहमदाबाद

भारत वर्ष का एक प्रसिद्ध औद्योगिक नगर, गुजरात प्रान्त की राजधानी।

अहमदाबाद का पुराना नाम कर्णावती था। सबसे पहले इस नगर को चालुक्य राजवंश के राजा कर्ण ने सन् १०६४ से १०६४ को बीच बनाया और अपने ही नाम पर उसने इसका नाम कर्णावती रक्खा। उसके बाद जब गुजरात पर मुसलमानों के आक्रमण हुए तब सुलतान अहमदशाह ने इसका विस्तार कर इसका नाम अहमदाबाद रखा। इस शहर में बड़ी बड़ी इमारतें बनीं और ३०० वर्ष तक अर्थात् पन्द्रहवीं से अठारहवीं सदी तक यह नगर दुनिया के सबसे सुन्दर शहरों में एक गिना जाता था। इस शहर की सुप्रसिद्ध जामामसजिद की स्थापत्यकला राणकपुर के सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर की स्थापत्य कला से बहुत मिलती हुई है।

आधुनिक युग में भी अहमदाबाद शहर ने बड़ा महत्व ग्रहण कर रक्खा है। अभी तक यह गुजरात की राजधानी है और समस्त भारत के अन्तर्गत तीसरे नम्बर का औद्योगिक केन्द्र है। कपड़ा उद्योग का तो यह भारत में सबसे बड़ा या दूसरे नम्बर का केन्द्र है। यहाँ पर कपड़ा बनाने की सवा सौ से अधिक टैक्सटाइल्स मिलें हैं। अहमदाबाद से थोड़ी ही दूर पर साबरमती नदी बहती है जिसके तट पर महात्मा गाँधी का पवित्र और प्रेरक आश्रम कई वर्षों तक रहा। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की सारी प्रेरणाएं यहीं से देश में प्रसारित होती थीं।

अहमदाबाद कांग्रेस

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन के समय में अहमदाबाद में होने वाला अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का महान अधिवेशन।

सन् १९२१ में जिस समय महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन अपनी चरम सीमा और विकास पर था और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का दमन-चक्र पूरी तेजी के साथ चल रहा था और हजारों सत्याग्रही जेलों में बन्द किये जा रहे थे, प्रिन्स ऑफ वेल्स के आगमन का बहिष्कार किया जा चुका था, उसी संक्रमण काल के बीच अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था।

इस अधिवेशन के मनोनीत सभापति बंगाल के प्रसिद्ध नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास थे। मगर ब्रिटिश शासन ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था इसलिये उनके जेल चले जाने पर देहली के प्रसिद्ध हकीम अजमल खाँ ने इस अधिवेशन के अध्यक्ष का पद ग्रहण किया था।

इस अधिवेशन में जनता का जैसा उत्साह देखा गया वह कांग्रेस के इतिहास में अद्वितीय और अपूर्व था। जनता के जोश का मानों समुद्र उमड़ रहा था। लोग स्वराज्य की भावनाओं से ओत-प्रोत हो रहे थे। इस अधिवेशन में सारे देश को व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह के लिये आह्वान किया गया था। देश के हरेक स्त्री और पुरुष से यह अपील की गई थी कि वे नेशनल वालेण्टियर कैम्प में भर्ती हों और सत्याग्रह संग्राम को अपनी पूरी शक्ति से चलावें। इस अधिवेशन ने महात्मा गाँधी को सत्याग्रह-संग्राम का संचालक नियुक्त किया और उनके हाथ में इसकी सारी बागडोर सौंप दी।

इस अधिवेशन में मौलाना हसरत मोहानी ने एक प्रस्ताव इस आशय का रखा कि भारतीय कांग्रेस का अन्तिम लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त भारतीय गणतन्त्र रखा जाय। मगर महात्मा गाँधी ने यह कह कर इस प्रस्ताव का विरोध किया कि इस प्रस्ताव में जिम्मेदारी का बिल्कुल अभाव है। उनके विरोध के कारण यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

वास्तविक बात यह थी कि बम्बई में प्रिन्स ऑफ वेल्स के आगमन के समय जो उपद्रव और हिंसा काण्ड हो गये थे उनसे महात्मा गाँधी को बड़ा सदमा पहुँचा था। इस लिये लोगों की बढ़ती हुई उमंगों के बावजूद भी उन्होंने अहमदाबाद काँग्रेस में ज्यादा सख्त कदम उठाना मुनासिब नहीं समझा।

अलहसन-अलबसरी

इस्लाम मजहब के सिद्धान्तों का निष्णात विद्वान। जिसकी मृत्यु सन ७२८ में हुई।

अलहसन अलबसरी के प्रवचन इस्लामी सिद्धान्तों के ही प्रतीक नहीं, अरबी गद्य के भी उत्तम नमूने हैं। इसी कारण इसलाम के अनेक फिरके उसे अपने धर्म नेता मानने लग गये थे। इस्लाम के सम्बन्ध में उसकी व्याख्याएँ बहुत आदर से देखी जाती थीं। फिर भी उस युग में लेखन शक्ति का विकास न होने से सारा कार्य मौखिक ही होता था।

अहमद सामानी प्रथम

ईरान के सुप्रसिद्ध सामानी साम्राज्य का संस्थापक।

अब्बासी खलीफा के मेर्व के गवर्नर असद ने सामानी वीर बहराम चौबीन के वंशज "सामान" को सहायता देकर उसे फिर से सामान का शासक बना दिया। अपने इसलामी मददगार के प्रति कृतज्ञता दिखलाते हुए उसने जरथुस्त्री धर्म को छोड़ कर इस्लाम धर्म को ग्रहण कर लिया और अपने मददगार के नाम पर अपने पुत्र का नाम भी "असद" रक्खा। असद के चारों पुत्रों ने खलीफा हारूं-अल-रशीद की बहुत सेवा की, इससे खुश होकर खलीफा ने चारों भाइयों को एक-एक नगर का शासक बना दिया। यही चारों भाई स्वतंत्र सामानी राजवंश के स्थापक हैं।

इन चारों भाइयों में से एक अहमद सामानी था इसको फर्गाना का शासक बनाया गया था। इसका समय सन् ८१७ ई० है।

अहमद सामानी द्वितीय

(९०७-९१४)

अहमद सामानी द्वितीय सामानी साम्राज्य के प्रसिद्ध शासक इस्माइल सामानी का पुत्र था। इसको अपने पिता द्वारा स्थापित एक विस्तृत और सुव्यवस्थित साम्राज्य प्राप्त हुआ था। मगर अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण यह बहुत जल्दी जनता में अप्रिय हो गया। धार्मिक कट्टरता के मद में आकर इसने अपने राज्य की राजभाषा जो अभी तक फारसी चली आ रही थी बदल कर अरबी कर दिया।

इसी समय ईरान के पश्चिमी भाग पर दैलमी वंश का अधिकार हो गया और यह वंश धीरे-धीरे ईरान के भीतर अपना विस्तार करने लगा। इस प्रकार अपने सात वर्ष के शासन काल में इसने अपने साम्राज्य को बढ़ाने के बजाय घटाया। अन्त में सन् ९१४ यह अपने ही गुलामों के द्वारा मारा गया।

अहमद शाह दुर्रानी

अफगानिस्तान का शाह, नादिरशाह का उत्तराधिकारी जिसने भारतवर्ष पर दो बार हमला किया। दूसरा हमला बहुत ही भयंकर था जो सन् १७६१ में हुआ। इस हमले में पानीपत के मैदान में अहमद शाह दुर्रानी और मराठों की फौज में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें मराठों की भारी फौज को दुर्रानी की फौजों ने बुरी तरह से हरा दिया। इसी युद्ध में मराठों के भाग्य का अन्तिम फैसला हो गया और अखिल भारतीय विशाल साम्राज्य स्थापित करने का उनका स्वप्न चूर-चूर हो गया। इस जीत के कारण अहमद शाह दुर्रानी सारे उत्तरी भारत का मालिक बन बैठा। उसे रोकने वाली अब कोई दूसरी शक्ति हिन्दुस्तान में न थी मगर अपनी फौजों में विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाने से वह यहाँ स्थायी रूप से शासन न कर सका और उसे वापस अफगानिस्तान लौट जाना पड़ा।

अहमद शाह

गुजरात का सुप्रसिद्ध सुल्तान जिसने सन् १४१४ से १४४१ तक गुजरात पर राज्य किया।

सन् १२९७ में जब अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर विजय प्राप्त कर ली तब से यह प्रान्त मुस्लिम शासकों के अधीन हो गया। सन् १४०१ में वहाँ के शासक जफर खाँ ने दिल्ली की अधीनता से मुक्त होकर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी मगर सन् १४१४ में उसके पोते अहमद शाह ने उसे जहर देकर मार डाला और स्वयं गुजरात की गद्दी पर बैठ गया। गद्दी पर बैठते ही उसने प्राचीन नगर आसावल के निकट साबरमती नदी के बायें किनारे पर अहमदाबाद नामक प्रसिद्ध नगर बसाया। इस शहर को उसने बड़ी बड़ी सुन्दर इमारतों से सुसज्जित किया और बहुत से व्यापारियों तथा कारीगरों को वहाँ बसने के लिये बुलाया। उसने हिन्दुओं के बहुत से मन्दिरों को ध्वस्त किया और हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने के लिये मजबूर किया। सन् १४१४ में गिरनार पर आक्रमण कर के उसने वहाँ के राजा को हरा कर अपने अधीन कर लिया। उसने मालवे पर भी बहुत बड़ा आक्रमण किया और माण्डू पर घेरा डाल दिया।

मगर सेना में बीमारी चल जाने के कारण उसको सफलता न मिली और वापस अहमदाबाद लौटना पड़ा। सन् १४४१ में उसकी मृत्यु हो गई।

अहमदनगर

दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध नगर जो अकबर के समय में मशहूर मुसलमान मलका चाँद बीबी के शासन में था। चाँदबीबी एक बड़ी बहादुर, साहसी और योग्य शासिका थी। अकबर की फौजों ने जब अहमदनगर पर हमला किया उस समय चाँद बीबी ने अकबर की फौजों से बड़ी बहादुरी से लोहा लिया। मुगल सेना पर उसकी बहादुरी का इतना असर पड़ा कि उसने चाँद बीबी की अनुकूल शर्तों पर उससे सन्धि कर ली। मगर कुछ समय पश्चात् उसी के असन्तुष्ट सैनिकों ने उसकी हत्या कर डाली।

अठारह सौ सत्तावन

ब्रिटिश सल्तनत के विरुद्ध भारतवर्ष में होने वाली एक विशाल क्रान्ति, जो सन् १८५७ में घटित हुई।

सन् १८५७ की क्रान्ति भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इस क्रान्ति ने उस समय में अंग्रेजों के बढ़ते हुए साम्राज्यवाद के प्रति भारतीय जनता के हृदय में तीव्र घृणा, विद्रोही सैनिकों की अनुशासनहीनता और राजा रजवाड़ों के बीच बढ़ती हुई फूट तथा दिल्ली के सिंहासन पर स्थित बादशाह बहादुर शाह की विचित्र निष्क्रियता के जैसे ज्वलन्त उदाहरण इतिहास में अंकित किये उसके साथ ही साथ झांसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई की अपूर्व वीरता और देशभक्ति, तात्याटोपे के समान राजनीतिज्ञ की राजनीति, कूटनीति और युद्ध संचालन कला के उदाहरण, मौलवी अहमद शाह के समान सर पर कफन लपेटे हुए फकीर की बहादुरी, अजीमुल्ला खां की राजनीति और कुंवर सिंह की अपूर्व बहादुरी के उदाहरण भी इतिहास में कायम कर दिये।

क्रान्ति के मूल कारण

सन् १८५७ की क्रान्ति के मूल कारण अंग्रेजी सरकार की साम्राज्य विस्तार नीति के कारण शनैः लोगों के दिलों में पैदा हो रहे थे मगर लार्ड डलहौसी के गवर्नर जनरल बनकर आने के पश्चात् उसने जैसी नीति का यहाँ पर अवलम्बन किया उसने इस गुप्त रूप से जलने वाली आग को भड़काने में बहुत सहायता की। उसने सतारा के राजा अप्पा साहब की मृत्यु के पश्चात् सतारा राज्य को ब्रिटिश शासन में मिला लिया। नागपुर के भोंसले की मृत्यु के पश्चात् उसके राज्य को भी शासन में मिलाकर उनके हाथी, घोड़ों को सरे बाजार नीलाम करवा दिया और बाद में अवध के नवाब वाजिद अली शाह को पदच्युत करके उस अवध के राज्य को साम्राज्य में मिला लिया जिसने लगातार ७० वर्षों से ब्रिटिश शासन के साथ ईमानदारी से सहयोग किया था।

अवध के राज्य को खतम करने का असर इसलिए और अधिक हुआ कि बंगाल की सेना में उस समय इसी प्रान्त के लोग अधिक थे। इन लोगों ने बड़ी वफादारी से कम्पनी की सेवा की थी और देश के विभिन्न क्षेत्रों में कम्पनी का प्रभुत्व बढ़ाने में उनका बड़ा हाथ था। इनलोगों ने अचानक यह अनुभव किया कि, उनकी सेवा और बलिदान के द्वारा कम्पनी ने जो प्रभुत्व स्थापित किया है उसी ने उनके अपने राज को समाप्त कर दिया है। निस्सन्देह १८५६ में जब अवध को हस्तगत किया गया तभी से आम सैनिकों में और खास तौर पर बंगाल सेना के सैनिकों में विद्रोह की भावनाएँ पैदा हुई।

इधर नवम्बर सन् १८५३ में झांसी के शासक गंगाधर राव की मृत्यु हो जाने पर ब्रिटिश सरकार ने उसकी रानी इतिहास प्रसिद्ध लक्ष्मीबाई के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया, मृत्यु के एक दिन पहले गंगाधर राव के द्वारा लिये हुए दत्तक पुत्र दामोदर राव को अस्वीकृत कर कम्पनी ने झांसी को भी अपने राज्य में मिला लिया।

इसी प्रकार की घटना कानपुर के पास बिठूर घराने के सम्बन्ध में भी हुई। बाजीराव पेशवा द्वितीय अंग्रेजों का कट्टर विरोधी था, सन् १८१७ में उसने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया था, मगर इसमें उसे सफलता नहीं मिली और अंग्रेजों ने उसे उसके राज्य से हटाकर कानपुर के समीप बिठूर में बसा दिया। उसे एक जागीर दे दी गई और आठ लाख रुपये वार्षिक की पेंशन कर दी गई। सन् १८५१ में बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसके दत्तक पुत्र धोंडू पंत नाना को अंग्रेज सरकार ने उसका उत्तराधिकारी तो मान लिया मगर बाजीराव को दी जानेवाली आठ लाख रुपये वार्षिक की पेंशन को व्यक्तिगत पेंशन कहकर बन्द कर दी। तथा बिठूर की जागीर में भी नाना साहब के जीवन पर्यन्त ही उनका हित रक्खा गया। इसके सिवा राज्य की सरकारी मुहर भी उनसे छीन ली गई और उनका दर्जा भी घटा दिया गया।

नाना ने तब अपना केस अपने प्रसिद्ध वकील अजीमुल्ला खां के द्वारा इंग्लैण्ड भेजा। अजीमुल्ला खां एक अद्भुत और गम्भीर राजनीतिज्ञ था। लेकिन उसे भी इंग्लैण्ड में कोई सफलता नहीं मिली और ऐसा कहा जाता है कि इसी से क्षुब्ध होकर उसने वहीं पर रंगोजी बापू के

साथ मिलकर विद्रोह की योजना बनाई और वहां से वह कुस्तुंतनिया होते हुए भारत लौट आया।

इस प्रकार कई राजनैतिक और धार्मिक कारणों से इस क्रान्ति की पृष्ठभूमि का निर्माण होता गया।

क्रान्ति का प्रारम्भ

सन् १८५६ में भारत में ब्रिटिश सरकार ने सेना के लिए नई इन्फील्ड रायफलों के उपयोग करने का आदेश दिया। इन रायफलों के लिए जो कारतूस आते थे उनपर एक तरह का ग्रीज लगा रहता था। भारत की सेनाओं के लिए इन कारतूसों का निर्माण कलकत्ता, दमदम और मेरठ में भी होने लगा।

एक दिन दमदम में एक सैनिक ने एक ब्राह्मण सैनिक को बतलाया कि उक्त ग्रीज में एक अत्यन्त आपत्ति जनक पशुकी चर्बी मिली हुई रहती है। यह खबर आग की तरह चारों ओर फैल गई और सिपाहियों में आतङ्क छा गया। अंग्रेज अफसरों को भी यह बात तुरन्त मालूम हो गई।

इस पर सिपाहियों ने सन् १८५७ में वैधानिक ढङ्ग से अधिकारियों के सम्मुख अपनी चिंता प्रकट की। सरकार ने भी इस सम्बन्ध में बहुत जल्दी निर्णय कर लिया। बैरक पुर के कमाण्डर जनरल हियरसेने ने सुझाव दिया कि सैनिकों को उनकी मरजी के अनुसार दूसरी तरह का ग्रीज इन कारतूसों पर लगाने की इजाजत दे दी जाय। मगर इस प्रकार के आदेशों का प्रसार करने में देरी लगती गई और असन्तोष बढ़ता गया। इसी समय एक अफवाह यह भी फैली कि सैनिकों के खाने के आटे में हड्डी का चूरा और पीने के पानी में भी अपवित्र चीजें मिलाई जाती हैं।

इन घटनाओं से लोग अत्यधिक संदिग्ध हो गये बैरक पुर और उसके आस पास के इलाकों में आग लगा देनेकी कई घटनाएँ हुईं। उसके बाद २६ फरवरी को बहराम पुर में उन्नीसवीं रेजिमेंट ने विद्रोह कर दिया।

मङ्गल पाण्डे

इसी समय क्रान्ति के इस इतिहास में "मङ्गल पाण्डे" नामक एक महत्व पूर्ण व्यक्तित्व का उदय होता है। यह एक ब्राह्मण नौजवान था और ३४ वीं पलटन में एक सिपाही था। यह इस सारे घटनाचक्र को बारीकी से अध्ययन कर रहा था और सेना के लोगों में भी उसने अपने विचारों का प्रचार प्रारम्भ किया। मंगल पाण्डे ने इसी बीच कुछ अंग्रेज अफसरों पर भी हमला किया। इस अपराध में कोर्ट मार्शल कर उसे फांसी पर लटका दिया गया और उन्नसवीं रेजिमेंट के हथियार छीन कर उसके सिपाहियों को निकाल दिया गया।

ये निकाले हुए सिपाही उत्तरभारत के दूर-दूर बिखरे गाँवों में गाय के मांस और सुअर के मांस लगे कारतूसों की कहानी सुनाने तथा जनता में राजद्रोह की आवाज फैलाने लगे। उसके बाद ४ मई को मंगल पाण्डे वाली चौंतसवीं पलटन भी भंग कर दी गई और उसके सैनिक भी उत्तर प्रदेश में आकर धुंआधार प्रचार करने लगे।

इधर मेरठ की छावनी में भी सेना में इन कारतूसों के खिलाफ उत्तेजना फैली और उनमें से कई लोगों ने कारतूस लेने से इन्कार कर दिया। इस अपराध में उन पर मुकदमा चला और उनमें से प्रत्येक को दस-दस साल की सख्त सजा दी गई।

होम्स ने लिखा है कि "नौ मई को सवेरे आकाश में आँधी और तूफान के सूचक काले बादल मण्डरा रहे थे सूर्य का कहीं पता नहीं था। ऐसे समय में अपराधियों का अपमानित स्थिति में प्रदर्शन करने के लिए पूरी ब्रिगेड को बुलाया गया। कैदियों की वर्दियाँ उतरवा कर लुहारों से उनको हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़वा दिया गया। मगर कोई उपद्रव नहीं हुआ और भय तथा आतङ्क के वातावरण के बीच सारा काम सम्पन्न हुआ।

१० मई

दस मई को प्रातःकाल से ही मेरठ में एक ओर तो यह खबरें फैलना शुरू हुई कि सेना के सिपाही सशस्त्र विद्रोह प्रारम्भ करने वाले हैं और दूसरी ओर यह अफवाह थी कि सरकार सभी भारतीय सैनिकों से हथियार रखवा लेगी और उनके लिए २००० बेड़ियाँ तैयार हो चुकी हैं।

शाम को पाँच बजे अचानक तूफान उठा। एक बबर्ची ने यह खबर उड़ाई कि हिन्दुस्तानी फौजों से शस्त्र छीनने के लिए तोपचियों और बन्दूकधारी सैनिकों के दस्ते आ रहे हैं।

इस खबर को सुनते ही सारी फौज में विद्रोह के भाव पैदा हो गये। तीसरी रिसालदार सेना के सैनिकों ने जेलखाने में पहुँच कर अपने साथियों को मुक्त कर दिया। २० वीं पलटन परेड के मैदान में आकर शस्त्रागार में घुस गई। शहर की दुकानें बन्द हो गईं। गुण्डों के उत्पात शुरू हो गये और चार घण्टे के बाद आस पास के देहातों से गूजर लोग भी इकट्ठे होकर शहर में आ घुसे।

इसके पश्चात् शहर में अग्निकाण्ड, लूटपाट, हत्या का सिलसिला जारी हो गया। एक नये रंगरूट ने कर्नल फिनिस को गोली चला कर मार डाला। सारी रात लूटपाट आगजनी की घटनाएँ हुई। मगर इस रात की सबसे अधिक बर्बरतापूर्ण और करुणाजनक घटना श्रीमती चैम्बर्स नामक अंग्रेज महिला की हत्या के द्वारा सम्पन्न हुई। श्रीमती चैम्बर्स के पति ड्यूटी पर बाहर गये हुए थे। वह गर्भवती थी और बंगले पर अकेली थी। इस युवती महिला को एक कसाई ने आकर बकरे की तरह काट दिया। बाद में इस कसाई को प्राण दण्ड मिला। श्रीमती चैम्बर्स की पाशविक हत्या से जितना क्षोभ यूरोपियनों में फैला उतना किसी दूसरी घटना से नहीं फैला।

एक ही रात में मेरठ का कितना विध्वंस हो गया था इसका वर्णन करते हुए श्रीमती ग्रेटहेड लिखती हैं कि—"दिन की रोशनी में साफ २ दिखलाई दे रहा था कि विनाश की लीला कितनी पूर्ण थी। सब तरफ विध्वस के चिह्न दिखलाई पड़ रहे थे। हमारा घर जो कभी शान से चमकता था अब राख का ढेर हो गया था।" रेवरेण्ड टी० टी० स्मिथ ने लिखा कि मि० रोटन और मैंने दूसरे दिन अपने तीस साथियों को दफनाया और भी कितने हा मृतक बचे हुए हैं जिनके शव अभी नहीं लाये जा सके थे।

दिल्ली

११ मई १८५७ को सबेरे पता चला कि मेरठ के विद्रोही सिपाही यमुना पर नावों का पुल बना कर दिल्ली आ रहे हैं।

इसके पहले मेरठ के विद्रोह का दिल्ली वालों को बिलकुल पता नहीं था। सब काम बदस्तूर चल रहे थे। दिल्ली की छावनी शहर से कुछ मील दूर राजपुर गाँव में थी। ब्रिगेडियर ग्रेन्ज को कुछ देर बाद ही विद्रोह का पता चला। ५४ वीं पलटन कर्नल रिप्ले के साथ कश्मीरी गेट तक गई लेकिन कमाण्डर के कत्ल हो जाने और अफसरों के गोली से उड़ा दिये जाने पर भी उसने लड़ने से इन्कार कर दिया। इससे दिल्ली शहर के भाग्य का निर्णय हो गया। ७४ वीं पलटन के मेजर एबट स्थिति पर काबू नहीं पा सके। मुख्य रक्षक दल तीसरे पहर तक डटा रहा मगर शाम को अड़तीसवीं पलटन के द्वारा जब उसके अफसर गोली से मार दिये गये तब शेष अंग्रेज अफसरों को अपनी स्त्रियों को लेकर भागना पड़ा।

शहर में यूरोपीय या भारतीय एक भी ईसाई जीता न बचा। एक-एक ईसाई को ढूँढ कर मौत के घाट उतार दिया गया। बैंक लूट लिया गया और उसके मैनेजेर को परिवार सहित कत्ल कर दिया गया। एक स्थानीय समाचार पत्र के कार्यालय पर धावा मार कर उसके सब कम्पोजीटरों को कत्ल कर दिया गया। किशन गढ़ राजा के महल में बहुत से अंग्रेज स्त्री पुरुष छिपा कर रक्खे गये थे। विद्रोहियों को पता लगाने पर उस महल पर धावा मार कर एक एक स्त्री पुरुष को कत्ल कर दिया गया।

विनाश की इस भयङ्कर बेला में भी अंग्रेजी शस्त्रागार के रक्षकों ने बड़ी वीरता से काम लिया। नौ अंग्रेज उसकी रक्षा पर नियुक्त थे। लेफ्टिनेंट विलोबी शस्त्रागार की रक्षा के लिए जो भी प्रयत्न कर सकते थे उन्होंने किया, मगर जब उन्होंने देख लिया कि अब शस्त्रागार की रक्षा नहीं हो सकती तो उसे उड़ा देने का फैसला किया। बाहर भीड़ उग्र रूप धारण कर रही थी। शस्त्रागार पर हमला करने के लिए शहर से सीढ़ियाँ लगाई जाने लगीं। इतने ही में एक प्रलयकारी धमाके के साथ शस्त्रागार उड़ा दिया गया। तीन अंग्रेज वहीं पर मर गये। शेष ने किसी प्रकार भाग कर जान बचाई।

अगले कुछ सप्ताहों के लिए सिपाहियों को स्वतंत्र छोड़ दिया गया। इस समय मुगल बादशाह बहादुर शाह की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो रही थी। उसे सिपाहियों के लिए खाने पीने की व्यवस्था और शहर में शान्ति

स्थापित करनी थी। बादशाह ने यत्न भी बहुत किया, सिपाहियों को समझाया, अपनी गद्दी छोड़ देने की धमकी दी, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। एक कमजोर आदमी सफल बादशाह नहीं हो सकता और मुगलों का यह बुझता हुआ चिराग क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करने के लिए पैदा नहीं हुआ था।

जैसे-जैसे मई का महीना बीतता जाता था बादशाह के सामने नई-नई मुसीबतें आती जाती थीं। सिपाहियों को किसी प्रकार सन्देह हो गया कि बेगम जीनत महल अंग्रेजों से मिली हुई हैं। इससे सिपाहियों ने फिर लूट मार मचाना शुरू कर दी। सिपाहियों को खाना देने के लिए खजाने में पैसा नहीं था। इससे सिपाहियों ने हैदराबाद के एक रईस को लूट लिया और भी जिन जिन धनियों पर अंग्रेजों के मित्र होने का सन्देह था उन्हें लूटना शुरू किया।

विद्रोह की आग अचानक फूट निकलने के कारण अंग्रेजी सरकार ने पहले से कोई तैयारी नहीं रक्खी थी। इससे विद्रोहियों को १२ मई से ८ जून तक का लम्बा समय मिल गया था इस समय में वे चाहते तो अपना पूरा संगठन कर सकते थे। मगर उनमें न तो कोई योग्य नेता था न उनके सामने कोई संगठित योजना थी। बहादुरशाह और उसके लड़के एकदम अयोग्य और हीन वीर्य थे। उस समय अगर शाही खानदान में एक भी तेजस्वी व्यक्ति होता तो आज इस क्रान्ति का इतिहास दूसरी ही तरह से लिखा जाता।

जून में विद्रोही सेना में फूट पड़ गई और व्यापारी वर्ग भी सेना के विरुद्ध हो गया।

उस समय अंग्रेजी साम्राज्य के प्रधान सेनापति जनरल एन्सन थे। उन्हें जब विद्रोह की खबर मिली तो उस समय उन्होंने पूरे धीरज के साथ काम लिया। वे जानते थे कि इस समय सारे भारत का साम्राज्य दाव पर लगा हुआ है, थोड़ी सी असावधानी से भी वह हाथ से जा सकता है। इस समय पटियाला, करनाल और झींद के राजाओं ने तथा सिक्ख रेजिमेंट और गोरखा रेजिमेंट ने अंग्रेजों का साथ दिया।

२७ मई को जनरल एन्सन की हैजे से मृत्यु हो गई और उनकी जगह जनरल हेनरी बर्नार्ड ने मैदानी सेना की कमान सम्हाली। इनकी निश्चित योजना के अनुसार मेरठ के सैनिकों का दस्ता बागपत में इनसे आ मिला। छोटी बड़ी लड़ाइयों में विद्रोहियों को पराजित करते हुए ८ जून को दिल्ली से पाँच मील दूर बादली की सराय में विद्रोहियों से इस सेना की मुठभेड़ हुई। विद्रोही हार गये और उनकी २६ तोपें अंगरेजी सेना के हाथ लगी।

रोटन ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जिस शत्रु से हमारा पाला पड़ा था, उसमें अगर जरा भी सूझ-बूझ होती और वह हमारे सैनिक कैम्प के आगे और पीछे पूरी शक्ति के साथ हमला करता तो अंगरेज सैनिक चाहे वे कितने ही बहादुर क्यों न थे थकान और मौसिम से समुचित रक्षा न होने के कारण जरूर हार जाते।

इसके बाद अंग्रेजी फौजों और विद्रोही फौजों में रोज ही तोपों की भयङ्कर लड़ाई जमकर होने लगी। विद्रोही लोग अपेक्षाकृत अच्छे निशाने बाज और जमकर लड़ने वाले थे।

१६ जून को अंग्रेजी सेना के कैम्प के पिछले भाग को भारी खतरा हो गया। एक बार तो यह मालूम होने लगा कि मजार पर लगा हुआ तोपखाना अब गया तब गया। ब्रिगेडियर होपग्राएट घायल हो गये। दिन छिपने तक हार-जीत का निर्णय नहीं होने पाया, मगर विद्रोही सिपाहियों के दिमाग में इतनी बात भी नहीं आई कि अगर वे वहाँ जमे रहेंगे तो पंजाब से आने वाली शत्रु सेना इस सेना से नहीं मिल सकेगी मगर वहाँ जमे रहने के बजाय वे रातों रात वहाँ से खिसक गये, और अंग्रेजी सेना की एक बड़ी हार होते-होते ईश्वरीय ढङ्ग से ही बच गई।

२२ तारीख को विद्रोहियों ने फिर एक भारी हमला किया और जान की बाजी लगाकर लड़े। मेजर रीड ने लिखा है कि विद्रोही जितनी बहादुरी से लड़े शायद ही कोई उतनी बहादुरी से लड़ सकता था। एक बार तो मुझे लगने लगा कि अब हम अवश्य हार जाएँगे मगर भाग्य हमारे साथ था और उसने हमें जिताया।

२४ तारीख तक अंग्रेजी सेना को पंजाब से कुमुक पहुँच गई और नेविल चेम्बरलेन भी वहाँ आ पहुँचे।

उधर से विद्रोही सेना को भी बरेली से कुमुक पहुँच गई और बख्त खाँ नामक एक कुशल अनुभवी और वृद्ध सेनापति भी आया और उसने अपनी सेवाएँ बादशाह बहादुरशाह को अर्पित कर दीं।

५ जुलाई को अंग्रेजों के सेनपति बर्नार्ड की भी हैजे से मृत्यु हो गई, मगर दिल्ली के दरबार में यह खबर पहुँची कि अंग्रेजी सेना के प्रधान सेनापति ने घबराकर आत्महत्या कर ली है। बर्नार्ड की जगह रीड को दिल्ली की सेना कमाण्डर बनाया गया। जनरल रीड अत्यन्त कमजोर, अशक्त और आलसी व्यक्ति था।

१४ जुलाई को एक और भारी लड़ाई हुई जिसमें ब्रिगेडियर चेम्बरलेन को गोली लगने से वे घायल हो गये और जनरल रीड ने इस्तीफा दे दिया।

इधर बादशाह बहादुरशाह की सबसे प्रिय बेगम जीनत महल अपने लड़के जंवाबख्त को दिल्ली के तख्त पर बिठाने के लिए अंग्रेजों से साँठ-गाँठ कर रही थी, उधर एक दिन विद्रोहियों के तोपखाने में आग लग कर विस्फोट हो गया जिसका सन्देह विद्रोहियों ने हकीम अहसानउल्ला पर किया।

७ अगस्त को जॉन निकल्सन अंग्रेजी शिविर में आ गये और उन्होंने फिर से दिल्ली पर अचानक आक्रमण कर के एक दम कब्जा करने की योजना बनाई।

११ अगस्त को सबेरे अंगरेजी तोपखाने ने दिल्ली की दीवारों पर गोला बारी की। १३ तारीख को दीवार में दो दरारें पड़ गई। इन दरारों में से होकर शहर के भीतर फौजें घुस सकती थीं। अब जॉन निकल्सन को अपनी सेनाओं को चार भागों में विभक्त कर चारो दिशाओं से दिल्ली पर हमला करना था।

चारों ओर से हमला हुआ मगर विद्रोहियों के भयङ्कर मुकाबिले में मेजर जेकाब और कर्नल निकल्सन धराशायी हो गये और भी अंग्रेजी सेना के सैकड़ों सैनिक मारे गये और इन दो सेनाओं को काबुली दरवाजे तक वापस आना पड़ा। मगर तीसरे दस्ते ने लेफ्टिनैण्ट सलकेंट और होम के नेतृत्व में पूर्ण विजय प्राप्त कर अपना लक्ष्य पूरा कर लिया।

१६ अगस्त को शस्त्रागार पर अधिकार कर लिया गया। २० तारीख को महल और उससे मिले हुए सलीम गढ़ दुर्ग में अंग्रेजों ने प्रवेश किया।

इस प्रकार दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार हुआ और उसी दिन लाल किले में भारी उत्सव मनाया गया।

जनरल हडसन

२१ सितम्बर को बादशाह बहादुर शाह ने हडसन के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। अगले दिन हडसन घोड़े पर सवार होकर हुमायुँ के मकबरे में पहुँचा और वहाँ पर छिपे हुए शाहजादा मिर्जा मुगल, मिर्जा खिजरसुलतान और अबूबकर को एक बैलगाड़ी में बिठाकर पकड़ लाया जब ये लोग दिल्ली गेट के पास पहुँचे तो इन शाहजादों के कपड़े उतरवाकर वहीं पर उसने उन्हें गोलियों से भून डाला। इसके बाद बादशाही परिवार के २१ शाहजादों को और फांसी दी गई। बादशाह रंगून निर्वासित कर दिया गया, वहीं उसकी जीवन लीला समाप्त हुई।

इसके बाद ही दिल्ली में सेना ने आमतौर से लूटमार और हत्या काण्ड शुरू कर दिया और कितने ही लोगों को फांसी पर लटका दिया।

कानपुर

मई महीने में कानपुर में शान्ति रही। तरह-तरह की अफवाहें फैल कर सारे वातावरण में सन्देह उत्पन्न करती थीं। फिर भी ४ जून से पहले वहाँ खुले विद्रोह का सूत्रपात नहीं हुआ। वहाँ के अंग्रेज सेनापति सर ह्यू ह्वीलर ने कानपुर में अपनी सेना की कमी देख कर वहाँ का खजाना और शस्त्रागार नाना साहब धुन्धुपन्त के जिम्मे कर दिया था।

मगर अजीमुल्ला के विलायत से वापस लौटने के बाद उसने अंगरेजों के विरुद्ध नाना साहब के कान भरना शुरू किये और उनका विश्वासपात्र सरदार तातिया टोपे भी उन्हें अंगरेजों के खिलाफ करने का प्रयत्न कर रहा था। इससे उनके मन में भी विद्रोह की भावना पैदा हो रही थी। ऐसा कहा जाता है कि दो जून को शाम के समय नाना साहब, अजीमुल्ला और अपने भाई बलराम के साथ गंगा के किनारे गये। वहाँ उनके गुप्तचरों ने सूबेदार

टीका सिंह और दूसरे षड्यन्त्रकारियों को उनसे मिलाया। गंगा की धारा में नाव के अन्दर उनके बीच में कुछ सलाह हुई और चार जून को विद्रोह भड़क उठा।

चार जून की आधी रात को रिसाले के द्वारा विद्रोह का सूत्रपात होते ही पैदल सेना ने भी विद्रोह कर दिया और सब मिल कर खजाने को लूटने चले। सिपाहियों के दो दल नवाबगंज पहुँचे तो नाना साहब के नौकरों ने उनका स्वागत किया। ३५ नम्बर सेना के कुछ सैनिक खजाने की रक्षा कर रहे थे, उन्होंने पूरी शक्ति से खजाने रक्षा का प्रयत्न किया मगर वे ज्यादा नहीं टिक सके विद्रोहियों ने खजाना लूटा, जेलखाने से कैदियों को मुक्त कर दिया और कचहरी तथा दफ्तर भी जला दिये गये। सारा रुपया हाथी और बैल गाड़ियों पर लाद कर विद्रोही दिल्ली की ओर चल दिये, मगर नाना साहब और अजीमुल्ला के समझाने पर सब लौट कर फिर कानपुर आ गये और सब सिपाहियों ने तथा अजीमुल्ला ने नानासाहब के विद्रोह का नायक बना दिया। सिपाहियों ने उन्हें अपना राजा कह कर सम्बोधित किया और इसी राजा के नाम पर सब काम होने लगे। सूबेदार टीकासिंह रिसाले के सेनापति बनाए गये।

६ जून शनिवार को प्रातःकाल नाना साहब ने अंग्रेज सेनापति को पत्र लिखा कि वे अब उन पर हमला करनेवाले हैं। इस खबर से बुड्ढा सेनापति बहुत घबरा गया। फिर भी उसने चारों ओर घिरी हुई मिट्टी की दीवार पर तोपें लगा कर पन्द्रह २ कदम पर एक आदमी खड़ा कर दिया।

सायंकाल होते-होते आक्रमण शुरू हुआ। सिपाहियों की तोपों से गोले निकल-निकल कर अंग्रेजों के निवास स्थान पर गिरने लगे।

६ जून से लेकर २६ जून तक लगातार विद्रोहियों ने अंग्रेज बस्ती पर गोले बरसाये। इस हमले से अंग्रेजों की दुर्दशा का ठिकाना नहीं रहा। इस समय में अंग्रेजों ने जो कष्ट भोगे वैसे किसी भी संग्राम में किसी जाति ने न भोगे होंगे। उनकी स्त्रियों और बच्चों के कष्ट की सीमा नहीं थीं। फिर भी इस समय इन मुट्ठी भर अंग्रेजों ने जिस वीरता और साहस का परिचय दिया, अपने जीवन को तुच्छ समझ कर स्त्रियों और बच्चों की रक्षा के लिए जो दुःसाध्य कार्य किये, अपने सेनापति की आज्ञा का जिस प्रकार पालन किया वह इतिहास में अमर है।

दिन पर दिन बीतने लगे, अंग्रेजों की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। कलक्टर हिलर्सडन बरामदे में खड़े होकर नाना साहब से सुलह की बातचीत करना चाहते थे इतने ही में एक गोला आकर उनको लगा और वे वहीं ढेर हो गये। थोड़ी ही देर में एक गोले से रक्षक दीवाल आकर उनकी स्त्री पर गिरी और वह भी वहीं दब कर मर गई। सेनापति व्हीलर का पुत्र लेफ्टिनेण्ट व्हीलर घायल होकर खाट पर पड़ा था। उसके पास उसके माता-पिता और बहनें बैठी थीं, एक गोला वहाँ आकर गिरा और सेनापति के घायल पुत्र का सिर उड़ गया। इधर उस घिरे हुए क्षेत्र में अन्न न पहुँचने से सब अंग्रेज स्त्री-बच्चे भूख से मरने लगे।

इसी बीच एक पत्र अजीमुल्लाखाँ ने बिना दस्तखत का अंग्रेज सेनापति को भेजा कि यदि वे आत्म-समर्पण कर देंगे तो उन्हें सुरक्षा पूर्वक इलाहाबाद भेज दिया जावेगा। दूसरे दिन अंग्रेज प्रतिनिधि नानासाहब और ज्वालाप्रसाद से एक स्थान पर मिले। तय हुआ कि अंग्रेज अपना स्थान, तोपें, बन्दूकें, रुपया सब यहीं छोड़ देंगे। वे केवल एक-एक बन्दूक और एक-एक कारतूस ले सकेंगे। नानासाहब उन्हें निरापद गंगा तट पर ले जा कर नावों पर बिठा देंगे। खाने के लिए उन्हें आटा भी देंगे। आज रात को उन्हें यह स्थान खाली करना होगा। मगर अंग्रेजों ने रात को स्थान खाली करना स्वीकार नहीं किया।

२७ जून को प्रातःकाल ४५० अंग्रेज स्त्री, पुरुष और बच्चे सतीचौरा नामक घाट पर पहुँच कर नावों में बैठ गये। इसी समय एकाएक बिगुल बज उठा और देखते देखते अंग्रेजों पर गोलियों की बौछार शुरू हो गई। कुछ तोपें भी किनारे पर लगा दी गई थीं। इनसे गोले निकल कर उन असहाय लोगों पर गिरने लगे। जो डर से पानी में कूद गये उन्हें रिसाले के सवारों ने पानी में कूद कर काट डाला। गंगा का पवित्र जल निर्दोष स्त्री, बच्चों के खून से लाल हो गया। एक आया एक बच्चे को गोद से चिपटाये किनारे आ गई। सिपाही ने बच्चा माँगा, आया ने देने से इन्कार किया तो तलवार के एक झटके से

आया को काट कर दूसरे झटके से उसने बच्चे को काट डाला।

यह एक ऐसी भयानक और लोमहर्षक घटना थी जिसका इतिहास ने कभी समर्थन नहीं किया और जो गदर के इतिहास में विद्रोहियों के लिए एक भयङ्कर कलंक स्वरूप है।

कर्नल नील

जिस समय कानपुर में अंग्रेजों के ऊपर भयङ्कर विपत्ति उमड़ रही थी उस समय कर्नल नील इलाहाबाद में विद्रोह को दबाने में व्यस्त था। ६ जून को बनारस से चल कर ११ जून को वह इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ पहुँचने के बाद उसने इलाहाबाद के विद्रोह को दबाया।

उसके बाद उसने कानपुर जाने की तैयारी की। उसने रास्ते के गाँवों को जलाने और विद्रोहियों को खतम करने के लिए अपने दल भेजे। इन लोगों ने सब तरह के विद्रोहियों के साथ-साथ उन लोगों को भी बिना सोचे समझे फाँसी पर लटका दिया जो निरपराधी थे। खुले आम गाँवों को जलाया और लूटा गया। विद्रोह के इतिहास में कर्नल नील का नाम अपनी बर्बरता के लिए मशहूर है। इस कारण सब किसान और मजदूर गाँवों को छोड़ कर भाग गये और नील की सेना को मजदूर और गाड़ियाँ मिलना असम्भव हो गया। ३० जून को हैवलाक इलाहाबाद आया और उसने वहाँ की कमान सम्हाल ली।

उसके बाद १२ जुलाई को हैवलाक का नानासाहब की सेनाओं से युद्ध हुआ। जिसमें नानासाहब की हार हुई।

बीबीघर का हत्या काण्ड

जब विद्रोही सेना को यह विश्वास हो गया कि अब कानपुर की रक्षा असम्भव है। तब उन्होंने घाट हत्या काण्ड से बचे हुए अंग्रेज स्त्री, बच्चों और आदमियों को जो उस समय बीबी घर नामक इमारत में थे उन सब को काट कर एक कुँएँ में डाल दिया। जब हैवलाक की सेनाएँ कानपुर में पहुँची तो उन औरतों और बच्चों की लाशें उसी कुँएँ में पड़ी हुई थीं और बीबीघर का फर्श खून से गीला हो रहा था।

उसके बाद कर्नल नील ने फांसी की सजा पाये हुए सब व्यक्तियों को बीबी घर में भेज कर उन्हें वह जमा हुआ खून चाटने को मजबूर किया।

झांसी

तारीख ६ जून को झांसी में विद्रोह की चिनगारी लगी, और बारहवीं पल्टन ने खुला विद्रोह कर दिया। उस समय कैप्टन अलेक्जेण्डर स्कीन वहां के पोलिटिकिल एजन्ट थे और कैप्टन गोर्डन झाँसी के डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट पोलिस थे।

विद्रोह होते ही सेना ने सब अंग्रेज अफसरों, सैनिकों और क्लर्कों को उनके परिवार सहित मार डाला। इस कार्य के लिए यहां पर जोखन बाग का हत्याकाण्ड गदर के इतिहास में बहुत मशहूर है।

लक्ष्मीबाई

रानी लक्ष्मीबाई का उस समय तक विद्रोहियों या विद्रोह में किसी प्रकार का सहयोग नहीं था रानी ने लिखा है कि—

झांसी स्थित सरकारी फौजों ने अपनी विश्वासहीनता, क्रूरता और हिंसा से समस्त यूरोपियन असैनिक, सैनिक अफसरों, क्लर्कों और उनके स्त्री-बच्चों को मार डाला है और चूंकि रानी के पास तोपों की कमी थी और सिपाही भी उसके पास सौ से अधिक नहीं थे इस कारण वह उनकी कुछ सहायता नहीं कर सकी। इसका उसे भारी खेद है। बाद में विद्रोहियों ने उसके (रानी) और उसके नौकरों के साथ अत्यन्त हिंसात्मक व्यवहार किया उसके पास का सारा धन उन्होंने ले लिया और कहा कि, चूंकि रानी को रियासत का उत्तराधिकार है।

इसलिए उसे यहाँ का प्रबन्ध भी करना चाहिए जब कि हम दिल्ली जा रहे हैं। यदि उसने किसी प्रकार उनकी प्रार्थना को पूरी करने में आनाकानी की तो उसका महल तोपों से उड़ा दिया जावेगा।

इससे पता चलता है कि झांसी में अंग्रेजों की जो नृशंस हत्याएँ हुई उनमें रानी लक्ष्मीबाई का कोई हाथ नहीं था। विद्रोह के साथ उसकी शुरू में कोई सहानुभूति भी नहीं थी मगर विद्रोहियों की चपेट से बचने के लिए, अपने जीवन और सम्मान को बचाने के लिए उसे

जायदाद और नगद के रूप में बहुत धन देना पड़ा और विद्रोहियों के आदेश को मानना पड़ा। यह जानकर कि जिले में कोई भी ब्रिटिश अफसर नहीं बचा है रानी ने जनता की भलाई से प्रेरित होकर जिले के सब अधिकारियों को ऐसे परवाने भेजे कि वे सब लोग अपना कार्य नियमानुसार करते रहें।

इसी समय ओरछा का दीवान नत्थे खां ने और दतिया राज्य ने रानी के जिले पर आक्रमण किया। रानी ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की। उसने सर राबर्ट हैमिल्टन को १ जनवरी १८५८ को एक पत्र लिखा तथा और भी कई अधिकारियों को पत्र लिखे मगर अंग्रेज टाल-मटोल करते रहे और उसे शीघ्र ही पता लग गया कि उसके किले का घेरा विद्रोही सैनिकों द्वारा नहीं बल्कि ब्रिटिश समर्थित बुन्देलों के द्वारा डाला जा रहा है।

तब ओरछा और दतिया से निपट ने के लिए उसने अपनी फौज तैयार की, गोला बारूद ढलवाये। वह एक अदम्य साहस और महान् उत्साह वाली वीरांगना थी। वह ओरछा और दतिया के द्वारा अपना अपमान सहन नहीं कर सकती थी। फलस्वरूप उसकी नई सेना ने उसके शत्रुओं को मऊ रानी पुर और बरवा सागर में हराया।

इसी समय से रानी विद्रोहियों के साथ हो गई या उनमें फंस गई। उसकी नई सेना में बहुत से विद्रोही भी भरती हो गये थे। इधर उसे अंग्रेजों की नीयत का भी कुछ पता लग गया था, इसलिए उसने अपनी सैनिक तैयारी को जारी रक्खा था।

इसी समय सर ह्यू रोज झांसी के लिए चल पड़ा था और उसका इरादा रानी को अच्छा नहीं मालूम पड़ रहा था। इसलिए अपने सम्मान की रक्षा के लिए उसने लड़ने का ही निश्चय किया। फिर चाहे उसका सभी कुछ नष्ट क्यों न हो जाए।

सर ह्यूरोज ने सागर को जीतकर २२ मार्च १८५८ को झांसी पर घेरा डाल दिया, इसी समय ३१ मार्च को तांतिया टोपे २०००० हजार सेना के साथ झांसी की मदद पर आ रहा था, मगर सर ह्यूरोज ने मार्ग ही में उसे रोक कर उसकी सेनाओं को तीतर बीतर कर दिया।

तात्या के परास्त होते ही सर ह्यू रोज ने अपना सारा ध्यान झाँसी को परास्त करने में लगाया। रानी बड़े उत्साह से मुकाबिला कर रही थी। तात्या के परास्त होने की खबर ने भी उसके मनोबल को कम नहीं किया। अन्त में तीन अप्रैल को अंग्रेजी सेना ने भी झाँसी के किले पर भारी आक्रमण किया। जवाब में रानी की ओर से भी अंग्रेजी सेना पर भारी गोलाबारी की गई। आक्रमणकारियों पर उन्होंने सभी प्रकार के अस्त्र फेंके।

मगर अन्त में किले का दरवाजा टूट गया। अब गली-गली, घर-घर और कमरे कमरे में भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ। न तो किसी ने किसी से शरण मांगी और न दी गई। भारी युद्ध और वीरता पूर्ण दृश्यों के प्रदर्शन के बाद अन्त में किला अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। उसके बाद झाँसी में लूट मार हत्याकाण्ड और प्रतिहिंसा का जो भयङ्कर ताण्डव हुआ वह अवर्णनीय है।

मगर स्वाभिमानिनी रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के हाथ में पड़कर अपराधी के रूप में अंग्रेजों के सामने पेश नहीं हुई। वह अपने दत्तक पुत्र को लेकर पुरुष के वेष में वहाँ से निकल गई। वफादार अफगान रक्षकों का एक दल उसके साथ था।

रानी रातों रात २१ मील आगे निकल गई। मगर इसी बीच में अंग्रेजी सेना में रानी के निकल जाने की खबर सुनकर कैप्टन फोर्ब्स और लेफ्टिनेंट डौकर ने कुछ सेना अपने साथ लेकर रानी का पीछा करना प्रारम्भ किया। रानी के ४० शरीर रक्षक सेना को कुछ समय रोककर—वहीं मारे गये मगर रानी को निकल जाने का अवसर मिल गया।

रानी लक्ष्मी बाई वहाँ से निकल कर कालपी तांतिया टोपे और दूसरे विद्रोही सरदारों के पास पहुंच गई। मगर सर ह्यू रोजने कालपी को जीतकर उन्हें वहाँ से बाहर करा दिया।

तब ये सब लोग सारी सेना के साथ ग्वालियर पहुंचे, इनके ग्वालियर पहुंचने पर सिंधिया वहाँ से भाग गया और बिना रक्तपात के इन्होंने ग्वालियर के किले पर अधिकार कर दिया मगर यह अधिकार बहुत क्षण स्थायी रहा

और ह्यूरोज ने २० जून को ग्वालियर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया।

इसी बीच १७ जून को झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई की युद्धक्षेत्र में गोली लगने से मृत्यु हो गई।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने युद्ध क्षेत्र में एक वीरांगना की भाँति मृत्यु अंगीकार की। अंग्रेज अधिकारियों ने झाँसी के गदर की सम्पूर्ण जिम्मेदार लक्ष्मीबाई को ठहराया है मगर अंग्रेजों ने जो परिस्थितियाँ पैदाकर दी थीं उनमें रानी के लिए इसके सिवा दूसरा मार्ग ही शेष नहीं रह गया था। कुछ भी हो रानी लक्ष्मीबाई के शत्रुओं ने उसकी जो निन्दा की है उसके स्थान पर उसके देश वासियों ने उसके प्रति जो अगाध श्रद्धा प्रकट की है उसने उसके गौरव को बहुत ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया और वह हर प्रकार से निर्दोष सिद्ध हुई है।

अवध और लखनऊ

तीस मई की रात को नौ बजे लखनऊ के निकट मुरिआँव छावनी की सेनाने विद्रोह प्रारम्भ कर वहाँ की अंग्रेज रेजिमेण्ट पर सशस्त्र हमला किया। जिसमें कुछ लोग मारे गये।

२८ जून को विद्रोही दस्ते लखनऊ से २० मील दूर नबाब गंज में पहुंच गये। इनका मुकाबिला करने के लिए तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर हेनरी लारेन्स ने फौज की टुकड़ी को भेजा। लेकिन चिनहाट के क्षेत्र में उसकी फौज बुरी तरह पराजित हुई। सिर्फ एक दिन की लड़ाई में ३ अफसरों और ११६ सैनिकों को छोड़कर सारी सेना काट डाली गई।

विद्रोही सेना ने इसी समय लखनऊ पर घेरा डाल दिया। चारों ओर आतंक का साम्राज्य छाया हुआ था। अंग्रेज स्त्री और बच्चे जनरल गब्बिन्स के निवास स्थान पर छिपे हुए थे। खाद्य सामग्री की कमी होने से सब लोगों का राशन आधा कर दिया गया था।

लखनऊ का घेरा

घेरा पड़ने के बाद लखनऊ का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से कट गया था। इसलिए अंग्रेजों को गुप्तचर विभाग बनाना पड़ा। गेजर गाल को वेष बदलकर इलाहाबाद भेजा गया मगर वह पहचान लिया गया और मार डाला गया।

और कोई उपाय न देखकर सर हेनरी लॉरेंस ने मच्छी भवन खाली करने का आदेश दिया। रात को एक बजे तक मच्छी भवन के सारे सैनिक निकाल दिये गये। मगर इस ऊहापोह में सर हेनरी लॉरेन्स बुरी तरह घायल हुआ। दूसरे दिन सर हेनरी लारेन्स के कमरे में एक गोला फटा और उसी में वह मरणासन्न स्थिति में पहुँच गया। उसके बाद वह कुछ घण्टे ही जिया मगर उस समय का भी उसने दुरुपयोग नहीं किया और लड़ाई की सारी व्यवस्था के आदेश देता रहा।

३ जुलाई को न्याय कमिश्नर एम० सी० अमन के सिर में गोली लगी और वह खतम हो गया। हेनरी लॉरेन्स की जगह पर नियुक्त चीफ कमिश्नर बैंक्स भी २१ जुलाई को गोली खाकर मर गया।

घेरे के भीतर चारों ओर लोग धड़ाधड़ मरने लगे। प्रतिदिन औसतन १५ से बीस तक यूरोपियन गोलियों के शिकार होते थे। चारों तरफ मरे हुए जानवरों और सड़ी हुई लाशों से घोर दुर्गन्ध छा रही थी।

अब विद्रोही लोगों ने घेरे को तोड़ कर भीतर घुसने का प्रयत्न किया। पहला आक्रमण २० जुलाई को किया गया। विद्रोहियों की गोलाबारी लगातार हो रही थी, फिर भी दिन भर की लड़ाई में वे भीतर घुसने में सफल नहीं हुए।

२२ जुलाई को अंग्रेजों का गुप्तचर अंगद खबर लेकर आया कि जनरल हैवलाक ने नाना साहब पर विजय प्राप्त करके कानपुर जीत लिया है और जल्दी यहाँ सहायता आनेवाली है।

जुलाई के अन्त तक अस्पताल की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। हर जगह खून और कृमियों से लथपथ अफसर और सैनिक खाटों पर पड़े कराहते थे! परिचारकों की कमी होने से उनका कोई प्रबन्ध नहीं होने पाता था! कॉलरा भयंकर रूप से चल कर गन्दगी को और बढ़ा रहा था।

जनरल हैवलाक

इसी समय जनरल हैवलाक ने अपनी सेना के एक भाग को अवध की तरफ रवाना किया। उन्नाव में विद्रोहियों ने उससे भयंकर लड़ाई की, वहाँ से वह किसी तरह आगे बढ़ा तो बशीरतगंज में फिर विद्रोहियों से उसका मुकाबिला हुआ। विजय उसने वहाँ भी पाई मगर उसकी सेना के बहुत आदमी मारे गये। इससे निराश होकर जनरल हैवलाक को वापस पीछे हटना पड़ा।

३ अगस्त को हैवलाक को एक छोटी-सी सेना की सहायता प्राप्त हुई। उससे वह फिर लखनऊ की तरफ बढ़ा। विद्रोही स्थान-स्थान पर मुकाबिला कर रहे थे। हैवलाक को फिर लौट कर वापस कानपुर आना पड़ा। कानपुर आकर उसने बिठूर की लड़ाई १६ अगस्त को लड़ी और उसमें विजय पाई।

इधर लखनऊ का घेरा दिन पर दिन तीव्र होता जा रहा था ग्यारह अगस्त को रेजिडेन्सी का एक भाग धराशायी हो गया और उसमें कई आदमी दब गये।

विद्रोहियों में फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह का नाम बड़ा प्रभावशाली था। वह भी इस समय लखनऊ में विद्रोही सेना के साथ था।

सारा अगस्त का महीना इसी घेरे के स्थिति में बीता और घिरे हुए व्यक्तियों की दुर्दशा में किसी प्रकार की कसर न रही।

सितम्बर का महीना अंग्रेजों के लिए बड़ा शुभ प्रारम्भ हुआ, फिर भी विपत्तियों का दौर कम नहीं हुआ था। १४ सितम्बर को प्रतिरक्षा के सबसे साहसी अधिकारी फुल्टन के सिर में गोली लगी और वह वहीं मर गया।

इसी समय जनरल उटरम को एक आवश्यक बुलावा भेज कर ईरान से बुलाया गया और जनरल हैवलाक की मदद पर सेना के साथ भेज दिया गया। २३ सितम्बर को अंग्रेजी सेना लखनऊ के नजदीक आलम बाग पहुँच गई। २५ और २६ सितम्बर को विद्रोहियों ने उनसे कड़ा मुकाबिला किया, जिसमें अंग्रेजी सेना के ५०४ जवान और ३१ अफसर मारे गये।

इन्हीं मृतकों में जनरल नील भी था जो अपने लोमहर्षक अत्याचारों के लिए इतिहास में मशहूर है। आलम बाग पहुँच जाने पर भी अंग्रेजी सेना विद्रोहियों का घेरा तोड़ने में सफल नहीं हुई तथा और सैनिक सहायता की प्रतीक्षा करने लगी।

इसी समय जनरल कैम्पवेल की अधीनता में और सेना १३ सितम्बर को आलमबाग मे जा पहुँची। १६ तारीख को उसने सिकन्दराबाग पर चढ़ाई की और १७ तारीख को घेरा तोड़कर उन्होंने घिरे हुए लोगों की रक्षा कर ली। मगर इसके तुरन्त बाद ही जनरल हैवलाक मृत्यु शैय्या पर पड़ गया और २४ सितम्बर को उस की मृत्यु हो गई। उसको अंग्रेज सरकार से "नाइट कमाण्डर ऑफ दी आर्डर" की पदवी मिली थी। इंग्लैण्ड की महारानी ने भरी कामन्स सभा में उसकी प्रशंसा की और उसको १००० पौण्ड वार्षिक की वृत्ति इनायत की।

इसके बाद सर केम्पबैल ने फतेहगढ़ और मैनपुरी के विद्रोह को दबाया और ग्राण्ड ट्रंक रोड जो कई दिनों से बन्द पड़ी थी फिर खोल दिया।

मौलवी अहमदशाह और बेगम हजरतमहल यद्यपि सुरक्षा पूर्वक बचकर निकल गये थे मगर उनकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। चारों ओर विद्रोहियों की आशाएँ खतम हो चुकी थीं और अंग्रेजी फौजों का दबदबा बढ़ गया था। विजय के बाद अंग्रेजी सेना के द्वारा लूट, मार, हत्या और फाँसी के जो दृश्य सब दूर घटित हुए वे अवध क्षेत्र में भी उसी भयङ्करता के साथ घटित हुए।

बिहार

बिहार में विद्रोह का आरम्भ २४ जुलाई से प्रारम्भ हुआ और दानापुर की दसवीं रेजीमेंट और चालीसवीं रेजिमेट ने विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया। उस समय दानापुर की सैनिक कमान जनरल लायड के अधीन थी। विद्रोही सेनाएँ जल मार्ग से आरा की ओर बढ़ने लगीं। लायड के जहाजों ने पीछा करके विद्रोहियों की कुछ नावें डुबोयीं मगर उससे विद्रोहियों का अधिक नुकसान नहीं हुआ और वे आरा बाबू कुँवर सिंह के नेतृत्व में पहुँच गये। लायड ने अंग्रेज सेना की एक टुकड़ी उनका दमन करने को भेजी मगर विद्रोहियों ने बाबू कुँवरसिंह के नेतृत्व में इस टुकड़ी पर छिप कर हमला किया। जिस में सब से पहले जहाज के कप्तान जनरल डनबर की मृत्यु हुई।

४०० आदमियों का यह सारा दस्ता समाप्त हो गया। केवल ५० आदमी बचे जो अत्यन्त घायल अवस्था में वापस पटना पहुँचे।

बाबू कुँअर सिंह

बिहार के विद्रोह का नेतृत्व करने वाला बाबू कुँवरसिंह उस समय यद्यपि ७० वर्ष का था मगर उसमें गजब की होशियारी, बहादुरी और संगठन शक्ति थी। जिला शाहाबाद में बाबू कुँवरसिंह की बहुत बड़ी जमींदारी थी, जिससे करीब तीन लाख रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी। मगर पढ़ा लिखा न होने के कारण उसके मुनीम गुमाश्ते उसको बहुत धोखा देते थे और वह बराबर कर्जदार बना रहता था। सन् १८५७ में उसपर १३ लाख का कर्ज हो गया था और उसकी जमींदारी खतरे में पड़ रही थी। ऐसे ही समय विद्रोह का प्रारम्भ हुआ।

कुँवर सिंह के प्रमुख सहायकों में उसका भाई अमर सिंह, उसका भतीजा ऋतुभंजन सिंह, उसका तहसीलदार हरिकिशन सिंह, और उसके मित्र निशान सिंह, दिलावर खाँ और सरनाम सिंह थे।

सिपाहियों ने सरकारी खजाना लूट लिया, कैदियों को छोड़ दिया और शहर पर घेरा डाल दिया। कुँवरसिंह के पास पुरानी तोपें थीं मगर गोला बारूद बहुत कम था। इसलिए पिटे हुए लोहे के गोले और दरवाजों के हैण्डिल काम में लिये गए।

इस घेरे की स्थिति में सिक्ख सैनिकों और उनके जमादार हुकुम सिंह ने अंगरेजों की भारी मदद की और उन्हें मौत के मुँह में जाने से बचाया।

विन्सेण्ट आयर

इसी समय अंग्रेज सेनानायक विन्सेण्ट आयर इलाहाबाद जा रहा था। २८ जुलाई को वह बक्सर पहुँचा वहाँ उसे मालूम हुआ कि बागियों की एक बड़ी सेना आने वाली है। बक्सर से वह आरा की तरफ गया। रास्ते में विद्रोहियों ने मुकाबिला किया मगर उनकी बन्दूकें अंग्रेजी तोपों का मुकाबिला नहीं कर सकीं। बीबीगंज के पास कुँवर सिंह ने फिर मुकाबिला किया। एक बार उसको अपनी विजय का आभास हुआ मगर संगीनों की लड़ाई में उसके सैनिकों ने मैदान छोड़ दिया और इसके पश्चात् २ अगस्त को घेरा तोड़कर आरा शहर को मुक्त कर दिया गया।

आरा से कुँवर सिंह जगदीशपुर अपने पैतृक किले में चला गया। जनरल आयर ने वहाँ उसका पीछा किया। भयङ्कर लड़ाई हुई मगर जीत अंगरेजों की हुई। कुँवर सिंह के सब के सब सैनिक मारे गये और जितने घायल थे सब फाँसी पर लटका दिये गये। जगदीशपुर का महल, वहाँ का मन्दिर और इमारतें जमींदोज कर दी गई।

मगर कुँवर सिंह इस हार से बिलकुल निराश नहीं हुआ। बिहार में अपनी स्थिति ठीक न देख वह उत्तर प्रदेश में आ गया और फरवरी १८५८ तक कई जगह छोटी मोटी लड़ाइयाँ लड़ता रहा। मार्च १८५८ में वह आजमगढ़ से २५ मील दूर अतरौली गाँव पर टूट पड़ा। कर्नल मिलमेन ने उसका मुकाबिला किया मगर उसे मैदान छोड़कर भागना पड़ा और कुँवर सिंह ने आजमगढ़ पर कब्जा कर लिया। मिलमेन की सहायता के लिए गाजीपुर से कर्नल डेम्स दौड़ा मगर उसकी सेना को भी कुँवर सिंह ने खदेड़ दिया। तब इलाहाबाद से लार्ड मार्ककर तथा सर एडवर्ड लुगार्ड को भेजा गया। इनके संयुक्त मोर्चे के सामने कुँवर सिंह को भागना पड़ा।

कुँवरसिंह फिर अपने नष्ट-भ्रष्ट स्थान की ओर चला। रास्ते में ली ग्राण्डकी सेना ने उसपर आक्रमण किया मगर इस बुड्ढे शेर ने अपनी अन्तिम अवस्था में भी प्रत्याक्रमण कर २३ अप्रैल को ली ग्राण्ड की सेना को भारी पराजय दी और २४ अप्रैल को एक विजेता के रूप में उसकी मृत्यु हो गई।

कुँवर सिंह के पश्चात् उसके भाई अमरसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ अंग्रेजों का मुकाबिला किया और गुरिल्ला लड़ाई में करीब ६ महीने तक उनको छकाता रहा। उसके बाद जंगलों में ऐसा गायब हुआ कि किसी को उसका पता न लगा।

इस प्रकार सन् १८५७ का यह महान् विद्रोह संगठन के अभाव, युद्ध कला की कमजोरी और उचित नेतृत्व की कमी के कारण बुरी तरह से असफल हुआ।

अंजुमन-ए-तरक्की-ए उर्दू

उर्दू भाषा, साहित्य और कविताओं को बढ़ावा देने वाली एक संस्था जिसकी स्थापना सन् १६११ में निजाम हैदराबाद में हुई।

अंजुमन तरक्किए उर्दू की स्थापना मौलवी अब्दुल हक बी० ए० के प्रयत्न से हैदराबाद में सन् १६११ में हुई और वही उसके आँनरेरी सेक्रेटरी बनाये गये। मौलवी अब्दुल हक उस समय उसमानिया विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफेसर थे। उर्दू साहित्य के विकास में मौलवी अब्दुल हक और उनकी संस्था ने काफी महत्व पूर्ण भाग अदा किया। अंजुमन की तरफ से उर्दू भाषा में अस्सी से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें प्राचीन कवियों की रचनाओं को उत्कृष्ट कोटि के सम्पादन के साथ प्रकाशित किया गया है। उर्दू का कोष भी इस संस्था के द्वारा सम्पादित किया गया है।

देश के विभाजन के पश्चात् अंजुमन का दफ्तर हैदराबाद से दिल्ली चला आया। तब इसका रूप विशेष रूप से राजनैतिक होगया और देश विभाजन के समय इसकी हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी दो शाखाएँ हो गई, इसकी भारतीय शाखा का दफ्तर इस समय अलीगढ़ में है। यह अंजुमन सदा मुसलिम साम्प्रदायिकता और मुसलिम लीग का समर्थन तथा कांग्रेस का विरोध करती रही। इसके दो सामयिक पत्र "हमारी जबान" अलीगढ़ से और "उर्दू अदब" लखनऊ से निकलते हैं।

अभिनव-गुप्त

तंत्र शास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा साहित्य के एक सुप्रसिद्ध आचार्य। जो कश्मीर के निवासी थे और जिनका समय सन् ६५० ई० के करीब है।

आचार्य अभिनव गुप्त, आचार्य आनन्दवर्द्धन की परम्परा में माने जाते हैं। जालन्धर के आचार्य शम्भूनाथ से इन्होंने कौलिक मत के सिद्धान्तों और उपासना तत्व का अध्ययन किया था।

अभिनव गुप्त ने तंत्र शास्त्र, साहित्य और दर्शन शास्त्र पर ४० से अधिक मौलिक ग्रन्थों की रचना की। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ तन्त्रालोक, तंत्र-विज्ञान के एक वृहद् कोष की तरह है। जिसमें तंत्रशास्त्र के सिद्धान्त तथा प्रक्रियाओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। यह २७ अध्यायों में विभक्त है।

दर्शन शास्त्र सम्बन्धी रचनाओं में अभिनव गुप्त की भगवद्गीतार्थ संग्रह, परमार्थसार, ईश्वर प्रत्यभिज्ञ-विमर्शिणी आदि रचनाएँ बड़ी विद्वता पूर्ण मानी जाती हैं। इनके नाट्यशास्त्र सम्बन्धी "अभिनव-भारती" ग्रन्थ में भरत के नाट्यशास्त्र की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या है।

कई विद्वानों का मत है कि महाभाष्य के रचयिता पातंजलि को व्याकरण के इतिहास में, तथा वाचस्पति मिश्र को अद्वैत वेदान्त के इतिहास में जो गौरव प्राप्त है वही गौरव अभिनव गुप्त को तंत्र शास्त्र और अलंकारशास्त्र के इतिहास में प्राप्त है।

अकाली

सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्द सिंह द्वारा स्थापित सिक्ख जाति का एक विशेष सम्प्रदाय।

गुरु हरगोविन्द सिंह ने अमृत सर के स्वर्ण मन्दिर के सम्मुख एक गुम्बजदार बड़े भवन में अकाल तख्त की स्थापना की थी। इस सम्प्रदाय का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता था जो त्याग और वैराग्य की भावना को रखता हुआ अकाल-तख्त का पूर्ण अनुयायी हो।

उस समय मुगल सम्राटों की सिक्ख जाति पर बड़ी क्रूर निगाह रहती थी। इस क्रूर निगाह से जनता की रक्षा करने के लिए इस भवन में गुप्त मंत्रणाएँ होती रहती थीं और इन्हीं मंत्रणाओं के आधार पर "गुरुमतां" अर्थात् गुरु के आदेश निकला करते थे, और बाहरी दुनिया में उन आदेशों का पालन होता था। इस प्रकार धार्मिक संस्था होते हुए भी आत्म-रक्षा के लिए अकाल-तख्त ने राजनीतिक रूप ग्रहण कर लिया था और ये लोग अपने धर्म और सम्प्रदाय की रक्षा के लिए हमेशा सिर देने को तैयार रहते थे।

कुछ समय पश्चात् अकाली दल दो शाखाओं में विभक्त हो गया। एक शाखा गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व

में खालसा पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुई जिसकी स्थापना सन् १६९९ में हुई और दूसरी शाखा सरदार मान सिंह के नेतृत्व में निहंग दल के नाम से प्रकाश में आई। निहंग दल के लोग त्याग वृत्ति के सन्यासियों की तरह रहते थे। ये विवाह नहीं करते थे। इन लोगों के जत्थे बने हुए रहते थे और प्रत्येक जत्थे पर एक जत्थेदार रहा करता था। बहादुर ये इतने होते थे कि प्रत्येक अकाली अपने को सवालाख के बराबर समझता था। महाराजा रणजीत सिंह के समय में अकाली दल चरम उरूज पर था। इस दल में चुने हुए और बहादुर सिपाही होते थे जो मुसलमानी फौजों का डटकर मुकाबिला करते थे। इसी दल की सहायता से महाराजा रणजीत सिंह ने अफगानिस्तान तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था।

कालान्तर में दूसरी धर्म संस्थाओं की तरह अकाली गुरुद्वारों और धर्मशालाओं में भी अवांछित तत्वों के भर जाने से अनाचार और दुराचार की घटनाएँ होने लगीं, तब इन धर्म संस्थाओं से दुराचार को दूर करने के लिए तथा ऐसे दुराचारी महन्तों को हटाने के लिए, अकाली युवकों ने एक सेना तैयार की। इस सेना ने कई स्थानों के गुरुद्वारों पर कब्जा कर लिया। कहीं-कहीं पर इन्हें भयङ्कर यातना और कष्ट भी उठाना पड़ा मगर अन्त में इनके प्रयत्न से सन् १९२५ में सारे गुरुद्वारे "शिरोमणि गुरु द्वारा कमेटी" के अन्तर्गत आ गये।

स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद अकाली लोगों ने मास्टर तारा सिंह के नेतृत्व में पृथक् पंजाबी सूबे की माग की। इस पंजाबी सूबा आन्दोलन ने कुछ समय तक पंजाब में बड़ा जोर पकड़ा। हजारों गिरफ्तारियां हुईं, मास्टर तारासिंह के अनशन भी हुए, मगर पंजाबी हिन्दुओं के विरोध और भारत सरकार की विभाजन के विरुद्ध दृढ़ नीति के कारण यह आन्दोलन पूर्णतः असफल होगया।

अनुराधापुर

लंका का एक प्रसिद्ध, प्राचीन और बड़ा नगर। जिसकी स्थापना ईसा से करीब ५०० वर्ष पूर्व हुई। पहले यह लंका की राजधानी था। अशोक के पुत्र महेन्द्र ने बुद्धगया से बोधि वृक्ष की शाखा ले जाकर वहाँ पर स्थापित की थी। कहा जाता है कि वह अभी तक बोधि वृक्ष के नाम से वहाँ कायम है।

अनहिलवाड़

गुजरात के सोलंकी राजवंश की राजधानी जिसे मूलराज सोलंकी ने बसाया। यहीं पर सोमनाथ का प्रसिद्ध शिव मन्दिर था जिसे महमूद गजनवी ने सन् १०२५ में तोड़ दिया। उसके बाद भी सोलंकी चालुक्यों ने वापस लौट कर अनहिलवाड़ में काफी समय तक राज्य किया। उनके पश्चात् बघेला राजवंश ने सोलंकियों को पराजित कर यहाँ अपनी राजधानी बनाई। तेरहवीं सदी में अल्लाउद्दीन खिलजी ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया।

अबुल-फ़िदा

सीरिया का प्रसिद्ध इतिहासकार जिसका जन्म दमिश्क में सन् १२७३ में हुआ।

अबुल फ़िदा काहिरा के मामलूक सुलतान की सेवा में था। सुलतान उसकी योग्यता से बहुत खुश था। उसने उसको "अल-मलिक अल-मुअय्यिद" की उपाधि और सुलतान पद से विभूषित किया। अबुल-फ़िदा सुधरे हुए विचारों और साहित्यिक रुचि का व्यक्ति था। उसकी अनेक कृतियों में इस समय सिर्फ दो "मुख्तसर तारीख इल-बशर" नामक ऐतिहासिक और तकवीम-इल-बुलदान नामक गणित का पुस्तकें उपलब्ध हैं।

अर्ध मागधी

बौद्ध और जैन काल में मगध प्रान्त की एक भाषा। जैन धर्म के महान् तीर्थंकर भगवान् महावीर ने अपनी देशना इसी भाषा में की थी।

अर्ध मागधी प्राकृत भाषा की ही एक शाखा है। हेमचन्द्राचार्य्य ने इसे "आर्ष-प्राकृत" भाषा कहा है। जैन परम्परा के अनुसार समवशरण में तीर्थंकर महावीर के मुख से उनकी देशना अर्द्धमागधी में ही उच्चारित होती थी। जिसे सब प्राणी समझ लेते थे। आगे चल कर भगवान् महावीर के शिष्यों ने भी उनके उप-

देशों का संग्रह अर्द्धमागधी ही में किया जो आगम कहलाये। आवश्यकतानुसार समय-समय पर इन जैन आगमो में तीन बार संशोधन हुए। अन्तिम संशोधन महावीर निर्वाण संवत् १००० के करीब वल्लभी (गुजरात) में देवर्धिगण क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में हुआ। इस समय सारे आगमों को फिर से संशोधित किया गया। समय समय पर होनेवाले संशोधनों से विषय और भाषा की दृष्टि से कुछ परिवर्तन हुए। इसी से येआगम श्वेताम्बर परम्परा के द्वारा ही मान्य माने जाते है। दिगम्बरी के परपम्रा के अनुसार असली आगम लुप्त हो चुके हैं।

अलवर

भारतवर्ष के राजस्थान प्रान्त का मुख्य नगर, स्वाधीनता के पहले एक देशी राज्य की राजधानी।

राजपूत वीर प्रताप सिंह ने सन् १७४० के करीब अलवर राज्य की स्थापना की थी। प्रताप सिंह के दत्तक पुत्र बख्तावर सिंह ने इस नगर की बहुत उन्नति की।

अलवर के दर्शनीय स्थानों में राजा बन्नी सिंह का महल, तारंग सुलतान की दरगाह तथा राजा बख्तावर सिंह का स्मृति स्तम्भ उल्लेखनीय है।

अलीगढ़

उत्तर रेलवे की देहली हवड़ा लाइन पर बसा हुआ उत्तरप्रदेश का मशहूर शहर और जिला।

अलीगढ़ का इतिहास बहुत पुराना है। इसका पुराना नाम कोयल था। सन् ११६४ में कुतुबुद्दीन ने इस नगर पर अधिकार किया। उसके पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में इस नगर पर जाटों ने अधिकार कर इसका नाम रामगढ रक्खा। कुछ समय पश्चात् नजफ खाँ नामक एक मुसलमान सरदार ने इसका नाम अलीगढ़ रक्खा।

अलीगढ़ मुस्लिम संस्कृति का भारतवर्ष में शायद सबसे बड़ा केन्द्र है। सुप्रसिद्ध मुस्लिम विश्वविद्यालय भी यहीं पर स्थापित है जिसकी स्थापना में सर सैय्यद अहमद ने बहुत परिश्रम किया था। औद्योगिक दृष्टि से अलीगढ़ तालों के व्यवसाय का भारत में बहुत बड़ा केन्द्र है।

अवधी-भाषा और साहित्य

हिन्दी भाषा के परिवार की एक भाषा जो के अवध-प्रान्त में बोली जाती है।

महा कवि तुलसीदास ने अपना सुप्रसिद्ध रामचरितमानस अवधी भाषा में लिखकर अमर कर दिया है। वैसे रामचरित मानस में संस्कृत का बहुत अधिक प्रभाव है। फिर भी साथ भाषा से प्रभावित हिन्दी में लिखा होने से श्रेय अवधी भाषा को ही मिलता है।

इसके अतिरिक्त संत कवि मलूक दास, मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत तथा खानखाना अब्दुर्रहीम के काव्य भी अवधी भाषा में लिखे गये हैं। अवधी की आधुनिक काव्य-परम्परा में प्रतापनारायण मिश्र का नाम उल्लेखनीय है।

अष्टाध्यायी

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध व्याकरणाचार्य पाणिनी का संसार प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ। जिनका समय ईस्वी सन से पूर्व पाँचवीं शताब्दी का माना जाता है।

पाणिनी संस्कृत व्याकरण के महान् आचार्य माने जाते हैं। इनके "अष्टाध्यायी" नामक प्रसिद्ध व्याकरण की गणना छः वेदांगों में होती है। इसमें ३९८१ सूत्र और प्रारम्भ में वर्ण समाम्नाय के १४ प्रत्याहार सूत्र हैं।

अष्टाध्यायी में संस्कृत और वैदिक संस्कृत के संगठन और उसके सौष्ठव के सम्बन्ध में व्याकरण सम्बन्धी पूर्ण विचार किया गया है।

असुर नजीर पाल

असीरियन या असुर जाति का एक सुप्रसिद्ध राजा। जिसका समय ईसा से ८८४ वर्ष पूर्व से ८५९ वर्ष पूर्व तक माना जाता है।

असुर नजीर पाल संसार के प्रसिद्ध साम्राज्य-विजेताओं में से एक गिनाजाता है। इसने सबसे पहले अपने पूर्व और उत्तर के देशों पर आक्रमण कर दक्षिण आरमेनिया से सिलीशिया तक अपनी विजय का झण्डा गाड़ दिया। उसके पश्चात् फरात, सीरिया, लेबनान और फिनिक नगरों

...मिश्र..., वहाँ के राजा ने भी उसके ... आत्म समर्पण कर दिया।

... एक उत्कृष्ट सैन्य संगठनकर्ता और ... था। उसने उस समय की प्रथा के ... सैनिक पदों से सज्जित किया था।

... अत्याचारी भस्मा- ... आते हैं कहा ... अब्राम अमर नजीर पाल ...।

... स्वभाव का क्रूर पुरुष था। ... लेकर मारना, स्त्री और ... की हत्या ... यह बहुत बदनाम था।

अनवर

...कवि जौक की परम्परा में उर्दू भाषा के एक प्र... कवि।

...र्दू के महाकवि जौक की शिष्य-परंपरा में सैकड़ो क..., पर उनमें दाग, आजाद, जफर, जहीद और अ... विशेष उल्लेखनीय है। जहीर और अनवर दोनो स... भाई थे। कवि अनवर पहले जौक के शिष्य हुए और जौक की मृत्यु के पश्चात् ये महाकवि गालिब से मार्ग ...र्शन लेने लगे।

सन १८५७ की क्रान्ति के १० वर्ष पश्चात् इन्होंने दिल्ली में एक शायर-गोष्ठी आरम्भ की। जिसमें दाग, जहीर, ..., सालिक, अजीज इत्यादि कवि एकत्रित होते थे।

अनवर ने जौक, गालिब तथा मोमिन तीनों ही की शैली को ग्रहण करके उर्दू की एक नवीन शैली का निर्माण किया था।

५७ की क्रान्ति के समय में दिल्ली में बहुत कष्ट पाकर अनवर जयपुर चले गये थे। वहाँ ३८ वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु हो गई।

अनीस

मीर बबरअली अनीस, जिनका जन्म सन १८०२ ई० में फैजाबाद में हुआ था। ये उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि थे।

कवि अनीस मर्सिये के एक प्रसिद्ध कवि थे। इनके लिखे हुए मर्सियों के ६ खंड प्रकाशित हो चुके हैं और बहुत से अभी अप्रकाशित पड़े हुए हैं। गजलों का भी उन्होंने एक दीवान लिखा था।

अनीस ने उर्दू भाषा को परिमार्जित करने का बहुत बड़ा प्रयत्न किया। इनकी शब्द योजना तथा सरल और प्रसाद गुण से पूर्ण होती थी। कविता का प्रवाह ऐसा सुन्दर होता था कि पढ़ने में कहीं भी ... नहीं पड़ती थी। उर्दू साहित्य के इतिहास में इनका स्थान बहुत ऊँचा है और कई लोग इनकी तुलना फिरदौसी और होमर के साथ करते हैं। इनकी कविता का नमूना—

देखना ... ठोकरें खाते फिरेंगे इनके साथ
आज नकबत से जमीं पर जो कदम रखते नहीं।
जो सखी हैं माजे-दुनियां मे है खाली उनके हाथ,
अहले दौलत जो हैं वह दस्ते करम रखते नहीं।
अनीस दम का भरोसा नहीं ठहर जाओ—
चिराग लेके कहां सामने हवा के चलें।

अपश्रोकी

खित्तन राजवंश का संस्थापक। समय सन् ६०७ से ६२६ तक।

खेताई ... का एक प्रसिद्ध राजवंश था। जिसने चाऊ वंश के रूप में सन् ६६० से ११२६ तक शासन किया।

मगर खित्तनों के कुछ कबीलों ने चीन से स्वतन्त्र हो आपस में एकता स्थापित कर अपने संघ का नाम स्यांग-लो-बे-मुलो रक्खा। ये आठ कबीले थे, जिनके अलग-अलग मुखिया हुआ करते थे। ये सब मुखिया मिलकर अपना एक सरदार चुन लेते थे और उसी सरदार के अधीन रहकर काम करते थे।

...सवीं सदी के आरम्भ में जब कि थांग वंश का स्थान ...दी तुर्कवंश ने लिया उस समय खित्तनो के इन आठ कबीलों का सरदार अपश्रोकी था। अपश्रोकी एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। चीन के व्यवस्थित शासन को देखकर उसे भी एक राज्य-स्थापन करने की कल्पना सूझी। उसने एक नगर बसाकर वहाँ अपनी राजधानी कायम की, और धोखे से कबीलों के सब सरदारों को मरवा कर स्वयं राजा बन बैठा। अपश्रोकी बहुत शक्तिशाली शासक और सेनापति था।

अपश्रोकी ने उस समय के सबसे शक्तिशाली कबीले बोत्सकाई पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी फ्यूचिंग पर अधिकार कर उसका नाम "पूर्वीतान" रखकर अपने पुत्र ताइ-चुँग को वहाँ का राजा बना दिया।

अपश्रोकी के समय में ही किसी चीनी कारीगर ने चीनी संकेत लिपि और चित्रलिपि को मिला-जुलाकर एक नवीन चीनी लिपि का आविष्कार किया था। शासन स्थापित करने के पहले अपश्रोकी का कबीला सालिंग नदी पर चरवाही करता था। जो कि मंचूरिया और मंगोलिया की सीमा पर बहती थी। वहीं पर उसने अपनी राजधानी "भुजंग" का निर्माण किया था।

अमीना बेगम

नवाब अलीवर्दी खाँ की लड़की और सिराजुद्दौला की माता।

प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला हार कर जब गिरफ्तार हो गया तब मीरजाफर के पुत्र मीरन ने सिराजुद्दौला के गुलाम, मुहम्मद खाँ के द्वारा सिराजुद्दौला का सिर कटवा दिया। मगर वह इतने ही से सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह मृत नवाब के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवा कर उन टुकड़ों को हाथी की पीठ पर लदवा कर सारे नगर की प्रदक्षिणा करते हुए अमीना बेगम के मकान के ऊपर ले गया और उसकी माँ के सामने उसके लड़के के जिस्म के टुकड़े डाल दिये। अभागी अमीना बेगम इस भयङ्कर दृश्य को देखकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी और बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। इस हृदय द्रावक और करुणाजनक दृश्य को देखकर सैकड़ों आदमी रोने लगे। उसके बाद मीरन ने अमीना बेगम, घसीटी बेगम, सिराजुद्दौला की स्त्री लुत-फुन्निसा बेगम, उसकी कन्या तथा और दूसरी सत्तर स्त्रियों को नदी में डुबोकर मार डाला।

अम्बिका चक्रवर्ती

सुप्रसिद्ध चटगाँव शस्त्रागार--डकैती के अभियुक्त। १८ अप्रैल सन् १९३० ई० को बंगाल के चटगाँव नगर में करीब सत्तर नौजवानों ने मिल कर वहाँ के सारे शस्त्रागार को लूट लिया। इस डकैती के नेता सूर्य सेन, अम्बिका चक्रवर्ती, अनन्त सिंह, गणेश घोष इत्यादि व्यक्ति थे। इस डकैती के अभियुक्तों में से करीब पन्द्रह अभियुक्त सामने लड़ाई में मारे गये और बहुत से लोग पकड़े गये। पकड़े जाने वालों में से अम्बिका चक्रवर्ती भी थे जिन्हें ट्रिब्युनल अदालत ने कालेपानी की सजा दी।

अपोलोनियस

रोम साम्राज्य के रोड्ज स्थान का रहने वाला वक्तृत्व कला का विशेषज्ञ। जिसने अपने यहाँ राजनीति और वक्तृत्व कला की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोल रक्खा था।

रोम का मशहूर वक्ता और गद्यलेखक सिसरो और जूलियस सीजर दोनों ने अपोलोनियस के विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी। सीजर में कुशल वक्ता और राजनीतिज्ञ बनने की स्वाभाविक कामना थी। इसी कामना के बल पर इन विषयों में उसने शीघ्र ही असीम योग्यता प्राप्त कर ली।

अर्जुन

देहली से निकलने वाला हिन्दी भाषा का एक दैनिक पत्र जो सन् १९२३ से निकल रहा है।

हिन्दी के प्रसिद्ध सम्पादक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने प्रारम्भ में अर्जुन को राष्ट्रीय भावनाओं के प्रतीक के रूप में निकाला था। समय २ पर इन्द्रजी के गम्भीर, विचारपूर्ण और संतुलित लेखों से यह अलंकृत होता रहता था। हिन्दी के दैनिक पत्रों में इसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

इसके बाद कुछ समय पूर्व इसका मैनेजमेंट जनसंघ के समर्थक लोगों ने खरीद लिया। इसके पश्चात् छपाई, सफाई और गेटअप की दृष्टि से इसका स्तर पहले से नीचा हो गया। पर इसके सम्पादकीय लेख जो श्री नरेन्द्र के द्वारा लिखे जाते हैं तथा वे लेख जो आर्य्यसमाज के पुराने सेवक महाशय कृष्ण के द्वारा लिखे जाते हैं एक खास विचारधारा के समर्थक होते हुए भी, प्रांजल भाषा, प्रौढ़-भाव और संतुलित विचारधारा के कारण उच्चश्रेणी के होते हैं। इसके सम्पादकीय लेखों की भाषा पर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है।

अघोर-सम्प्रदाय

ऐसा अनुमान किया जाता है कि अघोर सम्प्रदाय की स्थापना सुप्रसिद्ध तंत्रशास्त्री गुरु गोरखनाथ के द्वारा की गई और जिसका विशेष प्रचार बाबा मोतीनाथ ने किया।

अघोर पंथ या औघड़ पंथ तान्त्रिक साधना की ही एक शाखा है। इस पंथ के सन्यासी मनुष्य की घृणा प्रवृत्ति पर विजय पाने के लिए ऐसे सब काम करते हैं जिसे साधारण लोग अत्यन्त घृणित समझते हैं। मदिरा का पान करना, मनुष्य की मृतक देह की साधना करना, मुर्दे का माँस खाना, उसकी खोपड़ी में मदिरापान करना तथा घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार भी ये लोग करते हैं।

विलियम क्रुक नामक अंग्रेज विद्वान ने अघोर-सम्प्रदाय की उत्पत्ति का मुख्य स्थान राजपूताने के आबू पर्वत को बतलाया है। वहीं से इस मत का प्रचार नैपाल, गुजरात तथा ईरान तक फैला। इसके अनुयायियों में हिन्दू, मुसलमान सभी जातियों के लोग हैं।

अघोर पंथ की तीन शाखाएँ हैं औघड़ पंथ, सरभंगी-पथ और घुरे-पंथ। इन शाखाओं में औघड़ शाखा के अन्तर्गत बाबा कालूराम औघड़ का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इन्हीं के शिष्य बनारस के बाबा किनाराम हुए। जिन्होंने इस सम्प्रदाय का बहुत प्रचार किया, ये "कृमि-कुण्ड" नामक स्थान पर रहते थे।

औघड़ सम्प्रदाय में बाबा किनाराम का नाम बहुत प्रसिद्ध है इन्होंने अपने मत का प्रचार करने के लिए रामगढ़, देवल, हरिहरपुर तथा कृमि कुण्ड पर चार मठों की स्थापना की। इन्होंने अपने मत का प्रचार करने के लिए "विवेकसार" नामक ग्रन्थ की रचना की। जो कि इस पंथ का एक प्रमुख ग्रन्थ है।

इस सम्प्रदाय के अनुयायी अपना सम्बन्ध गुरु दत्तात्रय के साथ जोड़ते हैं—जिनकी उत्पत्ति मद-कलश के साथ होना बतलाई जाती है। औघड़ पंथ के साधु अपने सिर पर जटा, गले में स्फटिक की माला, कमर में घाघरा, एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में मनुष्य की खोपड़ी रखते हैं। इनकी आकृति बड़ी भयङ्कर होती है।

अघोर पंथ की दूसरी सरभंगी शाखा का प्रचार बिहार के चम्पारन जिले में अधिक पाया जाता है। इस शाखा के आचार्यों में बाबा भिनकराम, बाबा बालखण्डी, बाबा टेकमनराम इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है।

अलहम्ब्रा

स्पेन के ग्रेनेडा नामक स्थान पर मध्यकालीन मुसलमानी साम्राज्य के द्वारा बनाया हुआ एक राजभवन। जो तत्कालीन भवन-निर्माण-कला और स्थापत्य-कला का एक उच्च आदर्श उपस्थित करता है। समय ई० सन् १३३४-१३९१।

चौदहवीं शताब्दी के अन्त में मोहम्मद पंचम नामक सुलतान ने डारौ नदी के किनारे पर एक विशाल दुर्ग का निर्माण करवाया था। इसी दुर्ग में "अलहम्ब्रा आल्ता" के नाम से यह सुन्दर राजभवन लाल ईंटों से बनाया गया है। दीवारों के ऊपर ऊँचे-ऊँचे गुम्बज बने हुए हैं। इसकी दीवालों की रंगाई में गाढ़े और भड़कीले रंगों का उपयोग किया हुआ है। इन रंगों के ऊपर जब सूर्य की बाल-किरणें अपना प्रतिबिम्ब डालती हैं, तब इस महल का दृश्य बड़ा लुभावना हो जाता है।

इसी महल में अल-बोको नामक एक सुन्दर सरोवर बना हुआ है, तरह-तरह की मछलियाँ इस सरोवर के सौन्दर्य को बढ़ाती रहती हैं। एक तरफ एवांबादोरेज नाम से एक मेहमान भवन बना हुआ है, जिसमें ३० वर्गफुट ऊँचा एक सिंहासन बना हुआ है और जिसका गुम्बज ५० फुट ऊँचा है। दूसरी तरफ के आँगन में एक बहुत ऊँचा फव्वारा सिंह के मुँह से छूटता रहता है।

इस प्रकार मुसलमानी भवन निर्माण-कला का यह सुन्दर नमूना आज भी संसार के दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। हालां कि समय के भीषण प्रहारों से इस दुर्ग की दीवारें नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी हैं।

अम्बिका प्रसाद वाजपेयी

हिन्दी भाषा के एक सुप्रसिद्ध पत्रकार। जो कई वर्षों तक कलकत्ते से निकलने वाले भारत-मित्र दैनिक के और उसके पश्चात् "स्वतंत्र" दैनिक के सम्पादक रहे। भारतीय पत्रकार क्षेत्र में ये एक माने हुए पत्रकार हैं। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

अन्सार

हजरत मुहम्मद के मक्का से भाग कर मदीना जाने पर जिन लोगों ने तहेदिल से उनकी मदद की वे "अन्सार" या मददगार कहलाये। मुसलमानों में अन्सारों का दर्जा आज भी प्रतिष्ठा का दर्जा माना जाता है।

अमीर खुसरो

फारसी और उर्दू का एक महान् कवि। अमीर खुसरो का जन्म एटा जिले के पटियाली ग्राम में सन् १२५५ ई० में हुआ था। यह जन्मजात कवि की प्रतिभा लेकर पैदा हुआ था। १२ वर्ष की अवस्था से ही इसने कविता लिखना प्रारम्भ किया था। यह निजामुद्दीन औलिया का शिष्य बना। खुसरो ने अपने युग में कई उत्थान और पतन देखे। इसके जीवन में दिल्ली के सिंहासन पर ११ सुल्तान बैठे। इसने अपनी आँखों के सामने गुलाम राजवंश का उत्थान देखा। फारसी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इस साहित्य में इन्हें तूतिये हिन्द की पदवी से विभूषित किया गया था।

ऐसा कहा जाता है कि उर्दू भाषा में कविता करनेवालों में अमीर खुसरो सबसे पहला कवि था। अमीर खुसरो सर्वतोमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह कवि, भाषा शास्त्री, गायक और विद्वान् सभी कुछ था। कवि की हैसियत से वह फारसी भाषा के श्रेष्ठतम कवियों—शेख सादी, फिरदौसी, अनवरी, हाफिज की कोटि का था। उसकी लिखी हुई रचनाओं में पाँच दीवान, पाँच मसनवियाँ, पाँच ऐतिहासिक कविताएँ और तीन गद्य कृतियाँ उपलब्ध हैं।

अमीर अली

भारत के भूतपूर्व न्यायाधीश। जिन्होंने सर आग खाँ के सहयोग से लन्दन से एक पत्र मुस्तफा कमाल पाश को लिखा। इन दोनों व्यक्तियों ने अपने आपको भारत मुसलमानों का प्रतिनिधि बतलाते हुए कमाल पाशा द्वा खलीफा के साथ किये हुए दुर्व्यवहार का विरोध किय और अनुरोध किया कि खलीफा की प्रतिष्ठा को कायम रक्ख जाय और उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाय।

उन्होंने इस पत्र की प्रतिलिपियाँ इस्तम्बूल के कु अखबारों को भी भेजीं। दुर्भाग्यवश वह पत्र कमालपाश के पास पहुँचने के पहले पत्रों में प्रकाशित हो गया। इसक कमाल पाशा ने तुरन्त फायदा उठाया। उसने यह प्रक किया कि तुर्की लोगों में फूट डालने की यह एक औ अंग्रेजी चाल है। आगा खाँ और अमीर अली अंग्रेजों एजेण्ट हैं इत्यादि। इस्तम्बूल के जिन पत्रों ने इस पत्र क छापा था उन्हें देशद्रोही करार देकर कठोर दण्ड दि गये और खिलाफत को खतम करने का बिल नेशनल असेम्बली में पास करवा कर एक ऐसी संस्था का हमेश के लिए खात्मा कर दिया जिसने इतिहास में बड़े प्रभा शाली पार्ट अदा किये थे।

अमोघ वर्ष प्रथम

कन्नौज का राष्ट्रकूट वंशीय राजा। राजा गोवि राज का पुत्र। यह करीब ई० सन् ८१५ में गोविन्द राज मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा था।

राष्ट्रकूट वंश की कन्नौज शाखा ने दक्षिण में रा दन्तिवर्मा के नेतृत्व में सन् ५६३ में अपना एक रा कायम किया था। इसी से दक्षिण के उस भाग का ना महाराष्ट्र पड़ा। इस वंश का राज्य करीब चार शताब्दि तक रहा। इस अवधि में १६ राष्ट्रकूट राजा दक्षि में हुए।

इसी दन्ति वर्मा की ग्यारहवीं पुश्त में "अमोघ वर्ष" नामक राजा हुआ। जो करीब ई० सन् ८१५ में अप पिता गोविन्दराज की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा।

अमोघ वर्ष बड़ा प्रतापी, वीर और विद्वान राजा था छोटी उमर में ही यह राज्य सिंहासन पर बैठा था। इस

अपनी राजधानी मान्यखेट जो इस समय निजाम स्टेट में मालाखेड़ के नाम से प्रसिद्ध है बनाई थी। इसने करीब ६२ वर्ष राज्य किया। यह राजा स्वयं बड़ा विद्वान और विद्वानों का आदर करने वाला था। जैन धर्म का उपासक होन के कारण जैन विद्वानों और साधुओं का भी यह बड़ा सम्मान करता था।

इस अमोघ वर्ष प्रथम के समय में अरब के सौदागर मुलेमान ने "सिल्सिलु तवारीख" नामक एक ग्रन्थ ई० सन् ८५२ में लिखा था। इसमें मुलेमान ने बलहरा (उस समय के मुसलमान इतिहासकारों ने इन लोगों को बल्लभराज का वंशज होने से "बलहरा" नाम से लिखा है) का वर्णन करते हुए लिखा है—

"बलहरा का भारत में सबसे बड़ा साम्राज्य है। इनके दूत दूसरे राजाओं के यहाँ बड़ा आदर पाते हैं। ये महाराजा अरब वालों की तरह बड़े दानी हैं। इनके पास विपुल धन तथा हाथी, घोड़े और ऊँटों की सेना है। इनका राज्य दक्षिण कोकण से चीन तक फैला हुआ है। अरब वालों की तरह ये अपनी फौज को समय पर तनख्वा देते हैं। बलहरा किसी का खास नाम नहीं है पर इनका खानदानी खिताब है जैसा कि ईरान के बादशाहों का खानदानी खिताब खुसरो है। हिन्दुस्तान में और कोई राज्य चोरों से इतना सुरक्षित नहीं है जितना यह राज्य है।"

कुछ इतिहासकारों के मत से अमोघ वर्ष शिलाहार वंश का था और कन्नौज के राष्ट्रकूटों का माण्डलिक था। इसने जैन यतियों को कुछ दान दिये थे। जिनके सम्बन्ध का एक शिलालेख कन्हेरी (कृष्णगिरि) की एक गुफा में शालिवाहन शक ७६५ अर्थात् ई० सन् ८४३ का खुदा हुआ मिला है।

अब्दुल्ला शेख

कश्मीर का प्रसिद्ध नेता शेख अब्दुल्ला जिसने असहयोग क्रान्ति के समय में गाँधी जी का पूरा साथ दिया। काश्मीर में नेशनल कान्फ्रेन्स की स्थापना कर उसका नेतृत्व किया। मगर भारत को स्वाधीनता मिलने के पश्चात् जिसके दिमाग में भारत विरोधी भावनाएँ पैदा हुईं। कश्मीर के भारत में विलय का वह विरोधी हो गया। वह या तो कश्मीर को एक स्वतंत्र स्टेट के रूप में रखकर वहाँ का शासक बनना चाहता था और यदि यह न हो सके तो कश्मीर को पाकिस्तान में विलय करने का समर्थक हो गया।

अपनी राज-विद्रोही प्रवृत्तियों के कारण कश्मीर सरकार ने उसे नजरबन्द कर दिया। कुछ समय बाद इस आशा से छोड़ा कि शायद उसकी वृत्तियाँ कुछ रास्ते पर आ जायँ। मगर शेख अब्दुल्ला छूटने के बाद भारत सरकार के विरुद्ध और बौखलाने लगा। तब उसे फिर से गिरफ्तार किया गया और अब उस पर कश्मीर सरकार को उलटने के अभियोग पर अदालत में केस चल रहा है।

अशीकागा शोगनशाही

जापान में शोगन लोगों की एक प्रसिद्ध शाखा जिसने सन् १३३८ से १५५३ तक जापानी सम्राट् की आड़ में जापान का शासन किया।

जापानी सम्राट् की अधीनता में काम करने वाले बड़े-बड़े सामन्तों और जमीदारों में से जो अपने साथ सैनिक शक्ति भी रखते थे, ईसा की दसवीं सदी में एक नया वर्ग पैदा हुआ जो दाइम्यो कहलाता था। दाइम्यो लोग अपनी-अपनी सैनिक टुकड़ियों की मदद से धीरे-धीरे शक्तिशाली होते गये। इन्हीं दाइम्यो में आगे चलकर "योरीतोमो" नामक एक बड़ा प्रतापी पुरुष हुआ यह जापान के प्रसिद्ध मिनामोतो घराने का था। इसी को तत्कालीन जापान सम्राट् ने "ताई-शोगन" या महान सेनापति की उपाधि दी। तभी से शोगन शब्द ने जापान के राजनैतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया। करीब एक हजार वर्ष तक जापान की वास्तविक सत्ता इन्हीं "शोगन" लोगों के हाथ में रही।

सन् १३३८ में "अशीकागा" नामक एक प्रसिद्ध शोगन हुआ। इसकी स्थापित की हुई "अशीकागा शोगन शाही" सन् १३१८ से १५५३ तक अर्थात् २३५ वर्षों तक जापान पर शासन करती रही।

अहमद शौकी

अरबी भाषा का प्रसिद्ध नाटककार। जिसने "मसरा क्लियोपेट्रा" "मजनूं लैला" "अली-बेअल-कबीर" इत्यादि अनेक नाटक लिखकर आधुनिक अरबी के नाट्य-साहित्य में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव कर दिया। समय सन् १६२४।

शौकी की रचनाएँ राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर निर्मित हैं उसने मिस्र के नाटकीय रंगमंच को एक नया जीवन प्रदान कर दिया। पद्य की दिशा में उसने छन्द और तुक को केवल साधन मान कर, उनकी प्राचीन सीमाओं को तोड़ दिया, जिससे उसकी कविताएँ पहाड़ी निर्झर की तरह स्वच्छन्द गति से बहने लगीं। गद्य के क्षेत्र में भी उसने भाषा को सरल और प्रवाही बना कर उसे एक नया रूप दिया। जिससे भाषा की कृत्रिमता और उसका बोझिलपन दूर हो गया।

अहिल्या बाई होलकर

होलकर वंश की इतिहास प्रसिद्ध रानी। मल्हार राव होलकर की पुत्रवधू, खण्डेराव की पत्नी, आनन्द राव शिन्दे की पुत्री, मालीराव होलकर की माता (जन्म सन् १७२५ मृत्यु सन् १७६५)

भारत वर्ष के मध्यकालीन इतिहास में, एक राज्यकर्त्री नारी के रूप में, एक धर्मपरायणा महिला के रूप में और एक प्रजावत्सल शासिका के रूप में अहिल्या बाई का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

अहिल्या बाई का जन्म सन् १७२५ में मालवा प्रान्त के एक छोटे गाँव में आनन्द राव शिंदे के यहाँ हुआ था। इनका विवाह इन्दौर के होलकर राजवंश के संस्थापक मल्हारराव होलकर के पुत्र खण्डेराव से हुआ था। मगर खण्डेराव का देहान्त छोटी उमर में हो जाने से और मालीराव के अयोग्य होने से राज्य-शासन की बागडोर स्वयं अहिल्या बाई को सम्हालनी पड़ी।

जिस समय अहिल्या बाई ने राज्य-शासन की बागडोर अपने हाथ में ली उस समय भारत की राजनैतिक अवस्था बड़ी डाँवाडोल हो रही थी। एक ओर औरंगजेब की गलत राजनीति से मुगल साम्राज्य का सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, दूसरी ओर अंग्रेजी शासन का भी प्रारम्भ काल होने से उसकी व्यवस्था ठीक से जम नहीं पाई थी। चारों तरफ अराजकता के दृश्य, अशान्ति और खून खराबी के नजारे तथा ठगों और पिण्डारियों की लूट-मार से जनता त्रस्त हो रही थी।

ऐसे भीषण अशान्ति के समय में एक विधवा महिला के द्वारा शान्ति-पूर्वक राज्य-शासन का चलाना बिलकुल सम्भव नहीं था मगर अहिल्याबाई ने ईश्वर पर अटल विश्वास रख कर उस असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। यही कारण है कि भारतीय नारियों के इतिहास में अहिल्या बाई का नाम एक धार्मिक नारी और एक राज्यकर्त्री के रूप में अमर अक्षरों में लिखा रहेगा।

एक राज्य-शासिका के रूप में अहिल्या बाई ने होलकर वंश की नींव को जमा कर मजबूत कर दिया। अधिक पढ़ी लिखी न होने पर भी स्वयम्भू ज्ञान से प्रति दिन वह सारा राज्य-कार्य स्वयं देखती थी। प्रजा को क्या-क्या कष्ट हैं उन्हें समझ कर दूर करने का तत्काल आदेश देती थी। उसकी तरफ से दीन, दुःखी और गरीबों को प्रतिदिन खाने को अन्न और जाड़े में वस्त्र बाँटे जाते थे।

अहिल्याबाई का मन्त्री गंगाधर राव सारे राज्य-शासन को अपने हाथ में रखने का इच्छुक था। उसके कहने से पेशवा के चाचा राघोबा दादा ने अहिल्या बाई के राज्य पर आक्रमण कर दिया। अहिल्याबाई ने एक स्त्रियों की फौज तैयार की और खुद उसकी सेनापति बन राघोबा से मुकाबिला करने चली। राघोबा स्त्रियों की फौज को सामने देख कर घबरा गया और लज्जित होकर वापस चला गया।

अहिल्या बाई ने अपने सारे कोष पर तुलसी दल चढ़ा कर उसे कृष्णार्पण कर दिया था। उस खजाने को वह जनता के हित के लिए और धार्मिक कार्यों में खर्च करती थी। हिन्दुस्तान के प्रायः सभी तीर्थ क्षेत्रों में जैसे बनारस, प्रयाग, हरिद्वार, रामेश्वरम्, पण्ढरपुर, महेश्वर, पुष्कर इत्यादि अनेक स्थानों की पवित्र नदियों पर उसने बड़े-बड़े घाट, धर्मशालाएँ, स्कूल और अन्य क्षेत्र बनाये थे, जो आज भी उसकी अमरकीर्ति का डंका बजा रहे हैं। बनारस

का अहिल्या बाई घाट अत्यन्त प्रसिद्ध घाट है जो सुप्रसिद्ध दशाश्वमेध घाट से जुड़ा हुआ है।

जिन लोगों का विश्वास है कि धर्म और राजनीति दोनों चीजें साथ-साथ नहीं चल सकतीं। अहिल्याबाई का जीवन उनके लिए इतिहास का एक ज्वलन्त उदाहरण है जो यह सिद्ध करता है कि धर्म परायण राजाओं या रानियों में राज्य विस्तार की उत्कट लालसा चाहे न रहती हो मगर उनके राज्य में प्रजा सुखी, सन्तुष्ट और नैतिक धरातल से युक्त रहती है। उनकी प्रजा में कष्ट, अशान्ति और आतंक का राज्य अपेक्षाकृत बहुत कम होता है।

अहिल्या बाई के शासनकाल में ही इन्दौर नगर ने बड़ी तरक्की की और वह मालव का एक प्रसिद्ध नगर हो गया। अपने राज्य के महेश्वर नामक नगर को जो नर्मदा नदी के किनारे बसा है उसने अनेक घाटों और छत्रियों से सुसज्जित कर अत्यन्त दर्शनीय बना दिया। वहाँ पर अहिल्याबाई की स्मृति में एक सुन्दर छत्री भी बनी हुई है।

अक्षयकुमार दत्त

बंगाल के एक प्रसिद्ध दार्शनिक, विचारक और उग्र राजनैतिक नेता जिनका जन्म सन् १८२० में और मृत्यु सन् १८८६ में हुई।

अक्षय कुमार दत्त बंगाली के प्रसिद्ध लेखक और विचारक थे। राजा राममोहन राय की विचारप्रणाली का इनके विचारों पर गहरा असर पड़ा था।

अक्षयकुमार दत्त ने बंगाल की तत्कालीन तत्त्व-बोधिनी नामक पत्रिका का सन् १८४३ ई० से सन् १८५५ ई० तक बड़ी योग्यता से सम्पादन और संचालन किया। उक्त पत्रिका में उन्होंने भारतीय राष्ट्र के उत्थान के लिये और गरीब किसानों के लिये बड़ी जोरदार आवाज उठाई। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने उनके "भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय" नामक ग्रन्थ के दूसरे भाग की भूमिका में लिखा है कि अक्षय कुमार दत्त पहले लेखक थे जिन्होंने बंगाली युवकों को पाश्चात्य दृष्टिबिन्दु और मनोवृत्ति का परिचय कराया। वे नवीन बंगाल के प्रथम नैतिक आचार्य थे।

अज्ञेय

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय"।

स्व० प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी के उपन्यास क्षेत्र में जो दूसरा दौर चला उसका प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ प्रख्यात उपन्यासकारों में श्री "अज्ञेय" भी एक हैं। इनके उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास क्षेत्र को एक नया मोड़ दिया। इनकी अनेक रचनाओं में "विपथगा" "भग्नदूत" "विश्व-प्रिया" "वातायन" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

अज्ञेयवाद

ई० पू० छटी शताब्दी में "सञ्जय वेलट्ठिपुत्त" द्वारा स्थापित "अज्ञेयवाद" का सिद्धान्त।

ई० पू० की छठीं शताब्दी संसार में धर्म-क्रान्तियों की और नवीन विचार परम्पराओं को जन्म देने वाली शताब्दी थी।

इसी शताब्दी में भारतवर्ष में "सञ्जय वेलट्ठिपुत्त" नामक एक तत्वदर्शी हुआ। इसने "अज्ञेयवाद" नामक सिद्धान्त को जन्म दिया। "सामञ्ञ फल सुत्त" नामक बौद्ध ग्रन्थ में उसका विवेचन करते हुए लिखा है—

"महाराज, यदि तुम मुझसे प्रश्न करोगे कि जीव की कोई भावी अवस्था है? तो मैं यही उत्तर दूँगा कि जब मैं उस अवस्था का अनुभव कर सकूँगा तभी उसके विषय में कुछ कह सकूँगा। यदि तुम पूछोगे कि क्या इसी भव में सब कुछ नष्ट हो जाता है? तो भी मैं यह कहूँगा कि यह मेरा विषय नहीं है, इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् तथागत की स्थिति रहती है या नहीं? रहती है? यह भी नहीं, नहीं रहती है यह भी नहीं। इस प्रकार तमाम प्रश्नों का वह ऐसा ही उत्तर देता था।"

इस प्रकार अज्ञेयवाद किसी भी वस्तु के अस्तित्व या नास्तित्व के सम्बन्ध में कोई निर्णयात्मक उत्तर नहीं देता। वह हर वस्तु को अज्ञेय मानता है।

डॉ० हर्मन जेकोबी का कथन है कि सञ्जय के इसी अज्ञेयवाद के विरुद्ध महावीर ने अपने प्रसिद्ध सप्तभंगी न्याय की सृष्टि की थी। सञ्जय के अज्ञेयवाद और जैनियों के स्याद्वाद में सबसे बड़ा और महत्व का अन्तर यही है कि जहाँ संजय

किसी भी वस्तु के स्वरूप का निर्णय करने में संशयवाद का आश्रय लेता है वहाँ स्याद्वाद बिलकुल निश्चयात्मक ढंग से वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को प्रतिपादित करता है।

यूरोपीय दर्शनपरम्परा में जर्मन दार्शनिक कैण्ट, फ्रेंच दार्शनिक काम्ट, हर्बर्ट स्पेन्सर इत्यादि विद्वान अज्ञेयवाद के समर्थक माने जाते हैं।

अलेरिक

प्राचीन जर्मनी में बसने वाली गाथ जाति की पश्चिमी शाखा का एक इतिहास प्रसिद्ध सरदार, जिसका समय सन् ३७१ ई० से ४१० ई० तक माना जाता है।

अलेरिक प्रारम्भ में रोमन सम्राट् की सेना का एक सेनापति था। उसके साहस और शौर्य को देखकर उसकी सेना ने एकबार उसे अपना राजा घोषित कर दिया। तभी से उसका साहस बढ़ गया और स्वतंत्र होकर उसने अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ कर दिया। पहले उसने पूर्वी रोम साम्राज्य को नहस नहस कर डाला फिर ग्रीस पर विजय प्राप्त कर वह एबिरस पर चढ़ दौड़ा। रोम के सम्राट् ने घबरा कर "इलिरिकम" का राज्य उसे दे दिया।

सन् ४०८ में अलेरिक ने इटालीपर विजय प्राप्त करते हुए रोम नगर पर घेरा डाल दिया। इस घेरे से रोम के सम्राट् और वहाँ की जनता त्रस्त हो गई और उसे अटूट धनराशि, सोना, चांदी और एक काफी बड़ा भूखण्ड देकर वहाँ से बिदा किया। मगर दूसरे ही साल उसने फिर रोम पर आक्रमण कर दिया। इस बार उसके दबाव में आकर रोम की सिनेट ने रोम साम्राज्य के दो विभाग कर दिये और एक विभाग की सत्ता एक ग्रीक सरदार को दे दी। तभी से रोम का साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी ऐसे दो भागों में बँट गया।

इसके बाद अलेरिक ने अफ्रीका पर अपना अभियान प्रारम्भ किया। मगर रास्ते में तूफान आ जाने से उसका जहाजी बेड़ा नष्ट होगया और वह भी बीमार होकर मर गया!

अलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी

भारत वर्ष में आधुनिक ढङ्ग की नाटक कम्पनी जिसकी स्थापना सन् १६०६ के करीब पारसी अभिनेता कावसजी ने की थी।

पारसी ढंग की सबसे पहली नाटक कम्पनी सन् १८७० में बम्बई के कुछ पारसी लोगों ने "ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी" के नाम से खोली, इसके प्रोप्राइटर सेठ पेस्टनजी फ्रामजी थे। इस कम्पनी के दो प्रसिद्ध नाटक लेखक महमूदमियाँ "रौनक" बनारसी तथा हुसेनीमियाँ "जरीफ" थे।

इसके पश्चात् सन् १८७७ में खुरशेदजी बाली वाला तथा कवास जी ने विक्टोरिया नाटक कम्पनी की स्थापना दिल्ली में की। खुर्शेद जी बालीवाला हास्यरस के बड़े मंजे हुए अभिनेता थे। इस कम्पनी के नाटक लेखक विनायक प्रसाद "तालिब" बनारसी थे।

बाली वाला की मृत्यु पर यह कम्पनी टूट गई और कावसजी ने "अल्फ्रेड नाटक कम्पनी" की स्थापना की। कावसजी करुणा पूर्ण अभिनय में पारङ्गत थे। सन् १६१४ में कावसजी की मृत्यु हो गई और इसके चार पांच बरस बाद यह कम्पनी भी टूट गई।

इस कम्पनी के नाटक लेखक सैयद मेंहदी हसन "अहसान" और श्री नारायणप्रसाद "बेताब" थे। सैयद मेंहदी हसन ने शेक्सपीयर के "मर्चेण्ट ऑफ वेनिस" का अनुवाद किया था। तथा गुलनार-फिरोज, चन्द्रावली आदि कई मौलिक नाटक भी लिखे थे।

श्री नारायणप्रसाद बेताब काश्मीरी ब्राह्मण थे। इन्होंने कृष्ण सुदामा, गोरखधन्धा, पत्नी प्रताप, रामायण, महाभारत इत्यादि कई नाटकों की रचना की थी। ये बम्बई से "शेक्सपीयर" नामक एक पत्र भी निकालते थे।

अरोड़ा

भारत वर्ष में बसने वाली एक जाति, जिसका मूल उत्पत्ति स्थान सिंध प्रदेश के "अरोड" नामक स्थान में माना जाता है। इस जाति के लोग अपना गोत्र कश्यप मानते हैं।

सिंध के राजा 'दाहिर" जो आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिंध पर राज्य करते थे अरोड़वंशी थे। सन् ७१२ में मुसलमान आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम ने राजा दाहिर को हरा कर सिंध को लूट लिया तब अरोडा जाति के लोग सिंध को छोड़कर देश के भिन्न-भिन्न भागों में फैल गये। जो सिंध के आसपास ही बस गये वे "दाहिरे", जो उत्तर में जाकर बसे वे उत्तराधी और जो दक्षिण में गये वे दक्षिणे कहलाने लगे।

उसके बाद भिन्न-भिन्न शहरों और व्यवसायों के नाम से इनमें बहुत से अल्ल पैदा हो गये। जिनकी संख्या ८०० तक मानी जाती है।

अर्ल

इंग्लैण्ड में उच्च श्रेणी के सरदार लोगों को दिया जाने वाला एक पद जो प्राप्त होने के बाद वंश परम्परागत रूप में चलता था।

इंग्लैण्ड में इस पद का प्रारम्भ सम्भवतः ११४० ई० से होता है जब कि जेफ्री० डे० मेंडविल को सब से पहले इसेक्स का अर्ल बनाया गया। उसके पश्चात् सन १३३७ में और भी कई लोग अर्ल बनाये गये और उन्हें जागीरें भी दी गईं। सन् १३८३ से यह पद वंश परम्परागत न रख कर केवल पिता और पुत्र तक सीमित कर दिया गया। अर्थात् पिता को मिले हुए अर्ल पद का उपयोग उसके पुत्र तक ही हो सकता था, आगे नहीं। बाद में यह पद साधारण लोगों को भी दिया जाने लगा।

अगासी

स्विट्जरलैंड का रहने वाला एक सुप्रसिद्ध प्रकृतिवादी भू शास्त्री जिसका जन्म सन् १८०७ में हुआ और मृत्यु १८७३ में हुई।

गेडोल्फ अगासी एक अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। इनकी रुचि प्रारम्भ से ही प्राणिशास्त्र के अध्ययन की ओर थी। इन्होंने जूरिक, हाइडल बर्ग और म्यूनिख की युनिवर्सिटियों में शिक्षा ग्रहण की। हाइडल बर्ग से इन्हें "डाक्टर ऑफ फिलासफी" की और म्यूनिख से "डॉक्टर ऑफ मेडिसन" की उपाधि मिली।

सन् १८४६ में प्रो० अगासी ने बोस्टन के लोवेल इन्स्टीट्यूट में कई भाषण दिये। इन भाषणों ने इनकी कीर्ति को चारों तरफ फैला दिया। सन् १८४८ में ये हावर्ड विश्वविद्यालय में प्राणिशास्त्र के प्रोफेसर हो गये। इनका लिखा हुआ सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ "रिसर्च सु ले प्वांसो फोसिल" पांच भागों में प्रकाशित हुआ। यह प्राणिशास्त्र का एक महान् ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के सिवाय भी इनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

अलंकार-शास्त्र

संस्कृत साहित्य में भाषा और काव्य को सज्जित और अलंकृत करने के लिए निर्मित किया हुआ एक विशिष्ट शास्त्र।

छन्द शास्त्र (पिंगल) ही की तरह अलंकार शास्त्र भी साहित्य और कविता को सुसज्जित करने वाला एक शास्त्र है जिसने संस्कृत साहित्य में बहुत महत्व प्राप्त किया है और इस साहित्य के बड़े से बड़े कवियों ने भी इस शास्त्र के विधान को अपनी कृतियों में स्वीकार किया है।

इस शास्त्र के प्रधान आचार्यों में नाट्य शास्त्र के आचार्य भरत मुनि, दण्डी, उद्भट, रुद्रट इत्यादि आचार्य उल्लेखनीय हैं।

अलंकार शास्त्र संस्कृत साहित्य में बहुत प्राचीन काल से काव्य की समीक्षा और कवियों का पथ प्रदर्शन करता आया है।

अलंकार शास्त्र में काव्य के अन्तरंग और बहिरंग दोनों को सुन्दर बनाने के लिए शब्दालंकार और अर्थालंकार दो प्रकार के अलंकारों की व्यवस्था दी गई है। शब्दालंकार से अनुप्रास इत्यादि के द्वारा काव्य के बहिरंग को सजाया जाता है और अर्थालंकार से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, रूपक इत्यादि के द्वारा काव्य के अन्तरंग को प्रभावशाली बनाया जाता है।

इन अलंकारों के अतिरिक्त, काव्य और नाटकों के लिए संस्कृत अलंकार शास्त्र में कई प्रकार के विधान भी बनाये गये हैं। इस अलंकार शास्त्र का एक विधान यह

भी है कि काव्य या नाटक का जो नायक हो वह सब गुणों से अलंकृत और दोष रहित होना चाहिए। नाटक या काव्य का विषय महत होना चाहिए और उसका अन्त सुखान्त होना चाहिए।

अलंकार शास्त्र के इस नियम को मानने के कारण ही हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य के सारे इतिहास में एक भी ट्रेजिडी या दुःखान्त काव्य या नाटक देखने को नहीं मिलेगा। कोई भी ऐसा नाटक या काव्य देखने को नहीं मिलेगा जिसका नायक राजा या कोई महान् व्यक्ति न हो, तथा जिसका विषय महान न हो।

इसका कारण बताते हुए बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय लिखते हैं कि—

"इसका कारण यह है कि पूर्व भूखण्ड के कविगण धर्म की महिमा से महिमान्वित थे। उनकी दृष्टि में धर्म का ही महत्व सब से बढ़ कर था। यह बात नहीं कि वे क्षमता के मोह में बिलकुल पड़ते ही नहा थे। किन्तु वे चरित्र को क्षमता के नीचे स्थान देना पसन्द नहीं करते थे। नाटक और काव्य के नायकों को महान बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन राजाओं को जो नायक बनाये जायँ सर्व गुणसम्पन्न होना चाहिए और जब नायक पुण्यात्मा और सर्व गुण सम्पन्न हो तो उसका अन्त भी सुख पूर्ण होना चाहिए। पुण्य की जय और पाप की पराजय दिखानी ही होगी। वरना अधर्म की जीत दिखाने से लोगों के अधार्मिक होने की सम्भावना रहती है।

मगर पाश्चात्य कवि और नाटककारों ने इस प्रकार के नियमों को कोई महत्व नहीं दिया। महाकवि शेक्सपियर भी इस प्रकार के नियमों को मानकर नहीं चले। उनके सर्वोत्कृष्ट नाटकों के विषय अवश्य महान हैं लेकिन उनके नायकों में कहीं भी सर्व गुणसम्पन्नता नहीं पाई जाती। उनके नायकों में किंग लियर एक पागल व्यक्ति है, मैकबेथ नमकहराम है, एण्टोनी कामुक है, जूलियस-सीजर घमण्डी और आथेलो इतना शंका शील है कि बिना प्रमाण के ही अपनी सती स्त्री की हत्या कर डालता है।

किन्तु शेक्सपीयर ने इन सब नायकों के पार्श्ववर्ती नायकों में ऐसे उच्च चरित्र का समावेश किया है कि जिन्होंने उनके नायकों के चारों ओर एक ज्योति फैलाकर उन नाटकों को उज्वल बना दिया है और यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटक ट्रेजिडी होते हुए भी संसार के साहित्य में एक अमूल्य निधि हैं।

शेक्सपियर के पार्श्ववर्ती लेखकों ने इस प्रकार के नियमों को और भी नहीं माना है।

एक जमाने में अलंकार शास्त्र की तरह इंग्लैंड में भी Poetic Justice (काव्य-न्याय) नाम की एक साहित्यिक नीति थी, किन्तु उससे साहित्य का समुचित विकास होने न देख कर अंगरेजी लेखकों ने एक प्रकार से उसे त्याग ही दिया, क्योंकि उसमें मनुष्य-जीवन का एक पहलू साहित्य में अप्रकट रह जाता है जिसकी पाठकों को अपनी समझ से कल्पना कर लेना पड़ती है।

साहित्य के विकास के मार्ग में अधिकाधिक कट्टर नियमों या बंधनों से उसके सर्वतोमुखी विकास में कुछ रुकावटें अवश्य आ जाती हैं। इस प्रकार के कट्टर या कड़े नियमों से दो प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं एक तो यह कि प्रायः सभी नाटक एक सांचे में ढले हुए से रहते हैं दूसरे चरित्र चित्रण में खींचतान होजाने से अस्वाभाविकता या अति मानुषिकता आ जाती है।

फिर भी इस बात को मानने में कोई सन्देह नहीं कि संस्कृत अलंकार शास्त्र की छाया में रह कर भी यहाँ के महा कवियों ने जिस महान् साहित्य का निर्माण किया वह आज भी संसार के साहित्यक क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा को उसी गौरव के साथ बनाये हुए है।

आ

आइजन होवर

गत महायुद्ध में मित्र राष्ट्रीय सेनाओं का सर्वोच्च कमाण्डर उसके पश्चात् अमेरिका का राष्ट्रपति। ड्वाइट डी० आइजन होवर जिनका जन्म १४ अक्टूबर १८९० को हुआ।

अमेरिका के नवीन इतिहास में राष्ट्रपति आइजन होवर का नाम भी काफी महत्वपूर्ण है। जिस समय द्वितीय महायुद्ध में मित्र राष्ट्रीय सेनाओं की हार पर हार हो रही थी। एक तरफ से जर्मनी और दूसरी तरफ से जापान उनको दबाते हुए चले आ रहे थे उसी समय जनरल आइजन होवर मित्र राष्ट्रीय सैनिक कमान के प्रधान सेनापति दिसम्बर १९४३ में बनाये गये। बाद में इन्होंने अमेरिकन सरकार को सलाह देकर जापान के नागासाकी और हिरोसिमा शहर पर परमाणु बम गिरवाकर सारे युद्ध की हार को जीत में बदल दिया था। इसके अतिरिक्त और स्थानों पर भी अपने युद्ध संचालन का चतुराई इन्होंने प्रदर्शित की थी। उधर रूसी मोर्चे पर रूस ने भी जर्मनी को बुरी तरह से खदेड़ दिया था।

जनरल आइजन होवर की इन्हीं सफल कारगुजारियों से मुग्ध होकर अमेरिकन जनता ने प्रेसिडेण्ट ट्रूमेन के पश्चात् सन् १९५३ से ६१ तक आइजन होवर को प्रेसिडेण्ट चुना।

जनरल आइजन होवर का राष्ट्रपति काल भिन्न-भिन्न प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से भरपूर रहा और इस समय में मानवीय इतिहास अत्यन्त टेढ़े-मेढ़े रास्तों से आगे बढ़ाता रहा।

आइजन होवर का विदेश मंत्री श्री जॉन डलेस एक कट्टर साम्राज्यवादी, अनुदार, कम्यूनिज्म विरोधी और दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति था। समझौते की भावना को वह पसन्द नहीं करता था। भारत वर्ष की तटस्थता और निर्दलीय नीति को भी वह पसन्द नहीं करता था। इसलिए जब तक वह जीवित रहा भारतीय नीति की आलोचना करता रहा तथा प्रेसिडेण्ट को भी भारत के विरुद्ध भड़काता रहा। एक बार उसने पुर्तगाल के सालार जंग के साथ एक संयुक्त विज्ञप्ति निकाल कर गोवा को पुर्तगाल साम्राज्य का अविभाज्य अंग बतलाया था।

जनरल आइजन होवर के समय में विएटनाम और लाओस की समस्या ने भी बहुत जोर पकड़ा। इस सम्बन्ध में भी जनरल आइजन होवर की नीति अधिक सफल नहीं रही और अन्त में इस सम्बन्ध में एक कमीशन बैठाकर पार्थट लाओ, राजकीय पार्टी में समझौता हुआ।

इन्हीं के शासनकाल में कांगो में जनक्रान्ति हुई और जनरल लुलुम्बा ने वहाँ से बेलजियम को हटा कर स्वतन्त्र सरकार की स्थापना की।

इस सम्बन्ध में अमेरिका और पश्चिमी देशों ने दुहरी नीति से काम लेना प्रारम्भ किया, ऊपर से तो ये स्वतंत्र सरकार का समर्थन करते थे और भीतर ही भीतर बेलजियम और जनरल शोम्बे को भड़का कर वहाँ पर विद्रोह की ज्वाला पैदा करते थे। इसी दरमियान वहाँ पर जनरल लुलुम्बा की हत्या कर दी गई। यह हत्या किसने की और इस षडयंत्र में कौन लोग शामिल थे इसका ठीक पता तो नहीं लगा मगर इसमें अमरिका और पश्चिमी देशों की बड़ी बदनामी हुई और कम्युनिस्ट देशों ने तो खुल्लम खुल्ला इसका आरोप पश्चिमी देशों पर लगाना प्रारम्भ किया।

राष्ट्रसंघ ने कांगो की व्यवस्था, शान्ति स्थापना के लिए अपने अध्यक्ष श्री हैमरशील्ड को भेजा था, हैमरशील्ड के सहायक भारत के श्री राजेश्वर दयाल थे। इन लोगों ने कांगो में शान्ति स्थापित करने के लिए बहुत प्रयत्न किया मगर कहा जाता है कि पश्चिमी देशों की कूट नीति के कारण इन लोगों को सफलता नहीं मिली और अन्त में बेचारे हैमरशील्ड का भी वहीं पर बलिदान हो गया। जिस हवाईजहाज पर वे जा रहे थे उसमें दुर्घटना हो गई, वह गिर पड़ा और हैमर शील्ड की मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि इस काण्ड के पीछे भी कोई षड्यंत्र था और यह घटना आकस्मिक नहीं प्रत्युत किसी सुसंगठित योजना का परिणाम थी।

विश्व में शांति स्थापन, निरस्त्रीकरण तथा जर्मनी सम्बन्धी समस्या का हल करने के लिए पेरिस में एक सम्मे-

लन हुआ था जिसमें प्रेसिडेण्ट आइजन होवर, मैकमिलन, ख्रुश्चेव और प्रेसीडेण्ट डी-गाल चारों शामिल थे। ठीक इसी समय शायद अमेरिका का एक जासूसी विमान रूस ने मार गिराया जिससे रूस में बहुत क्षोभ फैल गया इस कारण इस सम्मेलन में ख्रुश्चेव ने ऐसा रुख अपनाया जिसे इन सब लोगों ने अत्यन्त अपमान पूर्ण समझा और सम्मेलन भंग हो गया।

आइजन होवर और ख्रुश्चेव दोनों ने इस बात की कोशिश की कि अमेरिका और रूस के बीच का तनाव कम हो जाय। इस तनाव को कम करवाने का पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी बहुत प्रयत्न किया, मगर दिन २ की घटनाओं और अन्तर्राष्ट्रिय परिस्थितियों से पारस्परिक अविश्वास इतना बढ़ा हुआ था कि समझाने की सभी चेष्टाएं विफल हो गई और तनाव बढ़ता गया।

अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल करने के लिए राष्ट्रसंघ की एक उच्चस्तरीय बैठक हुई थी। जिसमें प्रायः सभी देशों से वहाँ के शासक इस बैठक में शामिल होने को आये थे। रूस से ख्रुश्चेव और भारत से पं० जवाहरलाल नेहरू भी इस सम्मेलन में आये थे। ख्रुश्चेव ने हैमरशील्ड को हटाने और राष्ट्रसंघ में तीन अधिकारी रखने का प्रस्ताव किया जो नामंजूर हुआ और भी पारस्परिक मतभेद इतना तीव्र हुआ कि जिससे उत्तेजित होकर ख्रुश्चेव ने जूता उठाकर टेबिल पर पीटना प्रारम्भ किया।

मतलब यह कि इच्छा करते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने में आइजन होवर को सफलता नहीं मिली।

भारतवर्ष और अमेरिका के सम्बन्ध भी जब तक जॉन डलेस विदेश मंत्री रहा, साधारण स्तर पर ही रहे। डलेस ने भारत की अपेक्षा पाकिस्तान का ज्यादा समर्थन किया और उसको सैनिक सामग्री बराबर मिलती रही।

मगर डलेस की मृत्यु के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू के अमेरिका जाने पर और प्रेसिडेण्ट आइजन होवर की भारत यात्रा पर दोनों देशों की पारस्परिक भावनाओं में बहुत सुधार हुआ।

जनरल आइजन होवर की भारत यात्रा भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण प्रसङ्ग है। स्वाधीनता के पश्चात् इस गणतंत्र ने अभी तक तीन बड़े-बड़े स्वागत प्रोग्रामों का आयोजन किया था। पहला रूस के प्रधान मंत्री बुलगानिन और ख्रुश्चेव के आगमन के समय, दूसरा अमेरिका के प्रेसिडेण्ट आइजन होवर के समय और तीसरा इंगलैण्ड की साम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय। तीनों स्वागत भव्य थे, जनता की अनोखी भावनाएं तीनों स्वागतों में साकार हुई। मगर कहना पड़ेगा कि प्रेसिडेण्ट आइजन होवर के स्वागत के समान अनोखा दृश्य दिल्ली ने पहली बार देखा था। उस स्वागत की यादगार न तो आइजन होवर भूलेंगे न भारत भूलेगा।

इसके पश्चात् आइजन होवर जब तक राष्ट्रपति रहे भारत के प्रति उनकी नीति अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण रही।

जापान के अन्तर्गत भी आइजन होवर की नीति प्रायः असफल रही। उन्हीं के समय में जापान में बड़े-बड़े विद्रोह हुए। आइजन होवर के समर्थकों को वहाँ की सरकार से निकाल दिया गया और परिस्थिति इतनी विकृत हो गई कि प्रेसिडेण्ट को अपनी जापान यात्रा स्थगित करनी पड़ी।

वैसे व्यक्तिगत रूप से आइजन होवर एक योग्य, दूरदर्शी, बुद्धिमान, सैनिक होते हुए भी मीठे स्वभाव के सभ्य व्यक्ति हैं। मगर इनके शासन में संसार की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ इतनी उलझनपूर्ण बनी रहीं कि पूरा प्रयत्न करने पर भी सफलता उन्हें नहीं मिली।

आइजक न्यूटन

संसार का एक महान् वैज्ञानिक। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का अन्वेषणकर्त्ता।

सर आइजक न्यूटन का जन्म सन् १६४२ में लिंकनशायर के एक गाँव में हुआ था। बचपन से ही न्यूटन को गणित के सवाल हल करने और छोटे छोटे यन्त्र बनाने का बड़ा शौक था। उसने अपने घर की छत पर एक छोटी-सी हवा की चक्की बनाई थी। वह उसी को अपने खिलौने के काम में लिया करता था। मगर जब हवा न चलती थी तो उनका खेल बन्द हो जाता था। इस बाधा को दूर करने के लिये उसने उसमें एक छोटा-सा ऐसा पहिया लगाया जो चूहे के पैरों से घूम सके। उसी पहिये के पास उसने एक चूहादानी रखी और चूहादानी के चूहे से उस

पहिये का सम्बन्ध जोड़ दिया। जब चूहा घूमता था तो चक्की भी चलती थी। इसी प्रकार उसने पानी से चलनेवाली एक बड़ी घड़ी भी बनाई और कुछ धूप-घड़ियों का भी निर्माण किया।

जब न्यूटन इक्कीस वर्ष का था और एक दिन बगीचे में घूम रहा था उस समय उसने सेब के वृक्ष पर से एक फल को गिरते हुए देखा। उसे तत्काल विचार आया कि यह फल नीचे ही क्यों गिरता है? ऊपर क्यों नहीं उड़ जाता और इसी विचार में से उसने गुरुत्वाकर्षण के उस महान् सिद्धान्त की खोज की जिसके आधार पर यह सारा विश्व टिका हुआ है। अन्त में उसने निश्चय किया कि पृथ्वी के ही आकर्षण से चन्द्रमा अनन्त आकाश में उड़ कर नहीं चला जाता और पृथ्वी भी सीधी रेखा में न चल कर सूर्य के केन्द्रीय आकर्षण से घूमती रहती है। यह आकर्षण सारे भौतिक संसार में व्याप्त है। इसका प्रभाव वस्तुओं के गुरुत्व और उनकी दूरी पर निर्भर करता है। अधिक भारी चीज कम भारी चीज को आकर्षित करती है और वस्तुएँ जितनी दूर होती हैं उतना ही उनका आकर्षण कम होता जाता है। इस सिद्धान्त से उसने ग्रहों के घूमने की व्याख्या भी की।

न्यूटन की खोज का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। वह संसार के अत्यन्त प्रतिभाशाली पुरुषों में गिना जाता है। प्रकाश के सम्बन्ध में भी उसने बड़े महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये। सूर्य का प्रकाश सात रंगों का मिश्रण है इस बात की खोज भी उसी ने पहले पहल की थी।

यद्यपि न्यूटन की गवेषणाएँ बड़ी महत्त्वपूर्ण थीं और संसार ने उसको बहुत मान दिया फिर भी वह अपने ज्ञान के सम्बन्ध में कभी अहंकार की बात न सोचता था। उसने एक स्थान पर लिखा है--

"मैं नहीं जानता कि मेरे परिश्रम के सम्बन्ध में संसार का क्या विचार होगा लेकिन मैं स्वयं तो यह समझता हूँ कि मैं केवल एक बच्चे की भाँति संसार समुद्र के तट पर खेलता रहा हूँ। कभी एक अधिक साफ पत्थर मिल गया, कभी एक अधिक रंग बिरंगी कौड़ी मिल गई किन्तु सत्य का अनन्त समुद्र मेरी थाह से बाहर रहा।"

आइख मेन

नाजी जर्मनी का एक प्रसिद्ध अधिकारी, हिटलर का प्रिय-पात्र जिसने हिटलर के आदेश से हजारों यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया। द्वितीय महायुद्ध के कई वर्षों बाद यह इजराइल के द्वारा पकड़ा गया और इसे मौत की सजा दी गई।

आइवन महान

मास्को का ग्रेण्ड ड्यूक जो सन् १४८० ई० के लगभग हुआ।

जिस समय आइवन ड्यूक हुआ उस समय मंगोलों के प्रसिद्ध खान कुबलाई खाँ की मृत्यु हो चुकी थी और रूस के पश्चिमी क्षेत्र उजबेकिस्तान इत्यादि में सुवर्ण कबीले के खानों का शासन था। सुवर्ण कबीले के ये खान अपने चारों तरफ के क्षेत्र में हमेशा आक्रमण और लूटमार करते रहते थे। रूस के अमीरों ने भी कुबलाई खान की मृत्यु के बाद करीब २०० वर्षों तक सुवर्ण कबीले वालों को खिराज दिया। मगर पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में जब कि सुवर्ण कबीले का साम्राज्य कमजोर पड़ रहा था रूसी अमीरों के नेता आइवन महान ने उनको खिराज देने से इन्कार कर दिया। इसी समय से आइवन महान् की मातहती में रूसी साम्राज्य का प्रारम्भ हुआ।

आइसलैण्ड

उत्तरी अटलांटिक में आर्कटिक वृत्त के निकट एक द्वीप; क्षेत्रफल—३९,७५८ वर्गमील; जनसंख्या १,६६,००० (१९५८), राजधानी—रेकजाविक; भाषा—आइसलैंडिक; धर्म—इभान जेलिकल लूदरन; सिक्का—क्रोन; राष्ट्रपति—असगीर असगीरसन (१९५६); प्रधान मन्त्री—ओलाफर थार्स (१९५६ से); शासन स्वरूप—गणतंत्र।

मुख्य नगर—अकुरेरि, अफनर्कजोरो, कोपा भौगर।

दुनिया के ज्वालामुखी वाले देशों में इस देश का स्थान अग्रगण्य है। यहाँ की जमीन ऊँची-नीची तथा बंजर है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना और उसका

बतलाया जाता है कि जब अंग्रेजी सेनाओं ने अफगानिस्तान को खाली करने का वचन दे दिया तब काबुल की सेनाएं तो देश को छोड़ कर चल दीं मगर कन्धार, गजनी और जलालाबाद की सेनाओं ने वहाँ से लौटने से इन्कार कर दिया। अंग्रेजों के इसी विश्वासघात से क्रुद्ध होकर अफगानों ने यह हत्याकाण्ड किया।

इस प्रकार लॉर्ड आकलैण्ड की मूर्खतापूर्ण नीति से अंग्रेजी सेना को ऐसा भयंकर अपमान, पराजय और हत्याकाण्ड देखने को मिला जो शायद सारे अंग्रेजी साम्राज्य के इतिहास में उसे देखने को न मिला होगा।

आक्सफोर्ड

इंग्लैण्ड की रानी एन के समय में उसके मन्त्रिमण्डल में टोरी दल का मन्त्री।

रानी एन की मृत्यु के पश्चात् इंग्लैण्ड की राजगद्दी का सवाल उपस्थित होने पर इंग्लैण्ड में दो दल हो गये। सन् १७०१ के एक्ट आफ सेटलमेण्ट के अनुसार पहले जेम्स की नतिनी सोफिया के पुत्र हनोवर के जार्ज को यह गद्दी मिलना चाहिये थी परन्तु बहुत दूर का सम्बन्धी होने से एक पार्टी उसे इंग्लैण्ड का राजा बनाना नहीं चाहती थी। वह दूसरे जेम्स के पुत्र जेम्स एडवर्ड को इंग्लैण्ड की गद्दी पर बिठाना चाहती थी। इस दूसरे दल में इंग्लैण्ड का तत्कालीन प्रधानमंत्री बोलिंग ब्रुक और आक्सफोर्ड शामिल थे। ये लोग एक्ट आफ सेटलमेण्ट को रद्द कराने की कोशिश कर रहे थे मगर उसके पहले ही सन् १७१४ में रानी एन की मृत्यु हो गई, तब पार्लियामेण्ट के "ह्विग" दल ने एक्ट आफ सेटलमेण्ट के अनुसार जार्ज को इंग्लैण्ड का राजा घोषित कर दिया। यह देखकर बोलिंग ब्रुक इंग्लैण्ड से भाग गया और आक्सफोर्ड, जो टोरी दल का एक लोकप्रिय सदस्य था, जेल में डाल दिया गया।

मगर फिर भी इंग्लैण्ड में शान्ति नहीं हुई। जगह-जगह पर जार्ज के विरोध में दंगे और विद्रोह होने लगे। इन विद्रोहों में जेकोबाइट लोगों का विद्रोह इंग्लैण्ड के इतिहास में प्रसिद्ध है।

ऑगस्टस सीजर

महान् विजेता जूलियस सीजर का उत्तराधिकारी, रोम के विशाल साम्राज्य का शासक (इम्परेटर समय ई० सन् पूर्व ३१ से ईस्वी सन् १४ तक।

जूलियस सीजर की हत्या के पश्चात् उसके आदेश के अनुसार "आक्टेवियन" को रोम साम्राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। मगर उस समय रोम की शासन-व्यवस्था बड़ी छिन्न-भिन्न हो रही थी और जूलियस सीजर का मित्र अण्टोनियस तथा सेनापति लेपिडस तीनों व्यक्ति सत्ता को हथियाने का प्रयत्न कर रहे थे। तत्कालीन महान वक्ता और राजनीतिज्ञ सिसरो आक्टेवियन के पक्ष में था। अन्त में ई० सन् पूर्व ४३ में इन तीनों के बीच में राज्य का बटवारा हुआ। जिसमें ऑक्टेवियन को सिसली, सरडीनिया और अफ्रीका के प्रान्तों का राज्यसूत्र मिला।

आगे जाकर क्लिओपेट्रा के प्रेम में पड़कर अण्टोनियस ने अपनी शक्ति कमजोर कर ली और ई० सन् पूर्व ३१ में एक सामुद्रिक युद्ध में ऑक्टेवियन ने अण्टोनियस को पूर्ण रूप से पराजित कर दिया। जिससे वह और क्लिओपेट्रा आत्म-हत्या करके मर गये। लेपिडस इससे पूर्व ही समाप्त हो चुका था।

इस प्रकार अपने दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को समाप्त कर ईस्वी सन् से ३१ वर्ष पहले आक्टेवियन ऑगस्टस सीजर के नाम से गद्दी पर बैठा और ई० सन् १४ तक उसने शासन किया। गद्दी पर बैठते समय लोगों ने उसे सम्राट् बनाना चाहा मगर उसने सम्राट बनने से इन्कार किया और इम्परेटर बना। इसी इम्परेटर शब्द से आगे जाकर अंग्रेजी के एम्परर (Emperor) शब्द की व्युत्पत्ति हुई।

ऑगस्टस ने रोमन गणतंत्र का बाहरी ढाँचा ज्यों का त्यों रक्खा। वहाँ की सेनेट भी ज्यों की त्यों बनी रही मगर उसने सेनेट का इतना विश्वास प्राप्त कर लिया कि स्वयं सेनेट ने अपने सारे अधिकार सम्राट् को सौंप दिये। सारा ढाँचा लोकतंत्र का रहते हुए भी होता वही था जो सीजर चाहता था। उसका शासन नियंत्रित दीखते हुए भी अनियंत्रित था।

सेना पर सम्पूर्ण स्वत्व स्थापित करके ऑगस्टस ने उसकी संख्या बढ़ाकर २,२५००० कर दी। सब प्रान्तों में उच्चतम शासकों के स्थान पर उसने अपने विश्वसनीय

लोगों को भेजा। बड़े-बड़े राज्याधिकारियों को संगठित कर उसने उनकी एक कौन्सिल बनाई। इस कौन्सिल को सीनेट के सब अधिकार दे दिये गये।

इस प्रकार ऑगस्टस सीजर ने अपनी संगठन कुशलता से सारे रोम साम्राज्य में शासन व्यवस्था का नवीन संगठन कर, एक नागरिकता, एक कानून और एक राजस्व पद्धति चलाई और सारी अराजकता को समाप्त कर एक सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना की। उसने रोमन साम्राज्य की सीमाओं को स्थिर कर उनकी सुरक्षा की ऐसी मजबूत व्यवस्था की कि उसकी मृत्यु के बाद भी वह व्यवस्था लगभग पाँच सदियों तक रोम की रक्षा करती रही।

आगस्टस ने पोलिस का प्रबन्ध भी उत्तम किया था। उसके पहले राजमार्गों पर दिन-दहाड़े यात्री लूट लिये जाते थे और लूटने वाले बेदाग छूट जाया करते थे। इस अव्यवस्था को उसने दूर किया। उसने सारे रोम शहर को १४ वार्डों में बाँट दिया। प्रत्येक वार्ड में पहरे के लिए सिपाही और न्यायाधीश अलग-अलग नियुक्त थे।

रोम में व्यभिचार की मात्रा भी बहुत बढ़ गई थी, उसको कम करने के लिए उसने कड़े नियम बनाये। व्यभिचार कम करने के लिए उसने विवाह प्रथा को बहुत उत्तेजना दिया। उसने एक कानून बनाया था जिसके अनुसार एक निश्चित आयु के पश्चात् अविवाहित रहने वाले व्यक्ति को दण्ड दिया जाता था।

रोम इतिहास का स्वर्णयुग

ऑगस्टस का युग रोम साम्राज्य के इतिहास में सबसे अधिक समृद्धि का युग था। राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से रोम इस समय इतिहास के स्वर्ण-युग में से गुजर रहा था।

ऑगस्टस सीजर स्वयं एक विद्वान और साहित्य प्रेमी व्यक्ति था। कविता से उसे बड़ा प्रेम था। उसका दरबार हमेशा बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवियों से भरा रहता था। महाकवि वर्जिल, होरेस और ओविड जैसे कवि उसके दरबार की शोभा को बढ़ाते थे। काव्य शैली, भाषा सौष्ठव और अलंकार सज्जा से युक्त काव्यों की रचना में ऑगस्टस का युग बहुत आगे बढ़ा हुआ था मगर मनुष्य की अन्तरात्मा की अनुभूति का उस समय के काव्यों में बहुत कम दर्शन होता है।

ऑगस्टस युग में रोम के अन्दर लैटिन साहित्य का भी बहुत विकास हुआ। ऑगस्टस के पहले रोम के अन्तर्गत ऐसा कोई लैटिन साहित्य नहीं था। जिसकी तुलना यूनानी साहित्य से की जा सके मगर ऑगस्टस युग में इस साहित्य की बहुत वृद्धि हुई।

रोम का महान वक्ता और यूरोप के आधुनिक गद्य का जन्मदाता सिसरो (Cicero) भी ऑगस्टस का सम-कालीन था। ऑगस्टस के उत्तराधिकार के समय उसने ऑगस्टस की मदद की थी इसी अपराध में अएटोनियस ने उसे मरवा डाला था।

भवन निर्माण कला

ऑगस्टस का युग रोम में भवन-निर्माण कला और स्थापत्य कला के विकास का सर्वप्रधान युग है। इस कला के विकास ने सारे रोम का नक्शा ही बदल दिया। इसी समय में रोम के सब बड़े-बड़े नगर, सड़कों, पुलों, स्नानागारों और राजप्रासादों से सुसज्जित हो गये।

हम्माम या स्नानागारों के निर्माण में रोमन कारीगरों ने उस युग में बड़ी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया था। इनके बनाये स्नानागारों में गर्म और ठण्डे जल का प्रबन्ध रहता था। वहाँ कसरत करने का स्थान और पुस्तकालय भी रहता था। एक-एक स्नानागार में एक साथ १५०० व्यक्ति स्नान कर सकते थे।

स्वयं ऑगस्टस ने पेलेटाईन की पहाड़ी पर एक सुन्दर और भव्य राजप्रासाद का निर्माण किया और अपोलो देवी के एक सुन्दर मन्दिर की स्थापना की। उसने सेनेट के लिए एक नवीन इमारत और सीजर के लिए मन्दिर का निर्माण करवाया। रोम में उसने एक विशाल नाट्य-शाला बनवाई।

इन सारी इमारतों और भव्य साज सज्जा के कारण रोम उस समय की दुनिया का सर्वश्रेष्ठ नगर बन गया। इतिहासकार रश्वोर्थ ने लिखा है कि—

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि रोम उस समय

सारे संसार में पहला महानगर था जो स्थापत्य-कला और भवन-निर्माण-कला के द्वारा सुसज्जित किया हुआ था।"

स्वयं ऑगस्टस ने कहा था कि मैंने रोम को ईंट का बना हुआ पाया था मगर अब मैं इसे संगमरमर का बनाकर छोड़ रहा हूँ।

साम्राज्य-विस्तार

आगस्टस सीजर के समय में रोम के साम्राज्य का सबसे अधिक विस्तार हुआ था। आज तक रोम के किसी शासक को इतने बड़े साम्राज्य पर हुकूमत करने का अवसर नहीं मिला था। यूरोप के पश्चिमी और दक्षिणी भाग के सब राष्ट्र रोम के अधीन थे। इंग्लैण्ड, फ्रान्स, स्पेन, जर्मनी का कुछ भाग, इटली के सब राज्य, यूनान, टर्की का सारा प्रदेश, एशिया माइनर के आस पास का सब प्रदेश और अफ्रिका का उत्तरी भाग रोम साम्राज्य के अधिकार में था।

आगस्टस सीजर की मृत्यु ७७ वर्ष की अवस्था में सन् १४ ईस्वी में हुई।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिस प्रजातंत्र के सिद्धान्त की रक्षा के लिए जूलियस सीजर के समान महान् विजेता की हत्या कर दी गई। उसी रोम ने तथा रोम की सेनेट ने अपनी मरजी से प्रजातंत्र के सारे सिद्धान्तों को आगस्टस के कदमों पर चढ़ा दिया, उसे अनियन्त्रित शासक बना दिया और उसी अनियन्त्रित शासक के शासन में रोम ने इतनी उन्नति की जितनी उसके पहले और बाद में कभी नहीं हुई।

आगरकर

महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध सामाजिक और राजनैतिक नेता तथा प्रारम्भ में लोकमान्य तिलक के सहयोगी गोपाल गणेश आगरकर।

महाराष्ट्र में राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रमुखता से भाग लेने वाले लोगों में गोपाल गणेश आगरकर का नाम भी प्रमुख है। प्रारम्भ में ये लोकमान्य तिलक के सहयोगी थे मगर पीछे से कुछ विषयों में इन दोनों के मत-भेद हो गया। लोकमान्य तिलक विशुद्ध भारतीय संस्कृति के पक्ष में थे मगर आगरकर भारतीय संस्कृति के समर्थक होते हुए भी पाश्चात्य संस्कृति के विरोधी नहीं थे। उनका विचार था कि पाश्चात्य संस्कृति में रहे हुए सुन्दर तत्वों को भारतीय संस्कृति में ग्रहण करके उसे समृद्ध बनाया जाय।

ई० सन् १८८८ तक वे लोकमान्य तिलक के केसरी नामक पत्र के सम्पादक थे। उस समय उन्होंने प्रगतिशील राष्ट्रीयता और समाज-सुधार के लिये जोरदार आवाज उठाई थी। सन् १८८८ में उन्होंने 'सुधारक' नाम का दूसरा पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र के द्वारा उन्होंने स्त्री, पुरुषों की समानता, स्त्रियों की उच्च-शिक्षा, प्रेम विवाह, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदि विषयों पर जोरदार आवाज उठाई।

श्री आर० जी० प्रधान अपने "इण्डियन स्ट्रगल फॉर स्वराज" (Indian Struggle for Swaraj) नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा सामाजिक सुधार में अगर महाराष्ट्र ने अधिक प्रगति की थी तो इसका कारण आगरकर के लेख थे। श्री आगरकर भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन में बुद्धिवादी प्रगतिशील तत्वों का प्रतिनिधित्व करते।

आगस्ट कैण्ट

एक सुप्रसिद्ध फ्रेंच दर्शनशास्त्री जिसका समय सन् १७९८ से १८५१ तक है।

कैण्ट आदर्शवादी विचारधारा का प्रवर्त्तक था। उसके विचार से उस समय पुराने धर्म दर्शन और धार्मिक कट्टरवादिता का समय निकल चुका था। मगर वह यह भी अनुभव करता था कि समाज को किसी न किसी धर्म और नैतिक अवलम्बन की निश्चित रूप से आवश्यकता है।

इसलिये उसने अपने धर्म का नाम "रिलीजन आफ ह्यूमेनिटी" या मानव-धर्म रखा और उस धर्म का मूल सिद्धान्त निषेधात्मक या नेगेटिव न रख कर विधेयात्मक या पॉजिटिव थ्योरी रखा। उसके विचार से समाज का कल्याण प्रेम, व्यवस्था, नीति इत्यादि पॉजिटिव सिद्धान्तों से हो सकता है। इस विषय पर उसने "पॉजिटिविज्म"

नामक ग्रन्थ की रचना भी की। उसके सिद्धान्त में कोई अलौकिक बात न थी। उसका आधार विज्ञान था।" "पाजिटि-विज्म" की इस विचारधारा के पीछे भी मानव जाति के कल्याण की कल्पना थी। योरप में चलने वाली विचारधाराओं के ऊपर इस दार्शनिक की विचारधारा का भी काफी प्रभाव पड़ा।

आगम-साहित्य

जैन और बौद्ध धर्म के मूल ग्रन्थों को आगम कहते हैं। जिस प्रकार वैदिक संस्कृति के मूलग्रन्थों को वेद कहते हैं उसी प्रकार श्रमण संस्कृति के मूल ग्रन्थों को आगम कहते हैं।

बौद्ध आगम शुरु शुरु में "धर्म" और "विनय" इन दो भागों में विभक्त थे। "धर्म आगम सूत्रान्त है।" जिसमें बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। "विनय" में भिक्षुओं इत्यादि के नियम तथा आचारशास्त्र का वर्णन है। उसके बाद ऐसा मालूम होता है कि "त्रिपिटक" की गणना भी आगम साहित्य में की जाने लगी। त्रिपिटक शब्द भी प्राचीन है। इसके अतिरिक्त बौद्ध आगम साहित्य में "मातृका" नामक पिटक का भी उल्लेख पाया जाता है। बौद्ध धर्म की प्रथम संगीति के विवरण में मातृका का भी उल्लेख मिलता है। "दिव्यावदान" में "सूत्रस्य विनयस्य मातृका" शब्द पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि मातृका में विनय के विषयों की विस्तृत तालिका है और इसी को परिवर्द्धित कर विनय आगम की रचना हुई है।

विनय मातृका में पिंडपात, चीवर शयनासन आदि के नियमों की तालिका थी। पालि-विनय में प्राचीन मातृका का स्थान "खन्धक" ने लिया। इसको दो भागों में विभक्त किया गया "महावग्ग और "चुल्लवग्ग"। किन्तु हैमवतों के विनय में मातृका सुरक्षित है। इसी प्रकार एक धर्म मातृका रही होगी सूत्रान्तों की संख्या बहुत थी। उनके विषय विविध थे। उनके संक्षिप्त विवरण की आवश्यकता थी, जिसमें देशना का सार संक्षेप में मालूम हो जाय। यह एक प्रकार की अनुक्रमणिका थी। इसका नमूना 'संगीति-सुत्रन्त' है जो "दीर्घ निकाय" में है। "सर्वास्तिवाद" के अभिधर्म में "संगीतिपर्याय" के नाम से यह मातृका पाई जाती है। इसी धर्म मातृका की वृद्धि होने से "अभिधर्मपिटक" की रचना हुई। सूत्र-पिटक के पाँच निकाय या आगम हैं। किन्तु सर्वास्तिवाद में चार आगम ही सुरक्षित हैं।

जैन-आगम

जैन धर्म के अन्तर्गत आगम-सूत्रों के बारह विभाग किये गये हैं जिन्हें द्वादशांग या बारह अंग कहा जाता है।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके गणधर आचार्य्य सुधर्मा ने उनकी वाणी को संग्रह करके इन बारह अंगों में ग्रथित किया। इन बारह आगमों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) आचारंग—इस आगम में जैन आचारशास्त्र-का विशद रूप में विवेचन है। श्रमण निग्रन्थों का सुप्रशस्त आचार, गोचर (भिक्षा लेने की विधि) स्वाध्याय में नियोग, भाषा समिति, व्रत, नियम, तप, उपधान इत्यादि का वर्णन है।

(२) सूत्रकृतांग—इस आगम में जैन तत्व ज्ञान जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्व, छः द्रव्य, कर्म सिद्धान्त, तथा अन्य मत-मतान्तरोंके सिद्धांतों की समीक्षा है।

(३) स्थानांग—इस आगम में, कालसिद्धान्त उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी इत्यादि-क्षेत्र सिद्धान्त (भूगोल) तथा स्वसमय और परसमय का वर्णन है।

(४) समवायांग—इसमें स्वसिद्धान्त, परसिद्धान्त, स्वापर सिद्धान्त, इत्यादि का विवेचन है।

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र)—जैन आगमों में यह आगम सबसे बड़ा और विस्तृत है। यह आगम प्रश्नोत्तर के रूप में है जिसमें गणधरों के द्वारा पूछे गये प्रश्नों पर तीर्थंकर द्वारा की गई विस्तृत विवेचना है। जैन धर्म के प्रायः सभी मूल सिद्धान्तों पर इसमें प्रकाश डाला गया है।

(६) ज्ञाताधर्म कथा—यह जैन धर्म का पौराणिक आगम है। इसमें जैन इतिहास में हुए बड़े बड़े राजपुरुषों, तपस्वियों, त्यागियों तथा श्रद्धालु भक्तों की कथाओं का वर्णन है।

(७) उपासक दशा—यह भी जैन साहित्य का कथा-वार्त्ता परिपूर्ण आगम है।

(८) अन्तकृत दशा—इस अंग में तीर्थंकरों की जीवनियाँ, धर्माचार्यों की धर्म कथाएँ, परलोक की सिद्धि, क्षमा, आर्जव, मार्दव, ब्रह्मचर्य, सत्रह प्रकार के संयम, समिति, गुप्ति इत्यादि यौगिक क्रियाएँ, ध्यान का स्वरूप इत्यादि जैन साहित्य के महत्वपूर्ण तत्वों का विवेचन है।

(९) अनुत्तरोपपातिक - यह भी पुराण कथाओं के सम्बन्ध का जैन आगम है।

(१०) प्रश्न व्याकरण—इस आगम में नाग कुमार और सुवर्ण कुमार के साथ हुए दिव्य संवादों का वर्णन है।

(११) विपाकश्रुत—जैन धर्म के इस आगम में दुष्कृत कर्म और सुकृत कर्म के फल विपाक का विवेचन है।

(१२) दृष्टिवाद—यह आगम इस समय लुप्त हो गया है। इसके पांच विभाग थे जिनके नाम (१) परिकर्म (२) सूत्र (३) पूर्वगत (४) अनुयोग और (५) चूलिका थे।

यह आगम आजकल अप्राप्य हैं।

महावीर निर्वाण के पश्चात् ई० सन् से ३५७ वर्ष पूर्व आचार्य भद्रबाहु हुए। ये सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे। आचार्य भद्रबाहु जैन सिद्धान्त के महान् विद्वान् और चौदह पूर्वधर थे। इन्होंने पहले के आधार पर आवश्यक सूत्र, दश वैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, सूत्रकृतांग, आचारांग, दशा दशकंध, कल्प, व्यवहार, सूर्य प्रज्ञप्ति और ऋषि भाषिकों पर निरुक्तियों की रचना की। ये निरुक्तियाँ भी जैन आगमों की तरह महत्वपूर्ण हैं।

आचार्य सुधर्मा के द्वारा संग्रहीत सभी आगम और भद्रबाहु के द्वारा रचित सभी निरुक्तियाँ मूल प्राकृत भाषा में हैं।

आग्रिपिना

रोम के बादशाह क्लाडियस की चौथी स्त्री। सम्राट नीरो की माता।

आग्रिपिना रोम के बादशाह क्लाडियस की चौथी पत्नी थी। यह बड़ी षड्यन्त्रकारिणी और दुष्ट स्वभाव की थी। इसको अपने पहले पति से "नीरो" नामक पुत्र था जिसका साम्राज्य पर कोई हक नहीं पहुंचता था। मगर इसने अनेक छल प्रपञ्च करके साम्राज्य के असली उत्तराधिकारी "ब्रिटानकस" को वंचित कर "नीरो" को उत्तराधिकारी बना दिया और इसी सिलसिले में सन् ९६८ में अपने पति "क्लाडियस" को भी विष देकर मरवा डाला।

यही नीरो आगे चलकर रोम का बादशाह हुआ और इसने अपनी पत्नी और माता दोनों को मरवा डाला।

आंग्ल-जापानी सन्धि

सन् १९०२ में इंग्लैण्ड और जापान के बीच में हुई एक सुरक्षा सन्धि जिसका मूल उद्देश्य किसी भी राष्ट्र के द्वारा जापान या इंग्लैण्ड को दबाने का प्रयत्न किया जायगा तो दोनों देश एक दूसरे की सहायता करेंगे।

आग्जबर्ग संघ

सन् १६८८ में जब इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर विलियम तीसरा और उसकी स्त्री मेरी आसीन थे उस समय फ्रांस के विरोध में उसने स्पेन और जर्मनी की रियासतों के साथ मिल कर फ्रांस के विरुद्ध एक संघ स्थापित किया जिसको आग्जबर्ग संघ कहते हैं।

सन् १६८९ से १६९७ तक अर्थात् आठ वर्ष तक आग्जबर्ग संघ के साथ फ्रांस की लड़ाई चलती रही। इंग्लैण्ड के भूतपूर्व राजा जेम्स द्वितीय को फिर से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बिठाने और फ्रांस की सीमा उत्तर में राइन नदी तक करके नीदरलैण्ड और हॉलैण्ड को अपने अधिकार में कर लेने के उद्देश्य से फ्रांस के राजा यह लड़ाई लड़ रहे थे। जब आयरलैण्ड में बगावत हुई तब फ्रांस के चौदहवें लुई ने बागियों की सहायता के लिये सेना भेजी। इसी प्रकार ब्रिटिश जल सेना को नष्ट करने के लिये उसने टारवाइल नामक सेनापति की अध्यक्षता में फ्रेंच जल-सेना को रखा। मगर विलियम तृतीय की चतुराई से और इंग्लैण्ड की जल-सेना के सेनापति एडमिरल रसेल की सावधानी से लुई की सब योजना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। सन् १६९२ में फ्रांस के किनारे लाहोग नामक स्थान पर अंग्रेजी जल-

सेना ने फ्रेंच जल-सेना को हरा दिया और इंग्लिश खाड़ी तथा समुद्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस विजय से इंग्लैण्ड समुद्री हमले के भय से मुक्त हो गया।

आगा खाँ

मुसलमानों में "आगाखानी" नामक एक विशेष शाखा के धर्मगुरु "आगा खाँ"।

मुसलमान समाज में "आगाखानी" नामक विशेष सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी अधिकतर बम्बई में रहते हैं।

आगाखानी सम्प्रदाय की स्थापना के सम्बन्ध में कहा जाता है आगा खाँ नामक किसी धर्मगुरु ने इस सम्प्रदाय की स्थापना की थी और उसके पश्चात् वंशानुगत प्रथा से उसके उत्तराधिकारी "आगा खाँ" के नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

सर आगा खाँ भी इसी सम्प्रदाय के धर्मगुरु थे। भारत सरकार ने इन्हें सर की उपाधि से विभूषित किया था। सर आगा खाँ धर्मगुरु होने के साथ साथ भारतीय राजनीति में मुसलिम साम्प्रदायिकता और मुसलमानों के सार्वजनिक हितों के सम्बन्ध में भी दिलचस्पी रखते थे।

इनके अनुयायियों ने जब ये पचास वर्ष के हुए तब इनकी स्वर्ण जयन्ती मनाई थी और इन्हें सोने से तौला गया था जब ये साठ वर्ष के हुए तब इनकी डायमण्ड जुबिली मनाई गई और हीरों से तौले गये थे।

आचुगी

निजाम राज्यान्तर्गत येलबुर्ग के शिन्दे राजवंश का एक सरदार आचुगी जो उत्तर चालुक्य राजाओं की अधीनता में येलबुर्ग का एक शक्ति सम्पन्न माण्डलिक था।

बम्बई गजेटियर जिल्द एक भाग दो में येलबुर्ग के शिन्दे वंश पर टिप्पणी दी हुई है। उससे मालूम होता है कि ये शिन्दे मराठे थे और कनाड़ी भाषा-भाषी प्रान्त पर इनका अधिकार था। बीजापुर जिले के बदामी से इनका प्रदेश शुरू होता था जिसमें धारवाड़ के बागलकोट और नेरल का समावेश भी होता था। येलबुर्ग के ये शिन्दे भी नागवंशी थे और ग्वालियर का वर्तमान सेंधिया वंश भी कदाचित उन्हीं का प्रतिनिधि और नागवंशी हैं।

उत्तर चालुक्यों की अधीनता में येलबुर्ग के ये शिन्दे अत्यन्त शक्तिसम्पन्न माण्डलिक थे। इनका पहला और प्रसिद्ध राजा अचुगी था। इसके दो पुत्र थे जिनके नाम बम्म और सूर्य थे। इनका उल्लेख सन् १०७६ के शिला-लेख में हुआ है।

आचुगी के लेख में वर्णन है कि उसने गोवा और कोंकण को अपने अधीन कर लिया था।

बम्म का पुत्र द्वितीय आचुगी विक्रमादित्य का पराक्रमी सेनापति था। उसने एक होयसल राजा का पराभव किया था। ई० सन ११२२ के लेख में इसका उल्लेख पाया जाता है।

आचारंग सूत्र

जैन सिद्धान्तों का मशहूर आगम।

इस जैन आगम में जैन आचार शास्त्र का विस्तृत विवेचन किया गया है। आचारंग सूत्र के दो मुख्य विभाग हैं जिनको श्रुत-स्कन्ध कहते हैं। पहले श्रुत-स्कन्ध में नौ अध्ययन हैं-

(१) शस्त्रपरिज्ञा (२) लोक-विजय (३) शीतोष्णीय (४) सम्यक्त्व (५) लोकसार (६) धूत कर्म (७) महापरिज्ञा (८) मोक्ष और (९) उपधान।

शस्त्र परिज्ञा में संसार में जितने प्रकार के स्थावर-जंगम प्राणी हैं उनकी हिंसा करने से कर्मबन्ध होता है, इसकी विवेचना है। दूसरे लोक विजय में लौकिक सम्बन्धों पर विजय प्राप्त करके काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि कषायों का त्याग करके जीवन को संयमित बनाने का उपदेश है।

तीसरे शीतोष्णीय अध्ययन में धूप, गर्मी, सर्दी इत्यादि प्राकृतिक वेदनाओं को बिना किसी ग्लानि के सहन करने तथा आत्मा और शरीर को सहनशील बनाने का उपदेश है।

चौथे सम्यक्त्व में हृदय को श्रद्धा मूलक बना कर उसमें सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र से शुद्धीकरण करने की योजना है।

पाँचवें लोकसार अध्ययन में मुनियों के स्वरूप का विवेचन है।

छटें अध्ययन में धूत कर्म से मुक्ति के उपाय बतलाये गये हैं।

सातवें महापरिज्ञा अध्ययन में तपस्या करते हुए मुनियों पर यदि कोई संकट आवे तो उसे बिना विचलित हुए शान्ति के साथ किस प्रकार सहन करना इसकी व्यवस्था थी। यह अध्ययन आजकल विच्छिन्न हो गया है।

आठवाँ अध्ययन मोक्ष का है। जिसमें सब कर्मों से मुक्त होने पर जीव को कैवल्य की प्राप्ति होकर किस प्रकार संसार के बन्धनों से छुटकारा मिलता है इसका विवेचन है।

नौवें उपधान अध्ययन में उपरोक्त आठ अध्ययनों का जो अर्थ है वह किस प्रकार भगवान महावीर ने अपने जीवन में ग्रहण किया इसका विवेचन है।

आचारंग के दूसरे श्रुत स्कन्ध में सोलह अध्ययन हैं जिनमें मुनियों के धर्म का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। मुनियों के खाने, पीने, सोने, चलने, बोलने, वस्त्र, पात्र इत्यादि सभी विषयों पर जो मर्यादाएँ जैन धर्म में बतलाई गई हैं उनका विवेचन है।

'आज'

हिन्दी का एक सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र। जो सन् १६२० में काशी के सुप्रसिद्ध देशभक्त और हिन्दी प्रेमी रईस बा० शिवप्रसाद गुप्त की रहनुमाई में निकलना प्रारंभ हुआ।

वैसे तो हिन्दी भाषा में दैनिक पत्रों का प्रारम्भ बहुत पहले से हो चुका था, मगर सुव्यवस्थित सम्पादन कला, उच्चकोटि के विचार और सन्तुलित लेखनशैली के प्रतीक के रूप में 'आज' शायद हिन्दी का पहला दैनिक पत्र था। इस समय स्थानापन्न संपादक एवं प्रबन्ध संचालक श्री शिवप्रसाद गुप्त के नाती श्री सत्येन्द्रकुमार गुप्त हैं।

शुरू-शुरू में 'आज' के प्रधान सम्पादक बा० श्रीप्रकाश (बम्बई के वर्तमान गवर्नर) थे। इनके पश्चात् श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर इस पत्र के सम्पादक हुए। कहना न होगा कि पराड़कर जी और 'आज' का सम्बन्ध हमेशा अन्योन्याश्रित रहा। पराड़करजीने हिन्दी के क्षेत्र में आज के द्वारा सम्पादन कला (पत्रकारिता) का उच्च उदाहरण पेश किया। प्राञ्जल भाषा, उच्च श्रेणी की सुसंगत तर्कशैली और सन्तुलित विचार-धारा के द्वारा उन्होंने 'आज' को उत्कृष्ट दैनिक पत्रों की श्रेणी में ला दिया।

भारतीय स्वाधीनता-युद्ध के समय में अत्यन्त उत्तेजना पूर्ण वातावरण में भी उनकी लेखनी ने कभी अपने संयम को नहीं छोड़ा और किसी गैरजिम्मेदारी पूर्ण लेख या वक्तव्य के लिए 'आज' पत्र को कभी बदनामी नहीं उठानी पड़ी। उस समय गवर्नमेंट के विभागों में भी 'आज' की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

पराड़कर जी एक उत्कृष्ट श्रेणी के देशभक्त होते हुए भी उच्चकोटि के सम्पादक थे। पत्रकार-कला के क्षेत्र में उन्होंने पार्टी पालिटिक्स (दलगत राजनीति) को कभी आश्रय नहीं दिया। समय-समय पर उन्होंने अपनी विचार-प्रणाली के अनुसार ईमानदारी पूर्वक सरकार की, नेताओं की, काँग्रेस की और अन्यान्य सभी पार्टियों की आलोचना की।

जिस प्रकार पराड़कर जी ने अपनी पत्रकार-कला के बल पर 'आज' को हिन्दी-भाषा का प्रथम दैनिक बना दिया, उसी प्रकार 'आज' ने भी उनकी कीर्ति को भारतीय पत्रकार-कला के इतिहास में अमर कर दिया।

पराड़कर जी की मृत्यु के पश्चात् 'आज' अब भी उसी आकार प्रकार और शान-शौकत से निकल रहा है। उसके सञ्चालक पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय के साथ उसका सञ्चालन कर रहे हैं। फिर भी यह बात तो निश्चित रूप से कही जा सकती है कि आज का 'आज' पराड़करजी का 'आज' नहीं है।

आजम हुमायूँ

शेरशाह के पुत्र बादशाह सलीम शाह के समय में पंजाब का सूबेदार। जिसने सलीम शाह सूर के खिलाफ पंजाब में विद्रोह कर दिया लेकिन शाही फौज ने अम्बाला में उसे परास्त कर दिया। अन्त में वह कश्मीर भाग गया और वहाँ पहाड़ियों के हाथ से मारा गया।

आजीवक सम्प्रदाय

श्रमण संस्कृति की एक शाखा।

आजीवक सम्प्रदाय के संस्थापक गोसाल भगवान महावीर और बुद्ध के समकालीन थे। जैन परम्परा के अनुसार इनका नाम मंखलीपुत्र गोशाला था और ये भगवान महावीर के साथ उनके शिष्य के रूप में विचरण करते थे।

कुछ समय पश्चात् भगवान महावीर के कर्म सिद्धान्त से इनका मतभेद हो गया और ये नियति वाद के समर्थक हो गये। नियतिवाद के अनुसार इनकी मान्यता थी कि जो होना होता है वह होकर रहता है। मनुष्य कर्म भी विवशता से करता है और फल भोग में भी वह स्वतन्त्र नहीं है इनका सम्प्रदाय आजीवक सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गया और इनके जीवन काल में ही इनके अनुयायियों की संख्या ग्यारह लाख हो गई। गोसाल के मतानुसार सब सत्त्व (जीव) अवश हैं, अवीर्य हैं उनमें न पुरुष पराक्रम है न बल है। उनके मतानुसार बाल और पण्डित सब सत्त्व संसरण कर दुख का अन्त करते हैं। इसे संसार शुद्धि कहते हैं। गोसाल और उनके अनुयायी अचेलक रहते थे, पंचाग्नि तपते थे और कठोर तपस्या करते थे।

बुद्ध लोग आजीवकों को सबसे बुरा समझते थे। तापस होने के कारण समाज में इनका आदर था। लोग निमित्त, शकुन आदि का फल इनसे पूछते थे। सम्राट अशोक और उसके पौत्र दशरथ के ग्रन्थों में आजीविकों का उल्लेख पाया जाता है।

आजाद हिन्द फौज

द्वितीय महायुद्ध के समय भारत को आजाद करने के लिये सुप्रसिद्ध भारतीय नेता सुभाष चन्द्र बोस के द्वारा निर्मित आजाद हिन्द फौज।

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ में श्री सुभाष चन्द्र बोस जो कलकत्ते में अपने ही मकान में नजरबन्द की तरह रह रहे थे किसी प्रकार वेश बदल कर, अंग्रेजी शासन की आँखों में धूल झोंक कर जर्मनी पहुँच गये।

जर्मनी में हर हिटलर ने उनका अच्छा स्वागत किया और उन्हें "फ्यूहरर ऑफ इण्डिया" का पद दिया।

जर्मनी में श्री सुभाष बोस ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की और उसका मुख्य केन्द्र ड्रेसडन में रखा। जर्मनी ने महायुद्ध में जिन भारतीय सैनिकों को कैद किया था उन्हीं को सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज में भर्ती किया। उन्होंने अपनी फौज को कांग्रेस का तिरंगा ध्वज दिया जिसके नीचे के कोने में एक सिंह की मूर्ति भी अंकित थी। उन लोगों को सैनिकों की विशेष पोशाक भी दी गई। उन्हें मासिक वेतन भी दिया जाता था। उसी समय आजाद हिन्द रेडियो का भी निर्माण हुआ।

जर्मनी में आजाद हिन्द फौज की प्रगति को व्यवस्थित कर सुभाष चन्द्र बोस श्री रासबिहारी बोस के निमन्त्रण पर जापान गये। नेता जी के पहुँचने के पहले ही श्री रास बिहारी बोस वहाँ पर भारतीय स्वातन्त्र्य संघ की स्थापना कर चुके थे और इस संघ में आजाद हिन्द सेना के निर्माण पर भी विचार हो रहा था। जापानियों के द्वारा पकड़े गये कैप्टन मोहन सिंह ने आजाद हिन्द सेना के सैनिकों को फौजी तालीम देने का भार ग्रहण किया।

उन दिनो मलाया में जापानी साम्राज्य का विस्तार हो रहा था। जापान की टकसालों में वहाँ के नोट तेजी के साथ छप रहे थे। दैनिक व्यवहार में आने वाली चीजों के भाव प्रतिदिन मँहगे होते जा रहे थे। प्रजा के सिर पर सर्वनाश के बादल छा रहे थे। ऐसे समय में भारतीय स्वातन्त्र्य संघ ने भारतीयों की रक्षा का भार ग्रहण कर लिया। आजाद हिन्द सेना में अब तक पचास हजार से भी अधिक सैनिक प्रविष्ट हो चुके थे। उन्हें फौजी ट्रेनिंग देने के लिये ट्रेनिंग कैम्पों का निर्माण कर दिया गया था। ऐसा ही एक कैम्प पिनांग में भी था।

यह सारी तैयारी भारतवर्ष को आजाद करने के लिये हो रही थी। मगर जापानी लोग इसका उपयोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये करना चाहते थे। उनकी यह इच्छा एक जापानी अधिकारी "इवाकुरोकोकान" के द्वारा भारतीय स्वातन्त्र्य संघ को मालूम हुई और इसके परिणामस्वरूप जापानी अधिकारियों और भारतीय स्वातन्त्र्य संघ के के कार्यकर्ताओं के बीच वैमनस्य की भावनाएँ बढ़ने लगीं। इसके परिणाम स्वरूप कैप्टन मोहन सिंह ने आजाद हिन्द फौज को कुछ समय के लिए भंग कर दिया। ऐसी परिस्थिति में सन् १९४३ के अप्रैल में पूर्वीय एशिया के भारतीयो की दूसरी परिषद् सिंगापुर में हुई जिसमें श्री

रासबिहारी ने घोषणा की कि शीघ्र ही श्री सुभाषचन्द्र बोस उनके स्थान पर आजाद हिन्द फौज की बागडोर सम्भालने मलाया आ रहे हैं।

श्री सुभाष चन्द्र बोस ने ४ जुलाई १६४३ को भारतीय स्वातन्त्र्य संघ के अध्यक्ष पद को ग्रहण किया और जापान के प्रति अविश्वास और भारतीयों के सिर पर छाये हुए भय की भावनाओं के बीच में उन्होंने इस संग्राम का सफलता पूर्वक संचालन किया।

उस समय तक ब्रिटिश साम्राज्य के बरमा तथा सिंगापुर का पतन हो चुका था। फिर भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत के प्रति अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया था।

सुभाषचन्द्र बोस के आ जाने से भारतीय सैनिकों में अद्भुत उत्साह का संचार हो गया। कैप्टन मोहन सिंह के द्वारा तोड़ी गई आजाद हिन्द फौज का पुनर्निर्माण किया गया। भारतीय युवक सैनिकों के झुण्ड के झुण्ड उसमें भर्ती होने के लिये आने लगे। जिनको सुसंगठित करने के लिये एक आजाद हिन्द सरकार बनाने की व्यवस्था की गई।

५ जुलाई १६४३ के दिन आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार की स्थापना की गई थी। सुभाषचंद्रबोस उसके प्रधान मन्त्री, अध्यक्ष और युद्ध संचालन तथा विदेश नीति के संचालक बने। श्रीमती लक्ष्मी स्वामीनाथन स्त्री विभाग की अध्यक्षा हुई तथा श्री ए० एम० अय्यर के जिम्मे प्रचार और प्रकाशन विभाग, कर्नल एम० सी० चटर्जी के जिम्मे अर्थ विभाग तथा लेफ्टिनेंट कर्नल अजीज अहमद, ले० कर्नल आई० एम० एस० भगत, ले० कर्नल जे० के० भोंसले, ले० कर्नल गुलजार सिंह, ले० कर्नल एम० जेड कियानी, ले० कर्नल लोकनाथन, ले० कर्नल शाहनवाज—ये सब सशस्त्र दलों के प्रतिनिधि थे। श्री ए० एन० सरकार आजाद हिन्द सरकार के कानून मन्त्री बनाये गये। श्री करीमगनी, श्री दीनानाथ दास, श्री डी० एम० खान, सरदार ईश्वर सिंह आदि इसके सलाहकार नियुक्त हुए।

आजाद हिन्द सरकार का निर्माण करने के पश्चात् सर्वप्रथम श्री सुभाष चन्द्र बोस ने इस प्रकार शपथ ग्रहण की—

"मैं सदैव भारत सरकार का नम्र सेवक रहूँगा और भारत के सैंतीस करोड़ भाइयों की स्वतन्त्रता के लिये लड़ता रहूँगा। इसको मैं हमेशा अपना परम पवित्र कर्तव्य समझूंगा। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् भी मैं उसकी रक्षा के लिये अपना अन्तिम रक्त बिन्दु तक अर्पण करने के लिये हमेशा तत्पर रहूँगा।"

उसके पश्चात् प्रधान मण्डल के दूसरे सदस्यों ने इस प्रकार शपथ ग्रहण की—

"मैं ईश्वर की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि भारत और भारत के सैंतीस करोड़ निवासियों की स्वाधीनता के लिये अपने नेता सुभाष चन्द्र बोस का पूर्ण आज्ञाकारी रहूंगा और भारत की आजादी के लिये सदैव अपने जीवन का बलिदान करने को तैयार रहूँगा।"

आजाद हिन्द फौज के द्वारा युद्ध की व्यवस्था करने के लिये कैप्टन शाहनवाज, कैप्टन गुरुबख्श सिंह ढिल्लन और कैप्टन सहगल के समान योग्य सेनापति सुभाषचंद्रबोस के साथ थे। आजाद हिन्द फौज की भिन्न-भिन्न रेजीमेण्टों के नाम भी भारत वर्ष के विभिन्न नेताओं के नाम पर रखे गये थे। इन रेजीमेण्टों में सुभाष ब्रिगेड में तीन हजार दो सौ सैनिक थे और इसके कमाण्डर शाहनवाज थे। दूसरी गाँधी ब्रिगेड में अढ़ाइस सौ सैनिक थे और इसके कमाण्डर कर्नल कमानी थे। तीसरी आजाद ब्रिगेड में अढ़ाइस सौ सैनिक थे और इसके कमाण्डर कर्नल भुलमार सिंह थे। चौथी नेहरू ब्रिगेड में तीन हजार सैनिक थे और इसके कमाण्डर श्री गुरुबख्श सिंह ढिल्लन थे।

एक रेजीमेण्ट महिलाओं की भी बनाई गई थी जिसका नाम रानी झांसी रेजीमेण्ट रखा गया। इसकी कमाण्डर डॉ० लक्ष्मी स्वामीनाथन नियुक्त की गई थीं। इस महिला रेजीमेण्ट ने मोलमीन के मोर्चे पर सत्रह घण्टे तक शत्रु से लगातार युद्ध किया था और शत्रु के दाँत खट्टे कर दिये थे।

सन् १६४४ में आजाद हिन्द सरकार का मुख्य केन्द्र सिंगापुर से हटा कर रंगून ले आया गया था और यहीं से भारत वर्ष पर आक्रमण करने की योजना बनाई गई थी। जिस दिन भारत पर आक्रमण करने के लिये आजाद हिन्द फौज अग्रसर हो रही थी उस समय पचास हजार के

लगभग शिक्षित सैनिक और पन्द्रह सौ अफसर कूच की तैयारी में थे।

१८ मार्च सन् १९४४ को आजाद हिन्द फौज ने भारत की सीमा में प्रवेश करके कोहिमा एवं मणिपुर में प्रवेश किया। मणिपुर पर आक्रमण करने वाली पहली टुकड़ी के सेनानायक श्री शाहनवाज थे। इस सेना ने कोहिमा और मोराई पर अधिकार करके इम्फाल पर घेरा डाल दिया। इसकी योजना वर्षा के पहले ही इम्फाल पर अधिकार कर लेने की थी। मगर इनके पास शस्त्रों की कमी थी, बारूद और गोलों का भण्डार भी समाप्त हो रहा था। खाद्य-सामग्री और वायुयानों की भी इनके पास बहुत कमी थी। इसके विपरीत ब्रिटिश सेना हर प्रकार की सुविधाओं और अस्त्र शस्त्रों से लैस थी। फिर भी देश की आजादी के लिये लड़ने वाले इन वीरों ने उस समय शत्रु को पीछे हटने के लिये विवश किया।

इन्हीं सब भयङ्कर कठिनाइयों के बीच में से आजाद हिन्द सेना गुजर रही थी कि इसी समय जापानी सहायता प्राप्त हो गई। जापानी सेना जापानी सेनापति की अधीनता में लड़ाई लड़ रही थी। दोनों सेनाएँ पालेल के हवाई अड्डे के समीप पहुँची। इनकी योजना रात्रि में आक्रमण करने की थी। मगर आजाद हिन्द सेना के सैनिकों ने अनेक दिनों से कुछ खाया नहीं था वे केवल घास के ऊपर जी रहे थे। जापानी नायक से उन्होंने अनाज माँगा किन्तु उसने इन्कार कर दिया और कहा कि सामने वायुयान केन्द्र में अनाज के भण्डार भरे हैं, वहां से लूट कर ले आओ।

फल स्वरूप सेना ने हवाई अड्डे पर आक्रमण करके उस पर कब्जा कर लिया और अनाज के भण्डार पर अधिकार कर लिया मगर वह उसका उपभोग नहीं कर सकी, भागी हुई अंग्रेजी फौज को तुरन्त सहायता प्राप्त हो गई और उसने तुरन्त प्रत्याक्रमण कर आजाद सेना को दो मील पीछे ढकेल दिया।

इसी समय वर्षा प्रारम्भ हो गई और सारी परिस्थितियाँ आजाद हिन्द सेना के प्रतिकूल हो गई। इसी समय कोहिमा इम्फाल मार्ग भी आजाद सेना के हाथ से छीन लिया गया।

जब आजाद हिन्द सेना इम्फाल से हट गई। तो पीछे से जापानियों को भी भागना पड़ा और ब्रिटेन की चौदहवीं सेना तेजी से आगे बढ़ने लगी। फलस्वरूप आजाद सेना आक्रमण छोड़ कर रक्षा युद्ध की तैयारी करने लगी, क्योंकि बर्मा के हाथ से निकल जाने का भय उत्पन्न हो गया था और अमेरिकन सेनापति जनरल मैकआर्थर हथौड़े की सी चोटें कर रहा था।

इसी बीच आजाद हिन्द सेना की गांधी और नेहरू ब्रिगेड को भारी हानि पहुँची। इनके सैनिक एक-एक इंच जमीन के लिए जांनिसारी कर रहे थे मगर ब्रिटिश सेना की संख्या और साधनों के आगे वे नहीं ठहर सके और लड़ते हुए मारे गये। इधर जापानी सेना भी रंगून छोड़ने की तैयारी कर रही थी फल स्वरूप २४ अप्रैल १९४५ को आजाद हिन्द सेना ने रंगून छोड़ दिया।

आजाद हिन्द सेना ने १९४४ में पहला आक्रमण कर ग्रीष्म ऋतु में भयङ्कर युद्ध कर अंग्रेजी फौज को पराजित किया था जिसके परिणाम स्वरूप दक्षिण में उखराल डूगवे के बीच की सारी रेलवे लाइन उसके अधिकार में आ गई थी। मणिपुर की राजधानी इम्फाल के निकट आजाद हिन्द सेना ने बहुत सी चौकियाँ स्थापित की थी और वहाँ कैप्टन शाहनवाज ने तिरंगा झण्डा फहराया था। दूसरा आक्रमण मार्च १९४५ में किया गया उस समय आजाद हिन्द सेना की पाँचवीं गुरिल्ला फौज को कैप्टन शाहनवाज और कैप्टन सहगल के नेतृत्व में व्यवस्थित सेना के रूप में बदल दिया।

इसके बाद मौसम की खराबी, जापानी सेना की कमजोरी और अंग्रेजी सेना को भारी सहायता मिल जाने से जीत की बाजी हार में बदल गई। आजाद हिन्द सरकार का दफ्तर रंगून से हटकर बैंकाक चला गया और रंगून के सैनिकों ने आत्म-समर्पण कर दिया और वे लोग बन्दी बना लिये गये।

इसके पश्चात् दिल्ली के लाल किले में कर्नल शाहनवाज, ढिल्लन और सहगल पर ब्रिटिश सरकार ने सुप्रसिद्ध केस चलाया।

५ नवम्बर १९४५ को इस मुकदमे की पहली पेशी हुई। अभियुक्तों के बचाव के लिए कांग्रेस कार्य-समिति ने

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध धाराशास्त्री भूलाभाई देसाई को चुना और उनकी अध्यक्षता में भारत के प्रमुख धाराशास्त्रियों की एक समिति बनाई। पं० जवाहरलाल नेहरू भी इन धाराशास्त्रियों में थे। २२ वर्ष पहले उन्होंने बैरिस्टरी का त्याग कर दिया था मगर इस अवसर पर वे पुनः इस वेष में दिखलाई दिये।

मुगल सम्राट् बहादुरशाह के अभियोग के बाद लाल किले में चलने वाला यह पहला अभियोग था।

इन तीनों सेनापतियों के बचाव के लिए श्रीभूलाभाई देसाई ने जो शानदार बहस की और जो अद्भुत प्रमाण पेश किये, वे भारतीय कानून के इतिहास में स्मारक स्वरूप रहेंगे अन्त में देश के सारे लोकमत का प्रभाव देखकर जनवरी सन् १९४६ में भारत सरकार ने तीनों सेनापतियों को मुक्त कर दिया।

ऑटोह्वान गेयरिक

जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक विज्ञान शास्त्री, वकील तथा सिनेटर। जिनका जन्म सन् १६०२ में और मृत्यु सन् १६८६ में हुई।

ऑटोह्वान गेयरिक का जन्म जर्मनी के मेग्डेबर्ग नगर में हुआ था। सन् १६३१ में जब टिली (Tilly) ने मेग्डेबर्ग पर घेरा डाला तब इन्होंने नगर रक्षक के रूप में नगर की रक्षा का भार लिया था। अपने नगर को वैभवशाली बनाने का इन्हें हमेशा ध्यान रहता था इसी कारण ये सन् १६४६ में नगर पिता के रूप में नियुक्त किये गये।

आवश्यक वैज्ञानिक ज्ञान न होते हुए भी इन्हें वैज्ञानिक अनुसंधानों का बड़ा शौक था। हरएक अनुसन्धान के पीछे ये हाथ धोकर पड़ जाते और जब तक सफलता न मिलती उसका पीछा नहीं छोड़ते थे। गेलिलिओ, पास्कल और टारी सेली के अनुसन्धानों ने उन्हें पहला शून्य उत्पन्न करने के लिए प्रेरित किया और उन्होंने पहले वायुयान का आविष्कार किया।

सन् १६५४ में उन्होंने सम्राट् फर्डिनेंड तृतीय के सामने यह साबित करने के लिए कि हवा में वजन है और वह दबाव डालती है मेग्डेबर्ग में अर्ध गोलों वाला अपना मशहूर प्रयोग किया। ऐसा कहा जाता है कि गोलों की हवा निकाल देने पर दोनों चिपके हुए अर्धगोलों को अलग-अलग करने के लिए चौबीस चौबीस घोड़ों की टोलियाँ लगी थीं। गेयरिक के पम्प का प्रयोग बायल ने अपने प्रयोग को साबित करने के लिए किया।

गेयरिक ने और भी आविष्कार किये इन्होंने सब से पहले विद्युत विकर्षण की खोज की और एक संघर्षण मशीन की भी रचना की जिसे लेबनीज ने पहले-पहल बिजली की चिनगारी पैदा करने के उपयोग में लिया। अपने ज्योतिष विज्ञान के अध्ययन से इन्होंने उल्का और पुच्छल तारे (Comets) के नियत काल पर वापस आने की भविष्यवाणी की। कहा जाता है समुद्र में आने वाले तूफान का ज्ञान पहले से प्राप्त करने के लिए इन्होंने पानी के वायु भारमापक का प्रयोजन किया।

आटीला

हूण जाति का एक मशहूर सेनानायक जिसने सन् ४५१ ई० में पश्चिमी योरप की गालजाति (आधुनिक फ्रेन्च) पर आक्रमण किया। मगर रोमन और जर्मन लोगों के साथ की लड़ाई में यह हार गया। इस हार के बाद यह इटाली पर हमला करने के लिये तैय्यार हुआ मगर रोमन चर्च के पोप लिओ की प्रार्थना पर उसने रोम पर चढ़ाई करना रोक दिया।

आटीला के नेतृत्व में हूण लोग बड़े ताकतवर हो गये थे। ये लोग खानाबदोश थे और डैन्यूब नदी के पूर्व की तरफ और पूर्वी रोमन साम्राज्य के उत्तर-पश्चिम में बस गये थे। कास्टेन्टीनोपल के सम्राट और वहाँ की सरकार पर इनका आतंक हमेशा छाया रहता था। आटीला उनको धमकियाँ दिखाकर बड़ी-बड़ी रकमें वसूल किया करता था। पूर्वी साम्राज्य को तहस-नहस करने के बाद उसने पश्चिमी योरप पर आक्रमण किया और दक्षिणी फ्रान्स के बहुत से नगर बर्बाद कर दिये।

तब फ्रेंक और गाथ लोगों ने रोम की शाही फौजों के साथ मिलकर ट्राय के प्रसिद्ध युद्ध में आटीला को जबरदस्त हार दी इस लड़ाई में करीब डेढ़ लाख आदमी मारे गये।

आदर्शवाद (Idealism)

राज्य के सम्बन्ध में एक आदर्श और आध्यात्मिक विचारधारा, जिसका विकास प्राचीन युग में अफलातून और अरस्तू की विचार धाराओं में तथा भारतीय राजनीति की विचार धाराओं में हुआ और आधुनिक युग में रूसो, कैण्ट, कोलीरिच इत्यादि विचारकों ने इसका विकास किया।

आदर्शवाद राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत एक गम्भीर और जटिल विचारधारा है। इसके विचारकों ने एक सुन्दर और आदर्श राज्य की कल्पना में सुन्दर स्वप्नलोक का निर्माण किया है किन्तु वासना और विकारों से भरी हुई मानव प्रकृति सुन्दर और आदर्श समझते हुए भी इस कल्पना को साकार रूप म ग्रहण नहीं कर सकी है।

इसके मूल सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

आदर्शवाद राज्य के व्यवहारिक रूप का अध्ययन न कर उसे एक पूर्ण एवं आदर्श-संस्था के रूप में देखता है। आदर्शवाद इस बात पर विश्वास करता है कि राज्य का आधार शक्ति-सिद्धान्त, विकास-सिद्धान्त अथवा इकरार-सिद्धान्त नहीं है। इस सिद्धान्त का विश्वास है कि मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके मस्तिष्क की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये राज्य का जन्म हुआ है।

इस विचारधारा का बीज अफलातून की रिपब्लिक, अरस्तू की पालिटिक्स और शुक्र की राजनीति में अन्तर्निहित है। आधुनिक काल में सुप्रसिद्ध विचारक रूसो आदर्शवाद की विचारधारा का जन्मदाता माना जाता है। उसने अपनी "सोशल कॉन्ट्रेक्ट" नामक प्रसिद्ध पुस्तक में राज्य को एक आदर्श नैतिक संस्था माना है जो व्यक्ति की सामान्य इच्छा पर आधारित है। उसका सामान्य इच्छा का सिद्धान्त जर्मन दार्शनिक इमेन्युअल कांट के द्वारा अपनाया गया और उसने इस सामान्य इच्छा (General Will) के सिद्धान्त के आधार पर अपने आदर्शवादी सिद्धान्त को जन्म दिया। वास्तव में कॉण्ट ही पहला व्यक्ति है जिसने आदर्शवाद के सिद्धान्त को शास्त्रीय रूप दिया।

जर्मनी से आदर्शवाद का सिद्धान्त इंग्लैण्ड पहुँचा और वहाँ पर बोसांके ग्रीन और ब्रेडले ने इसको अपनाया।

कॉण्ट अफलातून के विचारों और कार्य-पद्धति में विश्वास करता था। उसकी विचारधारा पर रूसो और मान्टेस्क्यू का अच्छा प्रभाव पड़ा था। कॉन्ट का कथन है कि राज्य मनुष्य की स्वतन्त्रता और नैतिकता के लिये आवश्यक साधन है। उसके मतानुसार सर्वोच्च सत्ता व्यक्तियों में निहित है और व्यक्ति की इच्छा ही विधानों का मूल स्रोत है। व्यक्ति स्वयं साध्य है परन्तु व्यक्ति की इच्छा तभी कल्याणकारी होती है जब वह समाज के हित की दृष्टि से व्यक्त की गई हो। ऐसी ही इच्छाओं को प्रेरित करने तथा स्वार्थपूर्ण इच्छाओं का दमन करने के लिए राज्य की उत्पत्ति हुई है। काण्ट व्यक्तिगत अधिकारों तथा कर्तव्यों पर बहुत बल देता है। सामाजिक और राजकीय क्रान्ति के वह बहुत विरुद्ध है। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का उसकी मनःस्थिति पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। क्रान्ति की आलोचना करते हुए उसने लिखा है कि "क्रान्ति मनुष्य के नैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक अवसरों को समाप्त कर देती है तथा क्रान्ति करना घोरतम अपराध है।" इस प्रकार राज्य को वह सर्वशक्तिमान और दैवी संस्था समझता था और उसका विश्वास था कि राज्य की आज्ञाओं का पालन करना मनुष्य का नैतिक कर्तव्य है। काण्ट के मतानुसार युद्ध वांछनीय नहीं हैं। युद्ध को बन्द करके विश्व की शान्ति के लिये राज्य को अपना जीवन अर्पण कर देना चाहिये।

हिगेल

आदर्शवाद का दूसरा प्रसिद्ध विचारक हिगेल था। हिगेल राज्य को स्थायी, आवश्यक और मनुष्य की आत्मा का सार कह कर पुकारता है। राज्य की आज्ञाओं का पालन करके ही व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। कानून तथा आध्यात्मिक नैतिकता की सहायता से ही मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता को प्रकट कर सकता है।

हिगेल के मत से राज्य के बिना स्वतन्त्रता का कुछ भी महत्व नहीं है और व्यक्ति के वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति और उसका नैतिक विकास तभी संभव हो सकता है जब कि वह राज्य का सदस्य बन कर अपने को राज्य के अर्पण कर दे तथा असंशय भाव से राज्य के आदेशों का पालन करे।

काण्ट की तरह हीगेल युद्ध का विरोधी नहीं था। वह युद्ध को आवश्यक और अवश्यम्भावी समझता था। युद्ध को अवश्यंभावी सिद्ध करने में उसने यह प्रमाण दिया है कि मनुष्य की विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहता है और एक विचार का स्थान उसका विरोधी दूसरा स्थान ले लेता है। इन विचारों के संघर्ष में युद्ध अवश्यंभावी हो जाता है। इसके अतिरिक्त आन्तरिक विद्रोह और भ्रष्टाचार को समाप्त करके युद्ध राज्य को शक्तिशाली बना देता है। राज्य में सदैव शान्ति रहने से अकर्मण्यता आ जाती है। इस अकर्मण्यता को भी युद्ध दूर कर देता है।

हीगेल के अतिरिक्त आदर्शवादी विचारधाराओं में टी० एच० ग्रीन, बोसांके और ब्रेडले इस विचार धारा के प्रमुख विचारक माने जाते हैं।

आदर्शवादी सिद्धान्त की आलोचना

आधुनिक युग की विचार धाराओं में हीगेल के सिद्धान्त की कटु आलोचना की जाती है। राजनीति शास्त्र के लगभग सभी लेखक हीगेल के राज्य के निरंकुशवाद के सिद्धान्त, अन्ध विश्वास पूर्वक राज्य की आज्ञा पालन करने के विचार का प्रबल विरोध करते हैं। हीगेल के इन विचारों का भी तिरस्कार किया जाता है कि राज्य स्वयं ही एक साध्य है, एक सर्वोत्तम संस्था और ईश्वर की देन है जिसके अधिकार और उद्देश्य नागरिकों के अधिकार और उद्देश्यों से भिन्न हैं।

आदित्य प्रथम

दक्षिण के तंजावर और त्रिचनापली जिले का चोल वंशीय राजा विजयालय का पुत्र आदित्य प्रथम जो सन् ८७५ के लगभग हुआ। इसने पल्लव वंशीय राजा अपराजित वर्मन को हराकर तोण्ड मण्डल को अपने राज्य में मिला लिया और पल्लव राजवंश का अन्त कर दिया। पश्चिमी गंगवंश के राजाओं को हरा कर उससे तलकाण्ड और कोंगु देश छीन लिया। इसका साम्राज्य उत्तर में मद्रास तथा दक्षिण में कावेरी तक पहुँच गया था। यह राजा शैव धर्म का उपासक था और इसने कई शिव मन्दिरों का निर्माण किया।

--

आदिल खां ...

... न देश का अन्तिम और ... खाँ फारूकी जिसने सन् १४५७ से ... पर शासन किया। जिसने अपने ... को बहुत बढ़ाया। इसके समय में बुरहानपुर ... के सुन्दरतम नगरों में से एक माना जाता था। ... शाह ने असीर गढ़ के किले की किलेबन्दी को पूरा ... इसके समय में सोने, चाँदी के सलमे सितारे और ... मखमल पर जरदोजी के काम ने बहुत उन्नति की।

आदम मिकीवक्स

पौलेण्ड का सबसे महान् रोमाण्टिक कवि जि... समय सन् १७९८ से १८५६ तक ...। इस महान कवि ... अपने काव्यों में सम सामयिक कान्तियों का बड़ा स... वर्णन किया है। सन् १८२२ और २३ में उसने अ... कविताओं को दो खण्डों में प्रकाशित किया। सन् १८... में उसने अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना "पानतादयुज" प्रका... की जिसमें उसने नैपोलियन के पूर्ववर्ती पौलैण्ड का ... नैतिक और सामाजिक दृष्टि से चित्रण किया है यह ... एक राष्ट्रीय वीर काव्य के रूप में पोलेण्ड का परिचायक ...

आन्ध्र-सातवाहन

भारतवर्ष के दक्षिण में गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में बसा हुआ तैलगू भाषा-भाषी प्रान्त जिसके अन्तर्गत निजाम स्टेट का अधिकांश भाग, मद्रास प्रान्त का कुछ भाग तथा उड़ीसा प्रान्त के दक्षिण का कुछ भाग सम्मिलित है। आन्ध्र प्रदेश का इतिहास सातवाहन आंध्र नामक जाति के इतिहास से प्रारम्भ होता है। यह सातवाहन आंध्र कुल ब्राह्मण जाति का था। इस कुल का पहला राजा ई० सन् से लगभग २४० वर्ष पूर्व शिशुक नाम से हुआ और इसने अपने कुल का राज्य पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच फैलाया।

मगर इस कुल का सबसे प्रतापी राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी दक्षिण भारत का बड़ा प्रतापी राजा था। शक जाति के राजाओं ने इसके पूर्वजों से जो राज्य छीन लिये

[illegible] उसने सन १२८ ई० के लगभग जीत [illegible] शिला- [illegible] गुहा हुआ है जिसमें लिखा

[illegible] ने क्षत्रियों के दर्प को चूर चूर कर [illegible] शक, यवन, पल्लव तथा क्षहरातों का नाश कर [illegible] और सातवाहन कुल के गौरव की फिर से प्रतिष्ठा की है। उसने मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र, उत्तर कोंकण, नासिक, मध्य-भारत और विदर्भ को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। अपने राज्य के अठारहवें वर्ष में नासिक के पास पाण्डुलेण नभा की एक गुफा खुदवाई और अपने शासन के चौबीसवें वर्ष में एक लेख खुदवाया। गौतमी पुत्र के पश्चात् वासिष्ठी पुत्र श्री पुडुमावी इस वंश की गद्दी पर बैठा और उसके पश्चात् शिवश्री नामक एक राजा हुआ। इसके बाद यज्ञश्री शातकर्णी इस वंश का प्रतापी राजा हुआ जिसका समय सन् १६६ से १९६ ई० तक माना जाता है। इसके भी कई लेख उपलब्ध हुए हैं।

यज्ञश्री शातकर्णी के बाद सातवाहन वंश दुर्बल हो गया [illegible] इस वंश ने करीब चार शताब्दियों तक राज्य किया।

आनन्द मन्दिर

बर्मा की प्राचीन राजधानी पगान में सबसे बढ़िया इमारत आनन्द मन्दिर की थी जिसे दुनिया भर में बौद्ध स्थापत्य कला का खूबसूरत नमूना गिना जाता है।

आनन्दमठ

बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिम चन्द्र चटर्जी के द्वारा लिखा हुआ एक राजनैतिक उपन्यास जो सन् १७७४ के सन्यासी विद्रोह की घटनाओं पर आधारित है। इस उपन्यास में सशस्त्र सन्यासियों ने जंगल में रह कर अनेक कष्ट उठा कर किस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों से खुलकर मुठभेड़ की इसका बड़ा सजीव चित्रण किया गया है।

हमारे देश का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गान "वन्दे मातरम" भी सबसे पहले इसी उपन्यास के अन्तर्गत लिखा गया था जिसने बाद में समस्त देश के राष्ट्रीय गान का महत्व प्राप्त किया।

आगे जा कर [illegible] के क्रान्तिकारियों ने अपने संगठन और प्रचार में इस उपन्यास के मार्ग दर्शन से बड़ा लाभ उठाया। कई वर्षों तक अंग्रेजी सरकार ने इस उपन्यास को जब्त कर रखा था।

आनन्द भवन

इलाहाबाद में पं० मोतीलाल नेहरू का सुप्रसिद्ध निवासस्थान आनन्द भवन। जिसको उन्होंने भारती स्वाधीनता युद्ध की प्रेरक कांग्रेस संस्था को दान कर दिया और जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक प्रेरक स्मृति की तरह अभिव्यंजित हो गया।

आनन्द-घन

जैन धर्म के उपासक एक प्रसिद्ध संत और कवि। इनका पूर्व नाम लाभविजय था। इनके जीवन के अन्तिम दिन राजस्थान के मेड़ता नामक स्थान पर व्यतीत हुए थे। इनकी रचनाओं में "आनन्दघन-चौबीसी" और "आनन्दघन बहोत्तरी" अभी उपलब्ध हैं। इनका समय विक्रम की सत्रहवीं सदी के अन्तिम चरण में माना जाता है। इनकी आध्यात्मिक प्रेरणा का मूलस्रोत बहुत व्यापक और उदार भावनाओं से प्रेरित था।

आनन्द वर्द्धन

संस्कृत में ध्वनि सम्प्रदाय को जन्मदाता जो सन् ८५५ के करीब हुआ। आनन्द वर्द्धन काश्मीर की पण्डित परम्परा में बहुत प्रसिद्ध है। यह कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मन के समकालीन था। इसकी रचनाओं में "ध्वन्य लोकवृत्ति" अर्जुन चरित तथा विषय बाण उल्लेखनीय है।

आनन्द प्रकाश जैन

हिन्दी भाषा के एक उदीयमान उपन्यासकार। जिन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रृंखला में एक परम्परा कायम की है इनका ऐतिहासिक उपन्यास कठपुतली के धागे बड़ा लोकप्रिय हुआ है।

आनन्द पाल

हिन्दू शाही नामक ब्राह्मण कुल के राजा जयपाल का पुत्र। जिसका शासन भारत के उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में सन् १००५ के आसपास था।

सुप्रसिद्ध गुप्तवंश के शासन काल में जब कुशानवंश को इस देश से निकाल दिया तब वे लोग भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में काबुल के आसपास बस गये और देवपुत्र शाही शाहानुशाही के नाम से वहाँ राज करने लगे। सातवीं सदी से नौवीं सदी तक लगभग दो सौ वर्ष उन्होंने वहाँ राज्य किया। उसके बाद उनके एक ब्राह्मण मंत्री कल्लर ने इस राजवंश को खतम कर "हिन्दूशाही" के नाम से एक नवीन राजवंश की स्थापना की। राजा जयपाल और उसका पुत्र आनन्द पाल इसी वंश के वंशज थे।

राजा जयपाल के समय में गजनी का सितारा बुलन्द हो रहा था। गजनी के सुबक्तगीन ने और उसके बाद महमूद गजनवी ने राजा जयपाल पर आक्रमण कर उसे दो बार भारी पराजय दी। तब निराश होकर जयपाल अपने पुत्र आनन्द पाल को राज्य देकर अग्नि में जलकर मर गया।

आनन्द पाल को भी महमूद ने शान्ति से नहीं बैठने दिया तब आनन्द पाल ने अपनी सहायता के लिए भारतवर्ष के बहुत से राजाओं को बुला भेजा। भारतवर्ष के कई राजाओं ने मिलकर देश के इस महान् शत्रु का एक बार संयुक्त शक्ति से मुकाबिला करने का निश्चय किया।

इस युद्ध का वर्णन करते हुए मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि—

महमूद ने हिजरी सन् ३९९ (ई० सन् १००८) में अपनी सेना एकत्र की और भारत पर आक्रमण कर के आनन्द पाल का नाश करने का निश्चय किया। सुलतान के पिछले आक्रमण के समय आनन्द पाल ने बड़ी उद्दण्डता दिखलाई थी। आनन्द पाल ने भारत के दूसरे राजाओं से सहायता माँगी। सहायता का निमंत्रण पाकर उज्जयिनी, ग्वालियर, कालंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं ने एक ऐसी विशाल सेना तैय्यार की कि जितनी आज तक कभी नहीं हुई थी, आनन्द पाल ने स्वयं सेनापति का पद ग्रहण किया और महमूद पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओं की भेंट पेशावर में हुई। आमने-सामने पड़ाव डालकर ठहर गई। लगभग चालीस दिन तक किसी पक्ष ने युद्ध प्रारम्भ नहीं किया।

बाद में असभ्य गक्खरों ने हिन्दुओं की ओर से एका एक मुसलमानों की छावनी पर आक्रमण कर दिया और थोड़े ही समय में पाँच दस हजार मुसलमानों को काट डाला। युद्ध आरम्भ हुआ, दोनों ओर की सेनाएँ एक दूसरे से भिड़ गई। गक्खरों का जोश देख कर उस दिन के लिये युद्ध रोकने की इच्छा से सुलतान युद्ध क्षेत्र से बाहर निकल आया मगर दैवयोग से उसी समय आनन्द पाल के हाथी को एक बाण आकर लगा और वह हाथी घबरा कर पीछे भागने लगा। इस घटना को भागने की सूचना समझ कर सारी सेना भी भागने लगी और हिन्दुओं की जीत हार में बदल गई। अब्दुल्लाताई ने भागती हुई सेना का पीछा किया और ८००० हिन्दुओं के सिर काट डाले।

इस प्रकार इस युद्ध में हिन्दुओं के भाग्य का फैसला हो गया। आनन्द पाल की मृत्यु सन् १०१९ में हो गई।

आनन्दी बाई

पेशवा राघोबा की पत्नी—

सन् १७६१ में पेशवा बालाजी बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र माधोराव पेशवा की गद्दी पर बैठा परन्तु उसके नाबालिग होने से राज कार्य उसका चाचा राघोबा चलाता रहा, परन्तु जब माधोराव बालिग हुआ तो उसने अपने शासन कार्य की सहायता के लिये नाना फड़नवीस को नियुक्त किया। इससे राघोबा बहुत नाराज हुआ और उसकी स्त्री आनन्दी बाई ने राघोबा को पेशवा के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये उत्साहित किया। तब राघोबा ने निजाम को पूना पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। यह देख पर पेशवा ने राघोबा से फिर सन्धि कर ली और वह उसके प्रभाव में आ गया।

लेकिन आनन्दी बाई बड़ी षड्यन्त्रकारिणी स्त्री थी उसके षड्यन्त्रों से फिर झगड़ा पैदा हुआ। सन् १७७... में माधोराव पेशवा मर गया। उसके बाद उसका भाई

नारायण राव पेशवा हुआ परन्तु कुछ समय के बाद वह भी मार डाला गया। ऐसा कहा जाता है कि यह हत्या भी आनन्दी बाई के ही षड्यन्त्रों का परिणाम थी।

आबू–पर्वत

भारत वर्ष के दक्षिण पश्चिम में अहमदाबाद अजमेर रेलवे लाइन के बीच में सुप्रसिद्ध आबू पर्वत श्रेणियां फैली हुई हैं। इस पर्वत की सब से ऊँची चोटी पांच हजार फीट तक ऊँची है।

आबू का पर्वत उसके ऊपर बने हुए अनेक सुन्दर और कलापूर्ण जैन मन्दिरों के कारण जैनियों का महान् तीर्थ स्थान तो है ही, मगर स्थापत्यकला और पुरातत्व के प्रेमियों के लिए भी यह किसी तीर्थस्थान से कम नहीं है। क्योंकि आबू के जैन मन्दिर क्या कला के उच्च आदर्श की दृष्टि से, क्या स्थान की रमणीयता की दृष्टि से और क्या प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टि से न केवल भारतवर्ष में प्रत्युत सारे विश्व में अपना एक प्रमुख स्थान रखते हैं। स्थापत्य कला के उच्च आदर्श की दृष्टि से तो शायद सारे भारत वर्ष में एक ताजमहल को छोड़कर और कोई दूसरा स्थान नहीं, जो इनकी तुलना कर सके।

आबू पर बने हुए जैन मन्दिरों में विमलवसिह नामक आदिनाथ का मन्दिर और लूणावसाही नामक नेमिनाथ का मन्दिर कारीगरी, स्थापत्यकला और पच्चीकारी की दृष्टि से अनुपम है।

विमलवसिह आदिनाथ मन्दिर—यह मन्दिर दण्ड-नायक विमलशाह के द्वारा बनाया हुआ है। इस मन्दिर का निर्माण विक्रम संवत् २८८ में हुआ मगर बाद में विक्रम की बारहवीं तेरहवीं सदी में इस का पुनर्निर्माण और विस्तार हुआ जिसके सम्बन्ध में कई शिलालेख मन्दिर में लगे हुए हैं।

लूणावसाहि नेमिनाथ मन्दिर—उपरोक्त आदिनाथ मन्दिर के पास ही सुप्रसिद्ध लूणावसाहि नेमिनाथ का मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिर का निर्माण अणहिल पुर पट्टन के निवासी अश्वराज के पुत्र वस्तुपाल और उनके भाई तेजपाल ने करवाया। ये दोनों भाई पोरवाल जैन जाति के थे और गुजरात के धोलका प्रदेश के सोलंकी राणा वीरधावल के मंत्री थे। इस मन्दिर का निर्माण करोड़ों रुपयों की लागत से विक्रम संवत् १२८७ में किया गया।

भारतीय शिल्पकला के विशेषज्ञ श्री फर्ग्युसन अपनी "पिक्चर्स इलस्ट्रेशन्स आफ एन्शेन्ट आर्किटेक्चर इन इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं "कि इस मन्दिर में जो कि संगमर्मर का बना हुआ है अत्यन्त परिश्रम सहन करने वाली हिन्दुओं की टाँकी से फीते जैसी बारीकी के साथ ऐसी मनोहर आकृतियाँ बनाई गई हैं कि अत्यन्त कोशिश करने पर भी उनकी नकल कागज पर बनाने में मैं समर्थ नहीं हो सका।"

यहाँ के गुम्बज की कारीगरी के विषय में कर्नल टॉड लिखते हैं कि इसका चित्र तैयार करने में अत्यन्त कुशल चित्रकार की कलम को भी महान परिश्रम करना पड़ता है।

कर्नल टॉड के विलायत पहुँच जाने के पश्चात् मिसेज विलियम हण्टर बेच नाम की एक अंग्रेज महिला ने वस्तुपाल तेजपाल मन्दिर के गुम्बज का अपना तैयार किया हुआ चित्र कर्नल टॉड को दिया। उस चित्र को देख कर उन्हें इतना हर्ष हुआ कि उन्होंने अपनी "ट्रेवलर्स इन वेस्टर्न इण्डिया" नामक पुस्तक उसी महिला को समर्पित कर दी और उससे कहा कि तुम आबू नहीं गई हो प्रत्युत् आबू को ही यहाँ ले आई हो!

आमूर की घाटी

रूस और चीन के बीच में पड़ने वाली आमूर नदी की घाटी जहाँ पर रूस और चीन की पहली लड़ाई हुई।

इस लड़ाई में रूस की हार हुई और सन् १६८६ में चीन और रूस के बीच में नरचिन्स्क की सन्धि हुई जिसमें दोनों देशों की सीमाएँ तय की गई और व्यापार सम्बन्धी समझौता हुआ। यूरोप के एक देश के साथ चीन वालों की यह पहली सन्धि थी। इस सन्धि से रूस का आगे बढ़ना तो रुक गया मगर कारखानों के उद्योग में उसकी बड़ी तरक्की हुई। इस सन्धि से रूस और चीन के राजनैतिक सम्बन्ध मजबूत हो गये।

इस समय रूस का शासक पीटर महान् था!

आयर

बिहार में सन् १८५७ में दानापुर के नजदीक वीर सेनानी कुँवर सिंह का मुकाबला करने वाला अंग्रेज सेनापति मेजर आयर।

दानापुर के ऊपर कुँवर सिंह की सेनाओं का जब घेरा पड़ा और अंग्रेजी सेनाओं को भारी हार खानी पड़ी तब मेजर आयर अंग्रेजों की हार का बदला लेने के लिये आरा पर चढ़ाई करने चला। जब कुँवर सिंह के सैनिक २६ और ३० जुलाई को जनरल डनबार को हराकर लौट रहे थे तब उन्हें पता लगा कि आयर की फौजें आरा की तरफ जा रही हैं। तब उस वृद्ध सेनापति ने तुरन्त अपनी सेना की व्यूह रचना की। बुढ़ापे और जवानी की इस मुठभेड़ में बुड्ढे कुँवर सिंह ने ही विजय पाई। तब आयर ने तोपों को धड़धड़ाना शुरू किया मगर कुँवर सिंह की सेना आग उगलती हुई तोपों के बिल्कुल नजदीक पहुँच गई। वे उन पर अधिकार करने ही वाली थी कि जनरल आयर ने सब ओर से निराश होकर अपनी फौज को संगीनों से हमला करने की इजाजत दी। गोरे सैनिक संगीनें ले लेकर क्रान्तिकारियों पर बेतहाशा टूट पड़े और उन्होंने संगीनों के बल से क्रान्तिकारियों को जंगल में खदेड़ कर आरा पर अधिकार कर लिया।

आयर कूट (Eyre Coot)

लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में मद्रास की अंग्रेजी सेना का मशहूर सेनापति आयर कूट।

सन् १७८० में हैदर अली ने कर्नाटक पर हमला करके अर्काट को घेर लिया। अंग्रेजों ने अर्काट की रक्षा के लिये सर हैक्टर मुनरो और कर्नल बेली को दो तरफ से उसे दबाने के लिये भेजा मगर हैदरअली ने इन सेनाओं को घेर कर बुरी तरह से हरा दिया और अर्काट पर अधिकार कर लिया।

तब लार्ड हेस्टिंग्ज ने आयरकूट नामक कुशल सेनापति को युद्ध के लिये भेजा। आयरकूट बड़ा युद्ध-कुशल सेनापति था। दक्षिण में फ्रांसीसियों के साथ कई लड़ाइयों में उसको सफलता मिल चुकी थी। वाण्डवाश के प्रसिद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करके वह बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

आयरकूट ने सेना का संगठन करके चिदम्बरम पर हमला किया मगर इस लड़ाई में हैदरअली ने उसे बड़ी शिकस्त दी। इसके बाद हैदर अली ने पोर्टोनोवो नामक स्थान पर आयरकूट की सेना पर हमला किया। बड़ी भयंकर लड़ाई हुई लेकिन इसमें आयरकूट की विजय हुई। हैदर अली के दस हजार सैनिक काम आये और उसे बड़ी भारी क्षति उठाना पड़ी।

आयुर्वेद

भारतीय चिकित्सा विज्ञान का महान् शास्त्र। जिसने अत्यन्त प्राचीन काल में, मनुष्य के स्वास्थ्य, आयु, शरीर और रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में अत्यन्त सूक्ष्म और वैज्ञानिक विवेचना की।

भारतीय परम्परा के अनुसार इस देश में आयुर्वेदशास्त्र की स्थापना करनेवाले मूल पुरुष अश्विनीकुमार नामक दो भाई माने जाते हैं। जिन्होंने महर्षिच्यवन को अत्यन्त वृद्धावस्था में सुकन्या नामक राजकन्या से विवाह करने के कारण पुनर्यौवन प्रदान किया था।

अश्विनी कुमारों के पश्चात् आयुर्वेद विज्ञान में प्राण संचार करके महान् चमत्कार पैदा करने वाले आचार्य महर्षि धन्वन्तरि माने जाते हैं। जिनके नाम का स्मरण प्रत्येक भारतीय चिकित्सक अपना काम प्रारम्भ करने के पहले करता है।

धन्वन्तरि के पश्चात् आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान में महर्षि सुश्रुत, महर्षि चरक और महर्षि वाग्भट्ट का नाम आता है। जिनके लिखे हुए सुश्रुत संहिता, चरक संहिता और अष्टाङ्ग हृदय नामक ग्रन्थ कई शताब्दियां बीत जाने पर भी आज तक भारतीय चिकित्सकों के लिए पथ प्रदर्शन का काम करते हैं। अरब स्थान के खलीफाओं के समय इन ग्रन्थों के अरबी अनुवाद हुए और इन्होंने अरबी चिकित्सकों का भी पथ प्रदर्शन किया।

सिद्धान्त

आयुर्वेद सिद्धान्त की मूलभित्ति त्रिदोष और त्रिगुणात्मक सिद्धान्त पर खड़ी की गई है। मानव-शरीर को आयुर्वेद विज्ञान ने वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों की

समष्टि बतलाया है और मानव मन को सत्व, रज और तम इन तीन गुणों की समष्टि बतलाया है। शरीर और मन की इन प्रकृतियों का समन्वय करते हुए आयुर्वेद शास्त्र बतलाता है कि सत्व गुण प्रधान मानसवाले मानव के शरीर में कफ प्रकृति प्रधान रहती है। रजोगुण प्रधान मानसवाले मानव के शरीर में पित्त प्रकृति की प्रधानता रहती है और तमो गुण प्रधान मानसवाले मानव शरीर में वात प्रकृति शासन करती है।

मनुष्य के शरीर और मन में जब तक ये त्रिदोष और त्रिगुणात्मक प्रवृत्तियाँ संतुलित रूप में रहती हैं तब तक उस पर किसी भी व्याधि का आक्रमण नहीं हो सकता। उसके रक्त में जीवनी शक्ति (Vitality) और रोग निवारक शक्ति (Immunity) संतुलित मात्रा में रहती है और रोगोत्पादक जन्तु उसमें प्रवेश करते ही मर जाते हैं।

मगर जब शरीर के इन त्रिदोषों का सन्तुलन नष्ट हो जाता है तब शरीर के रक्त में रोगोत्पादक जन्तु अपनी जड़ जमा लेते हैं वहीं से व्याधि का प्रारम्भ हो जाता है। त्रिदोषों का यह सन्तुलन मिथ्या आहार, विहार, अत्यधिक भोग लालसा, शरीर की शक्ति से अधिक परिश्रम करना इत्यादि कारणों से बिगड़ता है। इसलिए आयुर्वेद के आचार्य मानव-जाति को पहले यह सलाह देते हैं कि रोग उत्पन्न करके उसका इलाज करने की अपेक्षा बुद्धिमानी इसी में है कि शरीर में रोग उत्पन्न ही न होने दिया जाय।

इसके लिए उन्होंने लम्बी चौड़ी व्याख्याओं के द्वारा मनुष्य की सारी दिनचर्या, आहार-विहार, स्नान, शौच्य, शयन, कामलिप्सा इत्यादि सारी बातों का बारीकी से विवेचना करने वाला एक शास्त्र बना दिया है। उनका कहना है कि नियमित जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य रोगों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

रोगों का विवेचन करते हुए आयुर्वेद शास्त्रियों ने रोगों के तीन भेद किये हैं। (१) अधि भौतिक (२) आधिदैविक और (३) आध्यात्मिक।

आधि भौतिक रोग शरीर की विकृति से पैदा होते हैं, आधि दैविक रोग देवताओं या प्रेतों के कोप से पैदा होते हैं और आध्यात्मिक विकृतियाँ मन और आत्मा की विकृति से पैदा होती हैं।

आधिभौतिक रोगों के निवारण के लिए चिकित्सा शास्त्र, आधिदैविक रोगों की निवृत्ति के लिए तंत्रशास्त्र और आध्यात्मिक रोगों की निवृत्ति के लिए योग शास्त्र का विधान बतलाया गया है।

आधि भौतिक रोगों की निवृत्ति के लिए जिस औषधि-विज्ञान की रचना की गई है उसके भी दो भेद किये गये हैं।

(१) वनस्पति सम्बन्धी औषधियाँ जिसमें जंगलों में पैदा होने वाली वनस्पतियों, विष, उपविषों इत्यादि के मेल से उनके गुण धर्मानुसार औषधियों का निर्माण किया जाता है।

(२) रस रसादिक सम्बन्धी औषधियाँ जिसमें पारद, सुवर्ण, ताम्र, लोह, अभ्रक, मोती इत्यादि खनिज और अवानस्पतिक द्रव्यों से औषधियों का निर्माण किया जाता है।

वानस्पतिक औषधियों की भी साधारणतया दो विभाग हैं। एक जीवनीशक्ति (Vitality) वर्द्धक और दूसरी रोग निवारक शक्ति (Immunity) वर्द्धक।

आयुर्वेद का कथन है कि इस संसार में जीवनी शक्ति वर्द्धक द्रव्यों में आँवले के बराबर और रोग निवारक शक्ति वर्द्धक औषधियों में हरड़ के बराबर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। आँवला शीत वीर्य और हरड उष्णवीर्य होने से उनका समन्वय करने के लिए एक तीसरा द्रव्य बहेड़ा और मिलाया जाता है। इस प्रकार "त्रिफला" का यह योग आयुर्वेद विज्ञान ने मानव शरीर को स्वस्थ रखने और किसी भी रोग कीटाणु के आक्रमण को रोकने की शक्ति पैदा करने के लिए सर्वोत्कृष्ट बतलाया है मगर साथ ही कहा है कि ये तीनों द्रव्य उत्तम जाति के और हिमालय पहाड़ पर पके हुए ही तभी अपना अभीष्ट गुण बतलाते हैं।

इनके सिवा आयुर्वेद के निघण्टु शास्त्र में और भी सैकड़ों वनस्पतियों के गुणधर्म का बारीकी से विवेचन किया है।

वनस्पति शास्त्र की ही तरह रस-शास्त्र पर तो इस विज्ञान में और भी गम्भीर सूक्ष्म और विवेचना की गई है।

खास कर "पारद" को मानवीय शरीर की चिकित्सा में उपयोग लेने के सम्बन्ध में जितनी बारीक खोज भारतीय चिकित्सा-विज्ञान ने की है उतनी आज तक संसार में कहीं नहीं हुई यह कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पारद को अष्टादश संस्कारों से संस्कारित करना, उसके अन्दर सोने को पचा लेने की शक्ति पैदा करना, उस सोने को पचाये हुए पारद से, चन्द्रोदय, मकरध्वज, इत्यादि रोग और वृद्धावस्था पर विजय प्राप्त करनेवाली महान् औषधियों का निर्माण करना, इत्यादि कला से सारे संसार में केवल भारत के चिकित्सक ही परिचित थे। आज भी यद्यपि अष्टादश संस्कारों को जानने वाला कोई वैद्य भारत में नहीं है फिर भी आठ संस्कारों से संस्कारित पारद से निर्मित औषधियाँ भी समय आने पर अपना अमर बतलाती हैं और आज के इस प्रतिस्पर्द्धा पूर्ण युग में आयुर्वेद किसी रूप में यदि जीवित है तो अपने इसी रसशास्त्र की वजह से।

पारद के साथ विष-विज्ञान के ऊपर भी आयुर्वेद की खोजें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। संखिया, वत्सनाग, कुचला, भिलावा इत्यादि प्रभावशाली औषधियों का आज भी आयुर्वेद के चिकित्सक निर्भीकतापूर्वक व्यवहार करते हैं और उनसे हजारों रोगियों को लाभ पहुँचता है।

पुनर्यौवन की प्राप्ति के सम्बन्ध में भी किसी युग में आयुर्वेद के महर्षियों ने साँगोपाँग खोज की थी, उन्होंने अपने शास्त्रों में उसका पूर्ण विवेचन भी किया है पर यह कहने में कोई संकोच नहीं कि इस समय इस विधिविधान का पूर्ण जानकार शायद कोई नहीं है और पुनर्यौवन का प्रश्नवाचकचिह्न अभी ज्यों का त्यों खड़ा है।

समन्वय

फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान ने इस समय जितनी तेजी के साथ प्रगति की है उसके सामने सभी चिकित्सा पद्धतियों की गति मन्द पड़ गई है। इस सचाई को मानने के बावजूद यह भी मानना ही पड़ेगा कि इस चिकित्सा विज्ञान की नींव अधिकतर नेगेटिव थिओरी पर रक्खी गई है। पाजेटिव सिद्धान्त के रूप में सिर्फ "विटामिन" सिद्धान्त की खोज ही इसका अवलम्ब है। रोग का आक्रमण हो और उसके कीटाणुओं को तुरन्त नष्ट कर दिया जाय यह विशुद्ध नेगेटिव सिद्धान्त है और उसी के बल पर पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान अपनी एण्टी-बायोटिक औषधियों और इंजेक्शनों के बल पर विजय प्राप्त करता जा रहा है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यह औषधि-विज्ञान का चरम सिद्धान्त नहीं हो सकता। चरम सिद्धान्त तो पाजेटिव या रचनात्मक ही होगा जिसमें मानव का शरीर इतनी शक्ति प्राप्त करेगा जिस पर रोग के कीटाणु आक्रमण ही न कर सकें। इस विषय के मूलभूत-तत्व आयुर्वेद सिद्धान्त में मिल सकते हैं। इस प्रकार पाजेटिव और नेगेटिव दोनों प्रकार की चिकित्साओं के मूल भूत तत्वों को ग्रहण करके उनका समन्वय किया जायगा उसी दिन मानव जाति का वास्तविक कल्याण होगा।

आर्क-विशप

ईसाई धर्म के अधिकार सम्पन्न धर्माधिकारी। जिनका दर्जा सबसे बड़े धर्माधिकारी पोप से नीचे होता था। आर्क विशप वे लोग कहलाते थे जिनका अधिकार अपनी संस्था की सीमा के बाहर तक होता था। जो अपने प्रान्त के समस्त विशपों पर कुछ न कुछ अधिकार रखते थे। आर्क विशप का एक मुख्य अधिकार यह भी था कि वह अपने प्रान्त के सभी विशपों को प्रान्तीय सभा में बुलाता था। विशप के द्वारा निर्णय किये हुए अभियोगों की अपील इसके यहाँ होती थी। विशप से आर्क विशप का दर्जा बड़ा होता था।

आर्य—संस्कृति

आर्य लोगों की महान् सभ्यता, जिसका विकास सिंधु और गंगा के मध्यवर्ती क्षेत्र में हुआ।

इतिहास के प्राचीनतम काल में वैसे तो भिन्न भिन्न देशों और जातियों में अनेक प्रकार की संस्कृतियों का उदय और अस्त हुआ। मगर अखिल मानवीय संस्कृति के दृष्टि-कोण से इन सब संस्कृतियों को दो बड़े-बड़े विभागों में विभाजित किया जाता है (१) सेमेटिक संस्कृति (२) आर्य संस्कृति।

सेमेटिक संस्कृति का विकास यूरोप, अरब, रूस, अमेरिका तथा मध्य एशिया के कुछ विभागों में हुआ महान् ईसाई धर्म और महान् इस्लाम धर्म का उदय सेमेटिक संस्कृति में हुआ, जब कि आर्य-संस्कृति का पौधा प्रधान रूपसे भारत के अन्तर्गत फूला फला और इसकी शाखाएं बौद्ध धर्म के रूप में चीन, जापान, बरमा, सीलोन, जावा, सुमात्रा, कम्बोड़िया इत्यादि देशों में फैली। कहने को जर्मन लोग भी अपने आपको आर्य संस्कृति में बतलाते हैं और उनका पूजनीय चिन्ह भी आर्य लोगों की तरह स्वस्तिक का ही है, वहाँ का साहित्य भी संस्कृत भाषा के साहित्य से भरा पुरा है फिर भी भूमि और देश का परिवर्तन होने से भारतीय आर्य संस्कृति में और जर्मन आर्य संस्कृति में बहुत मौलिक भेद हैं और यूरोप के धरातल पर बसे हुए होने से आर्य-संस्कृति की अपेक्षा जर्मन लोग सेमेटिक संस्कृति के ही अधिक निकट हैं।

आर्य संस्कृति के पूर्व भारतीय संस्कृतियाँ

इतिहासकारों का कहना है कि आर्य लोगों के भारतवर्ष में आने के पूर्व इस देश में एक अत्यन्त विकसित, सुव्यवस्थित और समृद्ध संस्कृति का अस्तित्व था। यह संस्कृति द्राविड़ संस्कृति के नाम से प्रसिद्ध थी। मोहन-जोदड़ो और हरिअपा की खुदाई में इस संस्कृति के अवशेष मिले हैं। उनसे मालूम होता है कि पांच हजार बरस से भी बहुत पुराने समय से इस देश में एक समृद्ध संस्कृति का अस्तित्व था। लोग मकान बनाने, रूई से कपड़ा बनाने तथा जीवन के अन्दर उपयोग में आने वाली और भी कई कलाओं के जानकार थे।

उसके बाद जब आर्य जाति ने इस देश में प्रवेश किया तब वह भी अपने साथ एक व्यवस्थित सभ्यता के तत्वों को लाई। पहले कुछ समय तक दोनों सभ्यताओं में छोटे बड़े संघर्ष हुए। जिनका थोड़ा बहुत वर्णन वेदों की ऋचाओं में मिलता है। फिर उसके बाद दोनों सभ्यताओं में धीरे-धीरे समझौता हो गया। प्राचीन संस्कृति के कुछ तत्व आर्यों ने ग्रहण किये और आर्य-संस्कृति के कुछ तत्व प्राचीन लोगों ने ग्रहण किये और दोनों सभ्यताओं का करीब-करीब एकीकरण हो गया। भाषाओं का भेद जरूर बना रहा। द्राविड़ संस्कृति की भाषाएं तामील, तैलगू, कन्नड़ और मलयालम थीं जब की आर्य संस्कृति की प्रधान भाषाएँ संस्कृत, प्राकृत, पाली, मागधी और उनकी शाखाएं थीं।

कालान्तर में ईसा से करीब एक हजार वर्ष पूर्व से छः सौ वर्ष पूर्व के बीच आर्य संस्कृति की दो शाखाएं हो गई। एक ब्राह्मण संस्कृति और दूसरी श्रमण संस्कृति।

ब्राह्मण संस्कृति वैदिक संस्कृति के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस सभ्यता के अनुयायी वेदों को अपौरुषेय प्राचीनतम ग्रन्थ मानते थे और उन्हीं के अनुसार यज्ञ, यागादिक कर्म करते थे, समाज में छुआ छूत को मानते थे तथा समाज में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के दर्जे को हीन समझते थे।

यज्ञ यागादिक में होने वाली हिंसा और छुआछूत से उत्पन्न असन्तोष की प्रति क्रिया के रूप में ही एक प्रकार से श्रमण संस्कृति का उदय हुआ ऐसा कई इतिहासकारों का विश्वास है। श्रमण संस्कृति की शाखाओं में बौद्ध, जैन और आजीवक ये तीन शाखाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

यह स्वीकार करने में किसी को भी हिचक नहीं हो सकती कि आर्य संस्कृति के विधायकों ने जीवन और संसार की तमाम समस्याओं और रहस्यों पर अत्यन्त मौलिक खोजें की, जीवन के हरएक क्षेत्र में इस संस्कृति ने कुछ ऐसे मौलिक तत्वों की स्थापना की जो संसार में दूसरी किसी भी जगह में नहीं पाये जाते।

राजनैतिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, धार्मिक क्षेत्र साहित्यिक क्षेत्र और कला के क्षेत्र में इस सभ्यता ने ऐसे अमूल्य रत्न संसार को भेंट किये जो इतिहास में अन्यत्र बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं।

राजनैतिक क्षेत्र में आर्य-संस्कृति

राजनीति के क्षेत्र में आर्य-संस्कृति ने दूसरी सभ्यताओं की तरह एकतंत्री शासन का ही समर्थन किया है हालांकि उसके इतिहास के प्रारम्भ में और मध्य में कई छोटे बड़े गणतंत्रों का भी अस्तित्व पाया जाता है।

मगर इस एकतंत्री शासन की भी कई मर्यादाएँ थीं महान् राजनीति पारंगत शुक्र ने अपनी राजनीति में राजा

के कर्तव्य, उसके ज्ञान, उसके व्यक्तित्व इत्यादि प्रत्येक बात के लिए जो मान-दण्ड निश्चित किया है वह अत्यन्त आश्चर्य-जनक है, उस कसौटी पर कसे जाने के बाद राजा के उच्छृंखल और अनियन्त्रित होने का भय नहीं रहता। उसके बाद भी राज्य-सिंहासन पर यद्यपि क्षत्रिय राजा लोग ही बैठते थे मगर उनपर पूरा नियंत्रण बन में निवास करने वाले सर्वस्व त्यागी ब्राह्मणों या ऋषियों का होता था। वे लोग समय आने पर राजा को आदेश देते थे और राजा को नत-मस्तक होकर उसे स्वीकार करना पड़ता था अगर वह ऐसा नहीं करता था तो प्रजा उसे हटा देती थी।

राज्य संस्था पर धर्म-संस्था के नियंत्रण का यह उदाहरण हमें ईसाई और इस्लाम संस्कृति में भी देखने को मिलता है मगर उनमें बहुत बड़ा मौलिक अन्तर भी है। ईसाई धर्म की धर्म-संस्था रोमन-चर्च के पोप राज्य-संस्था पर नियंत्रण करते-करते वैभव, विलास और भोग में इतने निमग्न हो गये कि समय आने पर राज्य-संस्था ने उनके विधान को मानने से इन्कार कर दिया और दोनों संस्थाओं के बीच प्रत्यक्ष संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस्लाम के धर्माधिकारी खलीफा तो खुलेआम राजकीय वैभव में सराबोर होकर आपस में भयङ्कर रूप से लड़ने लगे थे।

मगर आर्य-संस्कृति में धर्म-संस्था के संचालक प्रायः वैभव विलास से दूर जंगलों में ही जीवन व्यतीत करते थे। हमारे अधिकांश धर्मशास्त्रों, चिकित्सा शास्त्रों और राजनीति के ग्रन्थों का निर्माण प्रायः जंगलों में ही हुआ है। कौटिल्य के समान महान् राजनीतिज्ञ और साम्राज्य निर्माता बस्ती में रहते हुए भी एक कुटिया में रह कर सन्यासी का जीवन व्यतीत करते थे, इतने बड़े साम्राज्य का निर्माण कर देने पर और राजनीति शास्त्र पर इतना अमर ग्रन्थ लिख देने पर भी राज्य-वैभव या विलास-मन्दिरों ने उन्हें कभी अपनी ओर आकर्षित नहीं किया और यही कारण है राज्य-संस्था पर धर्म संस्था का नियंत्रण होने पर भी इस संस्कृति के इतिहास में राज्य-संस्था और धर्म-संस्था के बीच कभी कोई भयानक संघर्ष नहीं हुआ।

आर्य संकृति की दूसरी मौलिक विशेषता यह है कि आर्य-लोगों ने अपने राजनैतिक और सामाजिक ढाँचे की नींव भोग पर नहीं बल्कि त्याग के ऊपर रक्खी। वैसे राजाओं और जन समाज के लिए उच्चतर वैभव विलास की हमारे यहाँ कभी मनाई नहीं रही, न उन वैभव विलासों को कभी बुरा समझा गया मगर ये वैभव विलास संस्कृति के मूलभूत तत्वों में कभी शामिल नहीं किये गये और इसी से दूसरे देशों की तरह साम्राज्य-विस्तार की लोलुप आकांक्षा से यहाँ के राजा लोग अधिक विचलित नहीं हुए। वैसे इस देश में राजनैतिक एकता स्थापित करने के लिए, सारे देश को एक ही साम्राज्य की छाया में लाने के लिए कई महत्वाकांक्षी सम्राटों ने प्रयास किया और उसमें सफलता भी पाई मगर प्रजा की लूट मार, अनावश्यक खून खराबी, निर्दोष नागरिकों के हत्या-काण्ड आदि के बीभत्स उदाहरण इस संस्कृति के इतिहास में देखने को बहुत कम मिलेंगे जब कि सेमेटिक संस्कृतियों के इतिहास इस प्रकार की क्रूर, अमानवीय और वीभत्स घटनाओं से भरे पड़े हैं।

विदेशों में अपने साम्राज्य विस्तार के लिए बड़े-बड़े युद्ध करना, मानव संहार करना, अन्य विचार धाराओं के लोगों पर जबर्दस्ती अपने धर्म और सभ्यता को थोपना ये उदाहरण भी सारे संसार की अपेक्षा आर्य संस्कृति के इतिहास में बहुत कम मिलेंगे। यह सत्य है कि जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया वगैरह देशों में कई महत्वाकांक्षी भारतीय राजाओं ने अपने उपनिवेश कायम किये थे मगर इन उपनिवेशों की स्थापना में उन्होंने कोई बड़े-बड़े युद्ध किये हों, अनावश्यक मानव-संहार किया हो ऐसे उल्लेख इतिहास में बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं।

कुछ लोग इस चीज को आर्य सभ्यता की निष्क्रियता, प्रमादीपन कह कर मजाक उड़ाते हैं और कहते हैं कि इसी कमजोरी से इस सभ्यता ने हजारों बरस दूसरे लोगों की गुलामी सहन की।

मगर वास्तव में देखा जाय तो गुलामी के कारण आर्य सभ्यता की राजनैतिक पृष्ठभूमि की अपेक्षा सामाजिक पृष्ठ भूमि में अधिक मिलेगें। साम्राज्य-विस्तार की अधिक लालसा का न होना, युद्ध-लिप्सा का अधिक जाग्रत न होना, लूटमार और हत्याकाण्ड की प्रवृत्ति का न होना और आत्मरक्षा के लिए पूर्ण सजग रहना इत्यादि चीजें उच्चतर राजनीति में कभी कायरता या निष्क्रियता की द्योतक नहीं मानी जातीं और इनके परिणाम इतिहास में कभी घातक

नहीं होते हैं। इतिहास के घातक परिणाम मानव-स्वभाव की दूसरी कमजोरियों में छिपे रहते है।

यही कारण है कि आर्य राजनीति के इतिहास में राम चन्द्र, मान्धाता, रघु, चन्द्रगुप्त मौर्य, देवानाम प्रिय अशोक, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और हर्ष वर्द्धन के समान महान् नरेशों का नाम मिलता है। जिनका शासन, जिनकी प्रजावत्सलता महान् साम्राज्य के स्वामी होने पर भी जिनका धर्म प्रेम और त्याग वृत्ति संसार के इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलती। विदेशी साहित्य के महान् लेखकों ने जिनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और आज प्रजातन्त्र के इस महान् युग में भी जिनकी कीर्त्ति-चन्द्रिका पर कोई कलंक नहीं लग पाता। आगे जाकर महान् सम्राट अकबर का नाम भी इन महान् सम्राटों की सूचि में इसलिए आता है कि उसने भी आर्य-संस्कृति के कई मूलभूत तत्वों से समझौता कर लिया था और इन तत्वों को अपने जीवन में उतार लिया था।

सामाजिक क्षेत्र में आर्य संस्कृति

सामाजिक क्षेत्र में भी आर्य-जाति ने कुछ मौलिक और मूलभूत तत्वों का निरूपण किया। मनुष्य स्वभाव और प्रकृत्ति के अनुसार उसने सारे समाज को गुण कर्मानुसार चार भागों में विभक्त कर दिया। ज्ञान, धर्म और व्यवस्था का निर्माण करने वाले ब्राह्मण जिनका सम्मान और प्रतिष्ठा समाज में सबसे अधिक थी मगर जो वैभव, विलास और भोग से दूर रहते थे (२) राज्य शासन और युद्ध कला का नियंत्रण करने वाले क्षत्रिय, जिन्हें भोग विलास की एक मर्यादा के अन्दर छूट थी मगर जिन्हें ब्राह्मण व्यवस्थापकों के नियन्त्रण में रहकर प्रजा पालन का काम करना पड़ता था। (३) वैश्य जो समाज में कृषि-व्यवसाय और उत्पादन के दूसरे कार्यों पर नियन्त्रण करते थे और चौथे (४) शूद्र जिन्हें समाज की सेवा पर निर्भर रहना पड़ता था।

ग्रीस के महान् तत्ववेत्ता प्लेटो ने भी अपने "रिपब्लिक" नामक ग्रन्थ में समाज के गुण कर्मानुसार तीन भेद किये हैं। जिनमें समाज में ज्ञान-विज्ञान का योग क्षेम करने वाला तेजस्वी वर्ग, राज्य शासन का संचालक वर्ग और समाज में उत्पादन और आर्थिक सम्पन्नता का योग क्षेम करने वाला वर्ग ऐसे तीनों वर्ग के लोग हैं।

वर्ण पद्धति की तरह आश्रम पद्धति भी आर्य-विद्वानों की मौलिक सूझ थी जिसके अनुसार मनुष्य जीवन की सौ वर्ष की आयु मान कर उसे चार भागों में विभक्त कर दिया गया था। जिसमें (१) ब्रह्मचर्याश्रम जो जन्म से लेकर पच्चीस वर्ष की आयु तक सीमित था इसमें मनुष्य को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की साधना के साथ गुरु के आश्रम में जाकर ज्ञान, विज्ञान और आचरण की शिक्षा लेनी पड़ती थी (२) गृहस्थाश्रम जिसमें अपने अनुकूल रूप गुणों वाली कन्या से विवाह कर, संसार का उपलब्ध भोग-विलास भोगकर, समाज के प्रति अपने वर्ण के अनुसार अपने दायित्व का योगक्षेम कर, उत्तम और वैधानिक सन्तानें समाज को अर्पण करने का विधान था यह आश्रम २५ से ५० की आयु तक रहता था। (३) वानप्रस्थाश्रम ५० से ७५ वर्ष की आयु तक मर्यादित था। इस आश्रम में मनुष्य ने ज्ञान, विज्ञान और सामाजिक अनुभव से जो कुछ अर्जन किया है उसका योग क्षेम समाज में करने का विधान था। और चौथा सन्यासाश्रम जिसमें ईश्वराधन कर वह अगले जीवन के लिए कुछ संग्रह करता था।

विवाह-संस्था

वैवाहिक प्रणाली के सम्बन्ध में आर्य विद्वानों ने बहुत सूक्ष्म विवेचना की है। इस क्षेत्र में उन्होंने आठ प्रकार की विवाह प्रणालियों का विवेचना किया है जिसमें ब्राह्म विवाह और गान्धर्व विवाह इन दो पद्धतियों ने यहाँ के समाज में विशेष महत्व ग्रहण किया। ब्राह्म विवाह की पद्धति में अपने गौत्र और माता के गौत्र को छोड़कर अपनी जाति तथा वर्ण में स्वस्थ युवक स्वस्थ युवती के बीच शास्त्रोक्त पद्धति से विवाह बन्धन का विधान है और गान्धर्व पद्धति में पहले परिचय और प्रेमानुभूति हो जाने के पश्चात अग्नि को साक्षी करके युवक-युवती के विवाह बन्धन में आने की योजना है। स्वयम्बर प्रथा भी हमारे समाज शास्त्र में बहुत महत्वपूर्ण मानी गई थी।

यौन-सदाचार के ऊपर आर्य सभ्यता में बहुत बल दिया गया है और सिद्धान्त के रूप में वह पुरुष और स्त्री दोनों के लिए है।

देखने में उपरोक्त समाज व्यवस्था एक तर्क सम्मत और विज्ञान-सम्मत रूप में दिखलाई पड़ती है। मगर व्यवहार रूप में इसका जैसा आचरण इतिहास में हुआ वह यहाँ के समाज के लिए बहुत महँगा पड़ा और उसके बड़े बड़े दुष्परिणाम इस देश को उठाना पड़े और इसी की वजह से हमारा सामाजिक संगठन इतना कमजोर पड़ गया कि यह देश बाहरी आततायियों से अपनी रक्षा न कर सका और हजार बरसों के लिए बाहरी आक्रमणकारियों की गुलामी के लोह पंजे में फँस गया।

वर्णाश्रम प्रथा का मूल सिद्धान्त गुण कर्म के अनुसार समाज का चार भागों में विभाजन था जैसे बतलाया है कि—

जन्मना जायते शूद्र, संस्कारोऽपि द्विज उच्यते।
वेदपाठी भवेद् विप्रा, ब्रह्मजानेति ब्राह्मणा॥

मगर व्यवहारिक क्षेत्र में गुणकर्म की जगह जन्म ही इन वर्णों के विभाजन का प्रधान आधार बन गया। जिसकी वजह से एक शूद्र प्रवृत्ति वाला मनुष्य ब्राह्मण के घर में जन्म लेले तो वह भी ब्राह्मण माना जाता था और महान् तपस्वी, विशुद्ध ब्रह्म आचरण से युक्त शूद्रक का सिर, रामचन्द्र के समान न्यायप्रिय राजा के द्वारा भी इसलिए काट दिया जाता था कि उसने केवल शूद्र के घर में जन्म लेकर शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर तपस्या की थी जिससे एक ब्राह्मण का पुत्र असमय में मर गया था। जन्मना जाति प्रथा के कारण समाज में शूद्रत्व और छुआछूत के समान भयङ्कर रोगों का जन्म हुआ। शूद्रों और सेवा भावी अछूतो के लिए ऐसे कड़े कड़े विधान बनाये गये जो शायद गुलामी की प्रथा से भी अधिक कठोर थे। इन लोगो के लिए शास्त्रों का पठन पाठन बिलकुल मना था, इनकी बस्ती उच्च वर्गीय बस्ती से बहुत दूर बसाई जाती थी और जब बस्ती में आते तो घण्टी बजाते हुए आना पड़ता था। वर्णाश्रम की आड़ में समाज हजारों छोटी-छोटी जातियों में बँट गया। ये जातियां एक दूसरी से अपने को उच्च और दूसरी को हीन समझने लगीं।

इन भेद भावों की वजह से समाज और देश को सारी सुरक्षा का भार राजा पर छोड़ कर जनता इस तरफ से निश्चिन्त हो गई।

यौन-सदाचार की कठोरता केवल नारी को भुगतना पड़ी, पुरुष उससे बिलकुल मुक्त हो गया। [illegible] दो-चार स्त्रियाँ कर ले, जर्जर बुढ़ापे में अपना [illegible] उमर की लड़की से विवाह कर ले, उससे उसकी [illegible] या धार्मिक प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं आती थी, [illegible] यदि पहली रात विवाह करे और दूसरी रात उसका मर जाय तो उसे सारे जीवन अनन्त [illegible] में सुलगना पड़ता था। उसके लिए कोई [illegible] न थी या तो वह अपने पति की लाश के साथ [illegible] जिन्दा जला दी जाती या अनन्त वैधव्य के रूप में नरक की यातनाओं को सहन करती।

इन अनैतिक और एक पक्षीय विधानों के [illegible] हमारे समाज का आधा भाग नारी जाति के रूप में चौथाई भाग शूद्र और अछूतों के रूप में जड़ और [illegible] हो गया। जो शेष रहा वह भी हजारों जातियों में [illegible] शक्ति हीन हो गया। ब्राह्मण लोग कर्मकाण्ड और यज्ञ याज्ञादिक में डूब गये। क्षत्रिय विलास, वैभव और सत्ता के मद में निर्वीर्य हो गए। वैश्यों की स्थिति भी खराब हो गई [illegible] परिणाम यह हुआ कि हमारा सामाजिक संगठन बहुत कमजोर हो गया और बाहरी आक्रमणों से मुकाबिला करने [illegible] हमारी शक्ति नष्ट हो गई।

युद्धकला

वैसे व्यक्तिगत वीरता, शौर्य और शस्त्र चालन [illegible] तेजस्वी और अलौकिक उदाहरण आर्य सभ्यता के इतिहास में बहुत मिलते हैं मगर सैनिक अनुशासन और व्यवस्थित संगठन तथा उत्तम जाति के शास्त्रों को बनाने की क्रिया महाभारत के युद्ध के पश्चात् हमारे देश में दिन प्रतिदिन कमजोर होती गई। युद्ध करते करते अगर एक सेनापति या राजा मारा जाता था भाग खड़ा होता तो उसके पीछे सारी सेना भाग खड़ी होती थी। फिर चाहे तुरन्त ही विजय भी क्यों न आने वाली होती। आर्य जाति की युद्धकला की इस कमजोरी ने कई स्थानों पर जीत को हार में बदल दी और उसके परिणाम इतिहास में बहुत घातक हुए।

इस प्रकार आर्य-संस्कृति के विधान की सामाजिक भेद-भाव पूर्ण दुर्बलता और युद्ध नीति में अनुशासन की कमी यही चीजे हमारी स्वाधीनता पर गुलामी का पर्दा डालने में कारणी भूत हुई।

आर्य-संस्कृति का धार्मिक क्षेत्र

...संस्कृति के विधायक आर्य संस्कृति का मूल उद्गम वेदों से मानते हैं और वेदों को वे अपौरुषेय मानते हैं। वेदों में चार वेद हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ... सामवेद। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन और अथर्ववेद ... का माना जाता है वेदों में ऋचाएँ और मंत्र हैं ... भिन्न भिन्न देवताओं की स्तुति की गई हैं। प्रधान ...ता ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन माने जाते हैं। ब्रह्मा सृष्टि के सृजन कर्त्ता, विष्णु उसका पालन करने वाले और महेश उसका संहार करने वाले हैं। कई विद्वानों का यह मत है कि आर्य सभ्यता के मूल देवता ब्रह्मा और विष्णु ही थे तीसरे महादेव को इस सभ्यता ने द्राविड़ी सभ्यता से लिया। द्राविड़ी सभ्यता में शंकर, महादेव या रुद्र का बहुत प्रधान स्थान है।

आर्य संस्कृति में ज्ञान की देवी सरस्वती को, वैभव की देवी लक्ष्मी को और शक्ति और शौर्य की देवी दुर्गा को माना है। वर्षा के देवता वरुण, धन-धान्य और फसल के देवता इन्द्र और पराक्रम के देवता हनुमान माने गये हैं। सरस्वती का वाहन हंस, लक्ष्मी का उल्लू और दुर्गा का शेर माना गया है।

आर्य-धर्म शास्त्रों में संसार की उत्पत्ति पाँच महा-भूतों (पृथ्वी, जल, नभ, अग्नि और हवा) से मानी गई है। ये पंच महाभूत प्रकृति की पाँच महा शक्तियाँ हैं और पुरुष या आत्मा इनसे बिलकुल अलग है। पंच महाभूतों से निर्मित शरीर में आत्मा का प्रवेश होने पर उसमें चेतना और जीवन आ जाता है और उसके निकल जाने पर वह फिर जड़ हो जाता है।

आत्मा या जीव अपने कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के प्राणियों की योनियों में भ्रमण करता है। सुख, दुःख उठाता है। फिर जब योग से सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है, या भक्ति का मार्ग मालूम हो जाता है तब वह जीवन्मुक्त हो अनन्त ज्योति में मिल जाता है।

जीवन के तत्व चिंतन के सम्बन्ध में जितना सूक्ष्म विवेचन आर्य-सभ्यता के ग्रन्थों में, उपनिषदों में, दर्शन शास्त्रों में और श्रीमद्भगवद्गीता में मिलेगा, संसार की किसी सभ्यता और किसी साहित्य में इतना सूक्ष्म ... नहीं मिलेगा।

आर्य संस्कृति का साहित्य

समय की भयङ्कर चोटों को सहन करते हुए अत्यन्त क्रूर विदेशी आक्रान्ताओं के पैरों तले रौंदे जाने, जलाये जाने और दीमकों का आहार बन जाने के बाद भी आर्य-सभ्यता का जो महान साहित्य आज हमें उपलब्ध है उसको देखकर केवल हम ही नहीं सारा विदेशी संसार भी वाह-वाह कर उठता है। उस अन्धकार युग में जब सारा विश्व मानव कबीलों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर मारा मारा फिरता था, सिंधु और गंगा नदी की घाटियों में जिस साहित्य का निर्माण हुआ वह सारे संसार में बेजोड़ है। क्या धर्म का क्षेत्र, क्या समाज का क्षेत्र, क्या काव्य का क्षेत्र, क्या दर्शन का क्षेत्र और क्या विज्ञान का क्षेत्र सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट दर्जे के साहित्य का निर्माण यदि कहीं हुआ तो वह आर्य सभ्यता के प्राङ्गण में। हम जानते हैं कि चीन में, यूनान में, मिस्र में, असीरिया में, ईरान में तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में भी सभ्यताओं का और साहित्य का भारी विकास हुआ था। मगर जीवन के तत्व, और संसार के अध्ययन का साहित्य में जो क्रम आर्य सभ्यता ने अपनाया था उसकी जोड़ संसार में कहीं भी नहीं है।

वैसे कहने को आर्य-सभ्यता का यदि एक ही प्रतीक हम संसार को बतलाना चाहें तो "श्रीमद्भगवद्गीता" को लेकर बतला सकते हैं। इस एक ही ग्रन्थ में जीवन के और संसार के सारे मूल भूत तत्वों का निचोड़ बतला दिया गया है। इतने संक्षेप में—इतने थोड़े शब्दों में जीवन की सारी उलझी हुई समस्याओं का जवाब जितने अधिकारिक ढङ्ग से इस ग्रन्थ में मिल जाता है उतना संसार में अन्यत्र कहाँ सुलभ है। श्रीमद्भगवद्गीता आर्य सभ्यता की संसार के सामने एक ऐसी चुनौती है जिसको कोई भी दूसरी सभ्यता स्वीकार करने में हिचकिचाएगी।

उसके बाद दर्शन ग्रन्थों में उपनिषद् और सांख्य योग, वैशेषिक, मीमांसा, न्याय और योग दर्शनों का नम्बर आता है जो संसार के अन्तर्तत्त्व का दर्शन कराने में उत्कृष्ट कोटि का साहित्य है। दर्शन शास्त्र पर इतनी सूक्ष्म विवेचना

प्राचीन युग में तो कौन कहे आधुनिक युग में भी भारत को छोड़कर अन्य देशों में नहीं हुई।

महान् योगी आद्य शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन भी दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में एक खुली चुनौती थी। जिसने भारत की चारों दिशाओं में एक आध्यात्मिक तहलका मचा दिया था और जिनकी दिग्विजय की स्मृति में अभी तक भारत की चारों सीमाओं पर उनके मठ बने हुए हैं।

काव्य के क्षेत्र में रामायण, महाभारत, भागवत और रघुवंश क्या काव्य कला की दृष्टि से क्या चरित्र-चित्रण की दृष्टि से क्या सुन्दर छन्दों और प्राञ्जल भाषा की दृष्टि से संसार में कहीं अपनी उपमा पा सकते हैं। आज पाश्चात्य संस्कृति का युग है और जीवन के हरएक क्षेत्र में उसकी छाप पड़ी हुई है, इसीलिए वाल्मीकि के साथ होमर का और व्यास के साथ मिल्टन का नाम लिया जाता है मगर मानवीय स्वभाव की गहराइयों का, काव्य के सौन्दर्य और भाषा के प्रवाह की जिस दिन निष्पक्ष आलोचना होगी उस दिन वाल्मीकि और व्यास का कोई प्रतिद्वन्दी संसार में ढूँढे नहीं मिलेगा।

नाटक के क्षेत्र में महा कवि कालिदास के "अभिज्ञान शाकुन्तल" के सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, जिसको पढ़ते-पढ़ते जर्मनी का महान् कवि गेटे नाच उठा था और एक पूरा का पूरा पद्य उसके स्तोत्र में उसने बनाया था! भवभूति का उत्तररामचरित्र भी यहाँ के नाट्य साहित्य के जीवित उदाहरण हैं?

गद्य के क्षेत्र में भारवि का किरातार्जुनीय, बाणभट्ट का कादम्बरी तथा इसी प्रकार के दूसरे गद्य ग्रन्थ उच्च कोटि की साहित्यिक परम्परा के हैं।

आर्य संस्कृति और विज्ञान

धर्म, दर्शन और साहित्य ही की तरह जीवनोपयोगी विज्ञान के क्षेत्र में भी आर्य-विद्वानों की खोजें बहुत उत्कृष्ट श्रेणी की हैं। हालांकि आज का विज्ञान युग उनसे बहुत आगे बढ़ गया है।

शरीर-शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में आर्य-साहित्य में गहरी विवेचना हुई है। आयुर्वेद के महान् द्रष्टा महर्षि सुश्रुत ने अपनी सुश्रुत संहिता में शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की स्थिति और उनकी क्रिया शक्ति का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है यद्यपि आधुनिक युग की निर्णयात्मक खोजों के बाद उनका महत्व बहुत कम हो गया है मगर उस युग के लिए तो वे महत्वपूर्ण थी ही।

आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की त्रिदोषात्मक खोज आज विज्ञान के इस महान् युग में भी अपना अस्तित्व बनाये रख रही है। मनुष्य का शरीर वात, पित्त, कफ इन तीन तत्वों का समूह है और उसका मन सत्व, रज और तम इन तीन गुणों की सृष्टि है। इन तीनों चीजों में किसी एक के भी कुपित हो जाने पर शरीर में तथा मन में रोग की सृष्टि होती है और उस रोग का शमन तभी होता है जब उस कुपित दोष को शान्त करने वाली औषधि का प्रयोग किया जाय। इसी सिद्धान्त की नींव पर आयुर्वेद का निर्माण हुआ है।

आयुर्वेद के साहित्य में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग हृदय वाग्भट्ट इत्यादि ग्रन्थ आज के इस युग में भी प्रमाण भूत माने जाते हैं और भारतवर्ष में छोटे छोटे कस्बों और देहातों में हजारों वैद्य इन्हीं के आधार पर चिकित्सा करते हैं।

ज्योतिष और गणित के क्षेत्र में भी आर्य सभ्यता के अन्वेषण कम महत्व के नहीं है। अङ्क प्रणाली में शून्य का आविष्कार पहले पहल भारतवर्ष में हुआ। शून्य के आविष्कार ने गणित शास्त्र की कितनी उलझनों को कम कर दिया यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। अङ्क-प्रणाली का भी आविष्कार यहीं पर हुआ। यहाँ से वह अरब में गयी। अरब में अब्बासी खलीफा अल-मामून के समय में उसका अरबी अनुवाद किया गया और वहाँ से सारे यूरोप में फैली। लीलावती का बीजगणित आज संसार के अलजबरा का आधार है।

ज्योतिषशास्त्र में सूर्य की गति, चान्द्रमास की गणना, तीन वर्ष में सूर्य की गति से समन्वय करने के लिए अधिक मास का विधान, नौ ही नक्षत्रों की गति का ज्ञान, ग्रहणों का पूर्वज्ञान तथा ग्रहों का मनुष्य जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव सभी विषयों पर यहाँ अधिकारिक खोजें हुई और जहाँ तक गणित ज्योतिष का सम्बन्ध है आज भी भारतवर्ष किसी से पीछे नहीं है।

संगीत कला में छः राग और छत्तीस रागीनियों की खोज, सात प्रकार के स्वरों का विवेचन, वाद्यकला में सारङ्गी, सितार, वीणा इत्यादि तार वाद्यों का निर्माण, नृत्यकला में कत्थकाली नृत्य भरत नाट्यम् इत्यादि नृत्यों का शास्त्रीय विवेचन इस देश में बहुत गहराई के साथ हुआ।

स्थापत्य कला, भवन निर्माण कला, चित्रकला इत्यादि में भी इस महान् सभ्यता ने महान् प्रगति की थी।

आर्य समाज

भारत वर्ष में धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति पैदा करके राजनैतिक जागरण पैदा करने वाली महान संस्था, जिसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने की।

भारतीय जनता, हजार बरसों की लगातार गुलामी से पदाक्रान्त हो, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से पथ भ्रष्ट हो चुकी थी उसी समय स्वामी दयानन्द इस देश में अवतीर्ण हुए।

स्वामी दयानन्द का जन्म सन् १८२४ में सौराष्ट्र में मोरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम करसनलाल त्रिवेदी था।

इक्कीस वर्ष की आयु में सन् १८४५ में स्वामी दयानन्द गृहस्थी के जाल से मुक्त हो सत्य की खोज में निकल पड़े। सत्य की खोज में १५ वर्ष तक लगातार सारे देश का भ्रमण करने के बाद वे सन् १८६० में मथुरा में स्वामी विरजानन्द के पास पहुँचे। वहाँ सब प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान का अध्ययन कर गुरु की आज्ञा से सन् १८६३ ई० में ये कर्म क्षेत्र में निकल गये।

यह वह समय था जब चारों ओर से आर्य-धर्म और आर्य-संस्कृति पर हमले हो रहे थे। एक ओर इसलाम और दूसरी ओर ईसाई मत के हमलों से हिन्दू संस्कृति जीर्ण-शीर्ण हो रही थी। शान्त किन्तु गहरे और पेंचदार उपायों से ईसाई मत भारत के धार्मिक दुर्ग में प्रवेश कर रहा था।

इसी सारी दुर्गति को देखकर स्वामी दयानन्द ने मूर्ति पूजा, हिन्दू समाज की रूढ़ियाँ, पुराण-पंथी पोपलीला इत्यादि प्रथाओं के विरुद्ध जिहाद प्रारम्भ कर दिया। वेदों का आधार लेकर उन्होंने वेदों का गलत अर्थ करनेवालों को ललकार दी। बड़े-बड़े शास्त्रार्थ कर धुरन्धर पण्डितों को मंच पर परास्त किया। इसके साथ ही उन्होंने ईसाई मत और इसलाम का भी धुवाँधार खण्डन करना प्रारम्भ किया।

आर्य समाज की स्थापना

इस प्रकार प्रचार कार्य करते हुए सन् १८७४ के अक्टूबर मास में स्वामी दयानन्द ने बम्बई में पहले पहल आर्य समाज का नामकरण किया और सन् १८७५ में चिरगाँव में नियमपूर्वक इस संस्था की स्थापना हुई और इसके सदस्यों के लिए २८ नियमों का विधान तैयार हुआ।

आर्य समाज में मूल ग्रन्थ वेदों को ही माना गया था मगर वेदों की सही टीका उस समय उपलब्ध नहीं थी। इस लिए आर्य-समाज के सिद्धान्तों का ज्ञान कराने के लिए स्वामी दयानन्द ने "सत्यार्थ- प्रकाश" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की।

संसार में जिस चीज की वास्तविक आवश्यकता होती है उसका प्रचार भी बहुत शीघ्र होता है। स्वामी दयानन्द ने हिन्दू जाति के असली रोग को समझ लिया था और आर्य समाज उसी रोग को दूर करने वाला संगठन था। इसलिए इस संस्था का प्रचार सारे देश में बहुत तेजी से होने लगा। देश के करीब-करीब सभी पठित और शिक्षित लोग इस संस्था से सहानुभूति रखने लगे।

बम्बई, युक्तप्रान्त और पंजाब में आर्यसमाज की शीघ्रही स्थापना हो गई। इसके सभासदों की संख्या हजारों तक पहुँच गई।

उत्तरी भारत में तो आर्य समाज की स्थिति बहुत तेजी से बढ़ने लगी। स्वामीजी ने गौरक्षा के लिए बहुत जोरदार आवाज उठाई, इससे भी लोगों की सहानुभूति उनकी ओर बढ़ गई।

हिन्दू पण्डित मूर्तियों और पुराणों के बोझ से दबे हुए होनेके कारण अपनी पीठ भी सीधी नहीं कर पाते थे। आर्य समाज ने जहाँ एक ओर हिन्दू जाति की पीठ पर से मूर्ति और पुराण का बोझा हटाकर उसे हलका कर दिया

वहां दूसरी ओर पादरियों और मौलवियों के आघातों को रोकने के लिए तर्क की ढाल खड़ी कर दी। पादरी और मौलवी इस आकस्मिक आक्रमण से झुंझला उठे। स्वामी दयानन्द ने स्थिति को पहचान कर घर में सुधार करना और आक्रमण करनेवाले पर प्रत्याक्रमण करना प्रारम्भ किया। यह स्थिति खतरे से भरी हुई थी इस कारण धर्म के सेनापति को युद्ध के नियमों के अनुसार कठोर अनुशासन का प्रयोग करना पड़ा।

सामाजिक क्रान्ति

धार्मिक क्रान्ति के साथ ही साथ स्वामी दयानन्द तथा आर्य-समाज ने सामाजिक सुधार की ओर ध्यान दिया। उन्होंने देखा कि हिन्दू समाज में "अष्टवर्षे भवेद् गौरी" इत्यादि दकियानूसी सिद्धान्तों के आधार पर छोटे-छोटे दुधमुँह लड़के और लड़कियों का विवाह कर दिया जाता है, साठ-साठ वर्ष के बुड्ढे आठ आठ वर्ष की बालिकाओं को विवाह ले जाते हैं और उन बुड्ढों के मर-जाने पर उन बालिकाओं को जीवन भर वैधव्य का अभिशाप भुगतना पड़ता है। इसके अतिरिक्त निरक्षरता और अशिक्षा के कारण भी जनता का विकास बहुत रुक रहा है। स्त्रियों को परदे में रखने से उनका विकास नहीं हो पाता। इस कारण आर्य समाज ने शिक्षा का प्रचार, विधवा विवाह का समर्थन, बाल वृद्ध विवाह का विरोध, परदा प्रथाका विरोध और बलात्कार की जाने वाली सती प्रथा का विरोध जोरदार ढंग से करना प्रारम्भ किया।

स्वामी दयानन्द और आर्य समाज ने हिन्दू जनता की आँखों में उँगली डाल कर उसकी वास्तविक कमजोरियों की तरफ ध्यान आकर्षित किया। जाति प्रथा की नींव पर भी स्वामी दयानन्द ने करारा आघात किया। इस प्रकार आर्य समाज ने हिन्दू जाति में अपने दोषों की अनुभूति करके सुधार की इच्छा को जन्म दिया। परिणाम यह हुआ कि १९ वीं शताब्दी के अन्त तक भारत के बहुत बड़े भाग में क्रियात्मक रूप में सुधार की भावना जल प्रवाह की तरह बहने लगी। इस बात में किसी को भी सन्देह नहीं है कि आर्य-समाज को भारत के बहुत बड़े भाग में समाज सुधार के सम्बन्ध में मानसिक क्रान्ति पैदा करने में भारी सफलता मिली।

परदा प्रथा और आर्य-समाज

उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक इस देशमें स्त्रियों की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। स्त्रियों को शिक्षा देना पाप समझा जाता था और परदे के भयंकर नियन्त्रण में उन्हें रहना पड़ता था। इस प्रकार हमारे समाज की महिला-शक्ति निर्जीव हो रही थी।

आर्य-समाज ने इस प्रथा पर करारा आघात करना प्रारम्भ किया। सभी सामाजिक जलसों में इस संस्था के सदस्यों ने महिलाओं की उपस्थिति आवश्यक कर दी। पहले चिक की आड़ में महिलाएँ बैठने लगीं मगर बाद में स्वयं महिलाओं ने इस प्रथा को अपमानजनक समझ चिकों को हटा दिया और खुले मैदान में बैठने लगीं।

महिलाओं की शिक्षा के लिए भी आर्य समाज ने पर्याप्त ध्यान दिया। सबसे पहले जालन्धर में कन्या महा-विद्यालय की आर्य समाज ने स्थापना की। उसके पश्चात् देहरादून के एक प्रसिद्ध आर्य-समाजी बाबू ज्योतिस्वरूप ने अपनी धर्मपत्नी के नाम पर महादेवी कन्या पाठशाला की स्थापना की। इस संस्था ने उत्तर प्रदेश में वही काम किया जो पंजाब में जालन्धर कन्या विद्यालय ने किया था अब तो यह संस्था एक विशाल गर्ल्स कालेज के रूप में विस्तृत हो गई है। इन महान् संस्थाओं के अतिरिक्त छोटी-छोटी कन्या पाठशालाएँ तो सैकड़ों की तादाद में बन गईं।

अन्तर्जातीय विवाह

जातिप्रथा का उन्मूलन करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन भी आर्य समाज ने करना प्रारम्भ किया।

सबसे पहले लाला मुंशीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द) ने जालन्धर के अपने मकान में सुमित्रा देवी नामक एक लड़की का जो कि ईसाई मिशन से अलग होकर आर्य-समाज की शरण में आई थी—गुरुदत्त नामक एक सदाचारी, स्वस्थ और आर्य-समाजी डॉक्टर से विवाह करवा दिया। सुमित्रा ब्राह्मणी थी और गुरुदत्त अब्राह्मण था।

दूसरी बार उन्होंने स्वयं अपनी लड़की अमृत कला का विवाह अन्य जातीय युवक डॉ० सुखदेव से कर दिया। इस विवाह पर भी काफी शोर मचा मगर सारे देश के आर्य समाजियों ने इसका समर्थन किया और अब तो अन्तर्जातीय विवाह एक साधारण चीज हो गई है मगर इसका प्रारम्भ कितने भयंकर विरोध के बीच आर्य-समाज के साहसी युवकों ने किया यही ध्यान देने की बात है।

विधवा-विवाह

इसी प्रकार विधवा-विवाह के क्षेत्र में भी आर्य समाज ने बड़ी दृढ़तापूर्वक कदम उठाये। बिजनौर के श्री शंकर दत्त श्रोत्रिय का नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। ये बिजनौर जिले के श्रोत्रिय वंश के अगुआ थे और इन्होंने अपनी पत्नी के मरने पर स्वयं एक विधवा से विवाह किया तथा और भी कई विधवा विवाह करवाये। इसी प्रकार बम्बई और संयुक्त प्रान्त में भी कई विधवा विवाह हुए और धीरे-धीरे समाज में यह प्रथा चालू होने लगी।

शिक्षा-प्रचार

कन्याओं की शिक्षा के साथ ही साथ आर्य समाज ने पुरुषों की शिक्षा के सम्बन्ध में भी ठोस कदम उठाये। सबसे पहले स्वामी दयानन्द की मृत्यु के पश्चात उनकी स्मृति में लाहौर में दयानन्द एंग्लोवैदिक कॉलेज की स्थापना हुई।

इसके बाद प्राचीन गुरुकुल पद्धति के आधार पर महात्मा मुंशीराम ने दिन रात परिश्रम करके कांगड़ी में एक विशाल गुरुकुल की स्थापना की। सन् १९०२ के फरवरी मास में हरिद्वार के निकट कांगड़ी नामक स्थान में गंगा तट के घने जंगल को साफ करके कुछ छप्पर तैयार किये गये और ४ मार्च १९०२ के दिन महात्मा मुंशीराम गुजरानवाला से २४ ब्रह्मचारियों को कांगड़ी ले गये और उन थोड़े से फूस के छप्परों और २४ ब्रह्मचारियों के साथ गुरुकुल कांगड़ी का सूत्रपात हुआ जो आज इतने विशाल रूप में विद्यमान है और जहाँ से निकले हुए अनेकों विद्यालंकार साहित्य और देश की सेवाएँ कर रहे हैं।

इसके बाद वृन्दावन में एक विशाल गुरुकुल की स्थापना राजा महेन्द्रप्रताप के द्वारा दी हुई भूमि में की गई।

इसी प्रकार आर्य समाज ने शिक्षा प्रचार के लिए और भी कई गुरुकुलों की स्थापना की। जिनकी संख्या देश के विभिन्न स्थानों में करीब २७ थी।

कन्याओं के लिए भी देहली में एक विशाल इन्द्रप्रस्थ कन्या गुरुकुल की स्थापना की जिसके लिए दिल्ली के लाला रग्घूमल लोहिया ने एक लाख रुपया दान किया। इसी प्रकार हाथरस में भी एक कन्या गुरुकुल की स्थापना की गई।

इसी प्रकार लाहौर, अजमेर, बनारस, कानपुर इत्यादि अनेक स्थानों पर डी० ए० वी० कॉलेजों की स्थापना हुई।

मतलब यह कि शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज की देन सारे देश में अत्यन्त बहुमूल्य है.

आर्य समाज की विभूतियाँ

आर्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। उनके पश्चात् जिन लोगों ने इस संस्था को अपने त्याग और तपस्या से सिंचन किया और उसके पीछे अपना बलिदान भी कर दिया उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं।

पं० लेखराम

पं० लेखराम का जन्म सन् १८५८ में पंजाब के झेलम जिले में हुआ था। २२ वर्ष की उम्र में ये आर्य-समाज में प्रविष्ट हुए। उस समय पंजाब में गुलामअहमद कादियानी के द्वारा स्थापित किये हुए इस्लाम के अहमदिया सम्प्रदाय का बड़ा जोर था। पं० लेखराम अहमदिया सम्प्रदाय के लोगों से बहुत बहस मुबाहिसा किया करते थे, इसके परिणामस्वरूप उन्हें अपनी पुलिस की नौकरी से भी इस्तीफा देना पड़ा।

इसके बाद पं० लेखराम लाहौर आये। यहाँ आपने अहमदिया सम्प्रदाय के विरुद्ध "नुसख्यालत अहमदियान" नामक पुस्तक लिखी। आपकी संजीदगी, साहस और योग्यता को देख कर आर्य-प्रतिनिधि सभा ने आपको महर्षि दयानन्द का एक प्रामाणिक जीवन-चरित्र लिखने का

भार सौंपा, जिसे दो वर्ष तक सारे भारत में भ्रमण कर आपने तैयार किया।

आपके अहमदिया सम्प्रदाय तथा इस्लाम विरोधी प्रवचनों के कारण मुसलमान आप पर रुष्ट हो रहे थे। अन्त में छः मार्च सन् १८९७ को एक मुसलमान आततायी ने आपकी छुरा भोंक कर हत्या कर डाली। इस प्रकार पं० लेखराम आर्य-समाज के प्रचार में होनेवाले पहले शहीद थे।

इसी प्रकार स्वामी ईश्वरानन्द, ब्रह्मचारी नित्यानन्द, स्वामी विश्वेश्वरानन्द, स्वामी दर्शनानन्द इत्यादि विभूतियों ने भी आर्य-समाज का देश और विदेश में प्रचार करने में अपना जीवन दे दिया और सारे भारत वर्ष तथा विदेशों में आर्य-समाज की प्रतिष्ठा कायम कर दी।

स्वामी श्रद्धानन्द

आर्य-समाज के कार्य कलापों और उसके बलिदानों की कहानी अधूरी रह जायगी अगर उसके अन्दर स्वामी श्रद्धानन्द की महान् सेवाओं और उनके बलिदान की कहानी का समावेश न होगा।

स्वामी श्रद्धानन्द का गृहस्थाश्रम का नाम लाला मुंशीराम था। इनका जन्म सन् १८५६ मे पंजाब के जालन्धर जिले में हुआ था। सन् १८८७ में वकालत की परीक्षा पास कर लाला मुंशीराम आर्य समाज में सम्मिलित हो गये। सन् १८९२ से १८९५ तक ये बराबर आर्य-प्रतिनिधि सभा के सभापति निर्वाचित होते रहे।

गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना लाला मुंशीराम के जीवन का सबसे बड़ा, महान् और रचनात्मक कार्य था। इसकी स्थापना के लिए सारे भारत की यात्रा कर आपने द्रव्य एकत्रित किया था।

सन् १९०० मे इनकी सेवाओं के उपलक्ष में लाहौर आर्य समाज ने इनका एक जुलूस निकाला, अभिनन्दनपत्र समर्पित किया और "महात्मा" की उपाधि प्रदान की।

सन् १९२० में जब महात्मा गांधी का अहिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उस समय स्वामी श्रद्धानन्द ने भी उसमें जोर-शोर से भाग लिया। ६ अप्रैल को होनेवाले महात्मा गांधी के सत्याग्रह की सूचना दिल्ली को गलती से एक सप्ताह पूर्व मिल गई। उस समय दिल्ली में जोश का समुद्र उमड़ रहा था। एक ओर हजारों की भीड़ महात्मा गांधी की जय के नारे लगा रही थी दूसरी ओर पुलिस संगीनें तान कर खड़ी थी। स्वामी श्रद्धानन्द जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। वे छाती खोल कर पुलिस संगीनों के सामने जाकर खड़े हो गये और शान से जेल में चले गये।

उसके बाद १९२३ २४ में जब हिन्दू और मुसलिम साम्प्रदायिकता ने बहुत जोर पकड़ा, मद्रास में मोपलाओं ने भयंकर विद्रोह किया, मलाबार में दंगे हुए और देहली में भी सन् १९२४ की ईद के अवसर पर एक भयंकर दङ्गा हुआ।

मुसलमानों ने हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करने के लिए "तबलीग" बना रक्खी थी। कांग्रेस मुसलमानों का सौहार्द्र प्राप्त करने के लिए यह सब सहन कर रही थी। मगर स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य-समाज यह सब सहन करने को तैयार न थे इसलिए उन्होंने भी तेजी से शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भकर मुसलमानों को हिन्दू बनाना शुरू किया। इसका महात्मा गाँधी और काँग्रेसी क्षेत्रों ने बड़ा विरोध किया।

इसी समय करांची से "असगरी" बेगम नामक एक मुसलिम महिला ने अपने दो बच्चों के साथ देहली में आकर आर्य-धर्म की दीक्षा लेली। उसके बाद करांची से उसके पिता और पति आये उन्होंने शान्ति देवी (असगरी) को फिर मुसलमान होने के लिए कहा मगर वह राजी नहीं हुई तब उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य समाज के कुछ वरिष्ठ सदस्यों पर औरत भगाने का मामला दायर कर दिया। बड़े-बड़े बैरिस्टर इस मामले में आये और छः महीने बाद सब आरोपी बेदाग छूट गये।

इन घटनाओं से मुसलमानों में क्षोभ और उत्तेजना फैल रही थी। लोगों ने स्वामीजी की रक्षा के लिए कुछ पहरेदार नियुक्त करने को कहा, मगर स्वामीजी ने बिलकुल इन्कार कर दिया।

२३ दिसम्बर १९२६ को जब स्वामी श्रद्धानन्द निमोनिया से ग्रसित हो बिस्तर पर पड़े थे, एक मुसलमान आततायी वहाँ पर घुस आया और उसने पिस्तौल से गोली मारकर स्वामी जी के प्राण ले लिए।

इस घटना से सारे भारत वर्ष में तहलका मच गया और स्वामी श्रद्धानन्द का यह वीरोचित बलिदान भारतीय इतिहास में अमर हो गया।

आर्य समाज ने भारतवर्ष के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जो क्रान्ति पैदा की, उससे आगे होने वाले स्वाधीनता आन्दोलन के उपयुक्त यहाँ की भूमि तैयार हुई। हमारी सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवाद की बुराइयों को जड़ से समझने वाला पहला व्यक्ति "महर्षि दयानन्द" था जिसने उस अविकसित काल में, भयङ्कर विरोधों के बीच, अपने अनुपम साहस, महान विद्वत्ता, और आदर्श-देशभक्ति की भावनाओं से जो "अमर-दीप" जलाया वह हजारों तूफानों और लाखों विरोधों के बीच भी अखण्ड ज्योति से जलता रहा। और उसी दीपक के प्रकाश में आगे होने वाले महान् नेताओं ने अपनी लड़ाइयाँ जारी रक्खी और उस अमर दीप को स्वातन्त्र्य-ज्योति के रूप में परिवर्तित कर दिया।

आर्गेनन

होमियोपैथी के आचार्य, जर्मनी के डा० हानिमेन द्वारा लिखित होमियोपैथी चिकित्सा का मूल सिद्धान्त ग्रन्थ।

होमियोपैथी के आविष्कारक डॉ० हानिमेन ने मानवीय—चिकित्सा शास्त्र में एक नवीन और मौलिक सिद्धान्त को जन्म दिया। उनकी चिकित्सा को लक्षण चिकित्सा (Symptom treatment) कहते हैं। जिस द्रव्य को बड़ी मात्रा में देने से मानव-शरीर में जो विकार उत्पन्न होते हैं उसी पदार्थ का यदि सूक्ष्म मात्रा में उपयोग किया जाय तो वे विकार दूर हो जाते हैं।

जैसे आर्सेनिक (संखिया) के खाने से मानव शरीर में दस्त, उलटी, ऐंठन और प्यास पैदा होती है ऐसे ही लक्षण यदि मानव-शरीर में हैजा, ज्वर या अन्य किसी रोग में हो तो आर्सेनिक की तैयार की हुई मात्रा देने से मिट जाते हैं।

ज्यों-ज्यों दवा की मात्रा कम होती जाती है त्यों-त्यों होमियोपैथी औषधियों की शक्ति बढ़ती जाती है। इसकी शक्ति सम्पन्न औषधियों की मात्रा भी सात-आठ दिन में एक बार दी जाती है। थोड़े ही समय में इस चिकित्सा पद्धति ने सारे संसार में अपना खासा स्थान बना लिया है।

इन्हीं सब सिद्धान्तों का सूक्ष्म वर्णन डॉ० हानिमेन ने आर्गेनन में किया है।

आयशा

हजरत मोहम्मद पैगम्बर की युवती पत्नी आयशा।

हजरत मोहम्मद पैगम्बर की छोटी और युवती पत्नी आयशा थी। ८ जून सन् ६३२ को जब पैगम्बर की मृत्यु होने वाली थी उस समय उनके जीवन का अन्तिम दृश्य बड़ा ही करुणापूर्ण था।

पैगम्बर के अशक्त और निर्जीव शरीर को अपनी भुजाओं में लपेटे हुए आयशा इस प्रकार खुदा से प्रार्थना कर रही थी—

"हे ईश्वर! तू मनुष्य की बात सुनता है मेरे स्वामी के रोग को दूर कर क्योंकि तू बड़ा चिकित्सक है तेरे अतिरिक्त अन्य उपचार करने वाली कोई शक्ति नहीं और तेरे उपचारों के सामने कोई रोग ठहर नहीं सकता।"

परन्तु उनकी दशा में किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ और उसी दिन उन्होंने इस संसार को हमेशा के लिये छोड़ दिया।

आयरलैण्ड

ब्रिटिश आइल्स में स्थित एक देश जो कुछ समय पूर्व ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत था लेकिन इस समय पूर्ण स्वाधीन है।

आयरलैण्ड के मूल निवासी कैल्ट जाति के लोग थे और इनकी सभ्यता गैलिक सभ्यता कहलाती थी। पुराने जमाने में ये लोग भी कबीलों के रूप में रहते थे। मगर जब ईसाई धर्म प्रचारक वहाँ पहुँचे और उन्होंने इन्हें रोमन केथोलिक धर्म में दीक्षित किया तो इन लोगों में भी सभ्यता का वातावरण पैदा हुआ।

नार्मन लोगों ने ग्यारहवीं सदी के अन्तर्गत विजेता विलियम के नेतृत्व में इंग्लैंण्ड को जीत लिया। उसके करीब एक सदी पश्चात् सन् ११६९ में इन्हीं लोगों ने आयरलैण्ड पर हमला करके वहाँ की गैलिक सभ्यता को करारी चोट पहुँचाई।

आयरलैण्ड वासियों और अंग्रेजों के बीच में सभ्यता का भेद और जाति का भेद तो था ही धर्म का भेद भी खड़ा हो गया। अंग्रेज लोग प्रोटेस्टेण्ट थे और आयर निवासी रोमन कैथोलिक धर्म के अनुयायी। जाति, धर्म और सभ्यता के इन मौलिक भेदों के कारण अंग्रेजों और आयरलैण्ड वासियों के बीच में बहुत ही कटुता के भाव पैदा हो गये थे जिसके कारण आयरलैण्ड में अंग्रेजों के विरुद्ध एक के बाद दूसरी बगावत होती रहती थी और आयरलैण्ड के लोग इंगलैण्ड के शत्रु फ्रान्स और स्पेन को मदद किया करते थे।

अन्त में रानी एलिजाबेथ के समय में, सोलहवीं सदी में इंग्लैण्ड ने आयरलैण्ड वासियों की कमर तोड़ने के लिये आयरलैण्ड के अलस्टर प्रान्त के छः जिलों में आयर लोगों की सब जमीनें जब्त करके इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के वासियों को दे दी और वहाँ पर अंग्रेज लोगों की स्थायी बस्ती को बसा दिया। सन् १६४१ में जब इंग्लैण्ड के राजा चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेण्ट के बीच गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ उस समय आयरलैण्ड में भी रोमन केथोलिक बादशाह के पक्ष में और प्रोटेस्टेण्ट पार्लियामेण्ट के खिलाफ एक बहुत बड़ा विद्रोह खड़ा हो गया जिसमें आयरवासियों ने प्रोटेस्टेण्ट इंग्लैण्ड वासियों की बेरहमी पूर्वक हत्याएँ कीं। बाद में क्रामवेलकी सेनाओं ने बड़ी निर्दयता के साथ आयर वासियों से इसका बदला लिया और उन्हें मौत के घाट उतारा।

सन् १६८८ में आयरलैण्ड के अन्दर फिर बड़ा विद्रोह हुआ। कैथोलिक आयरलैण्डवासियों ने अलस्टर के प्रोटेस्टेण्ट नगर, और लन्दन डेरी को घेर लिया। अंग्रेजों ने बड़ी वीरता से इस घेरे में भूखों मरते हुए चार महीने तक अपनी रक्षा की।

इसका बदला लेने के लिये सन् १६९० में लिमरिक नगर में अंग्रेजों ने आयर निवासियों को घेर लिया। इस घेरे में आयरवासियों का नेता पैट्रिक सार्स फील्ड था जिसने बड़ी बहादुरी के साथ अपने बलशाली शत्रु लिमरिक की रक्षा की। सार्स फील्ड की बहादुरी के गी आज भी गैलिक भाषा में आयरलैण्ड में गाये जाते हैं।

इसके एक सदी बाद सन् १७९८ में वुल्फ टोन नेतृत्व में आयरलैण्ड में फिर विद्रोह भड़क उठा मगर इ बार यह विद्रोह रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टों धार्मिक युद्ध न था बल्कि एक राष्ट्रीय विद्रोह था जिस दोनों ही धर्मों के लोग सम्मिलित थे। इस विद्रोह को अंग्रेज सरकार ने कुचल दिया और वुल्फ टोन को देश द्रोह के अपराध में फाँसी पर लटका दिया!

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इन सशस्त्र विद्रो के कारण जनता और सरकार दोनों परेशान चुके थे उस समय जब ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के मताधिक का विस्तार हुआ तो बहुत से राष्ट्रवादी आयरिश लो लन्दन की कॉमन सभा के सदस्य चुने गये। इन सदस में स्टुअर्ट पारनेल नामक एक आयरिश नेता भी पार्लमेन का सदस्य हो गया। उसने कॉमन सभा में आयरिश हो रूल की जबर्दस्त आवाज उठाई। उस समय इंग्लैण्ड प्रधान मन्त्री ग्लेडस्टन उदार दल वादी था।

सन् १८८६ में इंग्लैण्ड की कॉमन सभा में आयरलैण होमरूल बिल पेश किया गया मगर इसका पार्लियामेण में बड़े जोर से विरोध हुआ जिसका परिणाम यह हुआ होम रूल बिल भी पार्लियामेण्ट में गिर गया और साथ ग्लेडस्टन का भी पतन हो गया। सन् १८९३ में ग्लेडस्ट फिर इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री बना। उसने फिर कॉम सभा में आयरलैण्ड का होम रूल बिल पेश किया। इ बार वह कॉमन सभा से पास भी हो गया मगर लार्ड स में जाकर वह फिर गिर गया।

अन्त में बहुत झगड़े और ऊहा-पोह के बाद स १९१४ में आयरलैण्ड होम रूल बिल पास हो गया मगर तब तक आयरलैण्ड की जनता की माँग होम रू से बहुत आगे बढ़ चुकी थी और उन्होंने स्पष्ट घोषणा क दी कि वे इंग्लैण्ड के दिये हुए होम रूल को स्वीक नहीं करेंगे।

इसके लिये आयरलैण्ड में दो सैनिक संगठनों स्थापना हुई। एक सैनिक संगठन अलस्टर वालों का थ

जिसमें अंग्रेज लोग शामिल थे और दूसरा सैनिक संगठन आयरलैण्ड के निवासियों का था जो अलस्टर के सैनिक संगठन के विरुद्ध लड़ने के लिये तैयार किया गया था मगर इसी बीच पहला विश्वव्यापी युद्ध प्रारम्भ हो गया।

महायुद्ध के समाप्त होने के पश्चात् सन् १६१६ में आयरिश गणतन्त्र की घोषणा कर दी गई और अपनी विधान सभा का नाम 'डेल आयरिसन" रखा। डेल आयरियन ने अपना अध्यक्ष "डी वेलेरा" को और उपाध्यक्ष "ग्रीफिथ" को बनाया। ये दोनों व्यक्ति उस समय अंग्रेजों की जेल में थे।

इसके बाद शिनफेन पार्टी ने अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ एक नये ढंग का संघर्ष प्रारम्भ किया। उसने ब्रिटिश संस्थाओं का बहिष्कार करके अपनी संस्थाएँ स्थापित कर दी। ब्रिटिश अदालतों की जगह अपनी अदालतें स्थापित कर दीं। जेलों में कैदियों ने भूख हड़तालें प्रारम्भ कर दीं। इनमें सबसे बड़ी भूख हड़ताल "टैरेन्स मेकस्विनी" की हुई जिसने ७५ दिन तक लगातार भूख हड़ताल करके अपने प्राणों को छोड़ दिया। आयरलैण्ड के इतिहास में इस व्यक्ति का नाम अमर हो गया।

शिनफेन विद्रोह का मुख्य नेता और संगठनकर्ता माइकेल कॉलिन्स कहा जाता है। इसके संगठन ने ब्रिटिश शक्ति को बहुत कमजोर कर दिया तब आयरलैण्ड में लड़ने के लिये एक विशेष ब्रिटिश फौजी दल भर्ती किया गया। सन् १६१६ से १६२१ तक यह आंग्ल-आयरिश युद्ध चला।

सन् १६२१ में लन्दन में अंग्रेज सरकार और आयरिश गणतन्त्र के बीच में एक अस्थायी समझौता हुआ। मगर इस समझौते के फलस्वरूप आयरलैण्ड के शिनफेन दल में भारी मतभेद पैदा हो गया। शिनफेन दल का संगठनकर्ता माइकेल कालिन्स और उसके अनुयायी समझौते के पक्ष में थे मगर डेल आयरियन के अध्यक्ष डी वेलेरा तथा उसके साथी इस समझौते के बिलकुल विरुद्ध थे। एक तरफ गणराज्यवादियों ने माइकेल कालिन्स को गोली से उड़ा दिया दूसरी तरफ "साओर स्टाट आयरियन" के पक्षपातियों ने कई गणराज्यवादियों को गोलियों से मार दिया।

सन् १६३२ के चुनाव में डी वेलेरा को साओर-स[टाट] आयरियन के चुनाव में बहुमत प्राप्त हो गया और उ[सने] उस पार्लियामेण्ट में बादशाह के प्रति वफादारी की श[पथ] लेने से इन्कार कर दिया और ब्रिटिश सरकार को यह सूचित कर दिया कि आयरलैण्ड के किसान जमीनों [के] मुआवजे की आगामी किश्तें अब अदा नहीं करेंगे। इसके बदले में इंग्लैण्ड ने अपने यहाँ आनेवाले आय[रिश] माल पर बड़ी-बड़ी चुंगियाँ लगा कर आयरलैण्ड के वि[रुद्ध] एक आर्थिक युद्ध शुरू कर दिया। इसके बदले में आ[य]रिश सरकार ने भी ब्रिटिश माल पर भारी-भारी चुं[गियाँ] लगा दीं। इसके बाद सन् १६३८ में दोनों देशों के [बीच] चलने वाला यह आर्थिक युद्ध एक आपसी समझौते द्वारा खत्म कर दिया गया। यह समझौता भी आय[रिश] गणराज्य के लिये काफी फायदेमन्द रहा।

इस प्रकार भयंकर संघर्षों के बीच में से गुजरता हु[आ] इतिहास की अनेक काली घाटियों को पार करता हुआ [यह] देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कठोर जुए से अपने आ[प को] आजाद करने में समर्थ हुआ।

आयस् प्रथम (Ayes)

सिन्ध और पंजाब के शक राजाओं का वंशज। इ[सका] समय अनुमानतः ई० सन् ७६ माना जाता है।

शक राजा आयस् राजा माउस (Maues) [का] उत्तराधिकारी था। राजा माउस ने भारतवर्ष की उ[त्तर] पश्चिमी सीमा पर भारी विजय प्राप्त की थी। तक्षशिल[ा के] ताम्र-पत्र में उसे महाराज के नाम से सम्बोधित [किया] गया है।

माउस के बाद आयस् प्रथम पश्चिमी शक कुल [का] राजा हुआ। माउस के राज्य को उसने पूरा-पूरा [अपने] अधिकार में रखा और उसकी सीमाओं को कुछ बढ़ा[या।] उसने अपने नाम के सिक्के भी प्रसारित किये।

आर्थर ग्रिफिथ

आयरलैण्ड का एक नौजवान नेता जिसने आयरलैण्ड की आजादी की लड़ाई में "शिनफेन" नामक एक नवीन विचारधारा का प्रचार किया। शिनफेन की विचारधारा आयरलैण्ड के नौजवानों में धीरे-धीरे फैलने लगी। इन विचारों की वजह से आयरलैण्ड में क्रान्ति की ज्वालायें एकदम नहीं भड़कने पाई।

आल्हा चारण

राजस्थान के प्रसिद्ध वीर राठौर वंशी राव-चूण्डा के दरबार का एक प्रसिद्ध चारण।

राव चूण्डा जब केवल छः वर्ष का बालक था तब उसके पिता वीरम का देहान्त हो गया था तब इसकी माता इसकी रक्षा के लिये इसको लेकर शेरगढ़ परगने के कालाउ नामक गाँव में आल्हा चारण के घर शरण लेकर रही थी और इसका भेद चारण को भी नहीं दिया। राव चूण्डा आल्हा चारण के बछड़ों को चराने के लिये जंगल में ले जाया करता था। उस समय राठौर सरदारों और मुसलमानों के बीच दिन प्रतिदिन लड़ाइयाँ होती रहती थीं। आगे जाकर चूण्डा अपनी बहादुरी से बड़ा प्रतापी निकला और इसका जोधपुर के समीप मण्डोर नामक स्थान पर एक अच्छा राज्य स्थापित हो गया। तब एक दिन आल्हा चारण इससे मिलने के लिये आया। उस समय चूण्डा के द्वारपालों ने उसे भीतर जाने से रोक दिया। तब आल्हा चारण ने महल के नीचे से ही एक दोहा बनाकर जोर से सुनाया।

"चूण्डा नहीं आवे चीत काचर कालाउ तणा
भूप भयो भयभीत मण्डोवर रे मालिए"

अर्थात् चूण्डा को कालाऊ की कचहरियाँ या नहीं आती हैं क्योंकि अब तो वह मण्डोर के राजमहल में बैठ कर बहुत बेपरवाह हो गया है।

तब चूण्डा ने आल्हा चारण को बड़े आदर के साथ भीतर बुलाया और उसको भाण्डू नामक एक गाँव जागीर में दे दिया जो अब तक उसके वंशजों के पास है।

आल्हा खण्ड

हिन्दी भाषा में लिखा हुआ वीर रस का एक सुप्रसिद्ध काव्य जिसका पाठ बरसात के दिनों में उत्तर प्रदेश के घर-घर में होता है।

आल्हा खण्ड हिन्दी भाषा में वीर रस का सुप्रसिद्ध काव्य है। इसमें महोबा के रहने वाले आल्हा और ऊदल नाम का पराक्रमी भाइयों के द्वारा लड़ी हुई अनेक लड़ाइयों को बड़ी वीरता पूर्ण भाषा में वर्णन है।

आल्हा खण्ड ने हिन्दी साहित्य की वीर रस परम्परा में एक नवीन शैली को जन्म दिया। इस की भाषा का प्रवाह ऐसा जोशीला और विचित्र ढङ्ग का है कि पढ़ते-पढ़ते और सुनते-सुनते लोगों में एक अपूर्व जोश का संचार हो जाता है। और कई जगह तो सुनते-सुनते लोग जोश में आकर आपस में लाठी मार कर बैठते हैं।

छन्द का नमूना—

स्वस्ति श्रीनारायण लिखि के, वीरशाह को लिखा जुहार,
नाम चन्देले को जगजाने जिससे हार गई तलवार।
किया सामना कोई ना हमसे, सबकी ढिल कर दिया कमान,
कैसा राजा बैरीगढ़ का क्या बल लेकर पहुँचा आन।
कोट अठासी बावन सूबे, जब कोई रहा लड़ैया नाय,
खाण्डा फेंक दिया सागर में, सबने किया मित्रता आय।

आरी ओस्टो

पन्द्रहवीं सदी का प्रसिद्ध इटालियन प्रबन्ध काव्य रचयिता। जिसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "ओर लाण्डो फूरियो सो" ने तत्कालीन इटालियन साहित्य में बहुत प्रसिद्धि पाई और आगे करीब दो शताब्दी तक के इटालियन लेखकों ने उसकी शैली का अनुकरण किया इसका पूरा नाम लोडोविको आरीओस्टो था और इसका समय सन् १४७४ से १५३२ तक था।

आलम खान

सन् १९१७–१८ की बोल शेविक क्रान्ति के समय बुखारा का अमीर जिसने मार्च १९१८ में जदीद नामक सुधारक तुर्कीदल के लोगों का कत्लेआम किया।

तुर्की के अन्तर्गत जिस समय नवीन तुर्क दल ने अनवर पाशा के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ किया उसी की नकल

पर मध्यएशिया के मुसलमानों में "जदीद" नामक आन्दोलन का जन्म हुआ। यह "जदीद" आन्दोलन मुल्ला लोगों की प्रवृत्तियों के खिलाफ उत्पन्न हुआ था। बुखारा के अमीर आलमखान ने पहले तो उनसे समझौता कर लिया। मगर बाद में मुल्लाओं के प्रभाव में आकर उसने जदीदों पर भयङ्कर अत्याचार करना प्रारम्भ किया, कइयों को उसने मौत के घाट उतार दिये और कइयों को जेल बन्द कर दिया।

मगर करीब छः महीने के बाद बोल्शेविक लोगों ने बुखारा पर आक्रमण कर आलम खाँ को वहाँ से भगा दिया जिसके फलस्वरूप उसे अफगानिस्तान में जाकर शरण लेनी पड़ी।

आलम खाँ

महम्मद गौरी के वंशज और फिरोज तुगलक के जागीरदार मालवे के शासक दिलावर खाँ का पुत्र जो हुशंग शाह की उपाधि धारण कर सन् १४०५ में मालवे की गद्दी पर बैठा और सन् १४३४ तक शासन किया।

आलम खाँ ने अपनी राजधानी माण्डू को बनाया और उसे बहुत सी सुन्दर इमारतों से सजाया। मालवा की धन्य-धान्य पूर्ण स्थिति तथा उसकी शस्य श्यामला भूमि कारण दिल्ली, जौनपुर तथा गुजरात के शासकों की निगाह हमेशा उसके ऊपर रहती थी। इसलिये आलम खाँ को हमेशा इन लोगों के साथ लड़ाई के लिये तैय्यार रहना पड़ता था। गुजरात के साथ एक युद्ध में आलम खाँ की पराजय हुई और वह कैद कर लिया गया मगर फिर वहाँ से छूट गया।

आर्क ड्यूक फ्रान्सिसफर्डीनण्ड

आस्ट्रिया की राजगद्दी का उत्तराधिकारी जिसकी २८ जून १६१४ को हत्या कर दी गई। इसी घटना ने प्रथम महायुद्ध का सूत्रपात किया।

हैप्सबर्ग वंश का आर्क ड्यूक फ्रान्सिस फर्डीनण्ड आस्ट्रिया की राजगद्दी का उत्तराधिकारी था। वह बलकान देश में बौसनिया की राजधानी "सिराजीवो" की यात्रा को गया था। जब आर्क ड्यूक अपनी पत्नी के साथ खुली गाड़ी में बैठ कर सिराजीवो के बजार में घूम रहा था तब उस पर गोलियाँ चलाई गईं जिससे आर्क ड्यूक और उसकी पत्नी दोनों मारे गये। इन हत्याओं से आस्ट्रिया की सरकार और जनता दोनों उत्तेजित हो गये और उन्होंने सर्विया की सरकार पर यह इल्जाम लगाया कि इन हत्याओं की जिम्मेदारी उसके ऊपर है। इसके लिये एक जाँच कमेटी बैठाई गई। उसकी रिपोर्ट से मालूम हुआ कि यद्यपि सर्विया की सरकार इन हत्याओं के लिये जिम्मेदार नहीं है मगर हत्या के लिये जो तैयारियाँ की गई थीं उनसे यह बिल्कुल अनजान भी नहीं थी।

कुछ भी हो आस्ट्रिया को और जर्मनी को इन हत्याओं से युद्ध के लिये एक बहाना मिल गया और २८ जुलाई सन् १६१४ को आस्ट्रिया ने सर्विया के विरुद्ध और १ अगस्त १६१४ को जर्मनी ने फ्रान्स और रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और इन हत्याओं की घटना ने सारी दुनिया के लिये युद्ध का महा अभिशाप पैदा कर दिया।

आर्थर लुण्ड क्विस्त
(Arthur Lund Kvist)

बीसवीं सदी में स्वीडन का एक प्रभावशाली लेखक और कवि जिसका जन्म सन् १६०६ में हुआ। इसने अपनी कविताओं में उत्साह पूर्वक अकृत्रिम जीवन के आनन्द की प्रशंसा की है नैराश्य का उनमें कहीं नाम भी नहीं है।

आर्किमिडेस (Archimedes)

यूनान के सिसली जिले के सायरा क्यूज नामक नगर का सुप्रसिद्ध गणित शास्त्री जिसका समय ईस्वी सन् पूर्व २८७ से २१२ तक है।

आर्किमिडेस का जन्म सिसली प्रान्त के सायराक्यूज नामक नगर में हुआ था। इनके पिता भी गणित और ज्योतिष शास्त्र के विद्वान थे। आर्किमिडेस उस युग के प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता और गणितशास्त्री थे। एक बार सायरा क्यूज के शासक (Hero) ने अपने लिए सोने का एक मुकुट बनवाया। जब मुकुट बन कर आया तो

उसका सोना असली है या नहीं इसकी जाँच करने के लिए यह आर्कमिडीस को दिया गया। मुकुट को तोड़ा जा नहीं सकता था तब उसकी जाँच कैसे हो, यही सवाल आर्कमिडीस को बेचैन कर रहा था। एक दिन जब वे पानी की नांद में नहा रहे थे तो उन्होंने पानी हटने के कारण अपने वजन में कमी महसूस की उसी समय उन्हें यह ध्यान में आया कि वजन की यह कमी हटे हुए पानी के बराबर है। इस सिद्धान्त का उपयोग कर उन्होंने ताज का आयतन निकाल लिया और फिर उसका घनत्व निकाल लिया, उस घनत्व की तुलना असली सोने का घनत्व निकालकर कर ली और परिणाम हीरो को बतला दिया। कहा जाता है कि नांद में नहाते समय जब उन्हें इस अनुसन्धान का पता लगा तो वे नांद से कूद कर नंगे ही गली में "यूरेका" "यूरेका" (अर्थात् मैंने ढूंढ निकाला है) कहते हुए नाचने लगे।

मशीन, यंत्र विज्ञान और गणित विज्ञान के अनुसन्धानों में इनका नाम प्रसिद्ध है। घिरनी, आर्क मीडियन पेंच, जल प्रेरित और दबी हवा की मशीनें इन्हीं का आविष्कार है। इन्होंने मोटे काँच (Concave miror) के द्वारा सूर्य की किरणों को एक केन्द्र बिन्दु पर इकट्ठा करके सबसे पहले अग्नि पैदा की। उछाल के सिद्धान्त और तैरती हुई वस्तुओं पर किये हुए अपने प्रयोग के सिवा इन्होंने यह भी सिद्ध किया कि वृत्त की परिधि कैसे निकाली जाती है। इन्होंने गणित के Conic Section की भी प्रगति की। Infinity की धारणा का श्रेय भी इन्हीं को है।

आर्डियल

प्राचीन पश्चिमी योरप की सभ्यता में अपराधी के अपराध की जाँच का एक तरीका आर्डियल कहलाता था। इस तरीके में अपराधी का हाथ जलते हुए गर्म पानी में रखा जाता था। तीन दिन तक उसके हाथ पर गर्म पानी का कोई प्रभाव न पड़ता था तो वह निर्दोष समझा जाता था। कभी उसे गर्म-गर्म लोहे पर चलने को कहा जाता था और यदि उसके पैर में छाले नहीं पड़ते थे तो वह निर्दोष समझा जाता था। आर्डियल का यह तरीका पुरानी जर्मन जातियों में, जो उस समय गाथ जाति के नाम से प्रसिद्ध थी, सातवीं और आठवीं सदी में प्रचलित था।

आरासन तीर्थ

जैन धर्मावलम्बियों का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान जो आबू पर्वत से थोड़ी दूरी पर कुम्भारिया गाँव के समीप है।

इस तीर्थ में जैनियों के पाँच बहुत सुन्दर एवं प्राचीन मन्दिर बने हुए हैं। सभी मन्दिर सफेद आरस पत्थर के बने हुए हैं। उस समय इस स्थान पर आरस पत्थर की अच्छी खदानें थीं। सारे गुजरात में मूर्ति निर्माण के लिये यहाँ से पत्थर जाता था। इस तीर्थ स्थान में जैन मन्दिरों के समूह में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण मन्दिर श्री नेमीनाथ का है। इस मन्दिर का शिखर तारंगा के जैन मन्दिर जैसा है। इसकी परसाल के एक स्तम्भ पर के लेख से पता चलता है कि संवत् १२५३ में आसपाल नामक किसी व्यक्ति ने इसे बनाया था। इस मन्दिर के पट्टनायक नेमीनाथ की प्रतिमा के नीचे एक शिलालेख है जिससे पता चलता है कि संवत् १६७५ के माघ सुदी चौथ शनिवार के दिन ओसवाल जाति के बोहरा गोत्रीय राजपाल ने श्री नेमीनाथ के मन्दिर में नेमीनाथ का बिम्ब स्थापित किया जिसकी प्रतिष्ठा हीरविजय सूरी परम्परा के श्री विजयदेव सूरी ने करवाई।

नेमीनाथ देवालय के पूर्व की ओर तीर्थङ्कर महावीर का मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर भी बड़ा सुन्दर बना हुआ है। इसके मूलनायक महावीर की मूर्ति पर सन् १६१८ का एक लेख पाया जाता है मगर प्रतिमा की बैठक पुरानी है और उस पर ई० सन् १०६१ का लेख पाया जाता है।

उपरोक्त दोनों मन्दिरों के अतिरिक्त पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और सम्भवनाथ के तीन मन्दिर बने हुए हैं। इनके ऊपर जो लेख पाये जाते हैं वे संवत् ११३८ और संवत् ११४९ के हैं।

ऑरेन्ज राजवंश

नीदरलैण्ड की महान् क्रान्ति का नेतृत्व करने वाले विलियम दि साइलेण्ट का वंश। इस वंश में आगे जाकर सौ वर्ष बाद विलियम द्वितीय पैदा हुआ। विलियम द्वितीय की शादी इंग्लैण्ड के राजघराने की मेरी से हुई थी। जेम्स द्वितीय के इंग्लैण्ड से भाग जाने के पश्चात् सन् १६८८ में विलियम और मेरी इंग्लैण्ड के संयुक्त शासक बना दिये गये।

आर्डिनेन्स

ऐसे कानून जो समय-समय पर सरकार के द्वारा किसी आन्दोलन को दबाने या जनता का दमन करने के लिये निकाले जाते हैं।

आरनाल्ड

इटली के ब्रेसिया का रहनेवाला प्रसिद्ध धर्मोपदेशक जो अत्यन्त लोकप्रिय और लगनशील था। जो पादरियों की विलासिता और भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रचार करता था। सन् ११५५ में चर्च के आदेश से उसे पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया गया और उसकी राख को टाइबर नदी में फिकवा दिया गया। मरते दम तक यह व्यक्ति दृढ़ एवं शान्त था।

ऑर्थर वेलेजली

सन् १८०३ में दक्षिण की अंग्रेजी सेना का सेनापति !

पेशवा बाजीराव द्वितीय ने दिसम्बर १८०२ में अंग्रेजों के साथ बेसीन की प्रसिद्ध सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा पेशवा पूर्ण रूप से अंग्रेजों के अधीन हो गया। पेशवा मराठों का सरदार एवं मुगल सम्राट् का वकील-उल मुतलक था। १३ मई सन् १८०३ को आर्थर वेलेजली की संरक्षता में पेशवा पूना में प्रविष्ट हुआ। उसके आने का समाचार सुन कर जसवन्त राव होल्कर पूना को छोड़ कर मालवा चला गया।

बेसीन की सन्धि से सिन्धिया और भोंसले दोनों बहुत नाराज थे और स्वंय पेशवा भी भीतर ही भीतर इस सन्धि से नाराज था। सारी बातों को जान कर आर्थर वेलेजली ने सिन्धिया और भोंसले के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में अंग्रेजों की स्थिति बड़ी दृढ़ थी। सन् १८०३ ई० में अंग्रेज मराठा युद्ध प्रारम्भ हुआ। आर्थर वेलेजली ने अहमद नगर पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। सितम्बर में असाई के युद्ध में फिर उसने सिन्धिया और भोंसले की सम्मिलित सेनाओं को पराजित किया। नवम्बर में अरगांव के युद्ध में फिर उसने भोंसले को शिकस्त दी और दिसम्बर में ग्वालीगढ़ के दुर्ग पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। लाचार होकर भोंसले ने आत्म-समर्पण कर दिया।

आर्मेडा

स्पेन का संसार प्रसिद्ध मशहूर जहाजी बेड़ा। इस बेड़े में १३० जहाज, आठ हजार नाविक, बीस हजार समुद्री सैनिक, दो हजार तोपें, तथा छह मास के लिए पर्याप्त गोला बारूद और खाद्य सामग्री संचित थी।

स्पेन का यह अजेय जहाजी बेड़ा था। इस बेड़े का कमान ड्यूक ऑफ मेडीना सिडोनिया था।

स्पेन इन दिनों यूरोप का सब से बलवान राष्ट्र था। सन् १५८० में स्पेन और पुर्तगाल के राज सिंहासन मिल-जाने के कारण स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय की शक्ति बहुत बढ़ गई थी।

स्पेन में रोमन कैथोलिक धर्म की प्रधानता होने से और इंग्लैण्ड में प्रोटेस्टेण्ट धर्म की प्रधानता होने से दोनों देशों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे और स्पेन इंग्लैण्ड पर हमला करने का अवसर ढूंढ़ रहा था मगर इंग्लैण्ड पर उस समय रानी एलिजाबेथ का सुदृढ़ शासन होने से उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

मगर इधर इंग्लैण्ड का शासन स्पेन के विरुद्ध नीदरलैण्ड के विद्रोह की खुले आम मदद कर रहा था और उसके समुद्री साहसिक स्पेनी जहाजों पर लूटमार करते रहते थे। इस काम में रानी की भी उनको शह थी।

इससे विक्षुब्ध हो अन्त में स्पेनी सरकार ने अपने जहाजी बेड़े आर्मेडा को इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने का आदेश दिया मगर स्पेन वाले अभी अपने बेड़े को केडिच बन्दरगाह पर तैयार ही कर रहे थे कि एक दिन इंग्लैण्ड का साहसी डाकू सर फेडरिक उसमें जा घुसा और उस बेड़े के कई जहाजों में आग लगा कर भाग आया और इंग्लैण्ड की रानी एलिजाबेथ से आकर कहा कि "मैं स्पेन के राजा की दाढ़ी में आग लगा आया हूँ" तब से यह वाक्य इंग्लैण्ड के नागरिकों का एक मुहाविरा बन गया।

फिर भी स्पेन ने हिम्मत नहीं हारी और उसने फिर से तैयारी कर इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया मगर मार्ग में समुद्री तूफान ने उसे अस्त-व्यस्त कर दिया। इधर अंग्रेजी बेड़े में बेड़े के प्रधान कप्तान लार्ड हावर्ड के अतिरिक्त, ड्रेक हाकिंस, वाल्टर रैले इत्यादि सुप्रसिद्ध जहाजी विशेषज्ञ थे।

परिणाम स्वरूप स्पेन का मशहूर "आर्मेडा" पूर्णतः पराजित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो गया और समुद्री शक्ति में स्पेन का प्रभुत्व नष्ट होकर इंग्लैण्ड का स्वामित्व स्थापित हो गया।

इस विजय के उपलक्ष्य में रानी एलिजाबेथ ने और सारे इंग्लैण्ड ने बहुत भारी जलसा मनाया।

आर्डर इन कौन्सिल

सन् १८०७ में इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट के द्वारा निकाली हुई एक घोषणा। जिसके अनुसार यूरोप के तटस्थ राष्ट्र जो अपना माल नैपोलियन के अधीनस्थ देशों को भेजते हैं उन्हें चाहिये कि वे अपना सारा माल इंग्लैण्ड के बन्दरगाह पर भेजा करें। यदि कोई राष्ट्र अपना माल इंग्लैण्ड के बन्दर पर नहीं भेजेगा तो उसका सारा माल जब्त कर लिया जायेगा।

इंग्लैण्ड की यह घोषणा "आर्डर इन कौन्सिल" के नाम से प्रसिद्ध है। यह घोषणा नैपोलियन की उस घोषणा के प्रतिकार में थी जो उसने सन् १८०६ में बर्लिन डिक्री (Berlin decree) के नाम से निकाली थी और जिसके अनुसार फ्रेंच सरकार के अधीन सब देशों को यह आदेश दिया गया था कि वे इंग्लैण्ड अथवा उसके उपनिवेशों के साथ कोई व्यापार न करें।

आर्थर वेलेजली

इंग्लैण्ड की सेना का सुप्रसिद्ध सेनापति जिसने वाटर लू के इतिहास प्रसिद्ध संग्राम में नैपोलियन महान् को भारी पराजय दी और जो बाद में ड्यूक आफ वेलिंगटन के नाम से मशहूर हुआ।

आर्थर वेलेजली का जन्म सन् १७६९ ई० में हुआ था। सन् १७८७ में केवल अठारह वर्ष की उम्र में इसने सैनिक नौकरी कर ली। सबसे पहले यह भारतवर्ष में भेजा गया जहाँ इसने कई छोटी-बड़ी लड़ाइयों में अपना पराक्रम प्रदर्शित किया। सन् १८०५ में यह भारत से वापस गया और इसके पश्चात फ्रेन्च सेना के विरुद्ध लड़ने के लिये स्पेन भेजा गया। वहाँ इसने कितनी ही लड़ाइयों में फ्रेन्च सेना को पराजित किया और सन् १८१४ में इसने स्पेन के क्षेत्र से फ्रेन्च सेना को बाहर निकाल दिया। सन् १८०९ में टेलेवरा के युद्ध में इसने जो वीरता प्रदर्शित की थी उसके उपलक्ष्य में उसे "ड्यूक आफ वेलिंगटन" की उपाधि दी गई थी। सन् १८१५ में वाटर लू की प्रसिद्ध रणभूमि में इसने महान विजेता नैपोलियन महान को पराजित किया। जिसके कारण इसका नाम सारे संसार में प्रसिद्ध हो गया।

सन् १८२८ से सन् १८३० तक यह इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री बनाया गया। पुराने रूढ़िगत विचारों का होने के कारण इस कार्य में इसे विशेष सफलता नहीं मिली और दो वर्ष के पश्चात् उसे यह पद छोड़ना पड़ा। सन् १८४२ ई० से मृत्यु-पर्यन्त वह इंग्लैण्ड का प्रधान सेनापति बना रहा। सन् १८५२ में तिरासी वर्ष की उम्र में इसकी मृत्यु हो गई।

ऑलिवर-ट्विस्ट

अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक चार्ल्स डिकेन्स का लिखा हुआ प्रसिद्ध उपन्यास जो सन् १८३८ में लिखा गया। इस उपन्यास में सफल लेखक ने तत्कालीन समाज की हृदय हीनता का मर्मस्पर्शी चित्र खींच कर उसके

खिलाफ आवाज उठाई है। उपन्यास में हास्य रस के ऊपर करुणा की छाया स्पष्ट रूप से झलकती है।

ऑलिवर क्रामवेल

ऑलीवर क्रामवेल इंलैण्ड की पार्लियामेण्ट का एक महान् नेता, जिसने इंग्लैण्ड में "आयर्न बॉडी" नामक एक नई सेना का संगठन किया।

ऑलीवर क्रामबेल का नाम इंग्लैण्ड के इतिहास में एक चमकते हुए नक्षत्र की तरह प्रकाशमान है। उस समय इंग्लैण्ड की गद्दी पर जेम्स प्रथम का पुत्र चार्ल्स प्रथम गद्दी पर बैठा था। यह वह समय था जब सम्राट और पार्लियामेण्ट के अधिकारों के विषय में बड़ा मतभेद चल रहा था। सन् १६२८ ई० में पार्लमेण्ट से इंग्लैण्ड के बादशाह चार्ल्स प्रथम को 'पिटीशन ऑफ राइट्स' के नाम से एक अधिकार याचिका दी जो इंग्लैण्ड के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खरीता है। इस याचिका में बतलाया गया था कि इंग्लैण्ड का बादशाह एक स्वेच्छाचारी शासक नहीं है। वह गैरकानूनी तौर पर न तो प्रजा पर टैक्स लगा सकता है और न उसे गिरफ्तार करवा सकता है।

जब उसको यह खरीता दिया गया तो चार्ल्स ने सारी पार्लियामेण्ट को तोड़ दिया और एक स्वेच्छाचारी की तरह शासन करने लगा। लेकिन कुछ ही वर्षों के बाद उसे रुपये की इतनी तंगी महसूस हुई कि उसे दूसरी पार्लियामेण्ट बनानी पड़ी। पार्लमेण्ट के बिना बादशाह ने जो कुछ किया था उससे नई पार्लियामेण्ट उससे लड़ाई मोल लेने का मौका ही ताक रही थी। जिसके फलस्वरूप सन् १६४२ में इंग्लैण्ड में गृह-युद्ध शुरू हो गया जिसमें एक तरफ तो बादशाह इंग्लैण्ड के बहुत से अमीर उमराव और फौज का एक बड़ा हिस्सा था और दूसरी तरफ पार्लमेण्ट, लन्दन के धनी व्यापारी और लन्दन के नागरिक थे। कई वर्षों तक यह लड़ाई खिंचती रही। अन्त में पार्लियामेण्ट की तरफ से इंग्लैण्ड का महान नेता ऑलीवर क्राम्बेल उठ खड़ा हुआ! यह बड़ा जबरदस्त संगठन कर्त्ता, कड़ा अनुशासन रखने वाला और अपने उद्देश्य में अटल विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। क्राम्बेल ने एक नई सेना का संगठन किया जिसके सैनिकों का नाम "आयर्न साइड्स" (लौह-शरीर) रखा गया! क्रामवेल की सेना ने बादशाह की घुड़ सवार फौज का मुकाबला किया अन्त में क्रामवेल की जीत हुई और इंग्लैण्ड का बादशाह पार्लमेण्ट का कैदी हो गया।

पार्लमेण्ट के बहुत से मेम्बर अब भी बादशाह से समझौता करना चाहते थे लेकिन क्रामवेल की नई सेना इस बात को सुनना भी पसन्द नहीं करती थी और इस सेना के एक अफसर कर्नल प्राइड ने बेधड़क पार्लमेण्ट भवन में घुस कर ऐसे मेम्बरों को निकाल बाहर किया। इस घटना को 'प्राइडस पर्ज' यानी प्राइड की सफाई कहा जाता है।

पार्लमेण्ट के बचे हुए मेम्बरों ने जिन को रम्प पार्लमेण्ट का नाम दिया गया था लार्ड सभा के विरोध करने पर भी बादशाह पर मुकदमा चलाने का फैसला कर लिया और उसे जालिम, देश-द्रोही, हत्यारा और देश का शत्रु घोषित कर के मौत की सजा दे दी। सन् १६४९ ई० में इंग्लैण्ड के उस बादशाह का, जो शासन करने में अपने दैवी अधिकार की बात करता था, लन्दन के ह्वाइट हाल में सिर उड़ा दिया गया!

इस घटना से योरप के बादशाहों, सीजरों, राजाओं और छोटे-मोटे शाहों के दिल दहल गये। अगर वश चलता तो इनमें से अनेक इंग्लैण्ड पर हमला कर के उसे कुचल डालते मगर इंग्लैण्ड की बागडोर उन दिनों किसी निकम्मे बादशाह के हाथों में नहीं थी। इतिहास में पहली बार इंग्लैण्ड में गणराज्य की स्थापना हुई थी और उसकी रक्षा करने के लिये क्रामवेल और उसकी सेना तैयार थी। क्रामवेल 'लार्ड प्रोटेक्टर' यानी रक्षक स्वामी कहलाता था। उसके कुशल शासन में इंग्लैण्ड की ताकत बढ़ने लगी और उसके जहाजी बेड़ों ने हॉलैण्ड, फ्रान्स और स्पेन के बेड़ों को मार भगाया। पहली ही बार इंग्लैण्ड योरप की प्रधान समुद्री शक्ति बन गया।

लेकिन इंग्लैण्ड का यह गणराज्य ज्यादा दिन नहीं टिका। चार्ल्स प्रथम की मौत के ११ वर्ष बाद सन् १६५८ में क्रामवेल की मृत्यु हो गई और उसके दो वर्ष बाद इंग्लैण्ड के गणराज्य का भी अन्त हो गया।

आबरू

उर्दू के प्रसिद्ध कवि शाह "मुबारक" जिनका जन्म सन् १७०७ के करीब और मृत्यु १७५० में हुई। ये देहली के रहनेवाले थे।

आबरू उर्दू के प्रसिद्ध कवि और अन्य कवियों के पथ प्रदर्शक थे। इनकी बनाई हुई एक मसनवी का नाम "मुअब्बजे आकाइशे माशूक" है। इनका बनाया हुआ एक दीवान भी था। मगर समय की गर्दिश में नष्ट हो गया। इनकी कविताओं के नमूने—

गर यह है मुसकिराना तो किस तरह जिऐंगे
तुमको तो यह हँसी है पर है मरन हमारा
आया है सुबह नींद से उठ रसमसा हुआ
जामा गले में रात का फूलों बसा हुआ।

आश्व लायन सूत्र

बौद्ध धर्म का एक सूत्र ग्रन्थ जिसमें भगवान बुद्ध ने आश्वलायन ब्राह्मण माणवक के प्रश्नों का उत्तर दिया है।

आश्व-लायन प्रश्न करता है कि हे गौतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है अन्य वर्ण हीन हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं अब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं और उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं। आप इस विषय में क्या कहते हैं।

गौतम उत्तर देते हैं कि हे आश्व-लायन! ब्राह्मणों को क्या बल है जो वे ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, अन्य हीन वर्ण हैं। क्या मानते हो कि केवल ब्राह्मण ही सावध्य या पाप से प्रतिविरत होकर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं? क्या तुम मानते हो कि ब्राह्मण ही मैत्र चित्त की भावना में समर्थ होते हैं? क्या ब्राह्मण ही नदी में स्नान करके शरीर के मल को धो सकते हैं दूसरे वर्ण नहीं? यदि कोई क्षत्रिय कुमार किसी ब्राह्मण कन्या के साथ सहवास करे और उसके पुत्र उत्पन्न हो तो वह पुत्र पिता के भी सदृश्य और माता के भी सदृश्य है। उसे क्षत्रिय भी कहना चाहिये और ब्राह्मण भी कहना चाहिये। हे आश्व लायन! यदि ब्राह्मण कुमार क्षत्रिय कन्या के साथ सहवास करे और उसके पुत्र पैदा हो तो क्या उसे क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों न कहेंगे?

"हाँ कहेंगे गौतम!"

"हे आश्व लायन मैं चारों वर्णों को शुद्ध मानता हूँ। जातिवाद की भावना ठीक नहीं है।"

आस्टरलिज का युद्ध

जिस समय फ्रान्स में नैपोलियन का प्रताप छाया हुआ था उस समय इंग्लैण्ड के विलियम पिट (छोटा) ने आस्ट्रिया, रूस और स्वीडेन को मिला कर नैपोलियन के विरुद्ध सन् १८०५ में एक संघ बनाया।

ज्यों ही नैपोलियन को मालूम हुआ कि फ्रान्स के विरुद्ध संघ कायम हुआ है त्योंही उसने बहुत सी सेना लेकर आस्ट्रिया पर हमला कर दिया और वियेना के पास आस्टरलिज के मैदान में रूस और आस्ट्रिया की सेनाओं को बुरी तरह से पराजित कर दिया! इस पराजय से रूस की सेना भाग निकली और जर्मनी के बहुत से प्रदेश पर नैपोलियन का अधिकार हो गया और आस्ट्रिया के सम्राट् दूसरे फ्रान्सिस को जर्मन-सम्राट् का पद, जो बहुत समय से उसके वंश में चला आ रहा था, छोड़ना पड़ा। अब वह केवल आस्ट्रिया का सम्राट् रह गया।

आशाधर

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के एक बहुत बड़े विद्वान और पण्डित जिन्होंने न्याय, व्याकरण इत्यादि अनेक विषयों पर अपनी महान रचनायें कीं।

पण्डित आशाधर का जन्म ई० सन् ११८० के करीब माना जाता है। ये जैन बघेरवाल जाति के वंशज थे। इनके पिता का नाम सल्लक्षण, माता का श्री रत्नी, पत्नी का सरस्वती और पुत्र का नाम छाहड़ था!

पण्डित आशाधर का जैन धर्म का अध्ययन बहुत विशाल था। उनके ग्रन्थों से पता चलता है कि अपने समय के तमाम उपलब्ध जैन साहित्य का उन्होंने अध्ययन किया था! पण्डित आशाधर स्वयं एक गृहस्थ थे मगर उन्होंने अपने समय के कई मुनियों, भट्टारकों और विद्वानों को जैन धर्म की शिक्षा दी थी। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित

होकर लोग उन्हें "नय विश्व चक्षु" "कलि कालीदास" "प्रज्ञा-पुञ्ज" इत्यादि पदवियों से सम्बोधित करते थे।

पण्डित आशाधर प्रारम्भ में मायडल गढ़ (मेवाड़) के रहने वाले थे। शाहबुद्दीन गौरी के आक्रमणों से त्रस्त होकर चरित्र की रक्षा के लिये वे मालवा की राजधानी धारा नगरी में बहुत से लोगों के साथ आकर बस गये थे।

उस समय धारा नगरी ज्ञान और कला का केन्द्र बनी हुई थी। वहाँ पर उन दिनों राजा भोज, विन्ध्य वर्मा, अर्जुन वर्मा जैसे विद्वान और विद्वानों का सम्मान करने वाले राजा एक के बाद एक हो रहे थे।

पण्डित आशाधर का पाण्डित्य केवल जैन शास्त्रों तक ही सीमित न था। दूसरे शास्त्रों में भी उनकी अबाध गति थी। इसी कारण अष्टांग हृदय, काव्यालंकार, अमरकोष जैसे ग्रन्थों पर टीका लिखने में वे प्रवृत्त हुए।

जिस समय पण्डित आशाधर धारा नगरी मे आये उस समय वहाँ के राजा विन्ध्य वर्मा थे। पण्डित आशाधर ने अपनी प्रशस्ति में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। विन्ध्य वर्मा बड़े वीर और विद्या-रसिक थे। विन्ध्य वर्मा के बाद उनकी प्रशस्ति में अर्जुन वर्मा का नाम आता है जो बड़ा विद्वान, कवि और गान विद्या में निपुण था। अमरू शतक पर इसकी रससंजीवनी नामक टीका बहुत प्रसिद्ध है। पण्डित आशाधर इसी के राज्य काल में धारा से हट कर नालछा में जाकर रहे थे।

पण्डित आशाधर की बीस से अधिक संस्कृत रचनाओं का अभी तक पता लगा है जिनमें से "प्रमेय-रत्नाकर", "ज्ञान-दीपिका" "अध्यात्म रहस्य" "आराधना सार टीका" "अमर कोष टीका" "काव्यालकार टीका" "अष्टाग हृदय टीका" "रत्न त्रय विधान" इत्यादि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

आसफजाह

औरंगजेब के समय में दक्षिण का सूबेदार आसफजाह जिसने दक्षिण में एक नवीन रियासत की स्थापना की जो हैदराबाद कहलाती है। हैदराबाद के निजाम इसी आसफजाही वंशज हैं।

आजुर्दा

मौलवी मुफ्ती सदरुद्दीन खाँ "आजुर्दा" उर्दू जबान के एक विद्वान साहित्यकार, प्रसिद्ध मुसलिम नेता सर सैयद अहमद के उस्ताद। जन्म सन् १७८७, मृत्यु सन १८६८

मौलवी सदरुद्दीन खाँ "आजुरदा" उर्दू के एक लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान और कवि थे। यह रामपुर तथा भोपाल के नवाबों के शिक्षक भी रहे थे। सर सैय्यद अहमद भी इनके शागिर्दों में थे। इन्होंने उर्दू भाषा में एक दीवान और तजकिरा लिखा है।

आसबर्ग

आल्प्स पहाड़ के उस पार इटाली का एक नगर। इस नगर के कानोसा महल में सन् १०७६ में जर्मनी के राजा चतुर्थ हेनरी और रोमन चर्च के पोप सप्तम ग्रेगरी के बीच में पैदा हुए झगड़े का निर्णय किया गया।

उस काल में पोप की सत्ता सर्वोपरि मानी जाति थी मगर हेनरी चतुर्थ ने कुछ राजकीय मद में आकर पोप की सार्वभौम सत्ता को चुनौती दे दी और एक पत्र में लिखा कि—"ईश्वर से प्राप्त हमारे राज्याधिकार के प्रति आँख उठाते हुए तुझे कुछ भी शंका न हुई और तू हम से हमारा राज्याधिकार छीन लेने की धमकी देता है। मानों यह राज्य तूने हमको दिया है। मैं हेनरी राजा होकर अपने तमाम बिशपों के साथ तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू अपने पद से उतर जा और सारे समाज की घृणा प्राप्त करे।"

मगर पोप ग्रेगरी का व्यक्तित्व बड़ा महान् था और उसने अधिकांश बिशपों और हेनरी से असन्तुष्ट लोगों का समर्थन प्राप्त कर हेनरी को गद्दी से उतारने का आदेश दे दिया।

तब हेनरी बहुत घबराया। उसके विरुद्ध निर्णय देने के लिए आसबर्ग में एक बड़ी भारी सभा बुलाई गई जिसमें हेनरी को पोप से क्षमा याचना करने का एक मौका और दिया गया। पोप सप्तम ग्रेगरी बड़ी शान के साथ आसबर्ग के प्रसिद्ध कानोजा प्रासाद में आकर ठहरे। पोप का आगमन सुन हेनरी भी भयङ्कर जाड़े में आल्प्स

पहाड़ को पार कर वहाँ पहुँचा और प्रासाद के सामने अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। वह नंगे पैर, मोटे कपड़े पहने हुए, तपस्वी की तरह तीन दिन तक बराबर प्रासाद के बन्द फाटक पर आता रहा, मगर पोप ने उसको अपने पास नहीं आने दिया। अन्त में बहुत अनुनय विनय करने पर पोप ने हेनरी के सब अपराधों को क्षमा कर दिया।

आग्ज वर्ग की लड़ाई

जर्मनी के महान् सम्राट् "ओटो" ने सन् ६५५ में आग्जवर्ग के निकट एक भारी युद्ध में हंगेरियन लोगों को हरा कर उन्हें जर्मनी से बाहर भगा दिया। यह लड़ाई इतिहास में आग्ज वर्ग की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है।

आस्ट्रेलिया

संसार के अन्तर्गत आस्ट्रेलिया ही एक ऐसा महाद्वीप मिलेगा जो पूर्ण रूप से विषुवत् रेखा के दक्षिण में स्थित है। आस्ट्रेलिया का समुद्र तट बहुत कम कटा फटा है और वहाँ केवल थोड़े से ही अच्छे बन्दरगाह हैं यही कारण है कि आस्ट्रेलिया के भीतरी भागों का पता लगाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस देश के उत्तर की ओर कारपेण्ट्रिया की खाड़ी और दक्षिण में ग्रेट आस्ट्रेलियन बाइट नाम की खाड़ी है। इसके उत्तर पूर्व की ओर तट के समीप एक विलक्षण मूंगे की दीवार पाई जाती है जो ग्रेट बेरियर रीफ के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी लम्बाई करीब एक हजार मील है।

प्राकृतिक दृष्टि से आस्ट्रेलिया महाद्वीप को तीन प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है (१) पूर्वीय पर्वत (२) मध्यवर्ती मैदान (३) पश्चिमी पठार।

आस्ट्रेलिया के पूरब की ओर उत्तर से दक्षिण तक समानान्तर पहाड़ों का एक क्रम चला गया है जिसे "ग्रेट डिवाइडिंग रेञ्ज" कहते हैं।

मध्यवर्ती मैदान उत्तर से दक्षिण तक महाद्वीप के मध्य भाग में फैला हुआ है। इस मैदान का तीसरा भाग अत्यन्त उपयोगी और घना बसा हुआ है। इसी भाग में आस्ट्रेलिया की प्रसिद्ध नदी मरे अपनी सहायक नदी डार्लिङ्ग के साथ पूर्वीय पहाड़ों से निकल कर मैदान को उपजाऊ बनाती है। मध्यवर्ती मैदान का सर्वोत्तम और अत्यन्त उपजाऊ भाग यही है जो रीवेरिना के नाम से प्रसिद्ध है। रीवेरिना में मरे की अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं। मरे नदी की लम्बाई करीब सोलह सौ मील है और यह कोसीयस्को पहाड़ से निकलती है।

आस्ट्रेलिया का पश्चिमी पठार भी आबादी के योग्य नहीं है। केवल इसके दक्षिणी पश्चिमी हिस्से में जाड़ों में वर्षा होने के कारण घनी बस्ती बसी हुई है। इस प्रदेश में बहने वाली स्वान नामक नदी बड़ी उपयोगी है। इस प्रदेश में सोने की खानें होने से जलवायु की भीषणता और पानी की असुविधा होते हुए भी लोग जा बसे हैं।

आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल बहुत विस्तृत होने पर भी प्राकृतिक असुविधाओं के कारण यहाँ की आबादी बहुत कम है। यहाँ की सारी आबादी केवल ६७ लाख है जो विशेष रूप से रूम सागरीय प्रदेश और पूर्वी तट पर बसी हुई है!

आस्ट्रेलिया के नगर

आस्ट्रेलिया में छः बड़े शहर हैं जिनके नाम ब्रिस्बेन, न्यूकैसिल, सिडनी, मेलबोर्न, एडलेड और पर्थ हैं। आस्ट्रेलिया के आधे से अधिक लोग इन छः नगरों में रहते हैं।

आस्ट्रेलिया के निवासियों का सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय भेड़ों का पालना है। इस महाद्वीप में अंग्रेजों के आने के पहले एक भेड़ का भी निशान नहीं था। सन् १७८८ में यहाँ केवल उनतीस भेड़ें, सात गायें, और सात घोड़े लाये गये थे। बढ़ते २ अब इनकी संख्या करोड़ों तक पहुंच गई है और अकेले न्यू साउथ वेल्स में पाँच करोड़ भेड़ें पाई जाती हैं। गायों और घोड़ों की संख्या में भी आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है! न्यू साउथ वेल्स के घोड़े पुष्ट और सुन्दर होते हैं वे वेलर्स के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आस्ट्रेलिया की सबसे बड़ी और मुख्य पैदावार भेड़ों की ऊन है। यहाँ की एक भेड़ हिन्दुस्तान की भेड़ से पाँच गुना ऊन देती है। यह ऊन क्वालिटी में भी बहुत ऊँची होती है।

ऊन के अतिरिक्त खनिज सम्पत्ति भी आस्ट्रेलिया में काफी पाई जाती है। यहाँ सोना, चाँदी, कोयला, सीसा

और ताँबे की खदानें हैं। सोने की प्रधान खदानें न्यू साउथ वेल्स में बाथर्स्ट, विक्टोरिया में बालाराट और बेण्डिगो और वेस्टर्न आस्ट्रेलिया में कालगूर्ली और कूलगार्डी नामक स्थानों में पाई जाती है। कोयला आस्ट्रेलिया के प्रायः सभी देशों में निकाला जाता है। कोयले के व्यापार के कारण न्यू कैसिल के बन्दरगाह ने बहुत उन्नति की है। चाँदी, जस्ता और सीसा न्यू साउथ वेल्स के ब्रोकेन हिल नामक पहाड़ी भागों से निकाला जाता है। टीन की खदानें क्वीन्स लैण्ड और तस्मानिया में पाई जाती हैं।

शासन की सुविधा की दृष्टि से आस्ट्रेलिया को आठ भागों में विभक्त कर कर दिया गया है (१) क्वीन्स लैण्ड जिसकी राजधानी ब्रिसबेन है। (२) न्यू साउथ वेल्स जिसकी राजधानी सिडनी है। (३) विक्टोरिया जिसकी राजधानी मेलबोर्न है। (४) साउथ आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी एडेलेड है। (५) वेस्टर्न आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी पर्थ है। (६) सेण्ट्रल आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी एलिस स्प्रिन्ग्ज है। (७) नार्थ आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी डार्विन है और (८) तस्मानिया द्वीप जिसकी राजधानी होबार्ट है।

इतिहास

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के दोनों प्रदेशों को डच लोगों ने सत्रहवीं शताब्दी में खोज निकाला था पर इन लोगों ने वहाँ पर अपने उपनिवेश नहीं बसाये थे। इसके बाद कैप्टन कुक नामक एक अंग्रेज मल्लाह ने इस प्रदेश को सन् १७७० ई० में खोज निकाला और घोषणा की कि यह प्रदेश अंग्रेजों का है।

सन् १७७६ ई० में कैप्टन कुक ने इस महाद्वीप की तीसरी यात्रा की और सेण्डविच द्वीपों को ढूँढ निकाला परन्तु वहाँ के लोगों ने उसे मार डाला।

इस देश का पता लग जाने पर भी बहुत दूर होने के कारण किसी ने भी इसमें उपनिवेश बसाने का विचार नहीं किया पर इंग्लैण्ड ने अपने निर्वासित कैदियों को भेजने के लिए आस्ट्रेलिया महाद्वीप को उपयुक्त समझा और सन् १७८८ में सबसे पहले कैदियों से भरा हुआ एक जहाज वहाँ न्यू साउथवेल्स के जेक्सन बन्दर पर भेजा और वहाँ एक छोटे से उपनिवेश की स्थापना हुई। आस्ट्रेलिया की भूमि उपजाऊ थी और वहाँ की आबहवा भेड़ें पालने के लिए बहुत अनुकूल थी, इसलिए जो कैदी वहाँ भेजे गये थे वे तो वहाँ बस ही गये, दूसरे भी बहुत से लोग वहाँ आकर बसने लगे। जमीन की तो वहाँ कमी थी ही नहीं। शुरू-शुरू में तो वहाँ बसनेवालों को जमीन मुफ्त में ही मिल जाती थी।

मगर सन् १८२९ में वेकफील्ड नामक एक विद्वान ने उपनिवेश-सिद्धान्त पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। उसमें उपनिवेशों में मुफ्त जमीन वितरण का विरोध किया तथा नये उपनिवेश बसाने के सम्बन्ध में कई मौलिक और महत्वपूर्ण सिद्धांतों की विवेचना की। इस ग्रन्थ का इंग्लैंड के उपनिवेश मन्त्री और वहाँ की जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर लण्डन में कई संस्थाएँ स्थापित हुई और नये-नये उपनिवेश स्थापित होने के प्रयत्न होने लगे। जिसके परिणामस्वरूप न्यू साउथ-वेल्स की तरह विक्टोरिया, क्वीन्सलैण्ड, पश्चिमी आस्ट्रेलिया, टेस्मानियाँ, दक्षिणी आस्ट्रेलिया इत्यादि उपनिवेश धीरे धीरे स्थापित हो गये।

सन् १८५१ में आस्ट्रेलिया के न्यू साउथवेल्स और विक्टोरिया उपनिवेशों में सोने की खदानों का पता चला, जिससे वहाँ का आकर्षण और भी बढ़ गया और बड़े-बड़े कारखानेदार इंजीनियर तथा मजदूर वहाँ जाकर बसने लगे। इसके साथ ही कोयला, चाँदी, ताँबा और सीसे की खदानों का भी पता लगा और वहाँ की जनसंख्या शीघ्रता से बढ़ने लगी।

इसके बाद सन् १९०१ में इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट में एक कानून बना कर आस्ट्रेलिया के सब उपनिवेशों का एक संघ बना दिया और उसका नाम ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत "कॉमन वेल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया" रक्खा गया। आस्ट्रेलिया की राजधानी कैनेबरा (Canberra) रक्खी गई।

आरज़ू

उर्दू और फारसी के प्रसिद्ध कवि सिराजुद्दीन अलीखाँ "आरज़ू" जो आगरे के रहने वाले थे और जिनका देहान्त सन् १७५६ में हुआ।

आरज़ू उर्दू और फारसी साहित्य के एक प्रसिद्ध कवि काव्य मर्मज्ञ, और उर्दू साहित्य के अनेक कवियों के उस्ताद थे। फारसी भाषा के भी ये बहुत नामांकित कवि थे। इनके फारसी दीवान में ३०००० शेर हैं। सिकन्दरनामा, और सादी की "गुलिस्ताँ" पर इन्होंने टीकाएँ भी लिखी हैं। अपनी पुस्तक "तम्बीहुल गाफिलीन" में इन्होंने फारसी के सुप्रसिद्ध कवि मुहम्मद अली "हर्जा" के दीवान की कड़ी आलोचना की है। यह पुरी पुस्तक ही "हर्जा" के दीवान की भूलें निकालने में लिखी गई है। इनके ग्रन्थ "ममउल-नफायस" में फारसी तथा उर्दू के कवियों का वर्णन किया गया है। इनकी कविताओं के नमूने—

मैखाने आज जाकर, शीशे तमाम तोड़े
जाहिद ने आज अपने दिल के फफोले फोड़े।
तुझ जुल्फ में लटक न रहे दिल तो क्या करे
बेकार है अटक न रहे तो दिल क्या करे॥

आस्क्विथ (Asquith)

सम्राट् सप्तम एडवर्ड के समय में इंग्लैंड का प्रधान मंत्री जिसका कार्यकाल सन् १९०८ से १९१६ तक है।

श्री आस्क्विथ लिबरल दल के सदस्य थे। इनके नेतृत्व में लिबरल मन्त्रिमण्डल ने मजदूरों के हित के लिये कई कानून, बनाये जिनमें (१) मजदूरों की क्षतिपूर्ति का कानून, जिसके अनुसार कारखाने या मिल में काम करते हुए किसी मजदूर की मृत्यु हो जाय या उसका अंग-भंग हो जाय तो उसकी क्षति पूर्ति के लिये एक निश्चित रकम देने की व्यवस्था की गई।

(२) वृद्धावस्था की पेंशन का कानून इसके अनुसार वृद्धावस्था में मजदूर को पाँच शिलिंग प्रति सप्ताह वृद्धावस्था की पेंशन के रूप में देने की व्यवस्था की गई।

(३) शान्ति पूर्वक पिकेटिंग करना कानूनोचित माना गया।

(४) लेबर एक्सचेंज एक्ट-मजदूरों को काम देने के लिये और मिलों के मालिकों को मजदूर देने के लिए एक आफिस खोला गया।

प्रधान मंत्री आस्क्विथ के समय में इंग्लैंड की जल सेना और स्थल सेना के सम्बन्ध में बहुत सुधार किये गये। यह निश्चय किया गया कि ब्रिटेन की जल सेना इतनी बड़ी होनी चाहिये जो किन्हीं भी दो विशाल राष्ट्रों की जल सेना के बराबर हो। सुदूर स्थानों में तुरन्त सेना भेजने के लिये एक लाख चालीस हजार एक्सपीडिशनरी फोर्स (Expeditionary force) रखा जाना निश्चित हुआ। इसी प्रकार देश की रक्षा के लिये टेरिटोरियल फोर्स का निर्माण किया गया और एक सुदृढ़ वायु सेना का भी निर्माण करने का निश्चय हुआ।

प्रधान मंत्री आस्क्विथ के समय में सन् १९११ में लॉर्ड सभा के अधिकारों को कम करने वाला "पार्लमेण्ट एक्ट" पास किया गया जिससे लॉर्ड सभा के अधिकारों में बहुत कमी हो गई।

आस्क्विथ के प्रधान मंत्रित्व काल में ही यूरोप में विश्व व्यापी प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ हुआ। मिस्टर आस्क्विथ के साथ पार्लमेण्ट के मंत्री सर एडवर्ड ग्रे थे। इन मंत्रियों ने युद्ध को सफल करने के लिये बहुत प्रयत्न किया। इन्होंने अर्ल हेग को ब्रिटिश सेना का प्रधान सेनापति और लॉर्ड किचनर को युद्ध विभाग का सेक्रेटरी नियुक्त किया। इसी प्रकार एडमिरल बेटी को ब्रिटिश जल सेना का प्रधान सेनापति और जेलिको को उसका सहायक नियुक्त किया। सन् १९१६ के जनवरी मास में युद्ध के लिये अनिवार्य सैनिक नौकरी का कानून पास किया गया। इस महायुद्ध में इंग्लैंड और ब्रिटिश साम्राज्य के करीब अस्सी लाख सैनिक सम्मिलित हुए थे। इसके अतिरिक्त लाखों आदमी युद्ध की सामग्री बनाने में लगे हुए थे।

फिर भी ऐसा दिखलाई दे रहा था कि मिस्टर आस्क्विथ युद्ध का संचालन करने में सफल नहीं हो रहे हैं। तब उन्होंने सन् १९१६ में प्रधान मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर लॉयड जार्ज प्रधान मंत्री चुने गये।

आयना-ए-अकबरी

अकबर के समकालीन तथा उसके प्रसिद्ध दरबारी महान विद्वान अबुलफजल के द्वारा लिखा हुआ एक महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ ।

आयना ए-अकबरी में अबुल फजल ने मुगल साम्राज्य का इतिहास, विशेष कर सम्राट अकबर के जीवन और शासन का इतिहास बड़े ही सुन्दर ढंग से लिखा है । उस समय के इतिहास के लिए यह पुस्तक प्रामाणिक मानी जाती है ।

आसफ खाँ

आसफ खाँ, एतमाद्दौला का पुत्र, नूरजहाँ का भाई और शाहजहाँ की प्रसिद्ध बेगम मुमताज महल का पिता ।

सम्राट् जहाँगीर के दरबार में आसफ खाँ का बड़ा सम्मान और प्रभाव था । जहाँगीर के द्वारा लड़ी गई कई लड़ाइयों में उसने सेनापति का काम किया था । जहाँगीर की मृत्यु हो जाने के बाद नूरजहाँ ने उसके दामाद शहरयार को जहाँगीर का उत्तराधिकारी बनाने की बहुत कोशिश की मगर आसफ खाँ शाहजादा खुर्रम को सम्राट् की गद्दी का उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में था। नूरजहाँ और उसकी पुत्री ने शहरयार को सिंहासन पर बिठाने के लिये प्राण पण से चेष्टा की लेकिन आसफ खाँ ने शहरयार के प्रयत्नों को विफल करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। वह एक बड़ी सेना के साथ लाहौर की ओर बढ़ा और वहाँ के किले पर घेरा डाल दिया। शहरयार गिरफ्तार कर लिया गया और उसकी आँखे फोड़ दी गई । शाहजादा खुर्रम के दूसरे सब विरोधियों को भी आसफ खाँ ने खतम कर दिया। इसके बाद शाहजादा खुर्रम शाहजहाँ के नाम से ६ फरवरी १६२८ को गद्दी नशीन हुआ। उसने आसफ खाँ को उसकी सेवाओं के बदले में यमीनुद्दौला (राज्य का दाहिना हाथ) की उपाधि दी और पचास लाख वार्षिक आय की जागीर इनायत की। वफादारी के साथ उन्नति करते हुए वह साम्राज्य का प्रधान वजीर हो गया और उसका मनसब नौ हजार जात और नौ हजार सवार का कर दिया गया । आसफ खाँ की सन् १६४१ में लाहौर में मृत्यु हुई । मृत्यु के समय उसने सम्राट् को अपने घर पर बुला कर अपने जीवन की अर्जित सारी विशाल सम्पत्ति, जो करीब दो करोड़ पचास लाख रुपये की थी, सम्राट् को भेंट कर दी । सम्राट् ने उसमें से बीस लाख रुपये उसकी सन्तानों को देकर बाकी सारी सम्पत्ति शाही खजाने में मिला ली ।

आसाम

भारतवर्ष की पूर्वी सीमा पर स्थित एक प्रान्त जिसे इस समय आसाम कहते हैं और प्राचीन काल में जो कामरूप के नाम से प्रसिद्ध था ।

आज के आसाम से प्राचीन कामरूप का आकार बड़ा था। इसमें पूर्वी और उत्तरी बंगाल का कुछ भाग तथा भूटान भी शामिल था । इसकी राजधानी गौहाटी उस समय प्राग्ज्योतिष पुर के नाम से प्रसिद्ध थी ।

सम्राट समुद्र गुप्त के समय में कामरूप की गणना सीमान्त के करदाता राज्यों में होती थी ।

मन्दसौर के स्तम्भ लेख में मालवा के राजा यशोधर्मन के प्रति ब्रह्मपुत्र के राजाओं के आत्म समर्पण का उल्लेख पाया जाता है । इसी प्रकार अपसाद के एक शिला लेख में मालवा के राजा महासेन गुप्त के द्वारा कामरूप के राजा सुस्थित बर्मन को हराने का उल्लेख है । इस सुस्थित वर्मन का पुत्र भास्कर वर्मन कामरूप के प्रसिद्ध राजाओं में से एक है ।

भास्कर वर्मन का समय ईसा की सातवीं सदी के आरम्भ में किसी समय माना जाता है। मालवा के राजाओं से कामरूप के राजाओं का हमेशा बैर रहता था। भास्कर वर्मन के समय में मालवा का राजा देवगुप्त था। देवगुप्त ने जब अपनी सुरक्षा के लिये कर्ण सुवर्ण के राजा शशाङ्क से मित्रता कर ली तो भास्कर वर्मन ने अपनी सुरक्षा के लिये कन्नौज के राजा हर्षवर्द्धन से सन्धि की। सम्राट हर्ष वर्धन की मृत्यु के पश्चात् जब उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया तो उस गड़बड़ी के बीच भास्कर वर्मन ने कर्ण सुवर्ण को अपने राज्य में मिला लिया। भास्कर वर्मन ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। सन् ६४३ में चीनी यात्री ह्वेनसांग उसके यहाँ गया था और भास्कर वर्मन ने उसे अपने एक मित्र की तरह रखा था।

भास्कर वर्मन के पश्चात् आसाम के इतिहास का कोई सिलसिलेवार पता नहीं लगता। बंगाल के पाल राजाओं ने अपनी सेनाएँ भेजकर कामरूप पर अधिकार कर लिया था और बाद में कुमारपाल का मंत्री वैद्य देव वहाँ का शासक हो गया था। तेरहवीं सदी के आरम्भ में शान जाति की अहोम नामक शाखा ने कामरूप पर अधिकार कर लिया और उसी के नाम पर इस देश का नाम आसाम पड़ा। मुसलमान राजाओं ने तेरहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक आसाम को जीतने का प्रयत्न किया मगर वे इसमें सफल नहीं हुए। मोहम्मद इब्न-बख्तियार और मीरजुमला दोनों की सेनाएँ उस बीहड़ प्रान्त में जाकर नष्ट हो गई। सन् १८१५ में अंग्रेजी सरकार ने आसाम पर अधिकार कर लिया।

आसाम की उपज और व्यापार

आसाम ब्रह्मपुत्र के समान विशाल और भयंकर नदी के किनारे पर बसा हुआ देश है। अंग्रेजी शासन में आने के पूर्व इस देश में बेंतों और बाँसों के बड़े-बड़े घने जंगल छाये हुए थे और यहाँ के लोग बड़ी दरिद्र अवस्था में इन जंगलों में अपना जीवन यापन करते थे। अंग्रेजी सत्ता के जमने के पश्चात् इस देश की कृषि योग्य भूमि की सफाई हुई और यहाँ की भूमि चाय, और जूट की खेती के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। जिसके परिणाम स्वरूप कई बड़ी-बड़ी अंग्रेज कम्पनियों ने यहाँ पर चाय के बगीचे लगाना शुरू किये और राजस्थान के दूरवर्ती क्षेत्र से हजारों व्यवसायियों ने आकर वहाँ पर अपना व्यवसाय जमाया। आज सारे आसाम में सैकड़ों - हजारों चाय के बगीचे बने हुए हैं। जिनमें से अधिकतर अंग्रेज कम्पनियों के अधिकार में तथा कुछ राजस्थान और बंगाल के व्यापारियों के अधिकार में हैं। प्रतिवर्ष लाखों रुपये की चाय इस प्रान्त में उत्पन्न होती है और कलकत्ता होती हुई संसार के विभिन्न देशों में जाती है।

भाषाएँ और निवासी

आसाम के मूल निवासियों में आसामी लोग, बंगाली और राजस्थानी प्रधान हैं। यहाँ की आदिम जातियों में नागा जाति बहुत लड़ाकू और प्रसिद्ध है। भारत को स्वाधीनता मिलने के पश्चात् यहाँ की नागा जाति के लोगों ने अपना एक स्वतन्त्र नागालैण्ड बनाने का आन्दोलन जोरदार रूप से प्रारम्भ कर रखा है। इन विद्रोही नागाओं का नेता "फिजो" नामक एक व्यक्ति है जो इस आन्दोलन का संचालन कर रहा है। नागा जाति के लोग विशेष कर ईसाई मिशनरियों के प्रभाव में हैं जो नागा क्षेत्र में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये बनी हुई हैं। नागा जाति का यह आन्दोलन गत दस वर्षों से बड़े हिंसात्मक रूप में चल रहा है। क्रुद्ध नागाओं ने बहुत से लोगों की हत्या कर डाली और बहुतों का अपहरण करके ले गये। इस उपद्रव का दमन करने के लिये भारत सरकार को अपने कुछ फौजी दस्ते वहाँ पर रखने पड़े हैं, फिर भी स्थिति अभी तक पूरी तरह काबू में नही आ पाई है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आसाम में राज्य भाषा के सम्बन्ध में आसामियों और बंगालियों के संघर्ष ने भी बहुत उग्ररूप धारण किया। वैसे इस प्रान्त में आसामी, बंगाली और हिन्दी तीनों भाषाएँ बोली जाती हैं मगर जब राजभाषा बनाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो आसामी और बंगाली के समर्थकों के बीच में भयंकर दंगे, हत्याएँ और लूटमार प्रारम्भ हो गई और कुछ समय तक अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। बहुत से बंगाली आसाम छोड़-छोड़ कर शरणार्थियों के रूप में कलकत्ता और बंगाल चले गये। उच्च नेताओं के प्रयत्न से यद्यपि वहाँ पर शान्ति स्थापित हो गई, फिर भी भीतरी तनाव बना हुआ है।

आसाम के प्रमुख शहर

आसाम की राजधानी गोहाटी है। गर्मियों में यह शिलांग चली जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ के प्रमुख शहरों में डिब्रूगढ़, तिनसुखिया, तेजपुर, जोरहाट, सिलहट इत्यादि उल्लेखनीय हैं। शिलाँग यहाँ का सुप्रसिद्ध हिल-स्टेशन है जो हिमालय में बहुत रमणीक स्थान पर बसा हुआ है।

तन्त्र विद्या

प्राचीनकाल में कामरूप देश अपनी तन्त्र विद्या के लिये बहुत प्रसिद्ध रहा है। कामरूप देश की कामाख्या देवी सारे भारत वर्ष में तन्त्र विद्या की एक महान प्रतीक मानी जाती हैं। बौद्ध, हिन्दू और मुसलमान तीनों सम्प्रदायों के

तान्त्रिक इस प्रांत में हुए हैं। प्रसिद्ध हिन्दू तांत्रिक मछिन्द्र नाथ और गोरखनाथ भी सिद्धि प्राप्त करने के लिये इस देश में गये थे, ऐसी जनश्रुति है। प्रसिद्ध मुसलमान तांत्रिक अजमाल जोगी या इस्माइल जोगी ने भी इसी प्रान्त में अपनी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, ऐसा कहा जाता है। भारत वर्ष की प्राचीन जनश्रुतियों में कामरूप देश को जादू-टोनों का देश कहा गया है और भिन्न भिन्न प्रकार की आश्चर्य-जनक किंवदन्तियाँ इस प्रान्त के सम्बन्ध में प्रचलित हैं। कुमारी पूजा का रूप इस समय भी इस देश में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।

आहवमल्ल सोमेश्वर

कल्याण के चालुक्य वंश का प्रसिद्ध राजा जो सन् १०४२ में गद्दी पर बैठा। इसने कल्याणी नामक नया नगर (वर्तमान निजाम राज्य में बेदर के समीप) बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। इसका विरुद "त्रैलोक्य मल्ल" था। इसके पिता का नाम जयसिंह द्वितीय था।

बिल्हण कवि के विक्रमांदेव चरित से मालूम होता है कि सोमेश्वर एक बड़ी सेना के साथ अपनी राजधानी से निकला और मध्य भारत के चन्देलों और कच्छपघातों को हराता हुआ गंगा-यमुना के दुआबे की ओर बढ़ा। कन्नौज का राजा डर कर वहाँ से भाग गया। इसके बाद उसने लक्ष्मीकर्ण कलचुरी को परास्त किया। इसी बीच उसके पुत्र विक्रमादित्य ने मिथिला, मगध, अंग बंग इत्यादि देशों को जीत लिया। सन् १०६८ में सोमेश्वर बीमार हुआ और उस बीमारी से घबरा कर उसने तुङ्गभद्रा नदी में जल समाधि ले ली।

आगरा

भारत वर्ष का एक श्रेष्ठ, ऐतिहासिक और प्राचीन नगर।

आगरा नगर उत्तरी भारत में यमुना नदी के दाहिने तट पर व्रजभूमि खण्ड के अन्दर बसा हुआ है।

इस नगर के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कोई सुदृढ़ प्रमाण प्राप्त नहीं होता। कुछ लोग इसे राजा अग्रसेन के द्वारा बसाया हुआ बतलाते हैं, मगर अग्रसेन की स्थिति और समय के सम्बन्ध में इतिहास में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता।

आगरे का गौरवपूर्ण इतिहास मुगल साम्राज्य के समय से प्रारम्भ होता है। सन् १५६६ में सम्राट् अकबर ने आगरा नगर का पुनर्निर्माण किया। अकबर के समय में आगरा नगर ने धन, वैभव और सुन्दरता में बहुत उन्नति की।

अबुलफजल अपने आयना-ए-अकबरी ग्रन्थ में लिखता है कि "आगरा एक बड़ा नगर है जिसकी जलवायु बहुत स्वास्थ्यप्रद है। यमुना नदी इसके साथ पाँच कोस तक बहती है, जिसके दोनों तरफ मकान और उद्यान बने हुए हैं सम्राट् ने यहाँ पर लाल पत्थर का एक किला बनाया है, इसमें लाल पत्थर के ५०० भवन बंगाल, गुजरात आदि के ढंग के बने हुए हैं। चित्रकारों ने उन्हें सुन्दर चित्रकला से सज्जित किया है।"

सम्राट् जहाँगीर के समय में भी आगरा नगर शिल्प-कलायुक्त सुन्दर भवनों से सजा हुआ एक रौनकदार नगर था। जहाँगीर ने सिकन्दरा में अपने पिता का एक अद्भुत स्मारक बनवाया। इसके अलावा उसने यहाँ अनेक उद्यानों और प्रासादों का निर्माण करवाया। नूरजहाँ ने भी अपने पिता एत-माद्-दौला का यहाँ पर भव्य स्मारक बनवाया।

उसके पश्चात् सम्राट् शाहजहाँ के समय में तो इस नगर का उत्कर्ष चरम सीमा पर पहुँच गया। इसने दिल्ली को छोड़ कर आगरा में अपनी राजधानी कायम की। आगरे के गौरव को बढ़ाने वाला उसका सबसे बड़ा कार्य अपनी बेगम मुमताज महल की स्मृति में निर्मित की हुई "ताज महल" नामक भव्य इमारत है। जो सारे संसार में अपने ढंग की एक ही इमारत है।

ताजमहल

इस महान् इमारत को बनवाने के लिए बादशाह ने देश-देशान्तरों के निपुण कारीगरों से इस इमारत के डिजाइन बनवा कर मंगवाये। ताजमहल का नमूना किस कलाकार का बनाया हुआ है इस पर इतिहासकारों में भिन्न-भिन्न मत हैं। यूरोप के ऐतिहासिकों का कथन है

कि इटाली के प्रसिद्ध कलाकार "जरनिमो वेरोनियो" अथवा फ्रांस के कलाकार आस्टिन-डी-बोरडक्स ने ताजमहल की रूपरेखा का डिजाइन बनाया। मगर भारतीय इतिहासकारों के मत से यह नमूना शीराज के एक निपुण कलाकार का बनाया हुआ है।

इस नमूने पर आगरा में राजा मानसिंह के उद्यान में इस संसार प्रसिद्ध मकबरे का बनना प्रारम्भ हुआ। इस मकबरे को बनाने में भिन्न-भिन्न देशों के जिन चतुर शिल्पकारों ने भाग लिया उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं—

(१) मुहम्मद ईसा अफन्दी—यह तुर्किस्तान का रहनेवाला शिल्पकार था इसने इसका नकशा तथा ढाँचा बनाया।

(२) सत्तार खाँ— तुर्किस्तान का रहनेवाला कारीगर, इसने इस इमारत में सुन्दर लेख लिखने का काम किया।

(३) महम्मदशरीफ—समरकन्द का रहनेवाला चित्रकार।

(४) चिरंजीलाल—दिल्ली का रहनेवाला कारीगर इसने इस इमारत में जड़ाऊ कार्य बनाया।

(५) बलदेवदास—मुलतान का रहनेवाला फूल बनानेवाला कारीगर।

(६) मन्नूलाल—लाहौर का रहनेवाला पच्चीकारी का कारीगर।

(७) बशारतअली—दिल्ली का रहनेवाला पच्चीकार।

(८) भगवानदास—मुलतान का रहनेवाला पच्चीकार।

(९) मुहम्मद युसुफ खाँ—दिल्ली का रहनेवाला पच्चीकार, इत्यादि।

कुल १८ वर्ष ६ माह तक इस इमारत को बनाने में २०००० मजदूरों ने प्रति दिन काम किया। इन मजदूरों की बस्ती से अलग शहर का निर्माण हो गया जिसको मुमताजाबाद कहते थे। इस नगर में अनेक मुहल्ले मुख्य कारीगरों के नाम पर बसाये गये थे।

ऐसा अनुमान है कि इस इमारत पर उस युग में करीब १,८४,६५,१९९ रुपये खर्च हुए थे।

मुमताज महल के सौन्दर्य और शाहजहाँ की दिव्य भावनाओं के अनुरूप यह मकबरा भी सौन्दर्य में अनुपम तथा अद्वितीय बन कर तैयार हुआ।

कई शताब्दियाँ बीत गईं, देश में कई साम्राज्यों का उत्थान और पतन हो गया, मगर शाहजहाँ के द्वारा निर्मित यह महान् कलाकृति समय के परिवर्तनों का उपहास करती हुई आज भी शाहजहाँ और मुमताज महल को अमर बनाये हुए सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही है।

आगरा के अन्य दर्शनीय स्थान

आगरा किला—आगरे का प्रसिद्ध किला संसार के श्रेष्ठ दुर्गों में से एक है।

सम्राट् अकबर ने आगरा को अपनी राजधानी निश्चित करने के पश्चात् सन् १५६५ से इस दुर्ग को बनवाना प्रारम्भ किया जो ८ वर्ष ९ महीने में बन कर तैयार हुआ। इस किले को बनाने तथा कारीगरों पर निरीक्षण करने का भार सुप्रसिद्ध शिल्पशास्त्री कासिम खाँ को सौंपा गया था।

इस किले के अन्दर उत्तर पश्चिम की ओर बना हुआ दिल्ली दरवाजा सब दर्वाजों में सुन्दर है। दक्षिण की ओर अमरसिंह दरवाजा है, जिसे बादशाह शाहजहाँ ने नागौर के प्रसिद्ध वीर अमरसिंह राठौर की स्मृति में बनाया था। इसके अतिरिक्त किले में जहाँगीर महल, जहाँगीर हौज, अकबरी महल, शाहजहाका महल, खास महल, शीश महल, दीवाने खास, अंगूरी बाग, मीनामसजिद, नगीना मसजिद, मीनाबाजार, मोती मसजिद इत्यादि अत्यन्त दर्शनीय वस्तुएँ और इमारतें बनी हुई हैं।

अंग्रेजी साम्राज्य के समय में भी आगरा नगर का सौन्दर्य ज्यों का त्यों बना रहा। यह शहर सेण्ट्रल और वेस्टर्न दोनों रेलवे लाइनों का जंक्शन है। इस शहर में जूतों और दरियों का व्यापार बड़े पैमाने पर होता है।

आतिश

उर्दू साहित्य के एक सुप्रसिद्ध कवि और साहित्यकार। ये लखनऊ के रहने वाले थे।

कवि आतिश सीधी, सादी बोल-चाल की बहती हुई भाषा में कविता करते थे। फिर भी इनका भाषा सौष्ठव, और कवित्व शक्ति किसी से कम नहीं थी, इन्होंने आशिक-

माशूक तथा साकी और पैमाने सम्बन्धी उर्दू परम्परा का अपनी कविता में अनुगमन नहीं किया। फिर भी इनकी कविता में निर्झर की धारा की तरह एक प्रवाह है—गति है और इसी चीज ने उर्दू साहित्य के इतिहास में इनका नाम अमर कर दिया है।

इन्हीं के समय में उर्दू साहित्य में "नासिख" नामक कवि का भी बड़ा नाम था और आतिश के साथ उनकी प्रतिद्वन्दिता चलती थी। नासिख कठिन और उलझी हुई भाषा में अलंकृत कविता के रचयिता थे जब कि आतिश सीधी और सुलझी हुई भाषा में प्रवाह पूर्ण कविता के प्रतीक थे। गालिब के समान् उत्कृष्ट श्रेणी के कवि आतिश की कविता को ज्यादा पसन्द करते थे। इनकी रचनाओं में एक दीवान और एक कविता संग्रह है।

कविता के नमूने—

आलम को लूट खाया है, एक पेट के लिए
इस गार में गई हैं, हजारो ही गारते।
तिरछी नजर से तायरे दिल हो चुका शिकार
जब तीर कज पड़ेगा, उड़ेगा निशाना क्या।
पेशगी दिल को जो देले, वह इसे तहसीले,
सारी सरकारों से है, इश्क की सरकार जुदा।

आसफुद्दौला "आसफ"

अवध के नवाब आसफुद्दौला का पूरा वर्णन हम अवध के प्रकरण में कर चुके हैं, यह भी हम लिख आये हैं कि इन्हें कविता करने का शौक था। इनका एक दीवान है जिसमें गजलें, रुबाइयाँ और एक मसनवी है।

कविता के नमूने—

गुजरते हैं सौ सौ ख्याल अपने दिल में
किसी की जो नक्शाये कदम देखते हैं।
या डर मुझे तेरा है कि मैं कुछ नहीं कहता
या हौसला मेरा है कि मैं कुछ नहीं कहता।

आपियस क्लाडियस

ई० सन् पूर्व ४६६ में रोम के पैट्रिशियन लोगों का नेता।

ई० सन् पूर्व की छठी शताब्दी में रोम के अन्तर्गत पैट्रिशियन और प्लेबियन लोगों के बीच बड़े संघर्ष होते रहते थे। पैट्रिशियन लोग, राजवर्गीय एवं सरदारों को कहते थे और प्लेबियन लोगों में अधिकांश किसान और मजदूर होते थे। पैट्रीशियन लोगों को प्रतिवर्ष दो कौन्सल-(राज्य चलाने वाले अधिकारी) चुनने का अधिकार था यह अधिकार प्लैबियन लोगों को नहीं था। लड़ाई में लड़ने का काम प्लैबियन करते थे और उसमें जो लूट का माल मिलता था उसे पैट्रीशियन आपस में बांट लेते थे। इसी से रोमन प्रजातंत्र में इन दोनों वर्गों का संघर्ष काफी समय तक चलता रहा।

आपियस क्लाडियस पैट्रीशियन लोगों का नेता था। वह रोम का शासन करने वाली विधान निर्मात्री समिति का भी सदस्य था। यह प्लेबियन लोगों का दिली शत्रु, दुराग्रही और बड़ा चालाक था। वह अनेक यत्नों के द्वारा शासक समिति में अपने सदस्य चुनवा कर रोम का राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा।

इसी समय सबैन और एक्वियन लोगों से युद्ध करने के लिए रोम से दो सेनाएं भेजी गई थीं। इनमें एक का सेनापति ल्यूशियस वर्जीनियस था। इसकी लड़की वर्जीनिया बहुत सुन्दर थी। आपियस क्लाडियस उससे विवाह करना चाहता था, मगर उसके पहले ही ल्यूशियस इसीलियस नामक व्यक्ति से उसका सम्बन्ध पक्का हो चुका था। आपियस क्लाडियस ने कई षड्यंत्र कर उस लड़की को प्राप्त करने का प्रयत्न किया मगर इसी समय ल्यूशियस वर्जीनियस न्यायालय में पहुँच गया और लड़की की रक्षा होते न देख उसकी छाती में छुरी भोंक दी और आपियस क्लाडियस को छुरी दिखाकर कह दिया कि इस हत्या की सारी जिम्मेदारी तुम्हारे सिरपर है। यह कहकर वह अपनी सेना में वापस चल गया और लोकमत खिलाफ हो जाने से क्लाडियस को वहाँ से भागना पड़ा।

अन्त में रोमराष्ट्र को पैट्रीशियन और प्लेबियन लोगों के संघर्ष से बचाने के लिए हार्टेशन्स डिक्टेटर चुना गया। उसने प्लेबियन और पैट्रीशियन लोगों के झगड़े को हमेशा के लिए मिटा दिये। उसने पैट्रीशियन और प्लेबियनें लोगों की साधारण सभा स्थापित की और गरीब प्लेबियन लोगों को दी जाने वाली जमीनका विधान स्वीकार करा लिया तथा पैट्रीशियन लोगों के अधिकार बहुत कम करवा दिये।

आंकस मार्शियस

रोम राज्य का राजा जिसका समय ईसा से ७५५ से ७३१ वर्ष पूर्व तक है।

रोम के तत्कालीन राजा टूलियस की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् आंकस मार्शियस गद्दी पर बैठा। यह बड़ा ईश्वर भक्त व्यक्ति था। इसको ईश्वर भजन में लीन देखकर लैटिन लोगों ने उसके राज्य में लूट मचा दी, तब आंकस मार्शियस ने मैड्यूलिया की लड़ाई में उन्हें हरा कर उनसे बहुत से गांव छीन लिये और उन गाँवों के निवासियों को रोम नगर की आवेण्टाइन पहाड़ियों पर लाकर बसा दिया। लैटिन लोगों से जीती हुई जमीन को इसने रोमन लोगोंमें बांट दिया। इस राजा ने रोम में कई भव्य इमारतों का निर्माण करवाया और रोम नगर के एक पहाड़ की तलहटी में एक विशाल जेल खाना बनवाया। यही रोम राज्य का सबसे पहला जेल खाना था।

इस राजा ने टाइबर नदी के मुख के पास ओस्टिया नामक स्थान पर एक नया नगर बसाया और नदी के उस पर जानिक्यूलम पहाड़ पर एक मजबूत किले का निर्माण करवाया। ई० सन् से ७३१ वर्ष पूर्व इसकी मृत्यु होगई।

ऑप्टिमेंट

प्राचीन रोमन राज्य में धनी लोगों का वर्ग जो ऑप्टिमेंट कहलाता था।

ईसा पूर्व की छठीं शताब्दी में रोमन राज्य में पैट्रीशियन और प्लेबियन नामक दो वर्ग थे। पैट्रीशियन लोग अधिकतर सरदार और राजवर्गीय होते थे और प्लेबियन लोग किसान और मजदूर। इन दोनों वर्गों में काफी संघर्ष होता रहा, मगर ई० पूर्व ४०० में यह संघर्ष खतम हो गया मगर इसके साथ ही वहाँ के समाज में ऑप्टिमेंट (धनवान्) और "ऑब्सिक्यूरी" (गरीब) ये दो दल बन गये तथा धनवान् गरीबों को कष्ट देने लगे।

आम्यूलियस

रोमनगर की स्थापना के पूर्व आलबालोंगा नामक शहर का राजा। रोमन दन्तकथाओं के अनुसार आम्यूलियस के बड़े भाई की लड़की के लड़के राम्यूलस और रीमस ने रोम नगर की स्थापना की थी।

रोम की वह दन्त कथा इस प्रकार है

"टाईबर और ओनियो नदी के संगम पर आलबा लोंगा नामक एक शहर था। उसका राजा आम्यूलियस बड़े दुष्ट स्वभाव का था। वह अपने बड़े भाई और उसके लड़कों को मारकर गद्दी पर बैठा था। सिर्फ एक कुँवारी लड़की उस परिवार में बच गई थी। वह चाहता था कि लड़की जीवनभर कुँवारी रहे और उसको सन्तान न हो। मगर रोमन परम्परा के अनुसार किसी ईश्वरीय शक्ति से उस लड़की को दो तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुए। जिनके नाम राम्यूलस और रीमस थे। राजा ने लड़की समेत दोनों बच्चों को टाइबर नदी में बहा दिया, मगर किसी प्रकार वे फास्टुलस नामक गुवाले के हाथ लग गये, जिसने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। अन्त में एक लड़ाई में राजा आम्यूलियस इन्हीं लड़कों के हाथ से मारा गया। आम्यूलियस का राज्य इनके हाथ लगा, मगर उस पहाड़ी प्रान्त से ममता हो जाने के कारण राम्यूलस ने वहीं एक अच्छा स्थान देखकर एक नगर बसाया जो उसी के नाम पर रोम के नाम से मशहूर हुआ। यह घटना ईसा से ८६७ वर्ष पूर्व हुई मानी जाती है।

आरिटओकस

एशिया माइनर का राजा जिसका समय ईस्वी सन् से पूर्व ३०० वर्ष के लगभग है।

जिस समय ग्रीस के राजा पाँचवें फिलिप की रोम के

साथ लड़ाई हो रही थी उस समय एशिया माइनर तथा सीरिया का राजा आंटिओकस था पाँचवें फिलिप ने आंटिओकस से सुलह कर ली थी इससे डरकर मिश्र के तत्कालीन राजा टॉलमी एपिफानीजने रोम से सहायता माँगी थी। इसपर फिलिप और रोम की सेनाओं में ३ दिन तक भयङ्कर लड़ाई हुई जिसमें फिलिप की हार हुई और ईस्वी सन् से २५३ वर्ष पूर्व दोनों दलों में संधि हो गई।

फिलिप से संधि हो जाने के पश्चात् रोम को एशिया माइनर के राजा आंटिओकस से लड़ना पड़ा। थर्मापोली की घाटी में दोनों सेनाओं के बीच भारी युद्ध हुआ। इस लड़ाई में आंटिओकस के ५३ हजार सैनिक मारे गये। आंटिओकस की हार हुई और उसने टॉरस पहाड़ के पश्चिम का प्रदेश रोम को देकर संधि कर ली।

आस्ट्रिया

पश्चिमी यूरोप में जर्मनी की सीमा और स्लाव देशों की सीमा से लगा हुआ एक देश। जिसका क्षेत्रफल ३२, ३७५ वर्ग मील, आबादी सत्तर लाख, भाषा जर्मन, और धर्म रोमन कैथोलिक है। इसकी राजधानी विएना है जिसकी आबादी १७,७६,६०६ है। इन्सब्रक, साल्ज बर्ग और ग्राफ यहाँ के प्रसिद्ध नगर हैं।

पश्चिमी यूरोप में गाथ जाति के जर्मन राष्ट्र का जब तक राष्ट्र के रूप में संगठन नहीं हुआ था तब तक आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों प्रबल शक्तियों के रूप में एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता करते रहते थे। उस समय आस्ट्रिया हैप्स बर्ग राज वंश के द्वारा शासित होता था।

जब सम्राट् पंचम चार्ल्स गद्दी पर बैठा तब उसने हैप्स बर्ग शासन का जर्मनी का कुछ भाग तथा आस्ट्रिया अपने भाई फर्डिनण्ड को दे दिया और स्पेन, बर्गण्डी तथा इटाली का राज्य अपने अधीन रक्खा था।

इसके पश्चात् फर्डिनण्ड का विवाह बोहीमिया तथा हंगरी राज्य की उत्तराधिकारिणी के साथ हो जाने से आस्ट्रियन राज्य की सीमा का और भी विस्तार हो गया था मगर हंगरी पर मुसलमानों का कब्जा होने से यह प्रदेश आस्ट्रिया के अधिकार में उस समय नहीं आया। सन् १६६३ में मुसलमानों की एक भारी सेना ने आस्ट्रिया की राजधानी विएना पर घेरा डाला, पर पोलैण्ड ने ठीक समय पर सहायता पहुँचा कर आस्ट्रिया को इस आकस्मिक विपत्ति से बचा लिया। इसी समय से यूरोप में मुसलमानों की स्थिति कमजोर होती गई और हैप्सबर्ग वंश के शासकों ने सन् १६६६ में हंगरी, और ट्रान्सलवेनिया के समग्र प्रदेश पर वापस अपना अधिकार जमा लिया।

सन् १७४० में हैप्सबर्ग वंश के शासक चार्ल्स छठे की मृत्यु हो गई। मृत्यु के पहिले ही अपने उत्तराधिकारी की जगह अपनी पुत्री मेरिआ थेरेसा को नियुक्त करवाने के लिए इसने इंग्लैण्ड, हॉलेण्ड तथा प्रशिया को रजामन्द कर लिया था मगर फ्रान्स, स्पेन तथा बवेरिया इसके विरुद्ध थे पर अन्त में इंग्लैण्ड के प्रयत्न से मेरिआ थेरिसा को आस्ट्रिया की गद्दी प्राप्त हुई।

सप्तवर्षीय युद्ध

मेरिआ थेरेसा बड़ी साहसी और बहादुर शासिका थी। इसके राज्य का साइलेशिया प्रान्त प्रशिया के राजा फ्रेडरिक द्वितीय ने हड़प लिया था इसलिए वह उससे बड़ी घृणा करती थी। उसने बड़ी चतुराई से फ्रेडरिक का पतन करने के लिए फ्रान्स, रूस, स्वीडन तथा सैक्सनी को मिलाया और इन सबकी सम्मिलित सेनाओं ने प्रशिया के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। यह युद्ध सप्तवर्षीय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

मगर प्रशिया के राजा फ्रेडरिक द्वितीय ने भी बड़ी बहादुरी और साहस के साथ इन सब देशों का मुकाबिला किया और इसीसे उसे इतिहास ने फ्रेडरिक महान् (फ्रेडरिक दी ग्रेट) का सम्मान दिया। सिकन्दर के समय से नैपोलियन तक जितने महान् वीर हुए थे फ्रेडरिक ने अपने को भी उसी कोटि में सम्मिलित कर दिया। इन सब राष्ट्रों के एक हो जाने की बात मालूम होते ही उसने बिना प्रतीक्षा किये हुए "सैक्सनी" पर अधिकार कर लिया और बोहीमिया की ओर अपनी सेनाओं को बढ़ाकर राजधानी प्रेग पर भी अधिकार कर लिया। सन् १७५७ में उसने जर्मनी और फ्रान्स की सेनाओं को रासबच्च के युद्ध में परास्त किया और उसके एक महीने के बाद ब्रेसला के युद्ध में उसने आस्ट्रियन सेना को तीतर बीतर कर दिया। इसी समय स्वीडन और रूस इस युद्ध से पृथक हो गये और

फ्रेडरिक का सामना करने वाला कोई नहीं रहा। इस पर मेरिआथेरिसा को एक बार फिर अपने प्रबल शत्रु से युद्ध बन्द करना पड़ा।

कम्पो-फर्मिया की प्रसिद्ध संधि

उसके पश्चात् सन् १७६४ से आस्ट्रिया नैपोलियन बोना पार्ट के चक्कर में आया। मई सन् १७९६ में उसने आस्ट्रिया की सेना को हराया जिसके परिणाम स्वरूप कम्पो-फर्मिया की प्रसिद्ध संधि हुई इस संधि के अनुसार आस्ट्रिया ने नैदर लैण्ड्स का प्रदेश फ्रान्स को दे दिया और राइन नदी के बायें तट का अधिकांश भाग फ्रान्स को दिलाने का गुप्त वचन दिया। इसके बदले में उसे वेनिस प्रजातंत्र का कुछ भाग और वेनिस शहर मिला।

विएना कांग्रेस

नैपोलियन का पतन हो जाने के पश्चात् १ नवम्बर १८१४ को इतिहास प्रसिद्ध विएना की कांग्रेस का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसमें नैपोलियन को हराने वाले सभी राष्ट्र सम्मिलित थे। इस कांग्रेस ने हालैण्ड पर ऑरेंज वंश का शासन नियमित रूप से मान लिया और आस्ट्रिया का नैदरलैण्ड प्रान्त हालैण्ड को दिला दिया। इसके बदले में आस्ट्रिया को इटाली के विनीशिया और मिलान मिल गये। इसी कांग्रेस ने वारसा की ग्रेण्ड डची रूस को देकर उसे पौलेण्ड के राज्य मे परिवर्तन करने का अधिकार दे दिया। इसी समय के पश्चात् जर्मन राष्ट्र का एक संगठित राष्ट्र के रूप में उदय हुआ और उस पर आस्ट्रिया का प्रभाव कम होता गया और प्रशिया का प्रभाव बढ़ने लगा।

मैटरनिच

इसी समय आस्ट्रिया का सचिव मेटरनिच एक अनुदार दलीय नेता के रूप में यूरोप के मंच पर प्रकट होता है। जर्मनी में उस समय प्रबल रूप से राष्ट्रीय भावनाओं का जागरण हो रहा था उसे यह कुचल देना चाहता था। जर्मनी को पंगु बनाए रखने के लिए यह अपनी पूरी शक्ति लगा रहा था। सन् १८१५ से लेकर १८४८ तक मैटरनिच के नेतृत्व में यूरोप का अनुदार दल उन लोगों का सफल विरोध करता रहा जो शासन के कार्यों में प्रजा को ज्यादा से ज्यादा अधिकार दिलाने के पक्ष में थे।

मगर समय मैटरनिच के पक्ष में नहीं था। स्वयं विएना की जनता ने प्राचीन शासन पद्धति के विरुद्ध बगावत कर दी और मैटरनिच को वहाँ से भागना पड़ा और इसी वर्ष सन् १८४८ में आस्ट्रिया के सम्राट् को हंगरी और बोहीमिया राज्य को वैध शासन व्यवस्था देने की स्वीकृति देनी पड़ी।

मैटरनिच के पतन की खबर सुनते ही मिलन नगर वालों ने अपने यहाँ से आस्ट्रिया की सेना को निकाल बाहर किया, वेनिस वालों ने भी आस्ट्रियनों को निकाल कर प्रजा तंत्र की स्थापना की और लम्बार्डी को आस्ट्रिया ने स्वयं खाली कर दिया। इस प्रकार इटाली में आस्ट्रियन साम्राज्य का खात्मा हो गया।

इटाली के इस विद्रोह के कारण आस्ट्रिया के लिए जर्मन क्रान्ति को रोकना असम्भव हो गया। आस्ट्रिया की इस सर्वतोमुखी कठिनाई में जर्मन राष्ट्र संघ को संघटित होने का अवसर मिल गया। प्रशिया ने भी आस्ट्रिया के इशारे पर नाचने की नीति बदल कर जर्मन राष्ट्र का नेतृत्व करने का संकल्प किया।

सन् १८४८ के नवम्बर में विएना में प्रजातंत्र वादी-दल एकाएक उठ खड़ा हुआ और उसने युद्ध सचिव की हत्या कर सम्राट् को वहाँ से भगा दिया मगर इसी समय प्रेग के बलवे को दबाने वाले सेनापति ने विएना पर घेरा डाल कर उसे आत्मसमर्पण करने को मजबूर किया। और आस्ट्रिया के सम्राट् ने इसी समय अपने राज्याधिकार अपने तरुण भतीजे फ्रेन्सिस जोजेफ प्रथम को प्रदान कर दिये। जिसने ६८ वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार सन् १८४८ की क्रान्ति बिलकुल विफल हो गई और आस्ट्रिया पर फिर से सम्राट् का मजबूत शासन प्रारम्भ हो गया।

सन् १८६५ में आस्ट्रिया ने पुरानी मैटरनिच पद्धति को फिर से जारी की मगर उसकी यह विजय क्षणिक और अन्तिम विजय थी। नैपोलियन तृतीय ने सार्डिनिया के राजा को यह वचन दिया कि अगर वह आस्ट्रिया के साथ युद्ध करे तो फ्रान्स उस की सहायता करेगा।

सन् १८७१ में विक्टर इमैन्युएल ने आस्ट्रिया के साथ युद्ध घोषणा कर दी। पीडमाण्ड वालों की सहायता के

लिए फ्रान्स की फौजें पहुँच गईं और माजेण्टा तथा सालफेरिनो नामक दो स्थानों पर उन्होंने आस्ट्रियन सेना को बुरी तरह पराजित किया।

प्रिन्स बिस्मार्क

इसी समय प्रशिया के रंगमंच पर संसार का महान् राजनीतिज्ञ "बिस्मार्क" प्रकट होता है। यह प्रशिया के राजा विलियम प्रथम के मंत्री के रूप में सन् १८७६ में आता है। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को नीचा दिखाने और प्रशिया की शक्ति बढ़ाने की एक व्यवस्थित योजना तैयार की।

आस्ट्रिया को संघ से पृथक् करने के लिए बिस्मार्क ने "श्लेजविग हालस्टाइन" की समस्या को उठाया। श्लेजविग और हालस्टाइन दोनों प्रान्तों में बहुमत जर्मनों का होने पर भी ये डेनमार्क के अधीन थे।

बिस्मार्क ने पहले पहल श्लेजविग और हालस्टाइन को डेनमार्क के पंजे से मुक्त करने के लिए आस्ट्रिया का सहयोग लिया और डेनमार्क से लड़ाई करके ये दोनों प्रान्त हस्तगत कर लिये। बाद में नैपोलियन तृतीय और इटली से साँठ-गाँठ करके सन् १८८० में आस्ट्रिया के साथ युद्ध घोषणा कर दी और साडोवा नामक स्थान पर आस्ट्रिया को बुरी तरह से पराजित कर दिया। इस प्रकार यूरोप के राजनैतिक मंच से आस्ट्रिया का प्रभाव समाप्त हो गया।

प्रथम महायुद्ध

इसके पश्चात् सन् १९१४ में आस्ट्रिया और हंगरी के युवराज फ्रेंसिस फर्डिनण्ड की उनकी पत्नी सहित बोस्निया में हत्या हो जाने के कारण जर्मनी को युद्ध आरम्भ करने का अवसर मिल गया। इस युद्ध में आस्ट्रिया ने जर्मनी का साथ दिया मगर सन् १९१८ में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को भयङ्कर रूप से पराजित करदिया और इसके साथ ही आस्ट्रिया और हंगरी के भाग्य का भी फैसला हो गया।

हैप्सबर्ग राजवंश का कई शताब्दियों से आस्ट्रिया का शासन कर रहा था, समाप्त हो गया। आस्ट्रिया और हंगरी के सम्मिलित साम्राज्य को टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। जेकोस्लाविया, हंगरी और युगोस्लाविया स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिये गये। देश की मुद्रा स्थिति खराब हो जाने से चारों ओर विद्रोह लूट मार और अशान्ति छा गई।

सन् १९३२ में आस्ट्रियन प्रजातंत्र का चान्सलर डा० डोलुफस को बनाया गया, जिसने आस्ट्रिया में अर्द्ध तानाशाही शासन चलाया। मगर सन् १९३४ में डॉ० डोलुफस की हत्या हो गई। इसी समय जर्मनी के रंग-मंच पर एडोल्फ हिटलर का उदय हो रहा था।

इसके पश्चात् आस्ट्रिया ने भी हिटलर के नाजी आन्दोलन का साथ दिया, जिसके परिणामस्वरूप दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में भी जर्मनी की भारी पराजय हुई। आस्ट्रिया को फिर एक महान् विपत्ति-काल में से गुजरना पड़ा और किसी समय में यूरोप का यह प्रभावशाली देश अब बहुत ही साधारण स्थिति में अपना समय काट रहा है।

१९५५ के प्रारम्भ में सोवियत संघ ने आस्ट्रिया के साथ समझौता स्थापित करने में एक अकल्पित कदम उठाया, जब कि उसने आस्ट्रिया से अपनी सभी फौजें वापस ले लीं। साथ ही साथ उन्होंने मित्रता और पारस्परिक सहयोग का समझौता स्थापित किया और आस्ट्रिया ने दो शक्तिशाली गुटों के बीच सर्वदा निरपेक्ष रहने का निर्णय किया। आस्ट्रिया को अपनी स्वतन्त्रता के लिए सोवियत संघ को काफी मूल्य अदा करना पड़ा।

इस समय आस्ट्रिया में पीपल्स पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी नामक २ राजनैतिक पार्टियाँ हैं। पीपल्स पार्टी सन् १९५६ के चुनाव में सबसे बड़ी पार्टी थी।

शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में आस्ट्रिया छोटा देश होते हुए भी बहुत आगे बढ़ा हुआ है। सन् १९५९-६० में यहाँ ५३४० इलेमेण्टरी और १९० सेकण्डरी स्कूल चल रहे थे जिसमें ८,६०००० और ६८००० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। इस देश में तीन यूनिवर्सिटियाँ हैं। एक विएना में, दूसरी ग्राफ में और तीसरी इन्सब्रक में। टैकनीकल शिक्षा और टीचर्स ट्रेनिंग के लिए भी यहाँ कई कॉलेज हैं।

विएना में आँख का एक अस्पताल बना हुआ है जो सारे संसार में नेत्र चिकित्सा के लिए मशहूर है।

आस्ट्रिया ने कई अन्तर्राष्ट्रीय कीर्ति के वैज्ञानिक और विद्वान भी पैदा किये हैं। एएड्रीज होफर, फ्रीड, संसार प्रसिद्ध चिकित्सक (Physicion) और मनो-विश्लेषण (Psycho-Analyst) के आचार्य हैं। जिन्होंने "इएटर प्रीटेशन आफड्रीम्स" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। इसी प्रकार मोझार्ट, हेडेन (Hayden) इत्यादि वैज्ञानिकों ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे काफी ख्याति प्राप्त की है।

आस्ट्रियन साहित्य

प्रारम्भिक युग में आस्ट्रिया का साहित्य जर्मनी और स्पेन के साहित्य से प्रभावित रहा। मध्य युग में इस देश के अन्तर्गत वाल्टेयर फॉनडेयर, फोगलवीट, नीथार्ट इत्यादि कवियों ने अपनी प्रतिभा से आस्ट्रियन साहित्य को अलंकृत किया।

लेकिन आस्ट्रियन साहित्य का सबसे प्रभावशाली युग उन्नीसवीं सदी के मध्य से प्रारम्भ होता है। इसी समय में वहाँ पर महाकवि श्लेगेन और उनके भाई ने "फारम्येर्ज" आन्दोलन का सूत्रपात किया। स्टल्जहामर, लेनाफ, नैस्ट्राय, बानर्न फेल्ड इत्यादि इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार थे।

इस युग के पश्चात् "ग्रिलपार्जर" नामक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महान् साहित्यकार का आविर्भाव हुआ और इसके कुछ ही समय पश्चात् महान् लेखक देयरमान हार का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आस्ट्रियन साहित्य की गरिमा को चार चाँद लगा दिये।

इसके पश्चात् संसार के अन्य देशों की तरह आस्ट्रियन साहित्य की प्रगति में भी क्रान्तिकारी विकास हुआ। अलबर्ट गेहरेंस्टीन, फ्रेड्रिक श्वेफोग्ल, कार्ल शासलाइटनर, ट्राक्ल इत्यादि साहित्यकारों ने अभिव्यक्तिवादी क्षेत्र में तथा आर्थर श्नित्जलर, जैकब वासरमन इत्यादि उपन्यासकारों ने स्वाभाविकतावादी क्षेत्र में आस्ट्रियन साहित्य की कीर्ति को बहुत बढ़ाया।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में स्वाभाविकतावाद की जगह प्रगतिवादी आन्दोलन "केलयार्ड" के नाम से उठा। इस वाद का प्रसिद्ध लेखक रोडाल्फ हांस बार्टश नामक उपन्यासकार था। ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में इरविन कोलबनहेयर तथा पमिल लूका ने उत्कृष्ट कोटि के उपन्यासों की रचना की।

इसी प्रकार नाटक साहित्य के क्षेत्र में कालशून हेब्बर वर्टहाइमर, मूलर, साइग फ्राइड, इत्यादि नाटककारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आसनसोल

पश्चिमी बंगाल के बर्द्धमान जिले में स्थित बंगाल का एक प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र।

पूर्व रेलवे की मेनलाइन, ग्राएड कार्ड लाइन तथा आसनसोल खड्गपुर लाइनों को सम्मिलित करने वाला यह एक बहुत बड़ा जंक्शन है। कोयला, इस्पात और रासायनिक उद्योगों के विशाल उद्योग क्षेत्रों के बीच में बसा होने के कारण भारतवर्ष में इसकी स्थिति एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र की तरह है।

आल्फांसो

स्पेन के राजा, आल्फान्सो इंग्लैएड के हेनरी, एडवर्ड, जार्ज इत्यादि नामों की तरह स्पेन के राजाओं का एक परम्परागत नाम की तरह है, आल्फोन्सा प्रथम, आलफान्सो तृतीय इस प्रकार स्पेन के राजाओं का नाम रक्खा जाता था। स्पेन में कुल १३ राजा आल्फोन्सा के नाम से गद्दीपर बैठे।

आल्फान्सो प्रथम ने सन् ७३६ से ७५७ तक राज्य किया। इसने गैलिसिया, बारडूलिया, लेबना इत्यादि स्थानो को जीत कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

सबसे अन्तिम राजा आल्फान्सो तेरहवाँ हुआ। इसका जन्म सन् १८८६ में हुआ। सन् १६०२ में इसे राज्याधिकार प्राप्त हुए। प्रथम महायुद्ध में स्पेन को तटस्थ रखने के कारण यह लोकप्रिय हुआ। मगर उसके पश्चात् स्पेन पर भयङ्कर अर्थ संकट आ जाने के कारण इस की स्थिति डाँवाडोल हो गई जिसके परिणाम स्वरूप सन् १६३१ में इसको स्पेन की राजगद्दी छोड़ना पड़ी। इसकी मृत्यु सन् १६४१ में रोम में हुई।

आलिंग्टन

इंग्लैएड की पार्लमेंट और राजा के बीच में होनेवाले गृह युद्ध के समय में राज पक्ष का एक राजनीतिज्ञ जिसका समय सन् १६१८ से १६८५ तक है।

क्रामवेल के समय में इंगलैण्ड की पार्लमेंट और राजा के बीच जो संघर्ष हुआ था उसमें आर्लिंग्टन ने राजा का पक्ष लिया था और जब पार्लमेंट ने ह्वाइट हाउस में राजा का सर उड़ा दिया तब आर्लिंग्टन राज परिवार के साथ इंग्लैण्ड छोड़ कर बाहर चला गया था।

उसके बाद चार्ल्स द्वितीय के राज्यारोहण के पश्चात् आर्लिंगटन इंग्लैण्ड का वित्त-सचिव हुआ। प्रधान मन्त्री क्लेरेंडन के मन्त्रिमण्डल का पतन होकर जब वहाँ केवल मन्त्रिमण्डल बना तब यह इंग्लैण्ड का विदेश मन्त्री बना। मगर उसके प्रबल शत्रु बकिंघम ने जब पार्लमेण्ट में उस पर मुकदमा चलाया तब उसने अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

आर्य-भट्ट

आर्य भटीय नामक महान् ज्योतिष ग्रन्थ के रचयिता आचार्य आर्यभट्ट जो भारतीय ज्योतिष शास्त्र के धुरन्धर विद्वान् थे।

आचार्य आर्य भट्ट पटना जिले के कुसुमपुर नामक स्थान के निवासी थे। भारतीय ज्योतिष के स्वयंभू नामक सिद्धान्त के आधार पर पूर्ण विचार मंथन के पश्चात् इन्होंने "आर्य भटीय" ग्रंथ की रचना की। इस ग्रन्थ की रचना पद्धति अत्यन्त वैज्ञानिक और भाषा प्राञ्जल है।

इनके ग्रन्थ आर्य भटीय का उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक प्रचार हुआ। दक्षिण भारत में इन्हीं के ग्रन्थ के आधार पर बने हुए पंचाग आज भी वहाँ के वैष्णव सम्प्रदाय को मान्य हैं।

आर्य भट्टीय ग्रन्थ कुल ४ खण्ड और १२१ श्लोकों में पूर्ण हुआ है। इसके चार खण्डों के नाम गीतिका पाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद है।

आर्यभटीय का अंगरेजी अनुवाद डबल्यू० ई० क्लार्क ने किया जो शिकागो से प्रकाशित हुआ है और एक अनुवाद श्री प्रबोधचन्द्र सेन का कलकत्ते से प्रकाशित हुआ है।

आर्यभट्ट द्वितीय

भारतीय गणित और ज्योतिष शास्त्र के महान् विद्वान् जिनका जन्म ई० सन् ६५० के आस-पास माना जाता है।

ज्योतिष सिद्धान्त का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "महा सिद्धान्त" आचार्य आर्यभट्ट द्वितीय की रचना है। इस ग्रन्थ में सूर्य-सिद्धान्त, गणित के प्रश्न, क्षेत्र फल, खगोल, स्वर्गादि-लोक, भूगोल, ग्रहों की गति इत्यादि विषयों पर गम्भीर विवेचना की गई है।

आर्थर चेस्टर-लेन

यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका के इक्कीसवें प्रेसिडेण्ट जिनका कार्यकाल सन् १८८१ से १८८५ तक है।

आर्थर चेस्टर लेन अमेरिका में डिमाक्रेटिक (प्रजा-तंत्रीय) दल का प्रतिनिधित्व करते थे। अमरीका के गृहयुद्ध में इन्होंने अपनी सैनिक सेवाएँ अर्पित की थीं। जब अमेरिका में प्रेसिडेण्ट गारफील्ड की हत्या हो गई और देश में भय का वातावरण छा गया तब इन्होंने अमेरिका के प्रेसीडेण्ट पद को ग्रहण कर जनता के अन्दर छाये हुए भय को अपने भाषणों और कार्यशैली के द्वारा दूर कर दिया।

आर्कलायूस

यहूदी धर्म के प्रसिद्ध राजा हेरोद महान् का उत्तराधिकारी, जूदा राज्य का शासक जिसका समय ई० सन् के आरम्भ से कुछ पहले का है। यह आगस्टस सीजर का समकालीन था।

हेरोद महान् ने पहले एण्टीपस नामक अपने दूसरे पुत्र को उत्तराधिकारी बनाया था मगर बाद में अपनी दूसरी वसीयत में उसने अपना उत्तराधिकारी आर्कलायूस को बनाया। रोम के सम्राट आगस्टस सीजर का समर्थन भी इसी को था।

आर्कलायूस बड़ा अत्याचारी और निरंकुश शासक था। प्रजा इससे खुश नहीं थी अन्त में ई० सन् ७ में यहूदी धर्म के कुछ आदेशों का उल्लंघन करने के अपराध में यह गद्दी से उतार दिया गया।

आर्कलायूस

यूनान के एक दार्शनिक जो महात्मा सुकरात के गुरु माने जाते हैं इनका समय ईसा पूर्व की पाँचवीं शताब्दी है।

आर्कलायूस एक प्रकृतिवादी दार्शनिक थे। इनके मत के अनुसार सृष्टि के आद्यतत्व से शीत, उष्ण की उत्पत्ति होती है और उसी से सारे प्रजनन का विकास होता है। यूनान में ये अन्तिम प्रकृतिवादी दार्शनिक थे। इनके बाद सुकरात के समय से आचारवादी दर्शन का प्रारम्भ हुआ।

आदि पुराण

दिगम्बर जैन साहित्य का एक सुप्रसिद्ध पौराणिक ग्रन्थ। जिसकी रचना सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेन ने की और आगे चल कर उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने उसे पूर्ण किया। आचार्य जिनसेन का समय ई० सन् ८४८ के लगभग माना जाता है।

आदि पुराण ग्रन्थ में जैन परम्परा से मान्य तिरसठ शलाका महा पुरुषों के जीवन चरित्र का काव्यमय भाषा में वर्णन किया गया है। जैन परम्परा तिरसठ महा पुरुषों में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्त्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायणों का समावेश करती है।

आचार्य जिनसेन ने आदि पुराण के प्रथम भाग को ४८ पर्व और १२००० श्लोकों में पूर्ण किया है। इस ग्रन्थ के ४२ पर्व पूर्ण होने पर ही उनका देहान्त होगया। इसलिए इसके शेष अंश को उनके शिष्य गुणभद्राचार्य्य ने पूर्ण किया। इस प्रथम खण्ड में जैनियों के प्रथम तीर्थ कर ऋषभनाथ की जीवनी लिखी गई है। इस ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध या दूसरा भाग उत्तर पुराण के नाम से प्रसिद्ध है।

आरा

भारत वर्ष में बिहार प्रान्त का एक प्रसिद्ध नगर। जिसका इतिहास बहुत पुराना है।

कहा जाता है कि पाण्डवों ने अपना एक वर्ष का अज्ञात वास यहीं पर बिताया था। मसार ग्राम में प्राप्त जैन शिला लेखों में जिस आराम नगर का नाम आया है वह "आरा" ही का सूचक है।

सन् १८५७ के विद्रोह के समय में भी बाबू कुँवरसिंह के कारण इस नगर ने बड़ी प्रसिद्ध प्राप्त की।

आपेलीज

मकदूनिया का रहने वाला सिकन्दर का समकालीन एक प्रसिद्ध चित्रकार। उसके द्वारा बनाये गये अनेक चित्रों की प्रशंसा ग्रीस के प्राचीन ग्रन्थों में पाई जाती है।

आना (रूस की सम्राज्ञी)

रूस के जार पीटर द्वितीय के पश्चात् रूसी सिंहासन की उत्तराधिकारिणी जारीना आना (१७३०-४०) पीटर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक रूस का शासन सूत्र वहां की प्रिवी कौन्सिल के हाथ में रहा। उसके पश्चात् कुछ प्रभावशाली लोगों के समर्थन से पीटर प्रथम के भाई जार इवान की पुत्री आना को वहाँ का सिंहासन प्राप्त हुआ। आना की शादी एक जर्मन राजवंशीय युवक के साथ हुई थी।

सम्राज्ञी आना राजनैतिक उलझनों और षड्यंत्रों से दूर रह कर मौज, शौक और विलास वासना का जीवन बिताना पसन्द करती थी। इस ने राज्य सम्बन्धी सारे अधिकार अपने दरबारियों को दे दिये थे। उसके दरबारियों ने राजकीय क्षेत्र में सब जर्मन लोगों को भरना प्रारम्भ किया। जिससे रूसी लोग नाराज रहते थे। आना के शासन काल में तुर्कों और रूस की लड़ाई हुई जिसमें रूस ने टर्की को कई जगह हराया। बाद में १७३९ में हुई संधि के अनुसार रूस की काला सागर तक दनियेपर नदी के दोनों तट मिल गये।

आनन्द

भगवान् बुद्ध के अत्यन्त प्रिय और निकटवर्ती शिष्य, जो हमेशा उनकी निजी सेवाओं में तल्लीन रहते थे। शास्त्रों के सम्बन्ध में गहरा ज्ञान और तीव्र स्मरण शक्ति के कारण वे सारे भिक्षु संघ में अग्रगण्य माने जाते थे। भगवान बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उन्होंने अर्हतपद प्राप्त किया।

आनाक्सा गोरस

एक सुप्रसिद्ध-यूनानी दार्शनिक जो ई० सन् से ५०० वर्ष पूर्व एशिया माइनर के एक नगर में पैदा हुआ लेकिन बाद में यूनान में आ गया।

जिस समय यूनान में सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पैरेक्लीज उत्कर्ष पर था उसी समय अनाक्सा गोरस भी पैरेक्लीज की मित्रता में अपनी ज्ञान-गरिमा का विकास कर रहा था। उसने यूनान में प्रचलित देववाद की भावना का खण्डन कर भौतिक दृष्टिकोण का समर्थन किया। उसके सिद्धान्त अनेक्जामिनस, इम्पेडीक्लीज इत्यादि अणुवादियों से प्रभावित थे। उसके इन भौतिकवादी सिद्धान्तों को यूनानी जनता ने पसन्द नहीं किया और उसपर अधर्म और असत्य प्रचार का आरोप लगाकर एथेन्स से निकाल दिया।